ekuuh; ç'kkUr d|ekj] U;k;efr|

संजय कुमार अग्रवाल

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

क्रि॰ एम॰ पी॰ सं॰ 747 वर्ष 2005. 6 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

(क) सामान्य खण्ड अधिनियम, 1897—धारा 27—नोटिस सही पते पर निबंधित डाक से भेजी गई–अधिनियम की धारा 27 के अधीन ऐसी एक उपधारणा है कि नोटिस का विधिवत तामीला कराया गया है। (पैरा 9)

(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 82 एवं 83—फरार व्यक्ति की सम्पत्ति की उद्घोषणा और कुर्की–आदेश-पत्रक दर्शाता है कि सम्मन की तामीला किए बगैर गिरफ्तारी वारंट और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 82 एवं 83 के अधीन आदेशिका निर्गत की गई थी–अवधारित, यह सही प्रक्रिया नहीं है अतः अपास्त। (पैरा 11 एवं 12)

अधिवक्तागण.–M/s R.S. Deo, Kaushik Sarkhel, For the Petitioner; APP, For the State; Mr. Pandey Neeraj Roy, For the O.P. No. 2.

आदेश

पक्षों को सुना।

2. यह आवेदन दिनांक 13.5.2002 के आदेश के विरूद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अधीनस्थ न्यायालय ने परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया था और उन आदेशो को भी निरस्त करने के लिए है जिनके द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 82, 83 के अधीन गिरफ्तारी के वारंट और आदेशिका निर्गत की गई है।

3. परिवाद याचिका में यह अभिकथित किया गया हैं कि याची पर परिवादी का 4,50,000/- रुपये बकाया है। यह भी अभिकथित किया गया है कि 6.11.2001 को एस॰ बी॰ आई॰ देवघर का एक चेक निर्गत करके याची ने उक्त राशि लौटा दी है। परिवादी का आगे मामला यह है कि उक्त चेकों को भुनाने के लिए 8.11.2001 को देना बैंक, राँची में पेश किया गया था, परन्तु एक टिप्पणी ''व्यवस्था से अधिक'' के साथ इसे भुनाए बिना परिवादी को यह वापस कर दिया गया। यह भी अभिकथित किया गया है कि तत्पश्चात परिवादी ने परिशिष्ट–5 के माध्यम से याची को एक नोटिस दिया था और उससे पन्द्रह दिनो के भीतर धन का भुगतान कर देने का आग्रह किया था। यह भी कहा गया है कि याची को उक्त नोटिस निबंधित डाक द्वारा भेजी गई थी और उसके समर्थन में डाक विभाग की रसीद दाखिल की गई थी जिसे परिशिष्ट–6 के तौर पर चिन्हित किया गया है। यह भी कहा गया है कि जब याची ने उक्त नोटिस के पन्द्रह दिनों के भीतर राशि का भुगतान नहीं किया, तो उस तिथि से एक महीने के भीतर वर्तमान परिवाद याचिका दाखिल की गई है। यह प्रतीत होता है कि, अधीनस्थ न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन मामले की जाँच की थी और इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि प्रथम द्रष्टया परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध बनता है, तद्नुसार आदेशिका निर्गत करने का आदेश किया गया। यह भी प्रतीत होता है कि जब याची अधीनस्थ न्यायालय में हाजिर नहीं हुआ, तो जमानती वारंट निर्गत किया गया और तत्पश्चात् गैर–जमानती वारंट भी निर्गत किया गया और अन्ततः दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 82, 83 के अधीन याची के विरूद्ध आदेशिकाएं भी निर्गत की गई थी।

4. अधीनस्थ न्यायालय का दिनांक 13.5.2002 के आक्षेपित आदेश का प्रतिवाद करते हुए याची के विद्वान अधिवक्ता, अर्थात, श्री कौशिक सरखेल द्वारा यह निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में, परिवाद याचिका से ही यह प्रकट है कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 परन्तुक (b)

के अधीन यथा प्रावधान की गई नोटिस की तामीला याची पर नहीं कराया गया है और मामले की उस दृष्टि में, संज्ञान लेने वाला आदेश दूषित है। यह भी निवेदन किया गया है कि याची के उपर सम्मन की तामीला नहीं किया गया है और इसलिए गिरफ्तारी का वारंट और साथ-साथ दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 82, 83 के अधीन आदेशिका का निर्गत करना अवैधानिक है और इसलिए इसका इस न्यायालय द्वारा समर्थन नहीं किया जा सकता।

5. दूसरी ओर, विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री पाण्डेय नीरज राय निवेदन करते हैं कि याची को 6.12.2001 को निर्बंधित डाक के माध्यम से नोटिस पहले ही भेजी गई थी और वर्तमान परिवाद याचिका 15.1.2007 को अर्थात् एक महीना से अधिक समय के वाद दाखिल किया गया था। वह यह भी निवेदन करते हैं कि सामान्य खण्ड अधिनियम की धारा 27 के अधीन नोटिस की तामील करा देने की उपधारणा है क्योंकि नोटिस निर्बंधित डाक के माध्यम से भेजी गई थी। इन परिस्थितियों के अधीन वह निवेदन करते हैं कि संज्ञान के आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है।

6. निवेदनों को सुनकर, मैंने मामले के अभिलेख पर दृष्टिपात किया है। परिवाद याचिका में ही, परिवादी ने पैरा 12 पर विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि 6.12.2001 को निर्बंधित डाक के माध्यम से याची को मांग की नोटिस भेजी गई थी और उक्त के समर्थन में परिवादी ने डाक-रसीद की प्रति (परिशिष्ट-6) भी अनुलग्न की है। परिवाद याचिका में, परिवादी ने याची को भेजी गई नोटिस की प्रतिलिपि भी अलुनग्न की है जिसे परिशिष्ट 5 के तौर पर अनुलग्न किया गया है। उक्त नोटिस में याची का पता दिया गया था। याची ने यह विवाद नहीं उठाया है कि उक्त नोटिस पर उसका पता त्रुटिपूर्ण था।

7. सामान्य खण्ड अधिनियम की धारा 27 निम्नांकित रूप से पठित है।

> 27. **डाक द्वारा तामीला का अर्थ.**–जहाँ कोई [केन्द्रीय अधिनियम] या इस अधिनियम के प्रारम्भ के उपरांत बनाया गया विनियमन किसी दस्तावेज को डाक द्वारा तामीला कराना प्राधिकृत या आवश्यक करता है, जहाँ अभिव्यक्ति ''तामीला'' या ''देना'' या ''भेजना'' में से कोई भी अभिव्यक्ति या किसी अन्य अभिव्यक्ति का इस्तेमाल किया जाता है, तब जबतक कि भिन्न आशय प्रकट नहीं है, निर्बंधित डाक द्वारा उपयुक्त रूप से पता देते हुए पूर्व-भुगतान करके और डाक में दस्तावेज से निहित एक पत्र को भेजना तामीला को प्रभावी बनाया जाना माना जाएगा और, जबतक कि इसके प्रतिकूल सिद्ध न हो, इसे उस समय प्रभावी किया गया समझा जाएगा जिस समय डाक के सामान्य अनुक्रम में पत्र की सुपुर्दगी होगी।

8. इस प्रकार, पूर्वोक्त प्रावधानों की दृष्टि में, अगर यह सिद्ध कर दिया जाता है कि पत्र पर उपयुक्त पता लगाकर निर्बंधित डाक द्वारा भेजा गया था, तो तामीला को सम्यक् रूप से प्रभावी बनाया गया माना जाएगा क्योंकि कोई जो कुछ कर सकता है वह प्रावधानो का पालन करना है, अर्थात् सही पते पर निहित पूर्व-भुगतान करके एक निर्बंधित नोटिस को भेज देना है और एक बार ऐसे कर देने पर और नोटिस को डाकघर भेज देने पर उसका उस पर कोई नियंत्रण नहीं होता है इसलिए, सामान्य खण्ड अधिनियम की धारा 27 के अधीन इसे सम्बोधिती को भेज दिया गया उपधारित किया जा सकता है।

9. मैं पाता हूँ कि परिवादी ने सही पते पर निर्बंधित डाक से नोटिस भेजी थी, इस प्रकार सामान्य खण्ड अधिनियम की धारा 27 के अनुसार यह उपधारणा है कि मांग की नोटिस की याची पर विधिवत तामील करा दिया गया है।

10. चूँकि वर्तमान मामले में, नोटिस 6.12.2001 को भेजी गई थी और परिवाद याचिका 15.1.2002 को दाखिल की गई थी एवं संज्ञान 13.5.2002 को लिया गया था, अतः मैं पाता हूँ कि आक्षेपित आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है। इसलिए मैं उस आदेश के साथ हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं हूँ।

11. जहाँ तक उस आदेश का संबंध है जिसके द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 82, 83 के अधीन गिरफ्तारी का वारंट और आदेशिका निर्गत की गई थी, आदेश–पत्र की सत्यापित प्रति से यह प्रतीत होता है कि सम्मन की तामीला के बगैर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 82, 83 के अधीन गिरफ्तारी का वारंट और आदेशिका निर्गत की गई थी जो सही नहीं है। इसलिए यह अपास्त किया जाता है।

12. तथापि, मैं याची को अधीनस्थ न्यायालय में 17.2.2009 को आत्म समर्पण करने और जमानत की प्रार्थना करने, अगर ऐसी सलाह दी जाय, का निर्देश देता हूँ जिस पर विद्वान अधीनस्थ न्यायालय द्वारा इसे ध्यान में रखकर विचार किया जाएगा कि सम्मन का तामीला याची पर नहीं किया गया था।

13. तद्नुसार, इस आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ dñ flUgk] U;k;efr

तप्ती साधू

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (क्रि॰) सं॰ 79 वर्ष 2007. 11 नवम्बर, 2008 को विनिश्चित।

(ख) शब्द एवं मुहावरे–''अभिरक्षा''–शब्द अभिरक्षा मात्र वहां को छोड़कर न्यायिक अभिरक्षा से अभिप्रेत है जहाँ संदर्भ या तो स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित करता है कि वह पुलिस अभिरक्षा है या न्यायिक अभिरक्षा। (पैरा 9)

(क) भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—मुआवजा–अभिरक्षा संबंधी मृत्यु–याची ने केन्द्रीय कारागार में उसके द्वारा 25 वर्षीय पुत्र की अभिरक्षा में 72% जलने की चोट पाने के कारण हुई मृत्यु के लिए 2 लाख रुपये का दावा किया–परिवाद याचिका याची द्वारा अपने पुत्र की मृत्यु के तीन महीने के पश्चात् दाखिल की गयी–अन्वेषण समाप्त नहीं हुआ है–अभिनिर्धारित, यह राय धारित करने में बड़ी शीघ्रता होगी कि यह अभिरक्षा सम्बन्धी मृत्यु का एक मामला था। (पैरा 11 एवं 12)

निर्णयज विधि.–Mr. Priyadarshi, For the Petitioner; Mr. Shamim Akhtar, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने केन्द्रीय कारागार, दुमका में उसके लगभग 25 वर्ष की उम्र के अपने पुत्र संजय कुमार साधू द्वारा 72% जलने की चोट पाने के कारण मृत्यु के लिए 20,00,000/- (बीस लाख) रुपये के आर्थिक मुआवजा हेतु भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण रिट अधिकारिता का अवलंब लिया है। पूर्वोक्त संजय की अभिरक्षा में मृत्यु होने की जांच प्रारम्भ करने तथा सही अपराधियों को दण्डित करने का निवेदन किया गया।

2. संक्षेप में, मामले का तथ्य यह है कि याची के पुत्र संजय कुमार साधू (पूर्वकाल से मृतक) ने भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए मसालीया थाना केस सं॰ 67 वर्ष 2006 के संगत 26.10.2006 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, दुमका के न्यायालय में आत्मसमर्पण किया था और उसको उसी दिन न्यायिक अभिरक्षा को प्रतिप्रेषित कर दिया गया। 17.12.2006 को यह अभिकथन किया गया कि उसकी ऐसी अभिरक्षा के दौरान उसके पुत्र संजय कुमार साधू के शरीर पर मिट्टी का तेल उड़ेलने के पश्चात् आग लगायी गयी जिसके परिणामस्वरूप उसने छठे प्रक्रम

तक की जलने की चोटे आई। संजय कुमार साधू को उसकी जलने की चोट के बेहतर प्रबन्धन के लिए पाटलिपुत्र मेडिकल कॉलेज, अस्पताल, धनबाद (पी॰ एम॰ सी॰ एच॰, धनबाद) शीघ्र ले जाया गया और वहां से उसको राजेन्द्र इन्स्ट्टीच्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेज, रांची (आर॰ आई॰ एम॰ एस॰ रांची) को निर्देशित किया गया जहां उसकी 30.12.2006 को जलने की चोट के कारण मृत्यु हो गयी। याची-माता के अनुसार, उसके पुत्र संजय कुमार साधू की अभिरक्षा में मृत्यु कारित की गयी और इसलिए, 20,00,000/- (बीस लाख) रुपये प्रतिकर का संदाय करने के लिए और वास्तविक अपराधियों का पता लगाने के लिए न्यायिक एवं प्रशासनिक जांच प्रारम्भ करने के लिए प्रार्थना की गयी।

3. पुलिस अधीक्षक, दुमका (प्रत्यर्थी सं॰ 5) ने उसमें यह कथन करते हुए एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया कि याची के पुत्र, अर्थात्, संजय कुमार साधू ने एक बालिका अनुराधा कुमारी का व्यपहरण करने के अभिकथन हेतु 26.10.2006 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, दुमका की न्यायालय में आत्मसमर्पण किया था और तद्नुसार, उसको भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए उसी दिन 26.10.2006 को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित कर दिया गया था। 17.12.2006 को ओ॰ डी॰ पर्ची उसमें यह विवरण देकर दुमका पुलिस को सम्बोधित सदर अस्पताल, दुमका से जारी की गयी कि संजय कुमार साधू, आयु लगभग 25 वर्ष, को उसके उपचार हेतु केन्द्रीय कारागार, दुमका से सदर अस्पताल ले जाया गया। संजय कुमार साधू का कथन उसके उपचार के अनुक्रम में तथा उसकी माता-रिट याची तप्ती साधू तथा पिता सपन कुमार साधू की उपस्थिति में सदर अस्पताल, दुमका में 17.12.2006 को लगभग 10:45 बजे पूर्वाह्न को अभिलिखित किया गया जिसमे उसने यह स्वीकार किया कि उसी दिन अर्थात् 17.12.2006 को लगभग 9: बजे पूर्वाह्न उसने आत्महत्या करने के आशय से अपनी शरीर के उपर मिट्टी का तेल उड़ेला था और माचिस की सहायता से आग लगायी थी। उसने अपनी संपूर्ण शरीर पर गंभीर जलने की चोटे सहन की। पीड़ित के कथन पर दुमका नगर थाना केस सं॰ 281 वर्ष 2006 को 17.12.2006 को स्वयं पीड़ित के विरुद्ध आत्महत्या करने का प्रयत्न करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 309 के अधीन अपराध के लिए रजिस्ट्रीकृत किया गया। शपथ पत्र पर प्रत्यर्थी ने यह कथन किया कि पीड़ित सूचना देने वाला (व्यक्ति) अपने माता-पिता की उपस्थिति में पुलिस के समक्ष अपना कथन देते समय बहुत पूर्ण होश में था (परिशिष्ट-A) उसी समय, एक परिवाद याचिका मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, दुमका के समक्ष दाखिल की गयी, जिसको दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन थाने पर प्राप्त की गयी जिसके आधार पर दुमका नगर थाना केस सं॰ 80 वर्ष 2007 केन्द्रीय कारागार अधीक्षक, दुमका गुरूपदो पंडित, गुरूपदो पंडित तथा एक दामोदर पंडित के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएं 306/166/167 के अधीन अभिकथित अपराध के लगभग तीन महीने पश्चात् 19.3.2007 को रजिस्ट्रीकृत किया गया था।

4. एक पृथक प्रति-शपथपत्र प्रस्तुत रिट में पुलिस अधीक्षक, दुमका (प्रत्यर्थी 5) द्वारा पूर्वोतर दाखिल किये गये शपथपत्र के तर्कों का लगभग समर्थन करने वाले प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 6 की ओर से दाखिल किया गया है। उसमें शपथपत्र पर यह कथन किया गया कि संजय कुमार साधू, इत्तिला देने वाले ने अपने उदर में पीड़ा होने की शिकायत की थी और उसको 9.12.2006 को कारागार अस्पताल, दुमका में भर्ती किया गया जिसमें मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने लक्षण देखकर उसके रोग को, टेराटोमा-टेस्टिला का एक मामला होना निर्णीत किया और बेहतर व्यवस्था के कारण कैदी संजय कुमार साधू की आर॰ आई॰ एम॰ एस॰ रांची को अंतरण की सिफारिश की गयी और इसके संगत अनुमति कैदी संजय कुमार साधू के प्रस्तावित अंतरण के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, दुमका से माँगी गयी। समकालीन रूप से मांगपत्र आर॰ आई॰ एम॰ एस॰, रांची कैदी को ले जाने के लिए अनुरक्षक रक्षको को देने के लिए पुलिस अधीक्षक, दुमका के समक्ष प्रस्तुत किया गया। यह प्रति-शपथपत्र में आगे कथन किया गया कि 17.12.2006 की सुबह, कैदी संजय कुमार साधू ने अपनी शरीर पर मिट्टी का तेल उड़ेल करके और आग लगाकर शौचालय में आत्महत्या करने का प्रत्यन किया जहां वह नित्य क्रिया या शौच करने के बहाने गया था। कारागार के कर्मचारीगण एवं अन्य कैदी उसकी चीख या चिल्लाहट पर शीघ्र दौड़े और उसकी शरीर से आग बुझाकर उसको बचाने का प्रयास किये। कैदी संजय कुमार साधू को सर्वप्रथम दुमका सिविल अस्पताल शीघ्रता से भेजा गया और इस बारे में सूचना मुख्य न्यायिक

मजिस्ट्रेट, दुमका को दी गयी। पुनः मांगपत्र पी॰ एम॰ सी॰ एच॰, धनबाद में जले हुए कैदी को ले जाने के लिए अनुरक्षक गार्डो को देने के लिए पुलिस अधीक्षक, दुमका के समक्ष अध्यपेक्षा प्रस्तुत किया गया। यह इत्तिला संजय कुमार साधू के परिवार के सदस्यों को भी दी गयी कि उसको आत्महत्या करने का प्रयत्न करने में जलने की चोटे आयी थी (अनुसूची-F)। कैदी को और भी निर्देशित किया गया और तद्नुसार 19.12.2006 को पी॰ एम॰ सी॰ एच॰, धनबाद से आर॰ आई॰ एम॰ एस॰, राँची भेज दिया गया लेकिन उसकी 30.12.2006 को उसको जलने की चोट के कारण मृत्यु हो गयी जिसकी एक इत्तिला तत्काल मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को दी गयी (अनुसूची-G)। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, नयी दिल्ली के अध्यक्ष को भी उसी दिन 30.12.2006 को इत्तिला दी गयी (अनुसूची-H)। कारागार अधीक्षक ने अपने पत्र दिनांकित 19.1.2007 द्वारा एस॰ डी॰ ओ॰, रांची से मजिस्ट्रेट सम्बन्धी जांच तथा मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट के लिए निवेदन किया। अन्य प्राधिकारियों को संलग्नको के रूप में अभिलेख पर पत्रों की प्रतियों के साथ 9.4.2007 को भी सूचित किया गया।

5. अंतिम रूप से, यह कथन किया गया कि सम्यक् सावधानी और कैदी संजय कुमार साधू को उचित उपचार प्रदान किये जाने के बावजूद भी, वह जीवित नहीं रह सका। वह मानसिक रूप से विक्षिप्त हो गया था क्योंकि उसने उसकी माता-पिता के इच्छाओं के विरुद्ध बालिका से विवाह कर लिया था और यह बालिका के पिता ने भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन एक मामला दायर किया था और कारण कि बालिका ने बाद में विश्वासघात किया। क्योंकि उसने उसके साथ रहने से इंकार कर दिया जैसे कि श्री शमीम अख्तर एस॰ सी॰ II द्वारा बताया गया, कैदी संजय कुमार साधू गंभीर घबराहट एवं अवसाद की स्थिति में था जिसने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया और तद्नुसार अपने संपूर्ण शरीर के ऊपर मिट्टी का तेल उड़ेलकरके तथा इसको माचिस से जलाकर प्रयत्न किया। आहत का कथन उसके माता-पिता की उपस्थिति में पुलिस के समक्ष सर्वप्रथम अभिलिखित किया गया और उसके कथन पर उनके पुत्र के कथन की मौन-सहमति के प्रतीक स्वरूप उसके माता-पिता से हस्ताक्षर करवाया गया है जिसका प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता है। श्री अख्तर ने यह तर्क दिया कि चूंकि आहत की अंगुलियां जल गयी थी इसलिए कैदी के बांए पैर के अँगुठे का कार्बन निशान उसके कथन पर लिया गया जिसे पुलिस द्वारा अभिलिखित किया गया। श्री अख्तर, विद्वान एस॰ सी॰ II ने न्यायालय को वह सूचित किया कि पुलिस, मामले का अन्वेषण कर रही है जिसको उस परिवाद के आधार पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अधीन अंतरण पर रजिस्ट्रीकृत किया गया जिसमें बालिका के माता पिता के विरुद्ध पूर्णतया भिन्न अभिकथन करने वाले याची द्वारा अभिकथित परिवाद घटना के तीन महीने के पश्चात् दाखिल किया गया था कि मात्र उनकी प्रेरणा पर आहत को कारागार प्राधिकारियों द्वारा जलाया गया था।

6. श्री अख्तर यह निवेदन करके अपने तर्क के निष्कर्ष पर पहुँचे कि उसके माता-पिता की उपस्थिति में सदर अस्पताल, दुमका में सर्वप्रथम अभिलिखित किये गये संजय कुमार साधू के कथन से यह सुस्पष्ट होगा कि उसने प्यार में निराश होने के परिणामस्वरूप आत्महत्या करने का प्रयत्न किया क्योंकि उस बालिका ने, जिसके साथ विवाह किये होने का दावा किया, विश्वासघात किया और इसलिए किसी भी दशा में, अभिरक्षा सम्बन्धी मृत्यु होने का कोई भी मामला बनता नहीं है। प्रत्यर्थियों के विरुद्ध यथा पेश किये गये संपूर्ण अभिकथन निराधार, निःसार और सिवाय इसके कि मामला अभी भी अन्वेषणाधीन है।

7. कतिपय सुसंगत तथ्य ये हैं कि इसमें इसके ऊपर निर्दिष्ट किये गये संजय कुमार साधू के कथन के पश्चात् दुमका नगर थाना केस सं॰ 281 वर्ष 2006 स्वयं 17.12.2006 को उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 309 के अधीन अपराध के लिए संस्थित किया गया था। मृतक का पोस्टमार्टम 31.12.2006 को आर॰ आई॰ एम॰ एस॰, रांची में किया गया और यह पाया गया कि जलने की चोटे लपक से कारित हुई मृत्यु होने के पूर्व की थी और मृत्यु जलने के कारण हुई थी। मृत्यु से समय का निर्धारण पोस्ट मार्टम परीक्षण के 12 से 36 घण्टो के बीच किया गया था।

8. याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री प्रियदर्शी ने यह तर्क दिया कि बालिका के माता-पिता विशेषतौर पर गुरूपद पंडित (प्रत्यर्थी सं॰ 7) की प्रेरणा पर कैदी संजय कुमार साधू को केन्द्रीय कारागार, दुमका के प्राधिकारी तथा कर्मचारीवृन्द द्वारा जलाकर मारा गया और इसलिए यह अभिरक्षा

संबंधी मृत्यु का एक स्पष्ट मामला था। मामले की सूचना राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को दी गयी। बालिका के माता-पिता इस बात का आतंक पैदा कर रहे और धमकी दे रहे थे कि वे किसी भी कीमत पर बालक एवं बालिका का पुनर्मिलन नहीं होने देंगे और अंततोगत्वा बालक को रहस्यमयी दशा में जलने की चोटे आयी और इसलिए उसके माता-पिता पर्याप्त मुआवजा के हकदार हैं क्योंकि उन्होंने 25 वर्ष की कम आयु में अपने पुत्र को खो दिया जिससे वे अपनी वृद्धावस्था में बड़ी प्रत्याशा कर रहे थे।

9. ब्लैक लॉ की डिकशनरी न्यायिक अभिरक्षा के रूप में विधिपूर्ण प्रक्रिया या प्राधिकार के आधार पर व्यक्ति के निरोध को परिभाषित करती है। दंड प्रक्रिया संहिता में शब्द ''अभिरक्षा'' सदैव न्यायिक अभिरक्षा से अभिप्रेत है मात्र वहां को छोड़कर जहां संदर्भ या तो स्पष्ट रूप से यह उपदिर्शत करता था कि वह पुलिस अभिरक्षा है, या न्यायिक अभिरक्षा। साधारण भाषा शैली में अभिरक्षा सम्बन्धी मृत्यु मुख्य रूप से या तो पुलिस हवालात में या न्यायिक अभिरक्षा में एक व्यक्ति या किसी अभियुक्त या एक कैदी की मृत्यु से अभिप्रेत है।

10. स्वीकार्यरूपेण, 25 वर्षीय संजय कुमार साधू को भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए न्यायिक अभिरक्षा को प्रतिप्रेषित किया गया और एतद् द्वारा केन्द्रीय कारागार, दुमका में रखा गया। रिट याची के अनुसार, उसके पुत्र को जलने की चोटे उसके संपूर्ण शरीर पर आयी थी और आर॰ आई॰ एम॰, एस॰ रांची में उपचार के अनुक्रम में मृत्यु हो गयी और इस सम्बन्ध में उसने उस बालिका के माता-पिता के विरुद्ध अंगुली उठायी जिसके साथ मृतक ने केन्द्रीय कारागार दुमका के कार्मिकों के साथ उनके सम्बन्ध पर संदेह करते हुए उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने का दावा किया था। रिट याची ने अपने पुत्र की मृत्यु के तीन महीने के पश्चात् पूर्वोक्त तथ्यों का अभिकथन करके मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, दुमका के समक्ष परिवाद मामला दाखिल किया। मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण का निर्देश देकर पुलिस को निर्देशित किया गया और मामले का अन्वेषण प्रगति में है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन यथा अपेक्षित कोई अंतिम प्रपत्र विद्वान स्थायी परामर्शी II के अनुसार अब तक प्रस्तुत नहीं किया गया है। अतएव, मेरी दृष्टि में यह राय अभिनिर्धारित करना अतिशीघ्रता होगी कि यह अक्षरशः तौर पर संजय कुमार साधू की अभिरक्षा सम्बन्धी मृत्यु का एक मामला था।

11. इसके प्रतिकूल, उसके माता-पिता की उपस्थिति में सदर अस्पताल, दुमका में आगजनी की घटना के थोड़े समय पश्चात् सर्वप्रथम अभिलिखित किया गया कैदी संजय कुमार साधू का कथन भारतीय दंड संहिता की धारा 309 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए 17.12.2006 को दुमका नगर थाना केस सं॰ 281 वर्ष 2006 से पैदा होने वाले आत्म हत्या कारित करने के एक प्रत्यन को प्रकट करता है। आहत कैदी का कथन उसके माता-पिता की उपस्थिति में अभिलिखित किया गया और कथन पर इसमें याची-माता को सम्मिलित कर माता-पिता का हस्ताक्षर कराया गया है।

12. इन परिस्थितियो में, मैं यह पाता हूँ कि याची यह सम्प्रेक्षण करने के लिए किसी प्रथम दृष्टया स्थिति को प्रदर्शित करने या प्रक्षेपित करने में असफल हो गयी कि केन्द्रीय कारागार, दुमका में उसके निरोध के दौरान झेली गयी जलने की चोटो के परिणामस्वरूप उसके पुत्र संजय कुमार साधू की मृत्यु एक अभिरक्षा सम्बन्धी मृत्यु थी। रिट याचिका समयपूर्व है क्योंकि याची के परिवाद से उद्भूत होने वाला पुलिस मामला अभी भी अन्वेषणाधीन है और एक राय विरचित करना अतिशीघ्रता होगी।

13. उपरोक्त स्थिति के अधीन मुझे रिट याचिका में कोई गुणागुण नहीं मिलता ताकि हस्तक्षेप किया जा सके और तद्नुसार यह इस प्रक्रम पर खारिज की जाती है।

ekuuh; Mhñ dñ f lUgk] U;k;efr

श्रीमती शीला देवी एवं एक अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (दाण्डिक) संख्या 09 वर्ष 2008. 12 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 145—समर्थनियता—धारा 144 दण्ड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही धारा 145 दण्ड प्रक्रिया संहिता में सम्परिवर्तित इस तथ्य की उपेक्षा करते हुए कि एक सिविल वाद साथ-साथ चल रहा है और सिविल न्यायालय द्वारा व्यादेश याचिका खारिज कर दी गई है–अवधारित, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की कार्यवाही का दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 में सम्परिवर्तन पोषणीय नहीं है। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–AIR 2000 SC 1504; AIR 1985 SC 472: 1985 Cr. LJ 752—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Rana Pratap Singh, V.P. Singh, A.K. Sinha, Ashish Kumar Shekhar, For the Petitioners; Mr. R.R. Mishra, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन कार्यवाही जिसे बाद में विविध वाद संख्या 71 वर्ष 2007 में अनुमण्डल दण्डाधिकारी, बड़ही द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन एक कार्यवाही में सम्परिवर्तित कर दिया गया था, को निरस्त करने के लिए याचीगण ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण रिट अधिकारिता का आलम्ब लिया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याचीगण ने हजारीबाग जिले के भीतर चौपारण गाँव में अवस्थित खाता संख्या 29, प्लॉट संख्या 903 से अनुलग्न लगभग 34 डिसीमल माप वाली जमीन के भाग को जमीन के अधिकारपूर्ण स्वामी से पंजीकृत विक्रय-विलेख सं॰ 7666 दिनांक 18.5.2005 के माध्यम से खरीदा था। उक्त भूमि को खरीदने के उपरांत, याचीगण ने अपने नामों को नामांतरण करवाया और किराए की रसीद प्राप्त की और नियमित रूप से किराए का भुगतान करते आ रहे हैं। कुछ समय के उपरांत, उन्होंने खरीदे गए प्लॉट के ऊपर एक आवासीय घर बनाया जहाँ उन्होंने रहना प्रारम्भ कर दिया।

3. इसमें याचीगण ने अभिकथित किया कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने परतर दुष्प्रेरणा से याचीगण एवं अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध अधीनस्थ न्यायाधीश, हजारीबाग के न्यायालय में एक अभिधान वाद संख्या 140/2006 दाखिल किया इस घोषणा के लिए कि याचीगण के पक्ष में निष्पादित विक्रय-विलेख सं॰ 7666 दिनांक 18.5.2005 अवैधानिक थी और उसपर बाध्यकारी नहीं था, यद्यपि वाद के वादपत्र की प्रति को अभिलेख पर नहीं लाया गया है।

4. याचीगण के अधिवक्ता ने आग्रह किया कि अभिधान वाद संख्या 140 वर्ष 2006 के वाद-पत्र की अनुसूची-II में यथा वर्णित वाद की विषय-वस्तु निम्नांकित रूप से थी:–

> ''ग्राम चौपारन, पुलिस थाना, चौपारन, थाना संख्या 64 जिला-हजारीबाग, खाता संख्या 29, प्लॉट संख्या 903 में अवस्थित 1.02 एकड़ में से 0.34 एकड़ क्षेत्रफल वाली जमीन घिरी है।
>
> उत्तर–हारून रशिक की भूमि।
>
> दक्षिण–उसी प्लॉट में पदारथ सिंह की भूमि।
>
> पूर्व–खेदन शरही की भूमि।
>
> पश्चिम–सिमाना मनजा दोमादायदी।''

5. उक्त वाद में, प्रत्यर्थी संख्या 3-वादी ने वाद भूमि के ऊपर किसी निर्माण या संरचना को तैयार करने से याचीगण-प्रतिवादीगण को निबंधित करने का व्यादेश इप्सित करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता

के आदेश 39 नियम 1 एवं 2 के अधीन एक आवेदन दाखिल किया था परन्तु वादी-प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा यथा दाखिल व्यादेश याचिका को प्रतिवाद पर 24.8.2007 को खारिज कर दिया गया। याचीगण के अनुसार प्रत्यर्थी संख्या 3 (नन्द किशोर सिंह) ने इसी भूमि के संबंध में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन याचीगण के विरूद्ध एक कार्यवाही को प्रारम्भ करने के लिए तीन दिनों के पश्चात् 30.8.2007 को अनुमण्डल दण्डाधिकारी बड़ही के समक्ष एक याचिका दाखिल की जो अभिधान वाद संख्या 140 वर्ष 2006 की विषय-वस्तु थी। ऐसे आवेदन पर, विविध वाद संख्या 71 वर्ष 2006 के माध्यम से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन कार्यवाही प्रारम्भ की गई और अपने दर्शाए गए कारणों में याचीगण ने स्पष्टत: कथित किया कि क्रेता होने के नाते वे अधिकारपूर्ण स्वामी थे और राज्य सरकार के राजस्व अभिलेख में उनके नामों का नामांतरण हुआ था। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि नामांतरण के उपरांत उन्होंने अपने घर का निर्माण किया और उसमें निवास कर रहे थे और यह याचीगण के निबंधित करने वाली प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दाखिल व्यादेश याचिका को 24.8.2007 को खारिज कर दिया गया था।

6. विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि याचीगण के स्पष्ट मामले के बावजूद, विद्वान एस॰ डी॰ एम॰, बड़ही ने 25.10.2007 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 3 के साधारण आवेदन पर कार्यवाही, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन प्रारम्भ की गई थी को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में सम्परिवर्तित कर दिया जो अर्वाधित, मनमाना, अवैधानिक और दुर्भावनापूर्ण था, और बुद्धि का इस्तेमाल किए बगैर किया गया था यद्यपि याचीगण ने निवेदन किया था कि जब अभिधान की घोषणा और विक्रय-विलेख के रद्दकरण के लिए इन्हीं पक्षों के बीच जमीन को इसी टुकड़े के लिए एक व्यवहार वाद लम्बित था और कि यह तथ्य भी उजागर किया गया था कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 नियम 1 एवं 2 के अधीन इसमें प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दाखिल व्यादेश याचिका को खारिज कर दिया गया था। विद्वान अनुमण्डल दण्डाधिकारी ने आक्षेपित आदेश द्वारा कार्यवाही को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन एक कार्यवाही में सम्परिवर्तित करके विधि की त्रुटि कारित की थी और जिसके समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने **ए॰ आई॰ आर॰ 2000 एस॰ सी॰ 1504** में रिपोर्ट किए गए एक निर्णय पर अपना भरोसा रखा है। सर्वोच्च न्यायालय ने **अमरेश तिवारी बनाम लालता प्रसाद दूबे एवं एक अन्य** में अवधारित किया:-

> ''इस मामले में प्रथम सिविल वाद दाखिल किया गया था। सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा यथास्थिति का एक आदेश पहले ही पारित किया जा चुका था। तत्पश्चात धारा 145 की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। धारा 145 के अधीन कार्यवाही में कोई अन्तिम आदेश पारित नहीं किया गया था। हमारे मत में वर्तमान मामले के तथ्यों पर राम सुमेर के मामले (ए॰ आई॰ आर॰ 1985 एस॰ सी॰ 472; 1985 क्रि॰ लॉ॰ जर्नल 752) (उपर) में अधिकथित अनुपात पूर्ण रूप से लागू होता है। हम स्पष्ट करते हैं कि हम यह नहीं कह रहे हैं कि ऐसे प्रत्येक मामले में जहाँ एक सिविल वाद दाखिल किया जाता है धारा 145 की कार्यवाही नहीं होगी। केवल ऐसे ही मामलों में जहाँ एक ही सम्पत्ति के संबंध में कब्जे या अभिधान की घोषणा के लिए एक सिविल वाद दाखिल है और जहाँ सम्बद्ध सम्पत्ति के संरक्षण के संबंध में अनुतोषों के लिए आवेदन किया जा सकता है और सिविल न्यायालय द्वारा प्रद्वत किया जा सकता है कि धारा 145 के अधीन कार्यवाही को आगे चलने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि सिविल न्यायालय पक्षों के बीच अभिधान के साथ-साथ कब्जे के प्रश्न का निर्णय करने में सक्षम है और सिविल न्यायालय के आदेश दण्डाधिकारी पर बाध्यकारी होंगे।''

7. एस॰ डी॰ एम॰, बड़ही, प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है अन्य के साथ-साथ यह कहते हुए कि याचीगण का आवासीय घर उनके कब्जे में था या नहीं इसे पक्षों के साक्ष्य लेने के पश्चात जाँचना था और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन कार्यवाही को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन एक कार्यवाही में सम्परिवर्तित करने के उपरांत ही यह संभव था।

8. यद्यपि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने वकालतनामा निष्पादित करके अपनी उपस्थिति दर्ज की परन्तु अपना पक्ष रखते हुए कोई शपथपत्र दाखिल नहीं किया।

9. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं याचीगण की याचिका से पाता हूँ कि अभिधान वाद संख्या 140 वर्ष 2006, जिसे अधीनस्थ न्यायाधीश, हजारीबाग के समक्ष प्रत्यर्थी संख्या 3 नन्द किशोर सिंह द्वारा लाया गया था। वाद की लागत और अन्य अनुतोषों के अतिरिक्त प्रार्थना के साथ विक्रय-विलेख संख्या 7666 दिनांक 18.5.2005 को अवैधानिक और उसपर बाध्यकारी न होने की घोषणा के लिए था। इसमें याचीगण अन्य अनुतोषों की प्रकृति के संबंध में मौन है और अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है, क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 3 इसको लेकर मौन है कि अन्य अनुतोषो में कब्जे की घोषणा निहित थी या नहीं।

10. याचीगण का विनिर्दिष्ट बचाव यह है कि पूर्वोक्त अभिधान वाद में अधीनस्थ न्यायाधीश-I द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दाखिल व्यादेश याचिका को खारिज कर देने की पृष्ठभूमि में अभिधान वाद को संस्थित करने के उपरांत दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन प्रारम्भ की गई कार्यवाही और उक्त कार्यवाही का दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन एक कार्यवाही में सम्परिवर्तन समर्थनीय नहीं थी।

11. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री राणा प्रताप सिंह द्वारा यथा भरोसा की गई विधि की प्रतिपादना ने स्पष्टत: इंगित किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन पश्चातवर्ती कार्यवाही या दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन इसका सम्परिवर्तन समर्थनीय नहीं था जबकि इसी सम्पत्ति के संबंध में अभिधान की घोषणा या कब्जे के लिए एक सिविल वाद चल रहा है और जहाँ सम्बद्ध सम्पत्ति की संरक्षण के संबंध में अनुतोषों के लिए आवेदन किया जा सकता हो और सिविल न्यायालय द्वारा प्रदान किया गया हो। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि केवल इसलिए कि सिविल न्यायालय पक्षो के बीच अभिधान एवं साथ-साथ कब्जे के प्रश्न का निर्णय करने में सक्षम था, सिविल न्यायालय का आदेश सत्र में दाण्डिक कार्यवाही कर रहे दण्डाधिकारी पर बाध्यकारी होगा और उपरोक्त परिस्थिति के अधीन दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही की अनुमति नहीं दे दी जानी चाहिए।

12. तर्कों से उद्‌भूत होने वाले तथ्य इंगित करते हैं कि इसमें प्रत्यर्थी संख्या 3 अधीनस्थ न्यायाधीश, हजारीबाग के समक्ष याचीगण-प्रतिवादी के विरूद्ध एक अभिधान वाद संख्या 140 वर्ष 2008 दाखिल किया मुख्यत: इस घोषणा के लिए अनुतोष इप्सित करते हुए कि निर्बंधित विक्रय-विलेख, जिसके द्वारा प्रतिवादीगण ने वाद भूमि खरीदी थी, उसपर बाध्यकारी नहीं था। वादी-प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दावा करने के लिए इप्सित अनुतोष का यह भाग **ए॰ आई॰ आर॰ 2000 एस॰ सी॰ 1504 (अमरेश तिवारी बनाम लालता प्रसाद दूबे एवं एक अन्य)** में यथा अधिकथित विधि की प्रतिपादना के अधीन उसे निर्बन्धित नहीं करता और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन कार्यवाही प्रारम्भ करने या दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 में इसका सम्परिवर्तन करने में विद्वान अनुमण्डल दण्डाधिकारी, बड़ही अपनी अधिकारिता के भीतर है, क्योंकि उक्त सम्परिवर्तन के समय यह तथ्य रखा गया था कि उक्त भूमि के ऊपर संरचना खड़ी करने से याचीगण को निर्बंधित करने के लिए वादी-प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXXIX नियम 1 एवं 2 के अधीन दाखिल व्यादेश की याचिका को खारिज कर दिया गया था, यह इस युक्तिसंगत निष्कर्ष को उद्‌भूत करता है कि सत्राधीन सिविल न्यायालय ने वाद-भूमि के ऊपर कब्जे के तथ्य को परखा था और याचीगण-प्रतिवादीगण के विरूद्ध व्यादेश देने से इन्कार कर दिया था और केवल याचीगण के हित को हानि पहुँचाने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 3 ने छुपे तौर पर कब्जे के तथ्य का फिर से निर्णय करने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन कार्यवाही प्रारम्भ की जिसे धारा 145 दण्ड प्रक्रिया संहिता में सम्परिवर्तित किया गया। इसलिए, धारा 145 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन ऐसी कार्यवाही समर्थनीय नहीं थी, जो टिक नहीं सकती। इन परिस्थितियों में विविध वाद संख्या 71 वर्ष 2002 में अनुमण्डल दण्डाधिकारी, बड़ही द्वारा पारित दिनांक 25.10.2007 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और तद्‌नुसार याचीगण के विरूद्ध कार्यवाही समाप्त की जाती है। यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

ekuuh; ,ñ okbñ bdcky] U;k;efr

बैंक ऑफ इंडिया, आदित्यपुर, जमशेदपुर

बनाम

मेसर्स आस्वी ईलेक्ट्रिकल्स एवं अन्य

मूल डिक्री सं॰ 18 वर्ष 2000 से अपील. 11 नवम्बर, 2008 को विनिश्चित।

धन वाद सं॰ 3 वर्ष 1997 में, अवर न्यायाधीश-II, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 14.10.1999 के डिक्री एवं दिनांक 30.9.1999 के निर्णय के विरूद्ध।

(क) परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धाराएँ 20 एवं 118—परक्राम्य लिखतों के बारे में उपधारणा–ऋण की वसूली के लिए वाद–स्वीकृत तथ्य कि ऋण ऋणी को मंजूर किया गया था–नकद उधार सुविधा भी दी गयी थी एवं ऋणी ने दस्तावेज निष्पादित किये थे–अभिनिर्धारित, इस आधार पर कि दस्तावेजों में काफी खाली स्थान छोड़ा गया था एवं हस्ताक्षर के नीचे कोई तिथि नहीं दिया गया था, धनराशि वसूल करने के लिए दस्तावेज धारक का अधिकार छीना नहीं जा सकता है–यह उपधारित किया जायेगा कि उन दस्तावेजों को उसी दिन निष्पादित किया गया है। (पैरा 13)

(ख) परिसीमा अधिनियम, 1963—अनुच्छेद 19—ऋण धनराशि की वसूली–परिसीमा उस तिथि से प्रारम्भ होगा जिस तिथि को प्रत्यर्थीगण ने देयों का भुगतान करने से इनकार किया–जब खाता मौजूद है, तब परिसीमा प्रारम्भ नहीं होगा–वाद को कालवर्जित घोषित नहीं किया जा सकता है। (पैरा 18 एवं 19)

निर्णयज विधि.–AIR 1979 SC 102; 1999(2) Bank CLR 334 (SC).

अधिवक्तागण.–M/s A. Allam, Nehala Sharmin, For the Appellant; M/s V. Shivnath, Anoop Kr. Mehta, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ ईकबाल, न्यायमूर्ति.–यह अपील धन वाद सं॰ 3 वर्ष 1997 में अवर न्यायाधीश-II, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 30.9.1999 के निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा वादी-अपीलार्थी द्वारा 2,75,321=48 रु॰ की वसूली के लिए दाखिल किया गया वाद मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज किया गया है कि यह परिसीमा द्वारा वर्जित था।

2. वादी-बैंक ऑफ इंडिया ने, जिसका शाखा आदित्यपुर में है, उनके द्वारा दी गयी ऋण राशि की ब्याज सहित वसूली के लिए प्रत्यर्थीगण के विरूद्ध उपरोक्त वर्णित वाद दाखिल किया। वादी-अपीलार्थी का मामला अन्य के साथ-साथ यह था कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं॰ 1 मेसर्स आस्वी ईलेक्ट्रिकल्स के स्वत्वधारी के तौर पर, ऋण एवं नकद उधार सुविधा के माध्यम से वित्तीय सहायता हेतु वादी-बैंक से संपर्क किया। प्रत्यर्थीगण के आग्रह पर, वादी-बैंक ने 1,10,000/- रु॰ का एक ऋण एवं 60,000/- रु॰ की सीमा तक नकद उधार सुविधा मंजूर किया। प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने स्वयं एवं प्रतिवादी सं॰ 1 के स्वत्वधारी के तौर पर 8.10.1987 को मांग वचन पत्र, आडमान का करार, प्रतिभूति निरन्तरता, लियेन पत्र, गारंटी करार, इत्यादि सहित कई दस्तावेज निष्पादित किया। प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं॰ 3 प्रतिभू बन गया एवं बैंक के पक्ष में गारंटी निरन्तरता पत्र निष्पादित किया। वादी का मामला यह भी था कि प्रतिवादीगण ने बैंक से ली गयी धनराशि का समापन करने में व्यतिक्रम किया था। वादी ने दिनांक 24.10.1997 की नोटिस द्वारा बकाया देयों का पुनर्भुगतान करने का आग्रह प्रत्यर्थीगण से किया, परन्तु प्रत्यर्थीगण ने इसपर ध्यान नहीं दिया। वादी का मामला यह भी था कि प्रत्यर्थीगण ने अपने-अपने दायित्व को अभिस्वीकृत करते हुए अभिस्वीकृति पत्र निष्पादित किया था, परन्तु उनलोगों ने देयों का समापन नहीं किया था। अतएव, वाद दाखिल किया गया था।

3. प्रतिवादीगण–प्रत्यर्थीगण ने लिखित अभिकथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद किया। प्रतिवादीगण का मामला यह था कि यथा विरचित वाद पोषणीय नहीं था क्योंकि वादपत्र उचित रूप से हस्ताक्षरित एवं सत्यापित नहीं था। उनलोगों ने वादी–बैंक के पक्ष में ऋण लिया जाना एवं दस्तावेजों का निष्पादन स्वीकार किया है, परन्तु प्रतिवादीगण के अनुसार, उनलोगों ने न तो बैंक से कोई नोटिस प्राप्त किया है एवं न ही उनलोगों ने अपने दायित्व की ही अभिस्वीकृति दी है। प्रतिवादीगण का मामला यह है कि प्रत्यर्थीगण के हस्ताक्षर सादे दस्तावेजों पर प्राप्त किए गए थे जिसे बैंक की सुविधा के अनुसार उपयोग किया गया है।

4. विचारण न्यायालय ने कुल 11 मुद्दे विरचित किए जो निम्नलिखित रूप से हैं:–

(1) क्या यथा विरचित वाद पोषणीय है?

(2) क्या वादी के पास वाद के लिए कोई वाद हेतुक है?

(3) क्या यह वाद कालवर्जित है?

(4) क्या यह वादपत्र C.P.C. के आदेश 6 नियम 14 एवं 15 के उपबन्धों के अनुसार सक्षम व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित एवं सत्यापित है?

(5) क्या यह वाद C.P.C. के आदेश 7 नियम 4 के अधीन वर्जित है?

(6) क्या प्रतिवादीगण ने वादी बैंक से उपरोक्त दो ऋणों को सुनिश्चित करने के लिए दस्तावेजों को उचित एवं वैध रूप से वादी–बैंक के पक्ष में निष्पादित किया था?

(7) क्या लेखा विवरण सत्य है?

(8) क्या यह वाद भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 10 के उपबन्धों के अधीन वर्जित है?

(9) क्या वादी–बैंक ने B.S.F.C. से दुर्स्संधि करके C.W.J.C. No. 111 वर्ष 1998 (R) में माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश का उल्लंघन किया है?

(10) क्या वादी ब्याज एवं अन्य प्रभारों के साथ दावा की गयी राशि वादकालीन एवं भविष्य में वसूल होने तक एक डिक्री का हकदार है?

(11) वादी और कौन–कौन से अनुतोष या अनुतोषों का हकदार है?

5. परिसीमा से सम्बन्धित मुद्दा सं० 3 को विचारण न्यायालय द्वारा विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है एवं अंतत: वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था।

6. अपीलाथी–बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री ए० आलम ने आक्षेपित निर्णय एवं डिक्री की आलोचना की क्योंकि यह अवैध, अभिलेख पर मौजूद तथ्यों के विपरीत एवं पूर्णरूप से अधिकारितविहीन है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रतिवादी–प्रत्यर्थीगण ने विवाद नहीं किया है बल्कि ऋण की मंजूरी एवं नकद उधार सुविधा एवं दस्तावेजों का निष्पादन स्वीकार किया है। अधीनस्थ न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गम्भीर अवैधता कारित किया है कि इन दस्तावेजों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि उक्त दस्तावेज में प्रत्यर्थीगण के हस्ताक्षर के नीचे कोई तिथि मौजूद नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि निम्नस्थ न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गम्भीर त्रुटि कारित की है कि यह वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था।

7. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री अनूप कुमार मेहता ने निवेदन किया कि ये दस्तावेज, जो वाद के आधार थे, को वादपत्र के साथ दाखिल नहीं किया गया था और न ही इन दस्तावेजों को बाद के प्रक्रम में दाखिल करने के लिए कोई अनुमति ही प्राप्त की गयी थी। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वादी–बैंक द्वारा प्रमाणित किए गए अभिस्वीकृति पत्रों, विशेषकर प्रदर्श 8/b पर विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष की दृष्टि में भरोसा नहीं किया जा सकता है।

8. सर्वप्रथम, मैं विचारण न्यायालय द्वारा मुद्दा सं॰ 3 पर विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष पर चर्चा करूँगा।

9. विचारण न्यायालय ने यह पाया कि खाते में अंतिम संव्यवहार 31.8.1993 को किया गया था एवं यह वाद वर्ष 1997 में दाखिल किया गया था। पुनः विचारण न्यायालय ने वादपत्र में किए गए प्रकथनों को नोटिस किया कि प्रतिवादीगण ने 9.3.1996 सहित विभिन्न तिथियों को अभिस्वीकृति पत्रों को निष्पादित किया था। लेखा कथन को प्रदर्श 11 के तौर पर प्रदर्शित किया गया था। प्रत्यर्थीगण द्वारा निष्पादित अभिस्वीकृति पत्रों सहित सभी दस्तावेजों को प्रमाणित एवं वाद में प्रदर्श चिन्हित किया गया था। अभिस्वीकृति पत्रों (प्रदर्श 8 से 8/C) पर, विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्षों को अभिलिखित किया:–

> 21. दायित्व की अभिस्वीकृति मात्र उस अभिकथन या अभिकथनों को पुनर्नवीकृत करता है जिसपर वर्तमान विद्यमान दायित्व से जुड़ा अभिस्वीकृति का अभिवाक् आधारित है। अभिस्वीकृति को दावे के कालवर्जित होने से पूर्व अर्थात विहित अवधि का होना चाहिए। प्रदर्श 8 से 8/c को आपत्ति के साथ चिन्हित किया गया है। ये तीनों दस्तावेज ऋण प्रतिभूतियों की अभिस्वीकृति है जो कथित तौर पर प्रतिवादीगण द्वारा वादी–बैंक के पक्ष में निष्पादित किया गया है। प्रदर्श 8 कथित तौर पर प्रतिवादी द्वारा 25.7.90 को प्रतिवादी सं॰ 3 द्वारा निष्पादित किया गया है। उसके हस्ताक्षर के नीचे कोई तिथि नहीं है इसके अतिरिक्त, बहुत सारे खाली स्थानों को सादा छोड़ा गया है। प्रदर्श 8/a दिनांक 10.7.93 के ऋण प्रतिभूति की एक अन्य अभिस्वीकृति है जो कथित तौर पर प्रतिवादी सं॰ 3 एस॰ पी॰ सिंह द्वारा वादी–बैंक के पक्ष में निष्पादित किया गया है। इसमें काफी स्थान खाली छोड़ा गया है एवं एस॰ पी॰ सिंह, प्रतिवादी सं॰ 3 के हस्ताक्षर के नीचे तिथि नहीं है। प्रदर्श 8/6 एक अन्य उधार प्रतिभूति की अभिस्वीकृति है जो कथित तौर पर प्रतिवादी सं॰ 3 एस॰ पी॰ सिंह द्वारा 9.6.96 को निष्पादित किया गया है। इसमें काफी स्थान खाली छोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त, इसे 'आसु इलेक्ट्रिकल' के तौर पर लिखा गया है। प्रदर्श 8/c प्रतिभूति के उधार की एक अन्य अभिस्वीकृति है जो कथित तौर पर रेखा सिंह प्रतिवादी सं॰ 2 द्वारा 25.7.90 को निष्पादित किया गया है। इसमें भी काफी स्थान खाली छोड़ा गया है एवं रेखा सिंह के हस्ताक्षर के नीचे तिथि भी नहीं है।
>
> 22. यह वाद 17.11.97 को दाखिल किया गया था। वादी–बैंक ने दिनांक 9.3.96 के प्रदर्श 8/b पर अत्यधिक भरोसा किया है कि यह प्रतिवादी सं॰ 2 द्वारा निष्पादित किया गया है एवं इसलिए यह कहा गया है कि वाद समय के अंतर्गत है। मैंने उपर पहले ही कहा है कि प्रदर्श 8/b में उसके हस्ताक्षर के नीचे तिथि नहीं है। जैसा कि उपर नोटिस किया गया है, प्रतिवादीगण ने अभिकथित किया कि वादी–बैंक द्वारा उनके हस्ताक्षर बैंक के कई छपे प्रपत्रों में प्राप्त किया गया था एवं उन दस्तावेजों को वाद के प्रयोजन से परिवर्तित किया गया है। अब यह देखा जाना है कि क्या प्रतिवादीगण के अभिकथनों को वादी–बैंक द्वारा खंडित या प्रत्याख्यापित किया गया है या नहीं। बी॰ एन॰ पाटिल, अ॰ सा॰ 1 वादी–बैंक का उप–प्रबंधक है। उसने वादी–बैंक द्वारा दाखिल किए गए प्रदर्श 1 से 11 को प्रमाणित किया है। उसने अपने साक्ष्य के पैरा–10 में अभिकथित किया है कि ऋण एवं प्रतिभूति की अभिस्वीकृति (प्रदर्श 8) गौतम डे॰ द्वारा भरा गया था जिसपर रेखा सिंह एवं एस॰ पी॰ सिंह के हस्ताक्षर हैं। उसने आगे अभिकथित किया है कि ऋण एवं प्रतिभूति की एक अन्य अभिस्वीकृति प्रदर्श 8/a एन॰ आर॰ पोचारी मैनेजर द्वारा दाखिल किया गया था एवं इसपर प्रतिवादीगण सं॰ 2 एवं 3 के हस्ताक्षर हैं। उसने आगे अभिकथित किया है कि प्रदर्श 3/b बी॰ बी॰ राय द्वारा भरा गया था जिसपर गौतम डे एवं प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 के हस्ताक्षर हैं। प्रदर्श 8/b को प्रतिवादीगण द्वारा गम्भीरतापूर्वक चुनौती दी गई है एवं यह दिनांक 9.3.96 का है। यदि प्रदर्श 8/b यथार्थ है एवं प्रतिवादीगण सं॰ 2 एवं 3

द्वारा ऋण की वैध अभिस्वीकृति हुई है, तब वाद परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं होगा। अ० सा० 1 ने प्रति-परीक्षण में अपने साक्ष्य के पैरा 18 में निवेदन किया है कि अभिस्वीकृति प्रदर्श 8 से 8/c को उसकी उपस्थिति में भरा, हस्ताक्षरित किया एवं निष्पादित किया नहीं गया था। उसने स्वीकार किया है कि किसी भी दस्तावेज में निष्पादनकर्त्ताओं के हस्ताक्षर के नीचे तिथि नहीं है। उसने कहीं भी यह अभिकथित या प्रत्याख्यापित नहीं किया है कि ऋण एवं प्रतिभूति की अभिस्वीकृति (प्रदर्श 8 से 8/c) को प्रतिवादी सं० 2 एवं 3 के अनुरोध पर बैंक के अधिकारियों द्वारा उचित प्रकार से भरा गया था एवं जिसकी विषय वस्तु को उनके समक्ष स्पष्ट किया गया था। उसने यह भी अभिकथित नहीं किया है कि प्रतिवादियों ने स्वयं प्रदर्श 8 से 8/c की विषय वस्तुओं को पढ़ा था। उसने यह भी अभिकथित नहीं किया है कि प्रदर्श 8 से 8/c में उनलोगों के हस्ताक्षरों के नीचे तिथि क्यों नहीं दिया गया था। मेरी राय में, प्रतिवादीगण का यह अभिकथन अखंडित एवं सर्वसम्मत है कि उनलोगों को अपने हस्ताक्षर कई सादे एवं खाली कागजातों पर करने को कहा गया था। मेरी राय में, विशेष रूप से प्रदर्श 8/b पूर्व दिनांकित है। एन० आर० पोचारी जिन्होंने कथित तौर पर प्रदर्श 8/b भरा है, उन्हें परीक्षित नहीं किया गया है और न ही यह कहा गया है कि वह सेवा में नहीं है। अ० सा० 1 ने मिथ्यापूर्वक अभिकथित किया है कि प्रदर्श 8/b 10.9.96 को निष्पादित किया गया था क्योंकि इसपर 9.3.96 के तौर पर दिनांकित है।''

10. यहाँ निर्णय के पैरा-24 को उत्कथित करना भी उपयोगी है, जो मुद्दा सं० 3 पर विचारण न्यायालय द्वारा प्राप्त किया गया निष्कर्ष है:-

"24. इस सम्बन्ध में, लेखा विवरण की जाँच करना अनिवार्य है। पूर्व में लेखा विवरण 3,22,396 रु० या पैसा के लिए दाखिल किया गया था। मैंने पहले ही ऊपर में उल्लेख किया है कि प्रतिवादियों ने अपने लिखित अभिकथन के पैरा 7 एवं 6 पर अभिकथित किया है कि लेखा विवरण वादपत्र के साथ दाखिल नहीं किया गया था एवं उनलोगों द्वारा 22.3.99 को लिखित अभिकथन दाखिल करने के बाद लेखा विवरण दाखिल किया गया था एवं वादपत्र में संशोधन के पश्चात् उनलोगों ने अतिरिक्त लिखित अभिकथन इसके पैरा 2(D) में यह अभिकथित करते हुए दाखिल किया कि लेखा विवरण की अभिप्रमाणित प्रति पर इस सम्बन्ध में कोई तिथि नहीं है कि यह कब तैयार किया गया था। प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि सी० सी० के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच अंतिम सम्व्यवहार 31.8.93 को हुआ एवं उस तिथि से वाद कालवर्जित है। लेखा अभिकथन प्रदर्श 11 को आपत्ति के साथ प्रदर्श चिन्हित किया गया है एवं पक्षकारों के बीच अंतिम सम्व्यवहार 31 अगस्त, 1991 को हुआ न कि 31.8.93 को प्रदर्श 11 पर वह तिथि अंकित नहीं है कि यह बैंक प्रबंधक द्वारा कब तैयार किया गया था। प्रतिवादीगण द्वारा नोटिस प्रदर्श 12 एवं 12/a प्राप्त किए जाने से इनकार किया गया है। यद्यपि डाक रसीद 13 एवं 13/a दाखिल किया गया है परन्तु A/D दाखिल नहीं किया गया है इसलिए यदि यह उपधारित किया जाता है कि नोटिसों की तामीला प्रतिवादीगण को की गयी थी, तब भी वाद 31.8.91 से 20.10.97 को वर्जित था। यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धाँत है कि जब कोई व्यक्ति कहता है कि मैंने एक सादे कागज पर हस्ताक्षर किया है तब अकाट्य साक्ष्य के माध्यम से यह प्रमाणित करने का दायित्व दूसरे पक्ष पर है कि उसने एक भरे हुए कागज पर हस्ताक्षर किया है। वादी ने अपने इस दायित्व का निर्वहन नहीं किया है कि प्रतिवादी सं० 2 ने प्रदर्श 8/b को सम्यक् रूप से निष्पादित एवं हस्ताक्षरित किया है। वादी-बैंक, जिसने इसे दाखिल किया है, के किसी भी अधिकारी को प्रदर्श 8/b के सम्बन्ध में प्रतिवादियों के अभिकथन का प्रत्याख्यान करने के लिए परीक्षित नहीं किया गया है।''

11. न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के परिशीलन से, यह सुव्यक्त है कि अधीनस्थ न्यायालय ने इन दस्तावेजों पर इस आधार पर विश्वास नहीं किया कि दस्तावेजों में काफी स्थान खाली छोड़ा गया है एवं प्रत्यर्थीगण के हस्ताक्षर के नीचे तिथि नहीं है। अधीनस्थ न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि अभिस्वीकृति पत्रों को उस समय भरा नहीं गया था जब प्रतिवादीगण ने

अपने-अपने हस्ताक्षर किए थे। इन आधारों पर, वाद खारिज किया गया था। मेरी दृष्टि में, अधीनस्थ न्यायालय ने उपरोक्त आधारों पर वाद खारिज करके विधि की गंभीर त्रुटि कारित किया है।

12. इस प्रक्रम पर, मैं सर्वप्रथम परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 20 को निर्दिष्ट करना चाहूँगा, जो निम्नलिखित रूप से पठित है:-

"20. **अधूरी स्टांपित लिखत,**-जब कोई व्यक्ति तत्समय भारत में प्रवृत्त परक्राम्य लिखतों से जुड़ी विधि के अनुरूप या तो पूर्णतया सादे या इसपर अपूर्ण परक्राम्य लिखत लिखा हुआ एक स्टांपित कागजात पर हस्ताक्षर करता है एवं किसी अन्य व्यक्ति को परिदत्त करता है, तब वह प्रथम दृष्टया इसके धारक को इसमें विनिर्दिष्ट किसी राशि हेतु न कि स्टांप द्वारा कवर की गयी राशि से अधिक की राशि हेतु इसे एक परक्राम्य लिखत बनाने या पूरा करने का प्राधिकार प्रदान करता है। इस प्रकार से हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति उस हैसियत से, जिससे उसने इसपर हस्ताक्षर किया, देय अवधि हेतु उस राशि के लिए धारक को दायी होगा; परन्तु यह कि धारक को छोड़कर कोई अन्य व्यक्ति देय अवधि के दौरान लिखत परिदत्त करने वाले व्यक्ति से उसके द्वारा भुगतान की जाने की आशयित राशि से अधिक वसूल नहीं करेगा।

13. उपरोक्त उपबन्ध के परिशीलन से, यह प्रत्यक्षत: स्पष्ट है कि यह उपबन्ध लिखत के धारक को लिखत पूरा करने या बनाने का प्राधिकार प्रदान करता है। यह सुस्थापित है कि जब परक्राम्य लिखत में कोई तिथि होता है, तब यह उपधारित किया जाएगा कि उन सभी लिखतों को उसी तिथि को निष्पादित किया गया है। मात्र इस कारण से कि दस्तावेज के निष्पादक ने अपने हस्ताक्षर के नीचे तिथि अंकित नहीं किया है, दस्तावेज धारक के उन व्यक्तियों से धनराशि वसूल करने का अधिकार नहीं छीनता है, जिन लोगों ने इन दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किया है।

इसी प्रकार, धारा 118 परक्राम्य लिखत के बारे में एक उपधारणा प्रदान करता है। धारा 118 निम्नलिखित रूप से पठित है:-

"118. **परक्राम्य लिखतों के बारे में उपधारणायें.**-जब तक कि इसका विपरीत प्रमाणित न हो, निम्नलिखित उपधारणायें की जायेंगी:-

(a) **प्रतिफल का.**-यह कि प्रत्येक परक्राम्य लिखत प्रतिफलार्थ आहरित किया या बनाया गया था, एवं यह कि ऐसा प्रत्येक लिखत, जब इसे स्वीकृत, अनुमोदित, परक्राम्यित या हस्तांतरित किया गया था, तब इसे प्रतिफलार्थ स्वीकृत, अनुमोदित, परक्राम्यित या हस्तांतरित किया गया था, तब इसे प्रतिफलार्थ स्वीकृत, अनुमोदित परक्राम्यित या हस्तांतरित किया गया था;

(b) **तिथि के सम्बन्ध में.**-यह कि प्रत्येक तिथि धारित परक्राम्य लिखत उसी तिथि को बनाया या आहरित किया गया था;

(c) **स्वीकृति के समय के सम्बन्ध में.**-यह कि प्रत्येक स्वीकृत विनिमय पत्र इसकी तिथि के पश्चात एवं इसके परिपक्वता के पूर्व एक युक्तिसंगत समय के भीतर स्वीकार किया गया था;

(d) **हस्तान्तरण के समय के सम्बन्ध में.**-यह कि किसी परक्राम्य लिखत का प्रत्येक हस्तांतरण इसकी परिपक्वता के पूर्व किया गया था;

(e) **अनुमोदन के आदेश के सम्बन्ध में.**-यह कि किसी परक्राम्य लिखत पर प्रतीत होने वाला अनुमोदन उस आदेश में किया गया था जिस आदेश में वे उसपर प्रतीत होते हैं;

(f) **स्टांप के सम्बन्ध में.**-यह कि कोई खोया हुआ वचनपत्र, विनिमयपत्र या चेक सम्यक् रूप से स्टांपित था;

(g) **वह धारक देय अवधि में एक धारक है.-**यह कि किसी परक्राम्य लिखित का धारक देय अवधि में एक धारक है:

परन्तु यह कि, जहाँ लिखत को इसके विधिसम्मत स्वामी या इसके विधिसम्मत अभिरक्षक व्यक्ति से, किसी कपट या अपराध के माध्यम से, या इसके स्वीकारकर्ता या निर्माता से कपट या अपराध के माध्यम से या विधिविरूद्ध प्रतिफलार्थ प्राप्त किया है, तब यह प्रमाणित करने का बोझ उसपर जाता है कि वह धारक देय अवधि में एक धारक है।''

15. इसलिए, यह स्पष्ट है कि प्रत्येक परक्राम्य लिखत प्रतिफलार्थ आहरित या निर्मित किया जाता है। यह उपधारणा सिद्धान्त पर आधारित है न कि मात्र एक तकनीकी उपबन्ध पर। **भारत बैरल एवं ड्रम निर्माता कम्पनी बनाम अमीन चन्द प्यारेलाल [1999(2) बैंक CLR 334 (SC)]** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों पर विचार करके निम्नलिखित रूप से अभिनिर्धारित किया:–

"12. विभिन्न निर्णयों पर विचार करके, जैसा कि इसमें इसके पूर्व उल्लेख किया गया है, विधिक स्थिति, जो प्रतीत होता है, यह है कि एक बार जब वचनपत्र का निष्पादन स्वीकार किया जाता है, तो धारा 118(a) के अधीन यह उपधारणा उत्पन्न होगा कि यह एक प्रतिफल द्वारा समर्थित है। ऐसा कोई उपधारणा खंडनयोग्य है। प्रतिवादी संभावित बचाव लाकर किसी प्रतिफल की गैर–मौजूदगी प्रमाणित कर सकते हैं। यदि प्रतिवादी यह दर्शाते हुए प्रमाण के आरम्भिक दायित्व का निर्वहन प्रमाणित करते हैं कि प्रतिफल असम्भाव्य या संदेहास्पद था या यह अवैध था, तो यह दायित्व वादी पर जायेगा, जो वास्तव में इसे प्रमाणित करने को बाध्य होगा एवं प्रमाणित करने में असफल रहने पर परक्राम्य लिखत के आधार पर उसे अनुतोष की मंजूरी से वंचित करेगा। प्रतिवादी पर प्रतिफल की गैर–मौजूदगी प्रमाणित करने का बोझ था तो प्रत्यक्ष या उन परिस्थितियों को संदर्भित कर संभाव्यताओं की प्रबलता को अभिलेख पर लाकर हो सकती है जिसपर वह विश्वास करता है। ऐसी किसी स्थिति में, वादी मामलो में पेश किए गए वादी के साक्ष्य सहित सभी साक्ष्य पर भरोसा करने के लिए विधि के अधीन हकदार है। यदि, प्रतिवादी प्रतिफल की गैर मौजूदगी दर्शाकर प्रमाण के आरम्भिक दायित्व का निर्वहन करने में असफल रहता है, तो वादी सदैव धारा 118(a) के अधीन उद्भूत उपधारणा का लाभ अपने पक्ष में पाने का हकदार अभिनिर्धारित होगा। न्यायालय प्रत्यक्ष साक्ष्य पेश कर प्रतिफल का अस्तित्व प्रति प्रमाणित करने का आग्रह प्रतिवादी से नहीं कर सकता है क्योंकि नकारात्मक साक्ष्य का अस्तित्व न तो संभव है और न ही अभिप्रेत किया जा सकता है एवं यदि इसे पेश भी किया जाता है, तो भी इसे संदेह की दृष्टि से देखा जाना है। प्रतिफल पारित करने का कोरा प्रत्खाख्यान प्रत्यक्षत: कोई बचाव प्रतीत नहीं होता है। वह, जो सम्भाव्य है, उसे प्रमाणित करने का दायित्व वादी को देने का लाभ प्राप्त करने के लिए अभिलेख पर लाया जाना है। उपधारणा को प्रतिप्रमाणित करने के लिए, प्रतिवादी को ऐसे तथ्य एवं परिस्थितियाँ अभिलेख पर लानी है, जिसपर विचारण करके न्यायालय या तो यह विश्वास कर सकता है कि प्रतिफल विद्यमान नहीं था या इसकी अस्तित्वहीनता इतनी संभाव्य थी कि कोई विवेकशील व्यक्ति, मामले की परिस्थितियों के अधीन, इस अभिवाक् पर कार्रवाई करेगा कि यह विद्यमान नहीं था। इस सम्बन्ध में हमलोग स्वयं को राजस्थान उच्च न्यायालय एवं आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठों द्वारा अभिव्यक्त दृष्टिकोण से निकटता पाते हैं।''

16. आक्षेपित निर्णय के परिशीलन से, यह भी प्रतीत होता है कि निम्नस्थ न्यायालय ने यह अभिनिर्धारण करके पुन: विधि की घोर त्रुटि कारित किया है कि अकाट्य साक्ष्य द्वारा यह प्रमाणित करने का दायित्व लिखत धारक पर है कि उसने एक भरे हुए कागजात पर हस्ताक्षर किया है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके पुन: त्रुटि कारित की है कि वादी–बैंक ने अपने दायित्व का निर्वहन नहीं किया है। निम्नस्थ न्यायालय द्वारा प्राप्त किए गए उपरोक्त निष्कर्षों को भी विधि में बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

17. परिणामस्वरूप, मुद्दा सं॰ 3 पर यह निष्कर्ष विधि में बरकरार नहीं रखा जा सकता है कि यह वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है। मैं यह भी पाता हूँ कि मुद्दा सं॰ 9 को भी निम्नस्थ न्यायालय द्वारा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उचित रूप से निर्णित नहीं किया गया है कि मौखिक या दस्तावेजी, कोई भी साक्ष्य प्रतिवादी-प्रत्यर्थीगण द्वारा यह दर्शाते हुए पेश नहीं किया गया था कि अपीलार्थी भी बिहार राज्य वित्त निगम द्वारा इकाई के ग्रहण का पक्षकार था।

18. उक्त के अतिरिक्त, स्वीकार्यत: प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं॰ 3 ने उस राशि का भुगतान करने का वचन देते हुए एक निरन्तर गारंटी निष्पादित किया था जो ऋणी के विरूद्ध देय पाया जा सकेगा। प्रतिवादी-प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया था कि या तो ऋण खाता या नकद उधार खाता, जिसके विरूद्ध निरन्तर गारंटी दिया गया था, मृत हो गया था। ऐसी परिस्थितियों में, परिसीमा उस तिथि से प्रारंभ होगा, जब प्रत्यर्थीगण ने देयों का भुगतान करने से इनकार किया। **मारगारेट ललिता सैमुएल बनाम इण्डो कॉमर्सियल बैंक लि॰, [AIR 1979 S.C. 102]** के मामले में, न्यायाधीशों ने निम्नलिखित रूप से सम्प्रेक्षित किया:-

> "10. हमलोग सर्वप्रथम परिसीमा के प्रश्न पर विचार कर सकते हैं। जैसा कि हमारे द्वारा पहले ही वर्णित किया गया है, श्री बाल का निवेदन यह था कि ओवर ड्राफ्ट खाते का प्रत्येक मद एक स्वतंत्र ऋण था जिसकी वसूली की परिसीमा, परिसीमा अधिनियम, 1908 की अनुसूची के अनुच्छेद 57 द्वारा अवधारित किया गया था। परिसीमा, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, प्रत्येक ऋण की तिथि से प्रारंभ होता था। उन्होंने बसन्त कुमार मित्रा बनाम छोटानागपुर बैंककारी संगठन लि॰; ब्रोजेन्द्रो किशोर राय चौधरी बनाम हिन्दुस्तान कॉपरेटिव इन्श्योरेंस सोसाइटी लि॰, नेशनल एण्ड ग्रिंडलेज बैंक लि॰ बनाम टिकम चन्द दागा एवं उमा शंकर प्रसाद बनाम बैंक ऑफ बिहार लि॰ पर भरोसा किया था। हमारी दृष्टि में, वर्तमान मामले के प्रयोजनों हेतु ओवर ड्राफ्ट खाते की प्रकृति के प्रश्न पर विचार करना अनावश्यक है। वर्तमान वाद प्रतिवादी द्वारा निष्पादित गारंटी बंध को प्रवर्तित कराने के लिए सारभूत एवं सत्य वाद है। प्रतिवादी के दायित्व की प्रकृति का अभिनिश्चय करने के क्रम में किसी ओवरड्राफट खाते की प्रकृति के सम्बन्ध में कोई जाँच प्रारम्भ करने के बजाय गारंटी बन्ध के संक्षिप्त निबन्धनों को निर्दिष्ट करना आवश्यक है। प्रदर्श 57 प्रतिवादी एवं उसके पति द्वारा 23 अक्टूबर, 1994 को निष्पादित गारंटी बंधपत्र है। यह इन्डो कॉमर्सियल बैंक लि॰, मद्रास को सम्बोधित किया गया है, एवं यह निम्नलिखित शब्दों में है:-
>
> ''प्रिय महाशय,
>
> मॉर्डन हिन्दुस्तान फुड प्रोडक्ट्स लि॰, पूना को 10,00,000/- रु॰ (दस लाख रुपये मात्र) तक की ओवरड्राफ्ट सुविधा अनुज्ञात करने पर आपकी सहमति होने के फलस्वरूप हमलोग सी॰ बी॰ सैमुएल एवं एम॰ एल॰ सैमुएल, अधोहस्ताक्षरकर्ता, आप इंडो कामर्शियल बैंक लि॰ को संयुक्त एवं पृथक-पृथक रूप से सभी राशि का पुनर्भुगतान करने का गारंटी देते हैं, जो उक्त मॉर्डन हिन्दुस्तान फुड प्रोड्क्टस लि॰ से उनके खाते या किसी अन्य खाते के सामान्य अतिशेषों पर किसी भी समय आपको देय होगा ऐसे अतिशेषों में सभी ब्याज, प्रभार, कमीशन एवं अन्य व्यय शामिल होगा जिसे आप बैंकर के तौर पर एवं साथ ही किसी बचन पत्र या अन्य परक्राम्य लिखत की प्रतिभूति पर था जिसके सम्बन्ध में कोई उधार या अग्रिम दिया जाएगा, प्रभारित कर सकते हैं।
>
> एवं हम एतद् द्वारा घोषित करते हैं कि यह गारंटी किसी भी समय 10,00,000 (दस लाख रुपये मात्र) के लिए एक निरन्तर गारंटी होगा एवं इसे खाते के सामान्य शेष पर देय किसी धनराशि को किसी एक समय या भिन्न-भिन्न समयों पर भुगतान से पूर्ण या आंशिक रूप से संतुष्ट

होने पर इसपर विचार नहीं किया जाएगा बल्कि यह किसी भी समय आपको देय प्रत्येक एवं सभी आगे की राशियों के लिए एक प्रतिभूति होगा एवं इस हद तक विस्तारित एवं आच्छादित होगा। एवं हम आगे घोषित करते हैं कि हमारे दायित्वों का निर्वहन किये बिना आप मॉर्डन हिन्दुस्तान फुड प्रोड्क्ट्स लि॰ को कोई भी अनुग्रह प्रदान कर सकते हैं।''

गारंटी को एक सतत गारंटी के रूप में देखा जाना है एवं प्रतिवादी द्वारा वैसी सभी राशि का भुगतान करने का वचन दिया गया है जो इसके खाते या किसी अन्य खाते, जो भी, के सामान्य शेष के अंत में देय है। ऐसे किसी सतत गारन्टी की दशा में, जब तक कि यह खाता इस अर्थ में एक वर्तमान खाता है कि यह व्यवस्थापित नहीं है एवं गारंटीदाता की ओर से बाध्यता निभाने से इनकार नहीं किया गया है, हम यह नहीं समझते कि किस प्रकार से परिसीमा की अवधि को प्रारम्भ हो चुका कहा जा सकता था। परिसीमा अधिनियम, 1908 की अनुसूची के अनुच्छेद 115 के अधीन उल्लंघन की तिथि से परिसीमा प्रारम्भ होगी। जब प्रथम दृष्टाँत में बॉम्बे उच्च न्यायालय ने मामले पर विचार किया एवं अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं था, न्यायमूर्ति जे॰ सी॰ शाह ने न्यायालय के लिए बोलते हुए कहा;

''गारंटी पक्षों के स्पष्ट शब्दों से यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी ने ऐसी किसी भी राशि का भुगतान करने का वचन दिया जो कंपनी द्वारा इसके खाते या किसी अन्य खाते जो भी, के सामान्य अतिशेष के अंत में कंपनी द्वारा देय हो सकता है.....इस मामले में हम कंपनी द्वारा बैंक को पुनर्भुगतेय परिसीमा की अवधि के प्रति चिंतित नहीं हैं। हम प्रतिभू बंध-पत्र के अधीन प्रतिवादी के दायित्व प्रवर्तित करने के लिए परिसीमा की अवधि के प्रति चिंतित हैं। हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि दायित्व के प्रवर्तन का वाद अनुच्छेद 115 द्वारा शासित है एवं वाद हेतु उत्पन्न होता है जब गारंटी की निरन्तरता की संविदा टूट जाती है, एवं वर्तमान मामले में हम इस दृष्टिकोण के हैं कि जब तक यह खाता जीवित खाता रहा एवं प्रतिवादी की ओर से अपनी बाध्यता का निर्वहन करने की प्रतिवादी की ओर से कोई अस्वीकृति नहीं थी, तब तक परिसीमा की अवधि प्रारम्भ नहीं हुई।'' हम न्यायमूर्ति शाह द्वारा अभिव्यक्त किये गए दृष्टिकोण से सहमत हैं। किसी गारंटी की निरन्तरता जिसके समान गारंटी निरन्तरता पर हम वर्तमान मामले में विचार कर रहे हैं, के आशय एवं प्रभाव को राईट बनाम न्यूजीलैंड फार्मर्स कॉपरेटिव एसोसियेशन ऑफ कैन्टरबरी लि॰ में प्रीवी काउंसिल की न्यायिक सामिति द्वारा विचार किया गया था। उस मामले में गारंटी पत्र का द्वितीय खण्ड निम्नलिखित शब्दों में था:-

''यह गारंटी एक निरन्तर गारंटी होगा एवं उस अतिशेष पर लागू होगा जो यथा उपरोक्त आपके द्वारा दी गयी अग्रिमों एवं आपूर्त्ति की गयी सामग्रियों के लिए एवं यथा उपरोक्त ब्याज एवं अन्य प्रभारों के लिए विलियम नॉस्वॉर्दी एवं रॉबर्ट नॉस्वॉर्दी द्वारा उनके आपके साथ चालू खाते पर से अब या इसके पश्चात् आपको देय है।''

उस मामले में एक प्रतिविरोध किया गया था कि गारंटीदाता का दायित्व अग्रिम की तिथि से छः वर्षों की समाप्ति पर नास्वॉर्दीयों को दिये गए प्रत्येक अग्रिमों के सम्बन्ध में वर्जित था। प्रिवी काउँसिल की न्यायिक समिति ने यह राय व्यक्त किया कि मामले को गारंटी के यथार्थ अर्थान्वचन द्वारा अवधारित किया जाना था। ऐसा करने से पहले, न्यायिक समिति ने सम्प्रेक्षित किया (पृष्ठ 449 पर):

''इसमें संदेह नहीं है कि नॉस्वॉर्दीयों को संगठन द्वारा दी गयी तथा दी जाने वाली अग्रिमों का पुनर्भुगतान ब्याज एवं प्रभारों सहित संगठन को किया जायेगा; परन्तु यह कॉलम 2 में विनिर्दिष्ट करता है कि किस प्रकार गारंटी प्रवृत्त होगा-(अर्थात् गारंटीदाता पुनर्भुगतान की गारंटी

देता है) यह उस अतिशेष पर लागू होगा जो इसके पश्चात् किसी भी समय नॉस्वॉर्दीयों द्वारा संगठन को देय है। यह अभिनिर्धारित करने के सिवाय यह अभिनिर्धारित करना कठिन है कि इस प्रावधान को किस प्रकार प्रभावी बनाया जा सकता है कि प्रत्येक विकलन अतिशेष के पुनर्भुगतान की गारंटी दी गयी क्योंकि यह कुल साख पर कुल विकलनों के अतिरेक द्वारा गारंटी की निरन्तरता के दौरान समय-समय पर स्थापित है। यदि वही इस दस्तावेज का यथार्थ अर्थान्वयन हो, जैसा कि न्यायाधीशों ने सोचा है, तो वर्षों की संख्या, जो किसी व्यक्तिगत विकलन उपगत होने से बीत चुका है, महत्वहीन है। परिसीमा का प्रश्न केवल उसी समय के सम्बन्ध में उद्भूत होगा जो उस समय के बाद से बीत चुका था जब गारंटी दी गयी एवं वाद लाया गया अतिशेष संस्थित किया गया था।

बाद में पुनः यह सम्प्रेक्षित किया गया था (पृष्ठ 450 पर):–

''वह दस्तावेज, उनकी राय में, स्पष्ट रूप से जैसा कि कुल साख पर अधिशेष द्वारा गारंटी की निरन्तरता के दौरान समय-समय पर नियत किया जाता है; प्रत्येक विकलन अतिशेष के पुनर्भुगतान की गारन्टी देता है एवं तद्नुसार प्रतिदावे की तिथि पर, नॉस्वार्दीयों द्वारा देय असंदत्त अतिशेष के ब्याज सहित भुगतान के लिए वादी के विरूद्ध संगठन का दावा संविधि वर्जित नहीं था।''

19. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, वादी-अपीलार्थी द्वारा दाखिल किये गये वाद को परिसीमा के आधार पर एवं अन्य आधार पर खारिज नहीं किया जाना चाहिए था।

20. उपरोक्त कारणों से, यह अपील अनुज्ञात किया जाता है एवं निम्नस्थ न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय एवं डिक्री अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, वाद डिक्री किया जाता है। यद्यपि, मामले के तथ्यों में व्ययों का कोई आदेश नहीं होगा।

---

ekuuh; Kku lèkk feJk] e[; U;k;kèkh'k ,o Mhñ dñ flUgk] U;k;efr

डॉ॰ राजेन्द्र कुमार (534 में)

डॉ॰ एम॰ सी॰ पी॰ शॉ (535 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 534, 535 वर्ष 2002. 13 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1051 वर्ष 2002 में दिनांक 16.9.2002 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

सेवा विधि-नियुक्ति-बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग की चयन समिति ने समग्र शैक्षणिक उत्कृष्टता पर विचार करते हुए महाविद्यालय के प्राचार्य के पद के लिए निजी प्रत्यर्थी के नाम की अनुशंसा की-अभिनिर्धारित, चयन समिति के निर्णय के उपर अपना मत प्रतिस्थापित करना न्यायालय के लिए वैधानिक रूप से अननुमान्य होगा। (पैरा 11 एवं 12)

अधिवक्तागण.–M/s Ritu Kumar, J.S. Singh (in 534); M/s Mahesh Tiwary, J. Pandey (in 535), For the Appellants; M/s M. Tandaon, S. Shankar, For the Respondent State; Mr. S.P. Roy, For the Respondent-State of Bihar; Mrs. I.Sen Choudhary, For the Respondent-University.

न्यायालय द्वारा.–डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 1051 वर्ष 2002 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 16.9.2002 के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध ये दोनों अपीलें दाखिल की गई है, जिसके

द्वारा याची राजेन्द्र कुमार, जो एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 534/2002 में अपीलार्थी है, द्वारा दाखिल रिट याचिका को यद्यपि अनुज्ञात तो कर दिया गया था, परन्तु उसके द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से इप्सित अनुतोष, अर्थात्, प्राचार्य के पद पर नियुक्ति को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रदान नहीं किया गया था क्योंकि प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण को के॰ एस॰ जी॰ एम॰, महाविद्यालय में केवल नियमित आधार पर प्राचार्य के पद को भरने की अनुमति थी। तथापि, प्रशासनिक अत्यावश्यकता के मद्देनजर महाविद्यालय के वरिष्ठतम शिक्षक को कार्य करने और प्राचार्य के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए प्रभारी प्रोफेसर बनाए जाने की अनुमति दे दी गई थी।

2. एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 534/2002 में अपीलार्थी राजेन्द्र कुमार ने के॰ एस॰ जी॰ एम॰ महाविद्यालय, निरसा के शासी निकाय द्वारा लिए गए दिनांक 6.11.2000 के निर्णय के विरूद्ध रिट याचिका दाखिल किया था जिसके द्वारा और जिसके अधीन रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 7 डॉ॰ एम॰ सी॰ पी॰ शॉ को के॰ एस॰ जी॰ एम॰ महाविद्यालय के प्राचार्य के पद पर नियुक्त किया गया था और बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग, जो तत्समय विद्यमान था, द्वारा की गई अनुशंसा के अनुसरण में महाविद्यालय के शासी निकाय ने उसे (प्रत्यर्थी संख्या 7) को नियुक्त किया था। याची-अपीलार्थी राजेन्द्र कुमार ने के॰ एस॰ जी॰ एम॰, महाविद्यालय के प्राचार्य के पद पर प्रत्यर्थी संख्या 7 को नियुक्त करने वाले निर्णय की मूलत: इस अभिवाक् पर आलोचना की थी कि विज्ञापन के अनुसार व्याख्याता के स्वीकृत पद पर उसे 12 वर्ष का शिक्षण कार्य का अनुभव नहीं था, जो विज्ञापन के अनुसार भी आवश्यक था, न ही उसके पास प्रथम श्रेणी से स्नातकोत्तर की डिग्री थी, जो अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् के मार्ग-निर्देशों के अनुसार एक आवश्यकता थी।

3. याची ने इस प्रकथन पर रिट याचिका दाखिल की थी कि वह प्रत्यर्थी संख्या 7 से अधिक योग्यता वाला व्यक्ति था, क्योंकि उसके पास वाणिज्य में प्रथम श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री थी और व्याख्याता के एक स्वीकृत पद पर उसे 12 वर्ष का अपेक्षित शैक्षणिक अनुभव भी था जो विज्ञापन के निबंधनों में अनिवार्य अर्हताएं थी। उसके तर्क के अनुसार, वह बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग के चयन समिति द्वारा गलत तरीके से महाविद्यालय में प्राचार्य की नियुक्ति से वंचित किया गया था और प्राचार्य के पद पर नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी संख्या 7 के नाम की अनुशंसा करके बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग ने अवैधानिकता और अनियमितता कारित की थी जिसके पास याची के अनुसार, न तो अपेक्षित शिक्षण कार्य का अनुभव था, और न ही याची राजेन्द्र कुमार से बेहतर अर्हता थी।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिद्वंदी पक्षों, अर्थात्, राजेन्द्र कुमार और प्रत्यर्थी संख्या 7 डॉ॰ एम॰ सी॰ पी॰ शॉ की क्रमिक अर्हताओं की एक संवीक्षा की और अन्तत: अवधारित किया कि न तो प्रत्यर्थी संख्या 7 के पास 12 वर्ष का अपेक्षित शैक्षणिक अनुभव था और न ही व्याख्याता के एक स्वीकृत पद पर याची राजेन्द्र कुमार के पास 12 वर्षों का शिक्षण-कार्य का अनुभव था और इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने याची राजेन्द्र कुमार की प्रार्थना को केवल इस सीमा तक अनुज्ञात किया कि प्रत्यर्थी संख्या 7 की नियुक्ति को निरस्त कर दिया गया और महाविद्यालय के प्राचार्य के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए प्रभारी प्रोफेसर के तौर पर वरिष्ठतम शिक्षक को प्रतिनियुक्ति करके महाविद्यालय के शासी निकाय द्वारा एक अन्तरिम व्यवस्था को अपनाने का आदेश किया गया। इसी कारण से ये दोनो लेटर्स पेटेण्ट अपीलें एक याची राजेन्द्र कुमार द्वारा और दूसरी प्रत्यर्थी संख्या 7 डॉ॰ एम॰ सी॰ पी॰ शॉ द्वारा दाखिल की गई है क्योंकि दोनों ही विद्वान एकल न्यायाधीश के आक्षेपित आदेश एवं निर्णय से व्यथित है।

5. एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 534/2002 में अपीलार्थी, राजेन्द्र कुमार इस तथ्य से व्यथित हैं कि यद्यपि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 7 की नियुक्ति निरस्त और अपास्त कर दी गई है,

परन्तु प्राचार्य के पद के लिए उसे अधिक उपयुक्त अवधारित करके याची को नियुक्ति प्रदान करने के लिए अतिरिक्त आग्रह को स्वीकार नहीं किया गया था और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा यह त्रुटिपूर्ण रूप से अवधारित किया गया था कि उसे 12 वर्ष का अपेक्षित शिक्षण-कार्य अनुभव नहीं था इस तथ्य से निष्कर्ष निकालकर कि इतिहास विभाग में, दो प्रोफेसर की सेवानिवृत्ति के उपरांत सम्बद्ध प्राधिकारी द्वारा कोई नियुक्ति नहीं की गई थी, जिससे यह दोषपूर्ण निष्कर्ष निकाला गया कि याची के पास अपेक्षित शिक्षण-कार्य का अनुभव नहीं था।

6. याची-अपीलार्थी, राजेन्द्र कुमार के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची-अपीलार्थी, राजेन्द्र कुमार इतिहास विभाग में कभी भी व्याख्याता नहीं था और वह सदा से ही वाणिज्य विभाग में व्याख्याता था और इसलिए, इस तथ्य से विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष स्पष्टत: स्थापित तथ्य के प्रतिकूल था कि इतिहास विभाग में किसी व्याख्याता की नियुक्ति नहीं की गई थी। अपीलार्थी राजेन्द्र कुमार के अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि प्रत्यर्थी संख्या 7 के अधिवक्ता द्वारा किए गए इस विशुद्धीकरण की दृष्टि से की प्रत्यर्थी संख्या 7 को वर्ष 1980 में इतिहास विभाग में व्याख्याता के पद पर नियुक्त किया गया था और उसने वर्ष 1998 में प्राचार्य के पद के लिए आवेदन किया था, अगर यह अवधारित भी कर लिया जाए कि प्रत्यर्थी संख्या 7 के पास अपेक्षित शिक्षण-कार्य अनुभव नहीं था, वह उस समय तक पहले से ही 18 वर्ष का शिक्षण-कार्य अनुभव अर्जित कर चुका था और इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 7 के संबंध में भी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष भी त्रुटिपूर्ण था और दोनों लेटर्स पेटेण्ट अपीलें जो विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय एवं आदेश की आलोचना करते हुए राजेन्द्र कुमार द्वारा दाखिल की गई थी और दूसरी डॉ॰ एम॰ सी॰ पी॰ शॉ द्वारा दाखिल की गई थी-प्रत्यर्थी संख्या 7 के अधिवक्ता द्वारा यही अभिवाक् लिया गया था।

7. प्रत्यर्थी संख्या 7 की ओर से प्रस्तुत पूर्वोक्त तथ्य के मुकाबले अपीलार्थी राजेन्द्र कुमार की ओर से यह निवेदन किया गया कि अगर यह मान भी लिया जाए कि प्रत्यर्थी संख्या 7 के पास एक स्वीकृत पद पर 12 वर्ष का शिक्षण कार्य का अनुभव था, फिर भी वह याची, राजेन्द्र कुमार कम योग्यताधारी था क्योंकि याची के पास वाणिज्य में प्रथम श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री थी, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 7 के पास स्नातकोत्तर में केवल द्वितीय श्रेणी की डिग्री थी और इस प्रकार, आयोग ने प्रतिद्वंदी पक्षकारों की अर्हता का एक व्यक्तिपरक आकलन किया था।

8. तर्क के इस भाग को एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 535/2002 में अपीलार्थी अर्थात् प्रत्यर्थी संख्या 7 के अधिवक्ता द्वारा खण्डित किया गया, क्योंकि यह निवेदन किया गया कि विज्ञापन के आलोक में, चयन समिति प्रत्यर्थी संख्या 7 को नियुक्ति प्रदान करने में पूर्णत: औचित्य पर थी क्योंकि विज्ञापन में इंगित अनिवार्य अर्हताएँ थी कि अपीलार्थी के पास एक स्वीकृत पद पर 12 वर्ष का शिक्षण-कार्य अनुभव होना चाहिए और लगातार अच्छे शैक्षणिक इतिहास, जिनका गणना दसवीं से स्नातकोत्तर स्तर तक करनी थी, के साथ उसके पास प्रथम श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री या उच्चतर स्तर की द्वितीय श्रेणी में स्नातकोत्तर डिग्री होनी चाहिए थी। एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 535/2002 अपीलार्थी, यानि प्रत्यर्थी संख्या 7 के अधिवक्ता ने यह भी स्पष्ट किया कि विज्ञापन में इंगित आवश्यकताओं की दृष्टि में चयन समिति प्रत्यर्थी संख्या 7 की शैक्षणिक उत्कृष्टता की समग्र आकलन करने में पूर्णतया औचित्य पर था जिसके पास मैट्रिक में प्रथम श्रेणी, इण्टरमीडिएट (आई॰ ए॰) स्नातक और स्नातकोत्तर में द्वितीय श्रेणी थी

जबकि याची ने मैट्रिक, इण्टरमीडिएट (आई॰ कॉम) में तृतीय श्रेणी प्राप्त की थी और केवल स्नातकोतर स्तर पर उसने प्रथम श्रेणी प्राप्त की थी जो उसे (प्रत्यर्थी संख्या 7) प्राचार्य के पद पर नियुक्ति से अयोग्य करने के लिए बेमुश्किल ही एक पर्याप्त रूप से दमदार कारण हो सकता था क्योंकि प्रतिद्वंदी आवेदको को समग्र इतिहास का आकलन करने में चयन समिति पूर्ण रूप से औचित्य पर थी।

9. प्रत्यर्थी संख्या 7 के विद्वान अधिवक्ता ने **2000(1) पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ 319 (राजीव रनन एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य)** में रिपोर्ट किए गए एक प्राधिकार पर भी भरोसा किया। यह तर्क देने के लिए एक चयन समिति द्वारा किया गया चयन एक न्यायालय द्वारा पुन: मूल्यांकित करने के लिए उपयुक्त नहीं होता है जहाँ ऐसा करने के लिए कोई प्रकट औचित्य न हों। उन्होंने इस सीमा तक तर्क दिया कि उस निर्णय के अनुसार, विधि के न्यायालय को उस चयन के साथ कभी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जिसे चयन समिति द्वारा किया गया है।

10. जबकि हम एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 535/2002 में अपीलार्थी यानि प्रत्यर्थी संख्या 7 के अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार नहीं करते कि न्यायालय को किसी भी परिस्थिति में चयन समिति के निर्णय पर प्रश्न नहीं उठाना चाहिए, परन्तु फिर भी हम इस स्थिति को स्वीकारते हैं कि विशेषज्ञों की एक समिति द्वारा किए गए चयन के साथ सामान्यत: विधि के एक न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जबतक कि प्रभावित पक्ष के साथ इसके परिणामत: न्याय का घोर हनन न हो और संलग्न तथ्यों एवं परिस्थितियाँ न्यायालय को हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य करती है। वर्तमान मामले उस कोटि के भीतर नहीं आता और इसलिए, हम प्रत्यर्थी संख्या 7 जो एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 535/2002 में अपीलार्थी हैं, के अधिवक्ता के तर्क में दम पाते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 7 डॉ॰ एम॰ सी॰ पी॰ शॉ याची राजेन्द्र कुमार से बेहतर रूप से योग्य था।

11. वस्तुत:, विद्वान एकल न्यायाधीश ने इन सारे पहलुओं पर ध्यान ही नहीं दिया है और केवल इसको लेकर संवीक्षा की है कि प्रतिद्वंदी पक्षकारों को एक स्वीकृत पद पर 12 वर्षों का अपेक्षित शिक्षण-कार्य अनुभव था या नहीं। ऐसा करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश मात्र इस आधार पर एक त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचे कि इतिहास विभाग में दो शिक्षकों की सेवानिवृत्ति के उपरांत कोई नियुक्ति नहीं की गई थी, जो तथ्यपरक रूप से गलत है और इसमें इससे पहले अभिकथित परिचर्चाओं से यह प्रतिबिम्बित होगा। प्रत्यर्थी संख्या 7 डॉ॰ एम॰ सी॰ पी॰ शॉ को वर्ष 1980 में स्वीकृत पद पर एक व्याख्याता के पद पर नियुक्त किया गया था और जैसा कि पहले कहा गया है वह अपने आवेदन की तिथि से पहले ही 18 वर्षों का शिक्षण कार्य का अनुभव अर्जित कर चुका था, यद्यपि पद के लिए केवल 12 वर्षों के शिक्षण-कार्य अनुभव की आवश्यकता थी। जहाँ तक शैक्षणिक अर्हता का संबंध है, हमने नोटिस किया है, जैसा कि इसमें पहले इंगित किया गया है कि उसका शैक्षणिक प्रदर्शन याची, राजेन्द्र कुमार से बेहतर था क्योंकि याची, यद्यपि राजेन्द्र कुमार के पास प्रथम श्रेणी की स्नातकोत्तर डिग्री थी, परन्तु उसका (याची का) कैरियर रिकार्ड दसवीं वर्ग से लेकर पूर्णत: संतोषजनक नहीं था। मामले की उस दृष्टि में चयन समिति ने यह यथोचित समझा कि पद के लिए शैक्षणिक उत्कृष्टता का एक समग्र विचारण अधिक उपयुक्त था और तब नियुक्ति प्रदान कर दी। न्यायालय के लिए चयन समिति द्वारा लिए गए निर्णय पर अपना मत प्रतिस्थापित करना अत्यधिक अननुमान्य होगा, जिससें प्राचार्य पद के लिए प्रत्यर्थी संख्या 7 के पक्ष में अनुशंसा की थी।

12. पूर्वोक्त परिचर्चा की दृष्टि में, हम बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग द्वारा किए गए मत के साथ हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते और इसलिए हम याची राजेन्द्र कुमार द्वारा दाखिल एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 534/2002 को खारिज करते हैं।

13. जहाँ तक प्रत्यर्थी संख्या 7, डॉ॰ एम॰ सी॰ पी॰ सॉव द्वारा दाखिल एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 535/2002 का सवाल है, तो यह इसमें ऊपर अभिलिखित कारणों से अनुज्ञात किए जाने के लिए उपयुक्त

है। वस्तुतः, यह ध्यान में लाया गया था कि एक अन्तरिम आदेश के आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 7 प्राचार्य के पद पर बना हुआ है और अबतक प्राचार्य के पद पर कई वर्ष पूरे कर चुके हैं और उसके चयन को वैधानिक और उचित पाए जाने पर हम प्राचार्य के पद पर उसको बने रहने के साथ हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं पाते। प्राचार्य के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए प्रभारी प्रोफेसर के तौर पर महाविद्यालय के वरिष्ठतम शिक्षक को अनुमति देने वाला विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्देश अपास्त और निरस्त किया जाता है और बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग द्वारा की गई अनुशंसा के निबंधनो में प्राचार्य के पद पर उसकी नियुक्ति बनी रहेगी, जिसे के॰ एस॰ जी॰ एम॰, महाविद्यालय के शासी निकाय द्वारा स्वीकार किया गया है। तद्नुसार, एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 535/2002 अनुज्ञात की जाती है। परन्तु परिस्थितियों के अन्तर्गत व्ययों के संबंध में किसी आदेश के बगैर।

---

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky ,o t;k jk;] U;k;efrZx.k

करुणा कर बारीक

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 398 वर्ष 1998(R). 13 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

(क) सेवा विधि–वरीयता का नियतीकरण–याची का दावा यह है कि वह प्रत्यर्थी संख्या 4 से वरिष्ठ है, क्योंकि वह उससे पहले सेवा में प्रविष्ट हुआ था–दावा खारिज क्योंकि विभागीय प्रोन्नति समिति ने सरकारी अनुदेशों एवं मार्ग-निर्देशों पर विचार करके एक दूसरे के मुकाबिल वरिष्ठता का निर्णय किया है–अभिनिर्धारित, जब एक व्यक्ति को उच्चतर श्रेणी में प्रोन्नत या स्थापित किया जाता है, तो ऐसी प्रोन्नति की तिथि के संदर्भ में उसकी वरिष्ठता का अभिनिर्धारण किया जाता है जबतक नियमावली अन्यथा प्रावधान नहीं करती है। (पैरा 6)

(ख) सेवा विधि–वरीयता–निम्नतर श्रेणी में वरीयता का उच्चतर श्रेणी में विभागीय वरीयता के लिए कोई अर्थ नहीं है। (पैरा 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–M/s M.K. Laik, B.N. Tiwary, For the Appellant; M/s Mokhtar Khan, Faizur Rahman, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री एम॰ के॰ लाइक और प्रत्यर्थी–भारत संघ की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री मोख्तार खान को सुना।

2. वर्तमान आवेदन में, याची ने दिनांक 31.12.1997 के आदेश को निरस्त करने की प्रार्थना की है जिसके द्वारा वरिष्ठता के नियतीकरण के संबंध में याची के अभ्यावेदन को महानिदेशक, केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल द्वारा खारिज कर दिया गया था। सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 1696 वर्ष 1996 (आर॰) में पारित दिनांक 18.9.1997 के आदेश में पटना उच्च न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में याची के अभ्यावेदन का निर्णय करते हुए पूर्वोक्त आदेश पारित किया गया था।

3. अविवादित, सुसंगत तथ्य, ये हैं कि याची एवं प्रत्यर्थी संख्या 4 को क्रमशः 29.4.1972 और 31.7.1973 को सी॰ आई॰ एस॰ एफ॰ में सुरक्षा प्रहरी के तौर पर नियुक्त किया गया था। वर्ष 1983 में याची एवं प्रत्यर्थी संख्या 4 दोनों को ही सहायक आरक्षी उप-निरीक्षक (ए॰ एस॰ आई॰) के पद पर प्रोन्नत किया गया और परिणामतः याची को क्रम संख्या 401 पर स्थापित करते हुए प्रत्यर्थी द्वारा औपबंधिक वरीयता सूची को प्रकाशित किया गया जबकि प्रत्यर्थी संख्या 4 को क्रम संख्या 402 पर रखा गया था। याची को प्रत्यर्थी संख्या 4 के मुकाबिल ए॰ एस॰ आई॰ के पद पर संपुष्ट किया था और

संपुष्टिकरण सूची में भी याची को क्रम संख्या 2 पर रखा गया था जबकि प्रत्यर्थी संख्या 4 को क्रम संख्या 3 पर रखा गया था। इस चरण तक कोई विवाद नहीं है।

4. वर्ष 1985 में विभागीय प्रोन्नति समिति ने ए॰ एस॰ आई॰ को एस॰ आई॰ के पद पर प्रोन्नति के मामले को हाथ में लिया। याची को 26.06.1985 के प्रभाव से औपबंधिक रूप से प्रोन्नत किया गया और याची एवं प्रत्यर्थी संख्या 4 दोनों की सेवाओं को आरक्षी उप-निरीक्षक के पद पर नियमित कर दिया गया। विवाद केवल तब उत्पन्न हुआ जब उन ए॰ एस॰ आई॰ की औपबंधिक सूची प्रकाशित की गई जिन्हें एस॰ आई॰ के पद पर प्रोन्नति प्रदान की गई थी। उस वरीयता सूची में याची को क्रम संख्या 444 पर रखा गया था जबकि प्रत्यर्थी संख्या 4 को क्रम संख्या 343 पर रखा गया था। वरीयता सूची में उक्त स्थान से व्यथित होकर याची ने अभ्यावेदन किया और फिर प्रत्यर्थी संख्या 4 के ऊपर वरीयता का दावा करते हुए एक रिट याचिका, जो रिट याचिका संख्या 2987 वर्ष 1993 थी दाखिल करके आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष गया, जहाँ वह सुसंगत समय पर कार्य कर रहा था और दिनांक 15.6.1994 के निर्णय के निबंधनो में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा उक्त रिट याचिका का निस्तारण किया गया। रिट याचिका में याची की व्यथा यह थी कि चूँकि ए॰ एस॰ आई॰ के पद पर वह प्रत्यर्थी संख्या 4 में वरीय था और वरीयता सूची में उसे प्रत्यर्थी संख्या 4 के ऊपर दर्शाया गया था अत: प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रकाशित सब-इंस्पेक्टरों की औपबंधिक वरीयता सूची में उसे प्रत्यर्थी संख्या 4 से नीचे नहीं रखा जा सकता था। आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष उक्त रिट याचिका में प्रत्यर्थी ने एक पक्ष लिया कि विभागीय प्रोन्नति समिति ने प्रत्यर्थी संख्या 4 के ''असाधारण'' का दर्जा दिया जबकि याची को ''अच्छा'' का दर्ज दिया गया और इसलिए स्थानक्रम के अनुसार प्रत्यर्थी संख्या 4 को वरीय के तौर पर दर्शाया गया है। यह भी कहा गया कि प्रोन्नति के मामलों पर विचार करते हुए श्रेणी देने के लिए जिस मानदेय का अनुसरण किया गया था वह दिनांक 17.07.1976 के सरकारी निर्देशों के अनुरूप था। आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने सरकारी अनुदेशों एवं मार्ग-निर्देशों को विचार में रखते हुए अवधारित किया कि प्रत्यर्थी संख्या 4 का स्थानक्रम किसी सेवा नियमावली का उल्लंघन नहीं करता। परन्तु, याची द्वारा यह प्रश्न उठाया गया कि प्रोन्नति देते समय सरकार द्वारा निर्गत पूर्व के मार्ग-निर्देशों पर विचार नहीं किया गया था जो अन्य के साथ-साथ प्रावधान करते हैं कि एक चयन के आधार पर किसी दर्जे में प्रोन्नति किए गए व्यक्तियों के बीच की वरीयता का निर्धारण उस क्रम के अनुसार किया जाएगा जिस प्रकार विभागीय प्रोन्नति समिति द्वारा प्रोन्नति के लिए अनुशंसा की गई थी तथापि, चूँकि आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष याची द्वारा इस प्रश्न को नहीं उठाया गया था। न्यायालय ने रिट याचिका का निस्तारण करते हुए याची को यह प्रश्न उठाते हुए अभ्यावेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता दी और फिर सम्बद्ध प्रत्यर्थी को अभ्यावेदन का निस्तारण करने का निर्देश दिया गया। पूर्वोक्त आदेश के अनुपालन में याची द्वारा इस प्रकार दाखिल अभ्यावेदन पर प्रत्यर्थीगण द्वारा विचार किया गया और एक युक्तिसंगत आदेश पारित करके इसे 29.11.1994 को अस्वीकृत कर दिया गया। उक्त आदेश की एक प्रति रिट याचिका में परिशिष्ट-11 के तौर पर संलग्न की गई है। अभ्यावेदन में याची ने एक मुद्दा उठाया कि चूँकि वह 13.8.1981 के प्रभाव से ए॰ एस॰ आई॰ के दर्जे से पहले से ही संपुष्ट है, अत: उक्त संपुष्टिकरण के आधार पर वरीयता का निर्णय किया जाएगा। प्रत्यर्थी के प्राधिकारी अर्थात् महा-निदेशक, सी॰ आई॰ एस॰ एफ॰ ने अभ्यावेदन को खारिज करते हुए अवधारित किया कि विभागीय प्रोन्नति समिति ने अभिलेखों की संवीक्षा पर पाया कि याची एवं प्रत्यर्थी संख्या 4 दोनों को ही 13.8.1981 को ए॰ एस॰ आई॰ के दर्जे में संपुष्ट किया गया था। उनमें से किसी को भी सब-इंस्पेक्टर के दर्जे में संपुष्ट नहीं किया गया था क्योंकि भारत सरकार के दिनांक 10.9.1985 के परिपत्र में निहित अनुदेश के अनुसार इसकी आवश्यकता नहीं थी। प्रत्यर्थी के अनुसार, विभिन्न पदक्रमों में प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों की सुसंगत वरीयता का अभिनिर्धारण ऐसी प्रोन्नतियों के लिए उनके चयन के क्रम में किया जाएगा। चूँकि विभागीय प्रोन्नति समिति ने सब-इंस्पेक्टर के दर्जे में प्रोन्नति पर सरकारी अनुदेशों के अनुसार याची को वरीयता सूची में प्रत्यर्थी संख्या 4 से नीचे रखा है। अत: याची किसी अनुतोष का

अधिकारी नहीं है। पटना उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका, जो सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 1696 वर्ष 1996 (आर॰) है दाखिल करके याची ने पूर्वोक्त आदेश को चुनौती दी थी। याची को नया अभ्यावेदन पत्र दाखिल करने का निर्देश देते हुए इस न्यायालय की एकल पीठ ने रिट याचिका का निस्तारण किया और फिर प्रत्यर्थीगण को याची के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया गया था। आदेश को इस उपधारणा पर पारित किया गया कि दिनांक 17.7.1971 के पत्र (परिशिष्ट-2) में यथा निहित वरीयता से संबंधित सरकारी अनुदेशों के प्रावधानों पर विचार नहीं किया गया था। पूर्वोक्त आदेश के अनुसरण में महानिदेशक, सी॰ आई॰ एस॰ एफ॰ ने पुनः याची के अभ्यावेदन पर विचार किया और निम्नांकित आदेश पारित करके इसे अस्वीकृत कर दिया:-

''सुसंगत अभिलेखों के परीक्षण पर यह पाया जाता है:-

(i)(a) कि याची एवं श्री ए॰ आर॰ राऊत की वरीयता ए॰ एस॰ आई॰ (सी॰ एल॰ के॰) की वरीयता सूची में क्रमशः क्रम संख्या 401 एवं 402 पर रखी गई थी। दोनों को उक्त दर्जे में 13.8.1981 के प्रभाव से संपुष्ट किया गया था। वर्ष 1984 में आयोजित डी॰ पी॰ सी॰ में एस॰ आई॰ (मिन) में प्रोन्नति के लिए उनपर विचार किया गया था परन्तु रिक्तियों की गैर उपलब्धता के कारण उन्हें पंजीकृत नहीं किया जा सकता था। तथापि, एफ॰ एच॰ क्यू॰ पत्र दिनांक 25.5.1985 के द्वारा तदर्थ आधार पर उन्हें सब-इंस्पेक्टर (मिन) के तौर पर प्रोन्नत किया गया था।

(b) ए॰ एस॰ आई॰ (सी॰ एल॰ के॰) से एस॰ आई॰ (मिन) के लिए डी॰ पी॰ सी॰ वर्ष 1985 जुलाई, 1985 के महीने में संचालित की गई थी जिसमें पी॰ एस॰ एल॰ संख्या 538 तक ए॰ एस॰ आई॰/सी॰ एल॰ के॰ पर प्रोन्नति के लिए विचार किया गया था सी॰ एस॰ आर॰ अंक संख्या II में प्रत्युत्पादित डी॰ पी॰ एवं ए॰ आर॰ ओ॰ एम॰ 22011/6/75/ स्थापन (डी॰) दिनांक 30.12.76 के पैरा V उप-पैरा 2 में निहित अनुदेशों के अनुसार उक्त डी॰ पी॰ सी॰ को संचालित किया गया था, जो प्रावधान करता है कि डी॰ पी॰ सी॰ मेधा के क्रम में, श्रेणीबद्ध करेगी, और ऐसा करते हुए ''असाधारण'' ''बहुत अच्छा'' और 'अच्छा' का दर्जा प्रदान करेगी। उक्त डी॰ पी॰ सी॰ की अनुशंसा के अनुसार, एफ॰ एच॰ क्यू॰ पत्र दिनांक 24.2.86 के माध्यम से 6.9.85 के प्रभाव से श्री ए॰ आर॰ राऊत के साथ पहले याची की तदर्थ प्रोन्नति को नियमित किया गया। साथ-साथ शेष कार्मिकों जिन्हें उसी पैनल में ''उपयुक्त'' पाया गया था, के संबंध में भी प्रोन्नति के आदेश दिनांक 10/11.4.86 और 23/24.7.86 के पश्चातवर्ती आदेशों द्वारा निर्गत किया गया।

(c) 1985 में आयोजित डी॰ पी॰ सी॰ के आधार पर एस॰ आई॰ (मिन) के तौर पर प्रोन्नति कार्मिकों की वरीयता एम॰ एच॰ ए॰ पत्र दिनांक 17.7.1976 के पैरा 3 में निहित अनुदेशों के निबंधनों में डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा दिए गए पदक्रम के अनुसार निर्गत की गई जो अन्य के साथ-साथ कथित करता है कि एक चयन के आधार पर किसी दर्जे में प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच की वरीयता का अभिनिर्धारण उस क्रम के अनुसार किया जाएगा जिस क्रम में प्रोन्नति के लिए डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा उनकी अनुशंसा की गई थी। 1.1.85 से 31.12.1985 का एस॰ आई॰ (मिन) की वरीयता सूची में पी॰ एस॰ एल॰ संख्या 342 एवं 343 पर मौजूद कर्मियों के 'असाधारण' का दर्जा मिला था, पी॰ एस॰ एल॰ संख्या 344 से 402 को ''बहुत अच्छा'' और पी॰ एस॰ एल॰ संख्या 403 से 454 को केवल ''अच्छा'' का दर्जा मिला था।

(ii) याची की इस तर्क में कोई बल नहीं है कि बाद में प्रोन्नत किए गए कार्मिक विभिन्न चयनों/पैनलों में से लिए गए थे और इन्होंने उसके बाद एस॰ आई॰ (मिन) का प्रभार ग्रहण किया था और इस कारण से उन्हें उससे वरीय नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि ये कार्मिक 1985 के ही पैनल से थे और डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा अनुशंसित पदक्रम के आधार पर उनकी वरीयता तय की गई थी, अर्थात् ''असाधारण'' को शीर्ष पर रखा गया था जिसके बाद ''बहुत अच्छे'' के तौर पर दर्ज किए गए अधिकारी थे और फिर ''अच्छे'' का स्थान था। जहाँ तक उनके बीच वरीयता के अभिनिर्धारण का प्रश्न है तो यह अप्रासंगिक है कि उन्होंने पदभार कब ग्रहण किया। चूँकि डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा श्री राऊत को ''असाधारण'' का दर्जा मिला था और श्री बारीक को ''अच्छा'' कई दर्जा मिला था, इसलिए याची को श्री राऊथ से नीचे रखा गया है। इसी मामले में याची की डब्ल्यू॰ पी॰ संख्या 2987 वर्ष 1993 का निस्तारण करते समय उपरोक्ता स्थिति को दिनांक

15.6.1994 के निर्णय के माध्यम से आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था। माननीय उच्च न्यायालय ने यह भी सम्परीक्षित किया कि याची का स्थानक्रम किसी सेवा नियमावली का उल्लंघन नहीं करता।

(iii) जहाँ तक ए॰ एस॰ आई॰ (सी॰ एल॰ के॰) के दर्जे में याची की संपुष्टि का सवाल है, जैसा कि ऊपर पैरा 2(iii) पर उल्लिखित किया गया है, यह स्पष्ट किया जाता है कि एस॰ आई॰ (मिन) के दर्जे में उसे संपुष्ट करने वाले कोई पृथक आदेश निर्गत नहीं किए गए थे। एस॰ आई॰ (मिन) के दर्जे में संपुष्टिकरण के संबंध में यह उल्लिखित किया जा सकता है कि भारत सरकार, DP & Trg. O.M. दिनांक 28.3.88 में निहित अद्यतन अनुदेशों के अनुसार संपुष्टि केवल प्रविष्टि पदक्रम में करना है और प्रोन्नति पर कोई संपुष्टि नहीं होगी निम्नतर श्रेणी में संपुष्ट किए गए अधिकारियों ने उचतर श्रेणी में संपुष्ट किए जाने की आवश्यकता नहीं है उन मामलो में भी जहाँ 1.4.88 से पहले की तिथि से स्थायी रिक्तियां उपलब्ध थी और 1.4.88 भी तिथि से पहले प्रोन्नति होनी शेष भी थी। चूँकि याची को सम्मिलित करते हुए सभी कार्मिको को ASI/ CLK के दर्जे में प्रविष्टि स्तर पर पहले ही संपुष्ट कर दिया गया है, इसलिए उच्चतर दर्जे में संपुष्टिकरण आदेश को निर्गत करने की कोई आवश्यकता नहीं थी जो उसी श्रेणी और पंक्ति के अधीन आता है। इसलिए, एस॰ आई॰ (मिन) के दर्जे में कोई संपुष्टि आदेश निर्गत नहीं किए गए थे।

(iv) इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं याची द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन में कोई गुण नहीं पाता हूँ और एतद् द्वारा इसे खारिज करता हूँ।''

5. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री एम॰ के॰ लाईक ने मुख्यत: तर्क दिया कि चूँकि याची प्रवेश बिन्दु पर प्रत्यर्थी संख्या 4 से वरीय था और ए॰ एस॰ आई॰ के पद पर प्रोन्नति के उपरांत भी अत: एस॰ आई॰ के पद पर याची की प्रोन्नति करने के उपरांत इसे बनाए रखना होगा।

6. हम विद्वान अधिवक्ता के निवेदन को स्वीकारने में असमर्थ हैं। स्वीकार्यत: सरकारी अनुदेशों और मार्ग-निर्देशों के अनुसार चयन के आधार पर किसी दर्जे में प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच की वरीयता का अभिनिर्धारण विभागीय प्रोन्नति समिति द्वारा दी गई श्रेणी के अनुसार होगा। याची एवं प्रत्यर्थी संख्या 4 के मामले पर विचार करते समय विभागीय प्रोन्नति समिति ने प्रत्यर्थी संख्या 4 को याची से अधिक बेहतर पाया और इसलिए उसे ''असाधारण'', श्रेणी का दर्जा दिया गया जबकि याची को असाधारण, श्रेणी का दर्जा नहीं दिया गया। तद्नुसार याची एवं प्रत्यर्थी संख्या 4 को शामिल करते है, प्रोन्नत एस॰ आई॰ की एक सूची प्रकाशित की गई जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 4 को याची से ऊपर दर्शाया गया था। याची द्वारा दाखिल पूर्व के रिट याचिका में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने भी सम्परीक्षित किया था कि याची को प्रत्यर्थी संख्या 4 से नीचे रखना किसी सेवा नियमावली का उल्लंघन नहीं करता। यह सुस्थापित है कि जब एक व्यक्ति को एक उच्चतर श्रेणी में प्रोन्नत या स्थापित किया जाता है तो ऐसी प्रोन्नति की तिथि के संदर्भ में उसकी वरीयता का अभिनिर्धारण किया जाता है जबतक कि नियम इसके प्रतिकूल प्रावधान न करे। निम्नतर श्रेणी में वरीयता का उच्चतर श्रेणी में विभागीय वरीयता के लिए कोई अर्थ नहीं है।

7. मामले के समूचे तथ्यों पर विचार करके और इससे ऊपर परिचर्चा की गई विधि की दृष्टि में, हमारा मत है कि याची के अभ्यावेदन को अस्वीकृत करते हुए महानिदेशक, सी॰ आई॰ एस॰ एफ॰ द्वारा पारित आदेश को मनमाना या औचित्यहीन अवधारित नहीं किया जा सकता।

8. पूर्वोक्त कारणों से, इस आवेदन में कोई गुण नहीं है, जो तद्नुसार खारिज किया जाता है।

जया राय, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

ekuuh; Mhñ thñ vkjñ iVuk;d] U;k;efr

तारा देवी

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 551 वर्ष 2008. 4 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–पेंशन–उपदान–याची के पति की मृत्यु सेवारत रहते हुए हुई–याची-पत्नी वेतन, बोनस, समूह बीमा, भविष्य-निधि के बकायो और अपने पुत्र की सेवा का दावा करती है–प्राधिकारीगण द्वारा दावा खारिज–अभिनिर्धारित, की 16 वर्षों की अवधि के लिए वेतन के बकाया अनुध्यात नहीं किए जा सकते क्योंकि उसका पति अपनी मृत्यु तक बिना सूचना के और पाँच वर्षों से अधिक अवधि के लिए लगातार रूप से चिकित्सीय अवकाश पर बना रहा–चूँकि उसे एक सरकारी सेवक के तौर पर विचार नहीं किया गया था, अनुकंपा के आधार पर उसके पुत्र की नियुक्ति पर विचार नहीं किया जा सकता–वेतन के बकाया और 33 वर्षों के उपदान और बोनस से उचित रूप से इन्कार किया गया है। (पैरा 7)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Sahani, For the Petitioner; J.C. to G.A., For the Respondents.

आदेश

इस रिट आवेदन में प्रार्थना प्रत्यर्थीगण द्वारा निर्गत दिनांक 2.7.2007 के कार्यालय आदेश (परिशिष्ट-14) को निरस्त करने के लिए है जिसके द्वारा बोनस के बकायों, 33 वर्ष की सेवा के लिए उपदान, छुट्टी-वेतन, समूह बीमा राशि, भविष्य निधि के बकायों, पेंशन के साथ 22.12.1985 से 26.11.2001 तक की अवधि के लिए उसके मृतक पति के खाते में वेतन के बकायों को डालने के याची के दावे और अनुकंपा के आधार पर उसके पुत्र की नियुक्ति के लिए उसके दावे को अस्वीकार कर दिया गया है।

2. याची के पति को सरकारी बालिका विद्यालय, तमार राँची में सहायक शिक्षक के तौर पर नियोजित किया गया था और 26.11.2001 को सेवारत रहते उसकी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात्, याची सेवानिवृत्ति बकायों के भुगतान के लिए सम्बद्ध प्राधिकारी के पास गई जो उसके मृत्क पति के खाते में देय थे। जब उसे प्रत्यर्थीगण से कोई जवाब नहीं मिला तो उसने डब्ल्यु॰ पी॰ (एस॰) संख्या 4105 वर्ष 2002 के माध्यम से इस न्यायालय में एक रिट याचिका दाखिल किया। दिनांक 25.6.2003 के आदेश के माध्यम से इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका का निस्तारण कर दिया गया। प्रत्यर्थीगण को इस निर्देश के साथ कि वे याची को कानूनी तौर पर देय सभी स्वीकार्य सेवानिवृति लाभों को मुक्त करे और 13 जुलाई, 2003 को लोक अदालत के समक्ष याची को इनका भुगतान करे। यह भी सम्परीक्षित किया कि अगर याची को कोई और व्यथा होगी तो उसे अभ्यावेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता होगी।

आदेश के अनुपालन में, प्रत्यर्थीगण ने 13.7.2003 को लोक अदालत की मौजूदगी में याची को 1,48,574/- रुपये की एक राशि का एक चेक हवाले किया। उन शीर्षों को प्रकट किए बिना ही याची को पूर्वोक्त राशि का भुगतान किया गया जिनके अधीन भुगतान किए गए थे।

इस न्यायालय ने दिनांक 21.9.2006 के आदेश द्वारा रिट आवेदन का निस्तारण किया। प्रत्यर्थी संख्या 3 को इस एक निर्देश के साथ कि वे आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताहों के भीतर याची को ऐसे भुगतान के विवरणों की आपूर्त्ति करें और अपनी आगे की मांग उठाते हुए एक नया अभ्यावेदन प्रत्यर्थीगण के सम्बद्ध प्राधिकारों के समक्ष दाखिल करने की स्वतंत्रता भी याची को दी

गई। प्रत्यर्थी संख्या 3 को याची के अभ्यावेदन पर विचार करने और विधि से अनुसार इसपर फैसला करने का निर्देश दिया गया।

इस न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश के अनुसरण में, याची ने अपने पति की मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों के शेष को भुगतान की मांग करते हुए और अनुकंपा के आधार पर अपने पुत्र संजय कुमार मिश्रा की नियुक्ति के लिए उसके मामले पर विचार करने की भी मांग करते हुए 27.9.2006 को प्रत्यर्थीगण के सम्बद्ध प्राधिकारो के समक्ष फिर से अपना अभ्यावेदन दाखिल किया। 30.10.2006 को याची द्वारा अभ्यावेदन का एक स्मरण-पत्र भी पेश किया गया। जब उसके अभ्यावेदन के बावजूद, इसपर प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया गया तो याची ने अवमान केस (व्यवहार) संख्या 688 वर्ष 2006 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष एक अवमान याचिका दाखिल की।

अवमान मामले में, प्रत्यर्थीगण ने 11.7.2007 को अपने कारण-पृच्छा संबंधी जवाब दाखिल किया यह कथित करते हुए कि वेतन के बकायों के लिए याची का दावा पोषणीय नहीं था क्योंकि उसका पति एक दाण्डिक मामले में फरार था।

प्रत्यर्थीगण के उपरोक्त कथन पर विचार करते हुए, यथोचित फोरम के समक्ष आक्षेपित आदेश को चुनौती देने की याची को एक स्वतंत्रता के साथ अवमान वाद हटा लिया गया।

3. याची का तर्क है कि प्रत्यर्थीगण ने भ्रामक और दिग्भ्रमित करने वाले आधारों पर अवैधानिक और मनमाने तरीके से वेतन के बकायों का भुगतान को छोड़ दिया है। यह स्पष्टीकृत करना इप्सित किया गया कि वस्तुतः याची का पति विद्यालय की प्राध्यापिका के समक्ष एक छुट्टी-आवेदन को पेश करके अवकाश पर गया था, और इस प्रकार वह अनधिकृत रूप से अनुपस्थित नहीं था। इससे भी बढ़कर, विद्यालय की प्राध्यापिका ने 19.1.1987 को एक प्रमाण-पत्र (परिशिष्ट-1) निर्गत किया था कि यह संपुष्ट करते हुए कि याची का पति 28.2.1966 से विद्यालय में सहायक शिक्षक के पद पर कार्य कर रहा था। प्रखण्ड शिक्षा प्रसार पदाधिकारी, तमार ने भी 27.3.1988 को एक प्रमाण-पत्र निर्गत किया था यह संपुष्ट करते हुए कि याची का पति विद्यालय में 28.2.1966 से 21.12.1985 तक कार्य किया था और तत्पश्चात छुट्टी पर गया था। इस अभिकथन के संबंध में कि याची का पति एक दाण्डिक मामले में फरार था, यह स्पष्टीकरण करना इप्सित किया गया कि यद्यपि यह तो सत्य है कि याची एवं अन्य के विरूद्ध सी॰ पी॰ केस संख्या 253 वर्ष 1978 के माध्यम से एक परिवाद मामला संस्थित किया गया था, परन्तु याची के पति को पूर्वोक्त मामले में कभी भी न्यायिक हिरासत में नहीं भेजा गया था और विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 27.4.1979 के निर्णय के माध्यम से उसे उक्त मामले में आरोपों से बरी कर दिया गया था।

4. प्रत्यर्थीगण की ओर से एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है। याची के दावे से इनकार करते हुए और उसे विवादित करते हुए प्रत्यर्थीगण द्वारा लिया गया पक्ष यह है कि याची का मृतक पति 28.2.1966 से राजकीय कन्या मध्य विद्यालय में सहायक शिक्षक के तौर पर नियोजित था। उक्त विद्यालय को 1978 से सरकार द्वारा अंगीकार कर लिया गया था। मृतक पति दिसम्बर, 1985 तक विद्यालय में कार्य करता रहा था। 28.12.1985 को उसने अपनी बीमारी के आधार पर 31.1.1986 तक चिकित्सीय अवकाश के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया परन्तु, तत्पश्चात, उसने ड्यूटी में योगदान नहीं दिया और सूचना के बगैर अनुपस्थित रहा और बाद में उसकी मृत्यु हो गई।

उसकी मृत्यु के उपरांत, 13.7.2003 को लोक अदालत की उपस्थिति में याची को सभी मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान कर दिया गया है।

याची द्वारा उपलब्ध कराए गए प्रमाण-पत्रों पर प्रश्न उठाते हुए, यह निवेदन किया गया है कि प्राधानाध्यापिका, राजकीय कन्या मध्य विद्यालय, तमार द्वारा तात्पर्यित रूप से निर्गत दिनांक 19.1.1987 का प्रमाण-पत्र (उपाबन्ध-I) एक कूटरचित प्रमाण-पत्र है क्योंकि इसे सेकेन्ड्री कन्या विद्यालय, तमार

की प्राध्यापिका द्वारा निर्गत किया गया था। इस प्रकार, तात्पर्यित रूप से यह घोषित करने के लिए प्रमाण–पत्र कि समूह बीमा योजना की राशि की मृतक की मृत्यु की तिथि तक लगातार रूप से उसकी तनख्वाह से कटौती की जाती रही थी, याची को दिनांक 16.2.2002 के उसकी स्वयं की इस स्वीकृति के कारण विश्वसनीय नहीं है कि ऐसी कटौती केवल दिसम्बर, 1985 के महीने तक ही की जाती रही थी। प्रत्यर्थीगण ने यह पक्ष लिया है कि चूँकि याची का मृतक पति पाँच वर्षों से अधिक समय से अनुपस्थित रहा था, इसलिए, बिहार सेवा संहिता की धारा 76 के प्रावधानों को लागू करने से उसे सरकारी सेवक के तौर पर नहीं माना जाएगा। और इसलिए, उसके आश्रित को अनुकंपा पर नियुक्ति का लाभ प्रदान नहीं किया जा सकता।

यह मानते हुए कि याची के मृतक पति द्वारा की गई सेवा की कुल अवधि केवल 19 वर्ष 9 महीने और 73 दिन थी, प्रत्यर्थीगण ने कहा है कि औपबंधिक पेंशन, औपबंधिक उपदान समूह बीमा और जी॰ पी॰ एफ॰ के शीर्षो के अधीन देय सभी सेवानिवृत्ति बकायों जो कुल 1,48,574/- रुपए होते हैं, को याची को भुगतान कर दिया गया है और उसके मृतक पति के खाते में उसे देय कोई और बकाए नहीं है।

5. याची ने प्रत्यर्थीगण के दावे से इनकार करने के लिए उसके द्वारा लिए गए आधारों को चुनौती देते हुए उन प्रमाण–पत्रों पर भरोसा किया है जिनके उस विद्यालय जहाँ याची का पति नियोजित था, की प्रधान अध्यापिका द्वारा निर्गत किए जाने का दावा किया गया है। दिनांक 19.1.1987 का प्रमाण–पत्र (उपाबंध–1) प्राचार्य कन्या मध्य विद्यालय, तमार द्वारा निर्गत किया गया प्रतीत होता है उसको यह घोषित करते हुए कि याची का पति विद्यालय में 1966 से कार्य कर रहा था। विद्यालय के प्राचार्य द्वारा तात्पर्यित रूप से निर्गत एक अन्य प्रमाण–पत्र घोषित करता है कि समूह बीमा को लेकर अंशदान की कटौती 1985 तक मृतक के वेतन से की जाती रही थी।

6. प्रत्यर्थीगण का सुसंगत रूप से मामला यह था कि याची के पति ने 28.12.1985 को चिकित्सीय अवकाश के लिए अपना आवेदन प्रस्तुत किया था और तत्पश्चात् उसने कार्य–भार को प्रारम्भ नहीं किया, यद्यपि उसने केवल 31.1.1986 तक चिकित्सीय अवकाश इप्सित किया था।

7. याची के मृतक पति की मृत्यु 26.11.2001 को हुई थी। याची प्रत्यर्थीगण द्वारा लिए गए इस अभिमत को खंडित करने में सफल नहीं रही है कि 28.12.1985 को चिकित्सीय अवकाश पर जाने के उपरांत उसके पति ने 26.11.2001 को अपनी मृत्यु के पहले ड्यूटी में योगदान नहीं दिया था। न ही उसने दावा किया है कि उसका पति अपनी मृत्यु की तिथि तक पूर्व सूचना के साथ लगातार रूप से चिकित्सीय अवकाश पर रहा था। ऐसी परिस्थितियों के अधीन प्रत्यर्थीगण द्वारा लिया गया यह पक्ष उचित है कि याची के पति के पाँच वर्षों से अधिक अवधि के लिए बिना सूचना के ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के कारण उसे उसके आश्रित को अनुकंपा पर नियुक्ति देने के प्रयोजन के लिए एक सरकारी सेवक के तौर पर नहीं माना जा सकता। इसलिए 22.12.1985 से लेकर 26.11.2001 तक वेतन के बकायों और सेवा के 33 वर्षों के लिए उपदान और बोनस के बकायों के लिए याची के दावे को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वह ऐसे किसी दावे के भुगतान की अधिकारी नहीं है। याची–पहले ही स्वीकार्य सेवानिवृत्ति बकाए प्राप्त कर चुकी है।

उपरोक्त परिचर्चाओं के आलोक में, मैं इस रिट आवेदन में कोई गुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, यह खारिज किया जाता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o ç'kkUr dekj] U;k;efrx.k

शिब रतन कुम्हार एवं एक अन्य

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

दां० अपील (डी० बी०) सं० 25 वर्ष 2000(R). 22 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

श्री एस० नारायण, सत्र न्यायाधीश, पश्चिम सिंहभूम, चाईबासा शिविर, सरायकेला द्वारा एस० टी० संख्या 224 वर्ष 1996 में पारित दिनांक 2.12.1999 के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

(क) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 313—अधीनस्थ न्यायालय ने मौखिक मृत्यु-कालिक घोषणा के संबंध में कोई प्रश्न नहीं रखा था न ही वह प्रश्न रखा था जिसपर वह अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि करने जा रहा है–अभिनिर्धारित, पूर्वोक्त असंगतता अभियोजन के मामले पर घातक प्रहार करती है–दोषसिद्धि अपास्त। (पैरा 9 से 12)

(ख) भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 302/34 सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27—मृत्युकालिक घोषणा–मृतक ने सूचनादात्री के समक्ष प्रकट किया कि अपीलार्थीगण ने उसके पीठ पर गोली मारी थी–चिकित्सीय रिपोर्ट दर्शाती है कि उसे आगे से गोली लगी थी–ऐसे प्रश्न को अभियुक्त से विनिर्दिष्ट रूप से पूछा जाना चाहिए, विशेषकर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज कराने के चरण में। (पैरा 9 से 12)

निर्णयज विधि.–(2007) 12 SCC 341—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s Ananda Sen, Nagmani Tiwari, For the Appellants; Mr. T.N. Verma, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–एस० टी० संख्या 224 वर्ष 1996 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, पश्चिम सिंहभूम, चाईबासा शिविर, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 2.12.1999 के दोषसिद्धि के निर्णय और दण्ड के आदेश के विरूद्ध यह अपील निर्दिष्ट है जिसके द्वारा और जिसके अधीन भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 302/34 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपीलार्थीगण दोषसिद्ध किए गए हैं और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन उन्हें आजीवन कारावास भुगतने से दंडित किया गया था। तथापि, आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन कोई पृथक दण्डादेश पारित नहीं किया गया है।

2. प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, अभियोजन का मामला संक्षेप में यह है कि घटना की तिथि को 5 बजे अपराह्न में जब सूचनादात्री अ० सा० 3 (मृतक की पत्नी) अपने घर में भोजन पका रही थी, अ० सा० 2 गुरूआ मुण्डा आया और उसने सूचित किया कि दो व्यक्तियों ने उसके पति पर गोली चलाई है जब वह बाजार से लौट रहा था। यह भी अभिकथित किया गया है कि सूचनादात्री अन्य गाँव वालों के साथ भोजन एवं पानी लेकर घटनास्थल गई। यह भी कहा गया है कि मृतक ने पानी पीने के उपरांत सूचनादात्री एवं अन्य गाँव वालों को सूचित किया कि अपीलार्थीगण ने उसकी पीठ पर गोली मारी थी और उपहति के कारण वह नहीं बचेगा। यह भी अभिकथित किया गया है कि पूर्वोक्त कथन के उपरांत, मृतक की मृत्यु हो गई। यह प्रतीत होता है कि सूचनादात्री के पूर्वोक्त कथन के आधार पर पुलिस द्वारा वर्तमान मामला संस्थित किया गया जिसने अन्वेषण का कार्य अपने हाथों में लिया। अन्वेषण के समापन के उपरांत, पुलिस ने अपर मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, सरायकेला के न्यायालय में अभियोग-पत्र दाखिल किया जिसने मामले में संज्ञान लिया। यह भी प्रतीत होता है कि चूँकि मामला अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है अत: इसे सत्र न्यायालय भेज दिया गया था।

3. सुपुर्दगी के उपरांत, दिनांक 5 अप्रैल, 1997 के आदेश द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन भी अपीलार्थीगण के विरूद्ध आरोप विरचित किए गए। फिर यह प्रतीत होता है कि अभियोजन ने कुल मिलाकर दस गवाहों को परीक्षित किया था और मामले के समर्थन में मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट और पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट को भी सिद्ध किया। यह भी प्रतीत होता है कि अभियोजन के साक्ष्य के समापन के उपरांत अभियुक्त-अपीलार्थीगण को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षित किया गया जिसके अधीन उन्होंने बचाव में इनसे पूर्ण इन्कार किया।

4. यह भी प्रतीत होता है कि पक्षों की सुनवाई के उपरांत, विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने यथा पूर्वोक्त रूप से अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि और दण्डादेश दिया है जिसके विरूद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गई है।

5. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान मामला मृतक की मौखिक मृत्यु-कालिक घोषणा पर आधृत है। यह भी निवेदन किया गया है कि अभिकथित मृत्यु-कालिक घोषणा चिकित्सीय साक्ष्य से संपोषण प्राप्त नहीं करती और इसलिए इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह भी निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण को उन परिस्थितियाँ, अर्थात् मृत्यु-कालिक घोषणा को स्पष्टीकृत करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया है जिसपर अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि के लिए अधीनस्थ न्यायालय द्वारा भरोसा किया गया है। चूँकि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के खण्ड 1(b) अधीन यह अनिवार्य है, अत: इससे विचारण दूषित हो जाता है। तद्नुसार, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया जाता है कि अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय इस अपील में कायम नहीं रखा जा सकता है।

6. दूसरी ओर, अपर लोक अभियोजक, श्री टी॰ एन॰ वर्मा ने निवेदन किया कि यह सही है कि वर्तमान मामले में घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। परन्तु मृतक की मृत्युकालिक घोषणा, जिसे चुनौती नहीं दी गई है, की दृष्टि में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण की उचित रूप से दोषसिद्धि की गई है। जहाँ तक दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपीलार्थीगण द्वारा उठाई गई अभ्यापति का सवाल है, तो श्री वर्मा द्वारा यह निवेदन किया गया है कि तकनीकी पेचीदगी के आधार पर दोषसिद्धि के निर्णय को अपास्त नहीं किया जा सकता। तद्नुसार, वह निवेदन करते हैं कि अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय में कोई अवैधानिकता और अनियमितता नहीं है जिसमें कि इस न्यायालय के किसी हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता हो।

7. पक्षों के तर्क को सुनकर, हमने मामले के अभिलेख और इसपर उपलब्ध साक्ष्य का अवलोकन किया है। स्वीकार्यत: घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के परिशीलन से हम पाते हैं कि अ॰ सा॰ 3 एवं 4 ने अपने साक्ष्य में कहा था कि मृतक ने उनके समक्ष प्रकट किया था कि इन अपीलार्थियों ने उसकी पीठ पर गोली मारी थी परन्तु इन दो गवाहों के बयान को डॉक्टर (अ॰ सा॰ 10) के साक्ष्य से संपोषण नहीं मिलता है। अ॰ सा॰ 10 ने अपनी शव-समीक्षा रिपोर्ट में विनिर्दिष्ट रूप से कथित किया था कि उसने मृतक की छाती पर प्रवेश का एक घाव पाया था, जो दर्शाता है कि मृतक को सामने से गोली लगी थी, जबकि मृत्यु-कालिक घोषणा कहती है कि गोली पीछे से चलाई गई थी। इस प्रकार मृत्यु-कालिक घोषणा और चिकित्सीय साक्ष्य में विरोधात्मकता है।

8. जहाँ तक विधि के बिन्दु का प्रश्न है, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 न्यायालय के लिए अभियुक्त को उन सारी परिस्थितियों को स्पष्टीकृत करने के लिए अवसर देना बाध्यकारी बनाती है जो उसके विरूद्ध साक्ष्य में आई है। **अजय सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में (2007)12 एस॰ सी॰ सी॰ 341** में रिपोर्ट किए गए एक निर्णय में न्यायाधीशों ने निम्नांकित रूप से अवधारित किया है:-

> ''प्रश्न को अनिवार्यत: इस प्रकार से विरचित किया जाना चाहिए जिससे कि अभियुक्त यह जानने में सक्षम हो सके कि उसे क्या स्पष्टीकृत करना है, वे परिस्थितियाँ क्या है जो उसके विरूद्ध है और जिसके लिए एक स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। अभियुक्त की इस संबंध में की स्पष्टीकरण की विफलता, जो उसे स्पष्ट करने के लिए कभी कहा ही नहीं गया था, के

आधार पर दोषसिद्धि विधि में दूषित है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 को अधिनियमित करने का समूचा उद्देश्य यह था कि अभियुक्त का ध्यान आरोप में और साक्ष्य से विनिर्दिष्ट बिन्दुओं की ओर आकृष्ट कराया जाए जिनपर अभियोजन दावा करता है कि अभियुक्त के विरूद्ध मामला बनता है ताकि वह ऐसा स्पष्टीकरण देने में सक्षम हो सके जैसा कि वह देने का इच्छुक है।''

9. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अधीनस्थ न्यायालय द्वारा लिए गए अभियुक्त के कथन के परिशीलन से हम पाते हैं कि अधीनस्थ न्यायालय ने ऐसा कोई प्रश्न नहीं रखा है जिसपर वह अभियुक्त को दोषसिद्ध करने जा रहा हो। यह प्रतीत होता है कि अधीनस्थ न्यायालय ने अपीलार्थीगण के विरूद्ध लगाए गए आरोपों को केवल स्पष्टीकृत किया। इससे भी बढ़कर, अधीनस्थ न्यायालय ने मृत्यु-कालिक घोषणा के संबंध में कोई प्रश्न नहीं रखा था।

10. इस प्रकार, हम पाते हैं कि जहाँ तक मृत्यु-कालिक घोषणा का संबंध है, अपीलार्थीगण के समक्ष कोई प्रश्न नहीं रखा गया था और उन्हें इसे स्पष्ट करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है। इस प्रकार हमारे विचार में पूर्वोक्त असंगतता अभियोजन के मामले को घातक रूप से चोट पहुँचाती है।

11. पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके, हम पाते हैं कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्ड के आदेश में तात्विक अनियमितता और अवैधानिकता है और मामले की इस दृष्टि में यह इस अपील में कायम नहीं रखा जा सकता।

12. परिणामतः, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय एवं दण्ड का आदेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण उनके विरूद्ध लगाए गए आरोपों से बरी किये जाते हैं। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण हिरासत में है और इसलिए, उन्हें तत्काल रिहा करने का निर्देश दिया जाता है, अगर किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

---

ekuuh; ,e~ okbZ~ bdcky ,oa t;k jkW;] U;k;efrZx.k

देव नंदन प्रसाद

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 4227 वर्ष 2008. 13 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971—धारा 2(b) सह-पठित प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 17–अवमान–केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने प्रधान महालेखाकार, बिहार के विरूद्ध इस आधार पर नोटिस निर्गत करने से इन्कार कर दिया कि अधिकरण द्वारा पारित अन्तिम आदेश में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं था– अभिनिर्धारित, अधिकरण को प्रत्यर्थीगण को नोटिस निर्गत करना चाहिए था ऐसी कारण-पृच्छा के लिए कि क्या वे जानबूझकर और इच्छापूर्वक आदेश का उल्लंघन कर रहे थे–एक अवमान कार्यवाही को प्रारम्भ करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 4)

अधिवक्तागण.–M/s Rajiv Ranjan, A.K.Mishra, For the Petitioner; M/s Md. M. Khan, S. Srivastava, For the Respondents.

आदेश

सी० सी० पी० ए० संख्या 9/2008 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण पटना, की राँची पीठ द्वारा पारित दिनांक 26.6.2008 के आदेश को चुनौती देते हुए याची द्वारा वर्तमान आवेदन दाखिल किया गया है, जिसके द्वारा अधिकरण द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश के अननुपालन के लिए प्रत्यर्थीगण को कारण-पृच्छा नोटिस निर्गत करने से अधिकरण ने इन्कार कर दिया।

2. यह प्रतीत होता है कि ओ॰ ए॰ संख्या 132/2005 में अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 21.9.2007 के आदेश के अभिकथित अवज्ञा के लिए याची ने प्रत्यर्थीगण के विरूद्ध अवमान कार्यवाही को प्रारम्भ करने के लिए एक अवमान याचिका दाखिल की।

3. तत्कालीन प्रधान महालेखाकार, बिहार एवं झारखण्ड के पेंशनभोगी मान्यता प्राप्त अस्पतालों से उपचार के लिए चिकित्सीय परामर्श के तौर पर और निर्दिष्ट मामलों में अस्पताल में भर्ती होने की स्थिति में इनडोर मरीजों के तौर पर चिकित्सीय सुविधाएँ प्राप्त कर रहे हैं जो राज्य संवर्ग के सेवानिवृत आई॰ ए॰ एस॰, आई॰ एफ॰ एस॰, आई॰ पी॰ एस॰ पदाधिकारियों को शामिल करते हुए केन्द्रीय पेंशनभोगियों को यथा विस्तारित होती है। उक्त चिकित्सीय लाभों, जो सेवानिवृत्त प्रभागीय लेखाकारों को उनके केन्द्रिय सरकार के सेवानिवृत कर्मचारी होने के कारण विस्तारित की गई थी, दिनांक 25.4.2002 सी॰ आई॰ सी॰ एम॰ के अनुसरण में वापस ले लिए गए थे। मामले का अन्तिम रूप से केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा यह अवधारित करते हुए निर्णय किया गया कि सुविधाओं का विस्तार किया जाना है, जो निर्णय से परिलक्षित होगा। तथापि, अधिकरण ने, इस आधार पर नोटिस निर्गत करने से इन्कार कर दिया कि अधिकरण द्वारा पारित अन्तिम आदेश में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं था।

4. न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 2(b) ''सिविल अवमान'' को परिभाषित करती है जिसका अर्थ न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, निदेश, आदेश, रिट या अन्य प्रक्रिया के जानबूझकर अवज्ञा है या एक न्यायालय को दी गई वचनबद्धता का एक जानबूझकर उल्लंघन है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि अगर एक अधिकरण के आदेश की भी इच्छापूर्ण और जानबूझकर अवज्ञा की गई है तो स्पष्टत: अवमान का एक मामला बनता है और अधिकरण प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम की धारा 17 का अपील यथोचित मामलों में अपनी शक्ति का इस्तेमाल कर सकता है। इसलिए, हमारे विचार में, कम-से-कम अधिकरण को प्रत्यर्थीगण को यह कारण-पृच्छा निर्गत करते हुए नोटिस निर्गत करना चाहिए कि क्या वे जानबूझकर अधिकरण के आदेश का उल्लंघन कर रहे थे। अगर निर्णय एवं आदेश में कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं भी है तो भी, अवमान कार्यवाही प्रारम्भ की जा सकती है।

5. पूर्वोक्त अवधारणाओं में, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है और विधि के अनुसार आवेदन का निर्णय करने के लिए मामला अधिकरण को प्रतिप्रेषित किया जाता है।

जया राय, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

रविन्द्र कुमार

बनाम

सेन्ट्रल कोल फील्ड लिमिटेड, दरभंगा हाऊस, रांची अपने अध्यक्ष के माध्यम से एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 4388 वर्ष 2007. 11 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–अनुकंपा पर नियुक्ति–विलम्ब–दावा इस आधार पर खारिज कि आवेदन विहित प्रपत्र में नहीं किया गया था और जब दावेदार द्वारा त्रुटि दूर की गई तब एक माह का विलम्ब हो चुका था–अभिनिर्धारित, अनुकंपा नियुक्ति का दावा मात्र तकनीकी पेचदीगियों पर त्यक्त नहीं किया जा सकता–उसे नियुक्त करने का निर्देश दिया गया और उम्मीदवारी की अस्वीकरण के लिए विलम्ब को आधार के तौर पर नहीं माने जाएंगे। (पैरा 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Sujit Narayan Prasad, For the Petitioner; M/s Ritu Kumar, Ravi Kr. Singh, Niki Sinha, For the Respondents.

आदेश

दिनांक 6.12.2003 को अपने पिता की मृत्यु पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्राप्त करने

के लिए याची द्वारा यह रिट याचिका दाखिल की गई है। 15.9.2004 को आवेदन दाखिल करने के बावजूद, अनुकंपा पर नियुक्ति नीति के अनुसरण में प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण द्वारा कोई नियुक्ति नहीं की गई है। अनुकंपा नियुक्ति निति का लाभ इसी प्रकार की स्थिति वाले कर्मचारी के कानूनी वारिसों तक विस्तारित कर दिया गया है, जो नियोजन की अवधि के दौरान मृत्यु को प्राप्त हुआ है और इसलिए वर्तमान याचिका दाखिल की गई है।

2. दोनो पक्षों के अधिवक्तागण की सुनवाई करके और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची का पिता प्रत्यर्थी प्राधिकारी के यहाँ कार्य कर रहा था जो 6.12.2003 को सेवारत रहते मृत्यु को प्राप्त हुआ था। याची प्रत्यर्थी के मृतक कर्मचारी का पुत्र है, जिसकी शैक्षणिक अर्हता मैट्रिक अनुर्त्तीण है। उसने 15.9.2004 को आवेदन किया परन्तु यह प्रतीत होता है कि उपयुक्त प्रपत्र में यह आवेदन दाखिल नहीं किया गया था अन्यथा प्रत्यर्थी प्राधिकारी के समक्ष अनुकंपा नियुक्ति का दावा पहले ही दाखिल और दर्ज करा दिया गया था।

3. मामले के तथ्यों से यह भी प्रतीत होता है कि याची को केवल इस आधार पर अनुकंपा नियुक्ति नहीं दी गई है कि उसने प्रत्यर्थी प्राधिकारी के यहाँ उचित प्रपत्र में आवेदन नहीं किया है और जब उसने उपयुक्त प्रपत्र में आवेदन किया तो इसमें एक महीने की देरी हो चुकी थी।

4. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि समूची अनुकंपा नियुक्ति नीति ही प्रत्यर्थी प्राधिकार के मृतक कर्मचारीगण के विधिक उत्तराधिकारियों के हितार्थ है। कानूनी वारिसों के दावे को मात्र तकनीकी पेचिदगियों पर त्यक्त नहीं किया जा सकता। आवेदक मैट्रिक अनुत्तीर्ण उम्मीदवार है। वह पहले ही सितम्बर, 2004 में अपना दावा दर्ज कर चुका है और याची के पिता की मृत्यु दिसम्बर, 2003 में हुई। सभी उपयुक्त प्रपत्र वाले आवेदन फार्म प्रत्यर्थी–कम्पनी की अभिरक्षा में है और वे खुले बाजार में उपलब्ध नहीं है और, इसलिए, केवल उपयुक्त प्रपत्र में ही एक आवेदन की अपेक्षा करना अत्यधिक तकनीकी होगा। फिर भी, इस परिस्थिति में भी उपयुक्त प्रपत्र में आवेदन दाखिल किया गया था परन्तु आवेदक को एक माह का विलम्ब हो गया था।

5. सितम्बर, 2004 में दर्ज उसके पूर्व के दावे को देखकर, उपयुक्त प्रपत्र में उसके आगे के दावे को दर्ज करने में कोई विलम्ब नहीं है जिसे प्रत्यर्थी द्वारा अभिकथित रूप से एक माह की देरी वाला बताया गया है। अनुकंपा नियुक्ति के लिए अपने दावे को दर्ज कराने में आवेदक की ओर से कोई देरी ही नहीं की गई है।

6. पूर्वोक्त तथ्यों एवं कारणों की दृष्टि में यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और प्रत्यर्थीगण को एतद् द्वारा वर्तमान याचिका की संवीक्षा करने का निर्देश दिया जाता है और अगर वह अन्यथा अयोग्य नहीं है तो प्रत्यर्थीगण द्वारा तत्काल रूप से नियुक्ति की जाएगी। 'आवेदन उपयुक्त प्रपत्र में नहीं' और विलम्ब वर्तमान याची की उम्मीदवारी को खारिज करने के लिए आधारों के तौर पर नहीं माने जाएंगे। यह याचिका अनुज्ञात और निस्तारित की जाती है।

---

ekuuh; ,eñ okbl bldcky ,o Mhñ ,uñ iVly] U;k;efrlx.k

यू॰ पी॰ सिंह

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 323 वर्ष 2007. 13 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

लेटर्स पैटेण्ट के खंड 10 के अधीन एक अपील के मामले में।

(क) सेवा विधि–बर्खास्तगी–बिना किसी मौद्रिक लाभ के सेवा में पूनर्बहाली क्योंकि बर्खास्तगी एवं पूनर्बहाली की अवधि के बीच याची से कोई कार्य नहीं लिया गया था–सेवा अभिलेखों पर विचार करते हुए अभिनिर्धारित कि याची–अपीलार्थी पिछली मजदूरियों के आधे का हकदार है। (पैरा 5 एवं 7)

(ख) सेवा विधि–कार्य के बिना वेतन नहीं–जब बर्खास्तगी या पदच्यूति के आदेश को अवैध के तौर पर घोषणा की जाती है, तो सभी पिछली मजदूरियों को स्वतः या यांत्रिक रूप से अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है–पिछली मजदूरियों को मंजूर करने के प्रयोजनार्थ कोई यथावत सूत्र अधिकथित नहीं किया जा सकता है–यद्यपि, उचित प्रदर्शन पर विचार करके एवं अधिनिर्णय प्राप्त करके, याची अपीलार्थी को पिछली मजदूरियों को अनुज्ञात किया जाता है। (पैरा 5 एवं 7)

निर्णयज विधि.–(2006)1 SCC 479—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s Indrajeet Sinha, H.P. Singh, for the Appellant; Mr. Md. Mokhtar Khan, For the Respondent.

एम॰ वाई॰ ईकबाल, न्यायमूर्ति.–लेटर्स पैटेन्ट के खण्ड 10 के अधीन दाखिल यह अपील W.P. (S) No. 6297 वर्ष 2003 में पारित दिनांक 31.8.2007 के निर्णय के विरूद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने याची की सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को बर्खास्त करते हुए यह अवधारित किया कि चूँकि बर्खास्तगी एवं पूनर्बहाली के बीच याची–अपीलार्थी से कोई कार्य नहीं लिया गया था इसलिए वह किसी मौद्रिक लाभों का हकदार नहीं होगा।

2. याची केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल की सेवा में था एवं सुसंगत समय पर, वह C.I.S.F. की इकाई, सेन्ट्रल कोल फील्ड लिमिटेड में कारगिल में निरीक्षक (कार्यपालक) के तौर पर तैनात था। वर्ष 2002 में, उसे कुल सात आरोप लगाते हुए एक आरोप-पत्र की तामीला की गयी थी। अन्य के साथ-साथ, सभी आरोप ये हैं कि जब अपीलार्थी निरीक्षक एवं उप-समादेष्टा के पश्चात् सेकेण्ड-इन-कमांड के तौर पर तैनात था, तो उसे उप-समादेष्टा द्वारा पिलपिलो जंगल क्षेत्र में एम॰ सी॰ सी॰ कार्यकर्ताओं के विरूद्ध छापा डालने के लिए 14 कांस्टेबलों का साथ देने का निर्देश दिया गया था, जो कंपनी के नियंत्रण क्षेत्र से बाहर था। अभिकथन यह है कि उसने उचित योजना के बिना एवं अपनी वर्दी पहने बिना अपने समादेष्टा के समादेश के विरूद्ध कार्य किया एवं तद्द्वारा अपने वरीय के आदेशों का उल्लंघन एवं कर्त्तव्यों की उपेक्षा की। जाँच अधिकारी जाँच कराने के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यद्यपि छापा क्षेत्र C.I.S.F. सुरक्षा क्षेत्र से बाहर था एवं उक्त पिलपिलो जंगल क्षेत्र एम॰ सी॰ सी॰ के कब्जे में था, तथापि उप-समादेष्टा ने छापा मारने एवं कोयले से लदे ट्रैक्टरों को बरामद करने का एक निर्णय लिया। इसलिए जाँच अधिकारी ने अभिनिर्धारित किया कि आरोप सं॰ III, IV, V एवं VI प्रमाणित नहीं पाये गए थे एवं मात्र आरोप सं॰ I, II एवं VII प्रमाणित हुए थे, अर्थात् उचित वर्दी एवं तैयारी के बिना छापा डाले जाने के सम्बन्ध में। अनुशासनिक अधिकारी जाँच रिपोर्ट से असहमत थे एवं कारण बताओ नोटिस निर्गत करने के उपरांत, याची को सेवा से यह अभिनिर्धारित करते हुए बर्खास्त किया कि आरोप प्रमाणित हुए हैं। अपीलार्थी ने विभागीय अपील दाखिल की परन्तु सफल नहीं हुआ। तब अपीलार्थी ने बर्खास्तगी के उपरोक्त आदेश को रिट याचिका दाखिल कर चुनौती दी। विद्वान एकल न्यायाधीश एक निष्कर्ष पर पहुँचे कि अपीलार्थी के वरीय अधिकारी श्री गिरीश तिवारी के साक्ष्य की दृष्टि में, बर्खास्तगी का आदेश अवैध एवं मनमाना था। तद्नुसार, बर्खास्तगी आदेश को अपास्त किया गया था। यद्यपि, आरोप सं॰ VII अर्थात् पूर्ववर्ती आचरण के लघु आरोप की दृष्टि में याची को भविष्य में सतर्क रहने की चेतावनी दी गयी थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि चूँकि याची से बर्खास्तगी एवं पूनर्बहाली की अवधि के बीच कोई भी कार्य नहीं लिया गया था, इसलिए

अतिरिक्त मौद्रिक लाभ दिए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। बेहतर मूल्यांकन के लिए, आक्षेपित निर्णय का पैरा 6 यहाँ पर नीचे उत्कथित है:–

> ''6. इस मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मेरी राय में, न्याय के हित में, यह उचित होगा कि आक्षेपित आदेश अपास्त हो। यद्यपि, आरोप सं॰ II अर्थात् पूर्ववर्ती आचरण के लघु आरोप के बारे में, याची को भविष्य में सतर्क रहने की चेतावनी दी गयी है। यद्यपि, चूँकि याची से बर्खास्तगी एवं पूनर्बहाली की अवधि के बीच कोई काम नहीं लिया गया था, एवं चूँकि निम्नतर पद पर उसके कार्य की अवधि समाप्त हो गयी है, इसलिए अतिरिक्त मौद्रिक लाभ दिए जाने की कोई जरूरत नहीं है, परन्तु बर्खास्तगी एवं पूनर्बहाली के बीच की उक्त अवधि की गणना कल्पित रूप से ड्यूटी पर होने के तौर पर की जाएगी।''

3. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री इन्द्रजीत सिन्हा एवं केन्द्र सरकार के विद्वान अधिवक्ता, श्री मोख्तार खान को सुना है।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री इन्द्रजीत सिन्हा ने निवेदन किया कि एक बार जब आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया गया है, तो अपीलार्थी मौद्रिक लाभों सहित सभी पारिणामिक लाभों को पाने का हकदार है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थी ने अच्छे प्रदर्शन का प्रमाण–पत्र अर्जित किया है एवं एम॰ सी॰ सी॰ प्रभावित क्षेत्र में छापा डालने के लिए पुरस्कार प्राप्त किया है। मामले की उस दृष्टि में, अपीलार्थी को मौद्रिक लाभों से इन्कार नहीं किया जा सकता था।

5. यह सुस्थापित है कि जब पद्च्यूति या बर्खास्तगी के आदेश को अवैध घोषित किया जाता है, तो सभी पिछले मजदूरियों को स्वत: या यांत्रिक रूप से अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है। पिछली मजदूरियों को मंजूर करने के प्रयोजनार्थ कोई यथावत सूत्र अधिकथित नहीं किया जा सकता है। इसलिए **यू॰ पी॰ राज्य ब्रासवेयर कॉरपोरेशन लि॰ एवं एक अन्य बनाम उदय नारायण पाण्डेय [(2006)1 S.C.C. 479]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

6. वर्तमान मामले में, जैसा कि नोटिस किया गया है, विद्वान एकल न्यायाधीश ने उचित रूप से ही अपीलार्थी की सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को अवैध घोषित किया। यद्यपि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस सिद्धांत की उपेक्षा की कि जब अपीलार्थी को प्रत्यर्थीगण द्वारा कार्य करने की अनुमति नहीं दी गयी थी, तब उस स्थिति में, वह पिछली मजदूरियों का हकदार होगा। श्री इन्द्रजीत सिन्हा ने बहुत ही निष्पक्षता से निवेदन किया कि अपीलार्थी पिछली मजदूरियों का कम से कम आधा का हकदार होगा।

7. इसलिए, इन तथ्यों एवं परिस्थितियों में, आक्षेपित आदेश को इस सीमा तक उपान्तरित किया जाता है कि अपीलार्थी प्रश्नगत अवधि के पिछली मजदूरियों के आधे का हकदार होगा।

8. उपरोक्त उपान्तरण के साथ, यह अपील निस्तारित की जाती है।

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn U;k;efr

बसन्त कुमार बनर्जी

बनाम

मुख्य सचिव के माध्यम से झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1012 वर्ष 2007. 2 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

बिहार पेंशन नियमावली, 1950—नियम 116 से 128 के साथ पठित नियम 107—अशक्त पेंशन–याची ने 11 वर्षों से अधिक की सरकारी सेवा पूर्ण की–खराब स्वास्थ्य के कारण उसने समय पूर्व सेवानिवृत्ति और अशक्त सेवानिवृत्त लाभों के भुगतान की मांग

की–अभिनिर्धारित, याची को अशक्त पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता क्योंकि याची की जाँच के लिए कोई चिकीत्सीय बोर्ड गठित नहीं किया गया था–जब उसे 11 वर्षों से अधिक अवधि की सेवा पूरी करने वाला पाया गया है। (पैरा 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–M/s Jai Prakash Sahu, S.K. Singh, For the Petitioner; J.C. to S.C.-II, For the State.

आदेश

राँची जिले के अंतर्गत लोहरदग्गा अंचल (III) गमहरिया में 7.1.1957 को तहसील कर्मचारी के तौर पर याची की नियुक्ति की गई थी। नियोजन के अनुक्रम में, उसे लोहरदग्गा अंचल से तमार सर्किल, राँची स्थानांतरित किया गया था। तथापि, 11 वर्ष 26 दिनों की एक अवधि के लिए सेवा प्रदान करने के उपरांत, याची को खराब स्वास्थ्य के कारण समय-पूर्व सेवानिवृत्ति और अशक्त सेवानिवृत्ति का भुगतान करने के लिए कहा परन्तु पेंशन लाभ प्रदान नहीं किए गए और, इसलिए, पेंशन लाभो के भुगतान के लिए निर्देश इप्सित करते हुए याची सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 1551 वर्ष 2001 के माध्यम से इस न्यायालय के पास आया। सेवानिवृत्ति बकायों के भुगतान के लिए याची के मामले पर विचार करने का प्रत्यर्थीगण को निर्देश देते हुए उक्त रिट आवेदन का निस्तारण किया गया। तथापि, दिनांक 26.6.2001 के आदेश के माध्यम से पेंशन के भुगतान के लिए याची के दावे को खारिज कर दिया गया।

2. उस आदेश से व्यथित होकर एक अन्य रिट आवेदन, जो डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 1609 वर्ष 2004 था, याची द्वारा दाखिल किया गया था जिसमें यह पक्ष लेते हुए एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया कि याची द्वारा सेवा की न्यूनतम अर्हता अवधि को पूरा नहीं किया गया था, जिस पक्ष को तथ्यपरक स्थिति के प्रतिकूल पाया गया क्योंकि याची ने 11 वर्षों से अधिक सेवा की थी जबकि नियम 86 के अधीन पेंशन प्राप्त करने के लिए न्यूनतम अर्हता अवधि 10 वर्ष है। इस परिस्थिति के अधीन और इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कि सरकार ने दिनांक 22.10.2002 के अपने संप्रेषणों में उपायुक्त, राँची को बिहार पेंशन नियमावली 116 से 122 के निबंधनों में अशक्त पेंशन के भुगतान के लिए याची के मामले पर विचार करने को कहा था। 26.6.2001 को पारित आक्षेपित आदेश निरस्त कर दिया गया था और नियम 107 के साथ पठित बिहार पेंशन नियमावली 116-120 या किसी अन्य सुसंगत नियम के अनुसार पेंशन के भुगतान के लिए प्रत्यर्थीगण को याची के दावे पर विचार करने और यथोचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। याची के मामले पर विचार करने के उपरांत, ज्ञापांक संख्या 717 (ii) स्था॰ दिनांक 21.7.2006 (परिशिष्ट-7) में यथा निहित इसके आदेश के माध्यम से अशक्त पेंशन के लिए याची के दावे को पुन: अस्वीकृत कर दिया गया उसमें यह अवधारित करते हुए कि याची ने 31.1.1968 को सेवा से त्यागपत्र दिया था और वर्ष 1968 में चिकित्सीय आधार पर सेवानिवृत्ति का कभी दावा नहीं किया गया था और इसलिए उसका मामला चिकित्सा बोर्ड के समक्ष रखा नहीं जा सका और, इसलिए, याची अशक्त पेंशन का अधिकारी नहीं है।

3. पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्तागण को सुनकर और रिट आवेदन एवं प्रति-शपथपत्र में भी किए गए प्रकथनों को ध्यान में रखकर, जिन आधारों पर याची के दावे को खारिज किया गया है वे कभी मान्य प्रतीत नहीं होते हैं। यह प्रतीत होता है कि याची ने दिनांक 31.1.1968 के अपने आवेदन (परिशिष्ट-1) के माध्यम से अंचल अधिकारी, तमार को सूचित किया था कि वह हड्डी के टूटे होने के कारण और फाईलेरिया होने के कारण अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में चिकित्सीय रूप से और मानसिक रूप से भी योग्य नहीं है और इसलिए, उसे समय पूर्व सेवानिवृत्ति प्रदान की जाए और सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान किया जाए। उक्त आवेदन पर किसी युगल किशोर देब द्वारा आवेदन प्राप्त करने का एक पृष्ठांकन प्रतीत होता है। यह भी प्रतीत होता है कि उस आवेदन की प्रति उपायुक्त, राँची के कार्यालय में भी भेजी गयी थी। रिट आवेदन के पैरा 8 में किए गए ऐसे प्रकथनों से विनिर्दिष्ट निबंधनों में इन्कार नहीं किया गया है बल्कि मात्र इतना कह दिया गया है कि रिट आवेदन के पैरा 8 में किए गए कथन से इन्कार किया जाता है। फिर भी आक्षेपित आदेश में यह

कहा गया है कि याची ने कोई आवेदन नहीं किया था, उपधारणीय रूप से इस कारण से कि बाद में प्रस्तुत किए गए अन्य आवेदन में याची ने कहा था कि उसने सेवा से त्याग-पत्र दे दिया है और उस आधार पर यह अवधारित किया गया है कि याची त्याग-पत्र सौंपने के कारण पेंशन लाभों का अधिकारी नहीं है, परन्तु प्रत्यर्थी ने दावा को खारिज करते समय वर्ष 1968 में दाखिल आवेदन में की गई प्रार्थना की पूर्ण-रूपेण अनदेखी की जब आवेदन प्राप्त करने का पृष्ठांकन हुआ है। इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण की ओर से यह कहना तथ्यपरक रूप से असत्य प्रतीत होता है कि अशक्त पेंशन के भुगतान के लिए ऐसा कोई आवेदन दाखिल नहीं किया गया था।

4. यह देखते हुए कि अशक्त पेंशन के लिए आवेदन दाखिल किया गया है, याची की चिकित्सीय स्थिति की परीक्षा के लिए बिहार पेंशन नियमावली के नियम 128 के साथ पठित नियम 116 के निबंधनों में चिकित्सीय बोर्ड को गठित कराना प्रत्यर्थीगण के लिए आवश्यक था परंतु वह कभी गठित किया गया प्रतीत नहीं होता है और इसलिए, बोर्ड द्वारा गैर-परीक्षण किए जाने के कारण, याची को अब अशक्त पेंशन के लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता, जब उसे 11 वर्षों से अधिक सेवा को पूरा करने वाला पाया गया है।

5. तद्नुसार, परिशिष्ट-7 में यथा निहित दिनांक 21.7.2006 का आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामतः, इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुतीकरण की तिथि से दो महीनों की एक अवधि के भीतर अशक्त पेंशन के भुगतान के मामले में उपायुक्त, राँची (प्रत्यर्थी संख्या 3) को निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है।

6. परिणामतः, यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ,ñ okbñ bdcky] U;k;efr

श्रीमती गीता देवी एवं अन्य

बनाम

श्रीमती परमेश्वरी देवी सर्राफ एवं अन्य

अपीलीय डिक्री सं॰ 34 वर्ष 2006 से अपील. 10 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

अभिधान अपील सं॰ 114/1994 में 18वें अपर न्यायिक आयुक्त, राँची द्वारा पारित दिनांक 4.1.2006 एवं 16.1.2006 के निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध।

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 41, नियम 31—जब अपीलीय न्यायालय आदेश 41, नियम 31 की आज्ञापक अपेक्षा का पालन करने में असमर्थ रहता है, तो अपीलीय न्यायालय के निर्णय को विधि में बरकरार नहीं रखा जा सकता है। (पैरा 6)

(ख) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 100—द्वितीय अपील—अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष स्वतंत्र होने चाहिए एवं इसे निर्णय में प्रतिबिंबित होना चाहिए कि न्यायालय ने अपने विवेक का प्रयोग किया है—अपील के निस्तारण के दृष्टिकोण से विचारण न्यायालय के सम्पूर्ण निष्कर्षों के प्रत्युत्पादन की सराहना नहीं की जा सकती है—मामले को सभी प्रदर्शों सहित पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर स्वतंत्र निष्कर्ष देने के उपरांत नया निर्णय पारित करने के लिए अपीलीय न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया गया। (पैरा 7)

अधिवक्तागण.—M/s P.K. Prasad, R. Gupta, For the Appellants; None, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति–अपीलार्थी की ओर से विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद को सुना। प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं हुआ। पूर्ववर्ती अवसर पर भी प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं हुआ था।

2. प्रतिवादी–अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल यह अपील अभिधान अपील सं॰ 114/94 में 18वें अपर न्यायिक आयुक्त, राँची द्वारा पारित दिनांक 4.1.2006 के निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा उन्होंने निष्कासन (अभिधान) वाद सं॰ 4/89 में छठे सब–जज, राँची द्वारा पारित दिनांक 22.6.94 के निर्णय एवं डिक्री को अभिपुष्ट किया है।

3. वादीगण–प्रत्यर्थीगण ने किराया पर दिये गये परिसर, जिसमें आवासीय परिसर एवं दुकान परिसर शामिल था, के किराये का भुगतान न किये जाने के आधार पर प्रतिवादीगण के निष्कासन हेतु उपरोक्त वाद दाखिल किया। वादी का मामला यह था कि कोई हरिबक्स पोद्दार अपर बाजार, राँची में स्थित नगरपालिका होल्डिंग सं॰ 779 धारित वाद सम्पत्ति का मालिक था। शंकर लाल रूंगटा एवं राम गोपाल रूंगटा हरिबक्स पोद्दार के साले थे। वादी का मामला यह है कि फर्म मेसर्स शिव नारायण हरिबक्स, जो भवन परिसर में आधार तल के एक भाग में चलाया जा रहा था, का स्वत्वधारी था। दोनों सालों, अर्थात्, राम गोपाल रूंगटा एवं शंकर लाल रूंगटा को उक्त फर्म में प्रबन्धक के तौर पर नियुक्त किया गया था, और आवासीय परिसर में रहने की अनुमति दी गयी थी। तत्पश्चात् अपने पीछे चार बेटियों को छोड़कर 1973 में हरिबक्स पोद्दार की मृत्यु हो गयी। वादीगण के अनुसार, हरिवक्स पोद्दार की मृत्यु के पश्चात् उक्त राम गोपाल रूंगटा एवं शंकर लाल रूंगटा को उक्त फर्म में वर्किंग भागीदार के तौर पर लिया गया था एवं इस कारोबार को भागीदारी कारोबार में परिवर्तित किया गया था। तत्पश्चात्, हरिबक्स पोद्दार की विधवा की मृत्यु भी 1976 में हो गयी तब वादीगण ने, जो हरिवक्स पोद्दार की बेटियां है, अन्य के साथ यह अभिकथित करते हुए वाद संस्थित किया कि भागीदारी फर्म से इस्तिफा देने के उपरान्त उक्त राम गोपाल रूंगटा, शंकर लाल रूंगटा अभिधारी के तौर पर परिसर के कब्जाधारी बने रहे। मुझे प्रतिवादीगण एवं वादीगण के सम्पूर्ण अभिवचनों पर विमर्श करने की जरूरत नहीं है। इतना कहना पर्याप्त है कि प्रतिवादीगण ने मकान मालिक एवं किरायेदार के सम्बन्ध से इन्कार किया एवं उन सबमें अभिधान का दावा किया। दोनों ही पक्षकारों ने मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य पेश किये हैं। वादीगण के पक्ष से भागीदारी विलेख, प्रदर्श–2 एवं प्रदर्श–5 सहित विभिन्न दस्तावेज दाखिल किये गए थे। विचारण न्यायालय ने साक्ष्य पर विमर्श करने के उपरान्त अभिलिखित किया कि वादी एवं प्रत्यर्थीगण का सम्बन्ध प्रमाणित हुआ है एवं व्यतिक्रम का एक मामला निर्मित हुआ है। वाद को तद्नुसार डिक्रीत किया गया।

4. उक्त निर्णय एवं डिक्री से व्यथित होकर अपीलार्थीगण ने अभिधान अपील सं॰ 114/94 दाखिल किया। अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष को अभिपुष्ट किया एवं अपील खारिज किया।

5. यहाँ यह बताना रोचक है कि विचारण न्यायालय की परिचर्चा एवं अभिलिखित निष्कर्ष को अपीलीय न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में शब्दशः उद्धृत किया गया है। विचारण न्यायालय के निष्कर्ष के प्रत्येक पंक्ति एवं प्रत्येक शब्द को अपीलीय न्यायालय द्वारा मकान मालिक एवं किरायेदार से सम्बन्धित मुद्दा पर एवं व्यतिक्रम के मुद्दे पर निष्कर्ष अभिलिखित करते समय उस निर्णय को उद्धृत किया गया है।

6. विधि के इस स्थापित प्रतिपादना पर किसी विनिश्चय को निर्दिष्ट करने की जरूरत नहीं है कि जब अपीलीय न्यायालय CPC के आदेश 41, नियम 31 की आज्ञापक अपेक्षा का पालन करने में असफल रहता है, तो अपीलीय न्यायालय का निर्णय विधि में अवधार्य नहीं हो सकता है।

7. यह समान रूप से सुस्थापित है कि दोनों न्यायालयों के निष्कर्ष द्वितीय अपील में आबद्धकर होते हैं जब अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष विवेक की प्रयोज्यता एवं साक्ष्य पर विचार–विमर्श के उपरान्त विचारण न्यायालय द्वारा दिये गये तर्क की पूर्ति होने के उपरान्त अनिवार्य रूप से एक स्वतंत्र

निष्कर्ष हो। प्रथम दृष्टया मैं इस दृष्टिकोण का हूँ कि अपीलीय न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया है बल्कि उसने अपील के निस्तारण के प्रयोजनार्थ विचारण न्यायालय के सम्पूर्ण निष्कर्षों को उद्धृत किया एवं अपील को खारिज किया। इसलिए अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय एवं डिक्री को विधि में बरकरार नहीं रखा जा सकता है एवं मामले को विधि के अपेक्षा का अनुपालन करने के उपरान्त एवं प्रदर्श-2 तथा 5 सहित सभी प्रदर्शों जिसे वादीगण-प्रत्यर्थीगण के पक्ष से प्रमाणित एवं संख्यांकित किया गया है। सहित पक्षकारों द्वारा पेश किये गए साक्ष्य के आधार पर स्वतंत्र तर्क देने के उपरान्त नया निर्णय पारित होने के लिए अवर अपीलीय न्यायालय में प्रतिप्रेषित करने की आवश्यकता है।

8. उक्त पक्ष में, यह अपील अनुज्ञात किया जाता है एवं अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री को अपास्त किया जाता है। दोनों पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के उपरांत अपील का नये सिरे से विनिश्चिय करने के लिए मामले को अवर अपीलीय न्यायालय में प्रतिप्रेषित किया जाता है।

---

ekuuh;k t;k jk;] U;k;efr

नमिता देवी @ बेबी एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

दां॰ पुनरीक्षण सं॰ 298 वर्ष 2007. 9 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 227 एवं 228—निर्मुक्ति–अभियुक्त व्यक्तियों को निर्मुक्त नहीं किया जा सकता अगर प्रथम सूचना रिपोर्ट और केस डायरी में पर्याप्त सामग्रियाँ हैं–अगर ऐसा एक प्रबल संदेह जिसपर न्यायालय यह समझता है कि अभियुक्त ने एक अपराध कारित किया है तब न्यायालय के पास यह कहने का विकल्प नहीं है कि अभियुक्त के विरूद्ध कार्यवाही के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं है। (पैरा 6, 8, एवं 9)

निर्णयज विधि.–AIR 1977 SC 2018—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s Baban Lal, Ashok Kumar Sinha, For the Petitioner; M/s A.K. Mehta, Rupesh Sing, Amarandra Pradhan, For the Opp. Party No. 2; Mr. S.K. Srivastava, For the State.

आदेश

जी॰ आर॰ केस संख्या 1706 वर्ष 2005 में अनुमंडल न्यायिक दण्डाधिकारी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 17.2.2007 के आदेश को अपास्त करने के लिए याची ने यह दाण्डिक पुनरीक्षण दाखिल किया है जिसके द्वारा उन्होंने याचीगण की निर्मुक्ति के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन याचिका खारिज कर दिया है। अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि याची संख्या 5 बीरेन्द्र नारायण रेवानी की पत्नी सुमन देवी ने प्रभारी पदाधिकारी, कतरास पुलिस थाने के यहाँ एक लिखित सूचना उसमें यह कथित करते हुए दर्ज किया कि हिन्दु रीति एवं रिवाज के अनुसार 26.4.2002 को बीरेन्द्र नारायण रेवानी के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ था। विवाह के समय उसके पिता ने कई उपहार और हीरो होण्डा की खरीद के लिए पचास हजार रुपए की राशि दिए थे जैसा कि उसके ससुराल वालों द्वारा मांग की गई थी। परन्तु, उन्होंने मोटर साईकिल नहीं खरीदे। कुछ समय बाद, उसके पति, साश और देवर ने उससे दुबारा हीरो होण्डा मोटर बाईक लाने की मांग की। इसके बारे में उसने माता-पिता को सूचित किया। उसके पिता उसके वैवाहिक घर आए और मेल-मिलाप कराने का प्रयास किया। वे कुछ समय तक शांत रहे परन्तु अपनी मांग के लिए उन्होंने पुनः शारीरिक और मानसिक रूप

से प्रताड़ित करना प्रारम्भ कर दिया। आखिरकार 23.4.2005 को उसकी सास एवं देवर उसके पास आए और हीरो-होण्डा मोटर साईकिल के लिए धन लाने की मांग की और उसे जान से मारने की धमकी दी और उक्त तीनों व्यक्तियों ने उस पर शारीरिक रूप से प्रहार किया। इन सारी बातों को सुनकर उसकी माता एवं भाई 25.4.2005 को उसके क्वार्टर पर आए और उनसे पूछा कि वे उनकी पुत्री के साथ ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं। अभियुक्त व्यक्तियों ने उसकी माता एवं भाई पर भी प्रहार किया और फिर वे क्वार्टर छोड़ कर चले गए। सूचनादाता ने आगे यह भी अभिकथित किया कि जब अभियुक्त व्यक्ति उसके क्वार्टर पर नहीं लौटे तो, उसने भी क्वार्टर में ताला लगा दिया और अपने माता-पिता के घर चली गई। यह भी अभिकथित किया गया है कि उस मामले में उसकी ननद और उसके पति का भी हाथ था। पूर्वोक्त लिखित सूचना के आधार पर, याचीगण के विरूद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498A के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन एक मामला दर्ज कराया गया है।

2. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले वरीय अधिवक्ता, श्री बबन लाल निवेदन करते हैं कि केवल याचीगण को तंग करने के लिए सूचनादाता ने उनके विरूद्ध यह मामला दर्ज किया है और यथा अभिकथित समूचा अभियोजन मामला झूठा एवं आधारहीन है और याचीगण के विरूद्ध कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है।

3. यह भी तर्क दिया गया है कि याची संख्या 1 एवं 2 अर्थात् सूचनादाता के ननद और पति सरायकेला पुलिस थाना के अन्तर्गत कोईला नगर में रह रहे हैं जो सूचनादाता के घर से काफी दूर है। याची संख्या 3 शान्ति देवी जो एक विधवा और उसकी सास है और देवर याची संख्या 4 भी धनबाद में रह रहे हैं और वे कभी भी सूचनादाता का घर नहीं गए है जहाँ सूचनादाता अपने पति के साथ रहता है और इस प्रकार उनका सूचनादाता से कुछ लेना देना नहीं है।

4. याची की ओर से यह भी निवेदन किया गया है कि यद्यपि अभिकथित घटना 25.4.2005 को घटित हुई है परन्तु पुलिस थाना को सूचना 28.5.2005 यानि एक महीने के उपरान्त दी गई थी और उक्त विलम्ब के लिए कोई अकाट्य कारण नहीं बताया गया है।

5. विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता ने तर्क दिया कि लिखित रिपोर्ट के अनुसार हमले के लिए और हीरो होण्डा मोटर साईकिल के रूप में दहेज की मांग के लिए भी सभी याचीगण के विरूद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन है। इसके अतिरिक्त उन्होंने निवेदन किया है कि यह विनिर्दिष्ट रूप से प्राख्यान किया गया है कि अभियुक्त नोमिता देवी (ननद) और उसके पति माणिक रवानी के कहने पर उक्त घटना कारित की गई है।

6. प्रथम सूचना रिपोर्ट और आक्षेपित आदेश से मैं पाती हूँ कि याचीगण के विरूद्ध केस डायरी में पर्याप्त सामग्रियां है। आक्षेपित आदेश दर्शाता है कि अन्वेषण के अनुक्रम में, स्वयं सूचनादाता ने पैरा-4 में उक्त अभिकथनों को दुहराया और अ॰ सा॰ सुभाष कुमार ने केस डायरी के पैरा 32 और अ॰ सा॰ बालेश्वर राम ने पैरा 34 में पूर्ण रूप से अभियोजन मामले का समर्थन किया है। अन्वेषण के समापन के उपरांत, अन्वेषण पदाधिकारी भी इस निष्कर्ष जो केस डायरी के पैरा 37 में उल्लिखित है पर पहुँचा है कि सभी पाँच अभियुक्त व्यक्तियों ने अभिकथित घटना में भाग लिया था।

7. मैं प्रथम सूचना रिपोर्ट से पाती हूँ कि सूचनादाता द्वारा विलम्ब का उचित रूप से स्पष्टीकरण दिया गया है।

8. बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह, ए॰ आई॰ आर॰ 1977 एस॰ सी॰ 2018 के मामले में, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 227 एवं 228 के कार्यक्षेत्र को परखते समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सम्परीक्षित किया:-

> ''.....दोनों प्रावधानों को साथ-साथ पढ़ने पर, जैसा कि उन्हें करना ही है, यह स्पष्ट होगा कि प्रारम्भ में और विचारण के आरम्भिक चरण में, उस साक्ष्य की सत्य, सत्यता एवं प्रभाव को पूरी बारीकी से निर्णित की जानी नहीं होती है जिसे अभियोजक पेश करने का प्रस्ताव करता है।

न ही अभियुक्त के संभावित बचाव को कोई महत्व प्रदान करना नहीं है। विचारण के उस चरण में न्यायाधीश के लिए विस्तार से यह विचार करना और एक संवेदनशील संतुलन पर यह मूल्यांकन करना बाध्यकारी नहीं है कि अगर तथ्य सिद्ध हो जाती हैं तो ये अभियुक्त की निर्दोषिता से असंगत होंगे या नहीं। अभियुक्त के दोष अन्यथा के संबंध में एवं निष्कर्ष को अभिलिखित करने से पहले परीक्षण एवं निर्णय के जिस मानक को अन्तिम रूप से लागू करना है वह पूर्णतया वह नहीं, जो संहिता की धाराएँ 227 या 228 के अधीन मामले को निर्णीत करने के समय लागू करना है। उस चरण में न्यायालय को यह देखना नहीं है कि क्या अभियुक्त की दोषसिद्ध के लिए पर्याप्त आधार है या क्या विचारण का परिणाम निश्चित रूप से उसकी दोषसिद्धि का होगा। अभियुक्त के विरूद्ध प्रबल संदेह, अगर मामला संदेह के क्षेत्र में रहता है, तो विचारण के समापन पर उसकी दोषिता के साक्ष्य के स्थान नहीं ले सकता। परन्तु प्रारम्भिक चरण में अगर कोई ऐसा प्रबल संदेह है जो न्यायालय को यह सोचने की ओर अग्रसर करता है कि यह उपधारिता करने के लिए एक आधार है कि अभियुक्त ने एक अपराध कारित किया है तो न्यायालय को यह कहने का विकल्प नहीं है कि अभियुक्त के विरूद्ध कार्यवाही करने का कोई पर्याप्त आधार नहीं है।.....''

9. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि की दृष्टि में जो अभी तक मान्य है, मैं इस आवेदन में कोई दम नहीं पाती हूँ। तद्नुसार यह पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

मंजू शर्मा एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6016 वर्ष 2008. 9 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–वेतन-महाविद्यालय की पुरानी प्रबंध समिति और नई प्रबंध समिति के बीच विवाद के कारण महाविद्यालय के शैक्षणिक कर्मचारियों के वेतन का भुगतान नहीं–प्रत्येक याची की वेतन राशि का फैसला करने के लिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि राशि को पी॰ पी॰ एफ॰, जी॰ पी॰ एफ॰ इत्यादि की राशियों की कटौतियाँ करने के उपरांत उनके अपने-अपने खातों में जमा कर दी जाए, न्यायालय ने एक चार सदस्यीय समिति गठित की। (पैरा 3 एवं 4)

अधिवक्तागण.–M/s Indrajit Sinha, B. Sinha, For the Petitioners; Mr. R. Krishna, For the State; Mr. Anoop Kumar Mehta, For the University; Mr. Rishav Dev, For the Respt. Nos. 4 & 5; Mr. S. Lahiri, For the Respt. No. 6; M/s S. Anwar, Nehala Sharmin, For the Intervener.

आदेश

याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मौलाना आजाद महाविद्यालय, राँची की पुरानी प्रबंधन समिति के सदस्यों और नई प्रबंधन समिति के सदस्यों के बीच विवाद के कारण शैक्षणिक कर्मचारियों, जो याचीगण है, का नवम्बर, 2006 से सितंबर, 2007 तक का वेतन जिसका यद्यपि सरकार द्वारा भुगतान कर दिया गया है और यद्यपि महाविद्यालय, राँची के बैंक खाते में इसे जमा कर दिया गया है फिर भी यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा इसका वितरण नहीं किया जा रहा हैं और वह अनावश्यक रूप से वेतन अपने पास रखे हुए हैं। एवं, इसलिए, वेतन के वितरण के लिए, वर्तमान याचीगण नवम्बर, 2006 से सितंबर, 2007 तक के अपने वेतन को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं। यह विवादित नहीं है कि उन्होंने इस अवधि के लिए कार्य किया है।

2. दोनो पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण की सुनवाई करके और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों का अवलोकन करके यह प्रतीत होता है:-

(a) कि वर्तमान याचीगण मौलाना आजाद महाविद्यालय, राँची के शैक्षणिक कर्मचारी हैं। उन्होंने नवम्बर, 2006 से सितम्बर, 2007 तक कार्य किया है।

(b) कि इस अवधि के लिए वे अपने वेतन के अधिकारी हैं। इस वेतन का प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा पहले ही भुगतान कर दिया गया है और वेतन राशि मौलाना आजाद महाविद्यालय, राँची के यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, शहीद चौक शाखा, राँची के खाते में पहले ही जमा कर दी गई है।

(c) कि सरकार द्वारा किए गए इस भुगतान के बावजूद और बैंक में इस वेतन राशि को जमा किए जाने के बावजूद, यह याचीगण जो मौलाना आजाद महाविद्यालय, रॉची के शैक्षणिक कर्मचारी हैं को केवल इस आधार पर वितरित नहीं की जा रही है कि प्रबंध समिति संख्या 1 और प्रबंध समिति संख्या 2 के बीच कुछ पुराने विवाद है एवं यह इस न्यायालय के समक्ष लम्बित अपील केस A.C. (S.B.) सं॰ 6 वर्ष 2007 और साथ ही इस न्यायालय के समक्ष लंबित रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 2743 वर्ष 2008 की दृष्टि में है।

(d) कि किसी सक्षम प्राधिकार/अधिकरण या न्यायालय द्वारा इन शैक्षणिक कर्मचारियों को वेतन के वितरण के विरूद्ध कोई स्थगन नहीं है।

3. इस तथ्य की दृष्टि में और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि काफी समय से महाविद्यालय के शैक्षणिक कर्मचारी यानि याचीगण अपने वेतन की प्रतीक्षा का रहा है और चूँकि उनका वेतन महाविद्यालय के बैंक खाते में पहले ही जमा है, मैं एतद् द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 से 5 को निर्देश देता हूँ कि वर्तमान याचीगण के वेतन को उनके अपने अपने बैंक खातों में जमा किया जाए जो उसी बैंक में अर्थात् यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, शहीद चौक शाखा रॉची में है। विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 से 5 को संभवत: प्रत्येक याची की सही-सही वेतन राशि की जानकारी न हो, अत:, मैं एतद् द्वारा सहायता के लिए निम्नांकित चार अधिकारियों की एक समिति नियुक्त करता हूँ:-

(A) राज्य:-

(1) श्री मुकेश कुमार सिन्हा, सहायक निदेशक, उच्चतर शिक्षा, मानव संसाधन विकास विभाग।

(2) श्री आशुतोष प्रसाद, उप-निदेशक, उच्चतर शिक्षा, मानव संसाधन विकास विभाग।

(B) रांची विश्वविद्यालय:-

(3) श्री एस॰ एस॰ रजी, प्रभारी, प्रोफेसर, वर्कर्स कॉलेज, जमशेदपुर एवं सदस्य, सिंडिकेट

(4) श्री एस॰ के॰ प्रसाद, वित्त पदाधिकारी राँची विश्वविद्यालय, राँची।

4. पूर्वोक्त चार अधिकारीगण प्रत्येक याची की वेतन राशि के बारे में निर्णय करेंगे और महाविद्यालय, राँची के बैंक खाते से PPF, GPF राशियों इत्यादि की विधि के अधीन अनुमान्य आवश्यक कटौतियाँ करके यह रशि उनके अपने बैंक खातों में जमा कर दी जाएगी। ये याचीगण नवम्बर 2006 से सितम्बर, 2007 तक के अपने वेतन के अधिकारी है और पूर्वोक्त चार पदाधिकारियों की इस समिति द्वारा यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र एवं यथा व्यवहार रूप से अधिमानत: इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से दो सप्ताह की एक अवधि के भीतर, यह कार्य पूरा किया जाएगा और पूर्वोक्त समिति द्वारा प्रत्येक याचीगण के बकायों की राशि नियत कर दिए जाने पर वे इस राशि को प्रत्यर्थी संख्या 4 एवं 5 को प्रेषित करेंगे और प्रत्येक याचीगण के लिए ऐसी नियत राशि की प्राप्ति पर उक्त राशि आवश्यक बैंक प्रक्रिया को पूरा करने के उपरांत, प्रत्यर्थी संख्या 4 एवं 5 द्वारा याचीगण के बैंक खाते में स्थानांतरित

करके जमा कर दी जाएगी। याचीगण की बैंक खाते में वेतन की राशि के अंतरण के लिए इस बैंक प्रक्रिया को पूरा करने में सभी प्रत्यर्थीगण सहयोग करेंगे।

5. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता अपने बैंक खाते के बारे में प्रत्यर्थीगण को सूचित करेंगे और पूवोक्त राशि/वेतन और कटौतियां इत्यादि का निर्णय करने में याचीगण सहयोग करेंगे।

6. नवम्बर, 2006 से सितम्बर, 2007 तक की अवधि के लिए यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, शहीद चौक शाखा, रॉची के यहाँ संचित वेतन के वितरण में पूर्वोक्त व्यवस्था अस्थायी रूप से की गई है।

7. पूर्वोक्त निर्देशों की दृष्टि में, इस रिट याचिका को निस्तारित किया जाता है।

---

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky ,o Mhñ ,uñ iVy] U;k;efrx.k

डॉ॰ मो॰ कलीमुद्दीन

बनाम

बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची एवं अन्य

लेटर्स पेटेण्ट अपील सं॰ 80 वर्ष 2007. 13 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

लेटर्स पेटेण्ट के खण्ड 10 के अधीन एक अपील के मामले में।

सेवा विधि–वरीयता–शिक्षण कार्य अनुभव पर विचार करके निजी प्रत्यर्थी को अपीलार्थी के पहले एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर प्रोन्नत किया गया–निजी प्रत्यर्थी की सेवा में दो दिनों के अन्तराल का अभिवाक् स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि निजी प्रत्यर्थी को अधिनियम एवं नियमावली के अनुसार विश्वविद्यालय द्वारा वेतनमान संरक्षण एवं योगदान के समय का विस्तार प्रदान किया गया था। (पैरा 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Tiwari, For the Appellant; M/s A. Allam, Ahravan Kumar, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–वर्तमान अपील में जो संक्षिप्त प्रश्न विचारण के लिए उठता है वह यह है कि क्या जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय में प्रदत्त प्रत्यर्थी संख्या 5 की सेवाओं को विचार में रखकर प्रत्यर्थी संख्या 5 को अपीलार्थी–रिट याची से वरीय घोषित करने में विश्वविद्यालय की कार्रवाई न्यायोचित है।

2. अपीलार्थी ने बिरसा कृषि विश्वविद्यालय के एक सम्बद्ध महाविद्यालय, राँची वेटेनरी महाविद्यालय में 20.8.1982 को सहायक प्रोफेसर–सह–वरीय वैज्ञानिक के तौर पर योगदान दिया। अपीलार्थी का मामला है कि उसे पशु–चिकित्सा विभाग एवं पशुपालन संकाय में सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं महामारी विज्ञान विभाग में कनीय वैज्ञानिक–सह–सहायक प्रोफेसर के पद के लिए चयनित किया गया था। चयन सूची में अपीलार्थी को क्रम संख्या 1 पर रखा गया था जबकि किसी डॉ॰ अशोक दयाल को क्रम संख्या 2 पर रखा गया था। अपीलार्थी के अनुसार, चूँकि डॉ॰ दयाल ने पद पर योगदान नहीं दिया, अत: प्रत्यर्थी संख्या 5 को बाद में दिनांक 20.4.1983 की अधिसूचना के माध्यम से कनीय वैज्ञानिक–सह–सहायक प्रोफेसर के तौर पर नियुक्त कर दिया गया। अपीलार्थी की व्यथा यह है कि यद्यपि अपीलार्थी के साथ प्रत्यर्थी संख्या 5 भी उक्त पद के लिए उपस्थित हुआ था और साक्षात्कार दिया था परन्तु उसके नाम को चयन सूची में स्थान नहीं मिला था। अपीलार्थी की अतिरिक्त व्यथा यह है कि यद्यपि प्रत्यर्थी–संख्या 5 ने अपीलार्थी के वाद योगदान दिया था परन्तु उसे जवाहरलाल कृषि विश्वविद्यालय (संक्षेप में JNKVV) में प्रदत्त उसकी सेवा की गणना करते हुए अनुचित रूप से लाभ प्रदान किया गया।

3. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 5 का मामला यह है कि उसे बिरसा कृषि विश्वविद्यालय में पशु चिकित्सा सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं महामारी विज्ञान विभाग में दिनांक 20.4.1983 की अधिसूचना के माध्यम से कनीय वैज्ञाणिक-सह-सहायक प्रोफेसर के तौर पर नियुक्त किया गया था। नियुक्ति पत्र प्राप्त करने के उपरांत प्रत्यर्थी संख्या 5 ने कुलाधिपति से उसके योगदान के समय को आगे बढ़ाने का आग्रह किया और यह भी आग्रह किया कि उसके वेतन को उसी वेतनमान में बनाए रखा जाए जो वह JNKVV, जबलपुर में प्राप्त कर रहा था। विश्वविद्यालय ने तद्नुसार दिनांक 13.5.1983 के पत्र के माध्यम से उसके योगदान के समय को आगे बढ़ा दिया और यह भी आदेश किया कि उसका वेतन तद्नुसार निर्धारित किया जाएगा। तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी संख्या 5 ने 29.6.1983 को विश्वविद्यालय में योगदान दिया। विश्वविद्यालय का पक्ष यह है कि यद्यपि प्रत्यर्थी संख्या 5 ने 29.6.1983 को योगदान दिया था जो अपीलार्थी के योगदान की पश्चातवर्ती तिथि है, परन्तु JNKVV, जबलपुर में प्रदत्त उसकी पिछली सेवा को भी गणना की गई थी और उसे वेतनमान-संरक्षण प्रदान किया गया था, अत: वह अपीलार्थी से वरीय बन गया था। विश्वविद्यालय ने यह भी कहा कि तत्कालीन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा यथा अनुशंसित कैरियर उन्नयन योजना से अपीलार्थी को 1995 के प्रभाव से चयन श्रेणी में प्रोन्नत किया गया था, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 5 को 20.10.1993 के प्रभाव से उक्त योजना के अधीन चयन श्रेणी में प्रोन्नत किया गया था।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश इन सब तथ्यों पर विचार करके निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रत्यर्थी संख्या 5 के ऊपर वरीयता का दावा करते हुए अपीलार्थी द्वारा दाखिल अभ्यावेदन को विश्वविद्यालय ने उचित रूप से खारिज कर दिया।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री महेश तिवारी ने मुख्यत: इस आधार पर आक्षेपित निर्णय पर प्रहार किया कि प्रत्यर्थी संख्या 5 ने 23.8.1976 से 25.6.1983 तक JNKVV में अपनी सेवाएं प्रदान की और उक्त विश्वविद्यालय से त्याग-पत्र देने के उपरांत अपनी सेवा छोड़ दी और तत्पश्चात्, 29.6.1983 को बिरसा कृषि विश्वविद्यालय में योगदान दिया। श्री तिवारी के अनुसार 26.6.1983 से 28.6.1983 तक जो कि तीन दिन वें सेवा में नहीं थें, जो उसकी सतत सेवा में एक अन्तराल है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि विद्धान एकल न्यायाधीश इस एक निष्कर्ष पर गलत रूप से पहुँचा कि प्रत्यर्थी संख्या 5 को JNKVV में सेवा की सातत्य का लाभ प्रदान किया गया था।

6. यह विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 को 1976 में 700-1600/- रुपए का वेतनमान प्राप्त हुआ था और JNKVV, जबलपुर में उसके पिछले अनुभव को विचार में रखा गया था। इस पर भी विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 के पास पहले से ही लगभग 9 वर्षों का अनुभव था और एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर, प्रत्यर्थी संख्या 5 को 20.10.1993 को प्रोन्नत किया गया था, जबकि याची को 22.9.1995 को प्रोन्नत किया गया था। जहाँ तक सेवा में दो दिनों के अन्तराल का सम्बन्ध है, स्वीकार्यत:, प्रत्यर्थी संख्या 5 का आवेदन को 15.1.1982 को JNKVV, जबलपुर अग्रसारित किया गया था और प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त किए जाने के उपरांत, उसने अपने पूर्व के पद से इस्तीफा दिया और तत्पश्चात् प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय में योगदान दिया। पूर्वोक्त अवधारणाओं में, यह नहीं कहा जा सकता कि सेवा में एक अन्तराल है। प्रत्यर्थी सं॰ 5 के योगदान को विश्वविद्यालय द्वारा समय का बढ़ाया जाना और विश्वविद्यालय द्वारा उसके मूल वेतन का संरक्षण किया जाना अधिनियमों एवं नियमावली के अनुसार किया गया है। इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने उचित रूप से अवधारित किया कि याची द्वारा दावा किया गया अनुतोष न्यायोचित नहीं है।

7. पूर्वोक्त कारणों से, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के साथ हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं। तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

ekuuh;k Kku lèkk feJk] e[; U;k;kèkh'k

श्याम किशोर सिंह एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

Cont. (Civil) Case No. 59 वर्ष 2005. 16 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 215—अवमान–विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा यथा अनुशंसित पुनरीक्षित वेतनमान में वेतन के भुगतान के लिए विश्वविद्यालय के पक्ष में कोष निर्गत करने का सरकार के न्यायालय का निर्देश–सरकार ने केवल नौ महीनो के अवधि के लिए कोष निर्गत किया और इसका याचीगण को भुगतान कर दिया गया–अभिनिर्धारित, वर्तमान में अवमान का कोई मामला नहीं बनता–तथापि, अगर किसी भी चरण में UGC व्याख्याताओं के पुनरीक्षित वेतनमान में भुगतान को लेकर अनुदान निर्गत करता है और इसका फिर भी भुगतान नहीं किया जाता है तब याची एक अन्य अवमान याचिका दाखिल कर सकता हैं। (पैरा 5)

अधिवक्तागण.–Mr. S.P. Roy, For the Petitioners; JC to G.P.-II, For the State; Mrs. I. Sen Choudhary, For the University.

आदेश

डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 4893 वर्ष 2004 में पारित दिनांक 23.9.2004 के उस आदेश का गैर–अनुपालन अभिकथित करते हुए यह अवमान हेतु एक याचिका है जिस आदेश में विद्वान एकल न्यायाधीश ने याचीगण द्वारा दाखिल रिट याचिका को उसमें यह सम्परीक्षित करते हुए खारिज किया था कि अगर याचीगण स्वीकृत पद या स्वीकृति के लिए अनुशंसित एक पद पर महाविद्यालय के अंगीकार किए जाने के पहले व्याख्याता के तौर पर कार्य करते हुए पाए जाते हैं और उनके नाम महाविद्यालय में कार्यरत व्याख्याताओं की सूची में मौजूद थे जिसे राज्य सरकार द्वारा तैयार किया गया था और वे वेतन प्राप्त कर रहे थे, तब ऐसी स्थिति में, राज्य सरकार विश्वविद्यालय में अनुशंसा की प्राप्ति की तिथि से दो महीनों के भीतर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा यथा अनुशंसित पुनरीक्षित वेतनमान में वेतन के भुगतान के लिए विश्वविद्यालय के पक्ष में धन निर्गत करेगी। न्यायालय ने यह भी सम्परीक्षित किया कि अगर कोई या अन्य प्राधिकारी कोई प्रतिकूल निर्णय लेता है, वे ऐसे आधार को याचीगण को सूचित करेंगे।

2. अवमान याचिका यह कहते हुए दाखिल की गई है कि पूर्वोक्त निर्देश, जैसा कि अनुपालन के लिए इप्सित आदेश में इसमें इसके ऊपर इंगित किया गया है, का पूर्ण रूप से अनुसरण नहीं किया गया है क्योंकि यद्यपि विश्वविद्यालय ने पाया था कि याचीगण मरखाम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, हजारीबाग को अंगीकार किए जाने के पहले व्याख्याता के एक स्वीकृत पद पर कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे और विश्वविद्यालय ने भी इस स्थिति को स्वीकार किया था और राज्य को अपनी अनुशंसा भेजी थी, फिर भी राज्य सरकार ने वेतन के भुगतान हेतु केवल नौ महीनों की अवधि के लिए धन कोष को निर्गत किया है, जिनका भुगतान याचीगण को पहले ही कर दिया गया है परन्तु याचीगण की फिर भी व्यथित है क्योंकि यह अभिकथित किया गया है कि यद्यपि आदेश में एक निर्देश है कि वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से पुनरीक्षित वेतनमान के अधिकारी होंगे, परन्तु इसे 1.1.1996 के पश्चात याचीगण को प्रदान नहीं किया गया है। इस प्रकार यह प्रकट हो जाता है कि यह राज्य सरकार है जिसे विश्वविद्यालय के माध्यम से महाविद्यालय के पक्ष में कोष को निर्गत करना था जिससे कि UGC वेतनमान के अनुसार व्याख्याताओं को भुगतान हो सके।

3. परन्तु राज्य के अधिवक्ता को यह भी कहना है कि 1.1.1996 के उपरांत व्याख्याताओं को UGC का वेतनमान प्रदान नहीं किया जा सकता क्योंकि UGC ने राज्य या विश्वविद्यालय को कोष निर्गत नहीं किया है जिससे कि 1.1.1996 के प्रभाव से व्याख्याताओ को UGC वेतनमान प्रदान किया जा सके। इन्हीं परिस्थितियों में UGC के वेतनमान के अनुसार याचीगण को भुगतान नहीं किया जा सका।

4. पूर्वोक्त परिस्थिति स्वत: स्पष्टकारी है यह इंगित करते हुए कि याचीगण को शामिल करते हुए व्याख्याओं को UGC वेतनमान अनुज्ञात करने वाला आदेश केवल तभी प्रभावी होगा जब UGC के अनुदान याचीगण के पक्ष में निर्गत किए जाएंगे और 1.1.1996 के पश्चात् UGC द्वारा इन्हे निर्गत नहीं किए जाने के कारण, विश्वविद्यालय या राज्य के विरूद्ध अवमान का एक मामला इस चरण में नहीं बनता।

5. इस प्रकार इस समय उनके विरूद्ध अवमान का कोई मामला नहीं बनता। अगर, किसी भी चरण में, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग व्याख्याताओं के पुनरीक्षित वेतनमान को लेकर अनुदान निर्गत करता है और याचीगण का फिर भी भुगतान नहीं किया जाता है, जो महाविद्यालय को अंगीकार किए जाने से पहले एक स्वीकृत पद पर कर्तव्यो का निर्वहन कर रहे थे, तो उन्हें अवमान के लिए एक नई याचिका दाखिल करने की स्वतंत्रता होगी। जहाँतक इस चरण का संबंध है अवमान का कोई मामला नहीं बनता क्योंकि याचीगण ने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के निबंधनो में वेतन पहले ही प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार, यह अवमान याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky ,o t;k jk;] U;k;efrx.k

सचिव, कृषि उत्पाद विपणन समिति, कोडरमा एवं एक अन्य (294 में)

प्रबंध निदेशक के माध्यम से बिहार राज्य (अब झारखंड) कृषि विपणन समिति (295 में)

बनाम

मोहता कॉन्सर्नस् लिमिटेड एवं अन्य (दोनों में)

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 294, 295 वर्ष 2007. 11 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

लेटर्स पेटेन्ट के खण्ड 10 के अधीन एक अपील के मामले में।

(क) भूमि अर्जन अधिनियम, 1894—धाराएँ 4 एवं 12—पंचाट–मुआवजे की वृद्धि के लिए प्रार्थना–जहाँ विशाल क्षेत्र अर्जन की विषय-वस्तु है, वहां उस दर को जिसपर लघु भूखंडों को बेचा जाता है, एक सुरक्षित मानदण्ड होना नहीं कहा जा सकता है। (पैरा 7)

(ख) भूमि अर्जन अधिनियम, 1894—धाराएँ 4 एवं 12—मुआवजा–मुआवजे का अवधारण करते समय, न्यायालय को तुलनीय विक्रय-विलेखों पर विचार करना पड़ता है जिनके द्वारा अर्जित भूमि की पास वाली भूमि अधिसूचना की एक युक्तियुक्त समय के अन्दर बेची जा चुकी है। (पैरा 7)

(ग) भूमि अर्जन अधिनियम, 1894—धाराएँ 4 एवं 12—अनिवार्य अर्जन–जब एक व्यक्ति को अनिवार्य अर्जन द्वारा उसकी भूमि से वंचित कर दिया जाता है, तब उसको भूमि का मूल्य अवधारित करके मुआवजा का अवश्य संदाय करना चाहिए, लेकिन मूल्यांकन को अपरिमित, अत्यधिक एवं कल्पना से परे नहीं होना चाहिए। (पैरा 14)

निर्णयज विधि.–(2008)2 SCC 568; (1977) 1 SCC 684; (1972)4 SCC 236—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s V.P. Singh, M.K. Dey, For the Appellants; M/s Rajesh Kumar, Amit Kumar, M.K. Sinha, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–ये दोनों अपीलें प्रथम अपील सं॰ 37 वर्ष 1997(R) साथ में प्रथम अपील सं॰ 65 वर्ष 1997(आर॰) में पारित दिनांक 27.7.2007 के सम्मिलित निर्णय के विरूद्ध निर्दिष्ट की गयी है, जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने एफ॰ ए॰ सं॰ 37 वर्ष 1997 होने वाली अपीलों में से एक को अनुज्ञात किया और मुआवजा की राशि में वृद्धि कर दिया जबकि एफ॰ ए॰ सं॰ 65 वर्ष 1997 को खारिज कर दी गयी है।

2. मामले के तथ्य एक संकुचित विस्तार में है:-

भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन हजारीबाग जिला गजट में प्रकाशित दिनांक 1.2.1982 की अधिसूचना द्वारा, राज्य सरकार ने कृषि बाजार समिति के निर्माण के लिए गांव झुमरीतिलैया थाना कोडरमा के खाता सं॰ 982 की 3.97 एकड़ भूमि को सम्मिलित कर भूमि अर्जित करना चाहा। आक्षेप भूस्वामियों से आमंत्रित किये गए थे। खाता सं॰ 982 की 3.97 एकड़ भूमि का कब्जाधारी प्रत्यर्थी ने अर्जित की गयी भूमियों के निर्मोचन हेतु तथा वैकल्पिक तौर पर 30,000/- रुपये प्रति कट्ठा की दर पर मुआवजा के संदाय के लिए आक्षेप दाखिल किया। किन्तु, भूमि अर्जन कार्यवाही प्रारम्भ हो गयी और अंततोगत्वा अधिनिर्णय प्रत्यर्थी की भूमियों के सम्बन्ध में तैयार किया गया जिसके द्वारा 1,95,021/- रुपये मुआवजे का अधिनिर्णय किया गया था। तत्पश्चात्, दावेदार-प्रत्यर्थियों की प्रेरणा पर, मामले को संदर्भ केस सं॰ 779/92 में विशेष भूमि अर्जन न्यायाधीश, कोडरमा को भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 के अधीन निर्दिष्ट किया गया। भूमि अर्जन न्यायाधीश ने तथ्यों एवं पक्षकारों द्वारा पेश किये गये साक्ष्य तथा भूमि अधिकारी द्वारा की गयी सिफारिश, प्रदर्श-B पर भी विचारकर 5000/- रुपये प्रति कट्ठा की दर पर प्रत्यर्थियों को अर्जित की गयी भूमियों के मूल्य को अवधारित किया। भूमि अर्जन न्यायाधीश के उक्त निर्णय द्वारा व्यथित होकर, अपीलार्थी-बाजार समिति ने एफ॰ ए॰ सं॰ 65/97 दाखिल किया तथा प्रत्यर्थीगण-दावेदारों ने मुआवजा की वृद्धि के लिए एफ॰ ए॰ सं॰ 37/97 दाखिल किया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने साक्ष्य का पुन:मूल्यांकन करने के पश्चात्, दावेदारों-प्रत्यर्थियों द्वारा दाखिल की गयी अपील अनुज्ञात कर दिया तथा यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार-प्रत्यर्थीगण प्रति डिस्मिल 20,000/- रुपये दर पर मुआवजा के हकदार हैं। परिणामत:, अपीलार्थी-बाजार समिति द्वारा दाखिल की गयी एफ॰ ए॰ सं॰ 65/97 खारिज कर दिया गया है। अतएव, ये लेटर्स पेटेंट अपीलें अपीलार्थी-बाजार-समिति द्वारा होती है।

3. हम अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले, श्री वी॰ पी॰ सिंह, विद्वान अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थीगण की ओर से श्री राजेश कुमार विद्वान अधिवक्ता को सुन चुके हैं।

4. जो तथ्य विवादित नहीं है, वे यही है कि भूमि कोडरमा नगरपालिका के नगरपालिकीय क्षेत्र के अन्दर स्थित है। भूमि अर्जन न्यायाधीश ने भी यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि प्रश्नगत भूमि मुख्य सड़क के पास है और रेलवे स्टेशन, तिलैया बाजार एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यालय के पास है और उसका वाणिज्यिक मूल्य बढ़ा है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने क्रमश: दिनांक 30.4.81 तथा 10.4.81 के दो विक्रय-विलेख (प्रदर्श-2 एवं 2/A) पर विचार कर यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार 20,000/- रुपये प्रति डिस्मिल की दर से मुआवजे के हकदार हैं।

5. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री वी॰ पी॰ सिंह यह जोर देकर यह तर्क देते हैं कि यद्यपि प्रश्नगत भूमि की पास वाली भूमियां प्रदर्श 2 तथा 2/A द्वारा 20,000/- रुपये प्रति डिस्मिल कर दर पर बेची गयी, लेकिन इन विक्रय-विलेखों द्वारा, भूमि के मात्र छोटे-छोटे टुकड़े बेचे गये और इसलिए, वे मुआवजा को अवधारित करने के लिए आधार नहीं हो सकते हैं और न हीं होंगे।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार, ने यह तर्क दिया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने उचित रूप से ही प्रदर्श-2 एवं 2/A पर विश्वास किया और इन दोनों विक्रय-विलेखों के आधार पर मूल्यांकन को अवधारित किया।

7. यह सुस्थापित है कि अर्जित भूमि के बाजार मूल्य को अवधारित करते समय, इसको सही रूप से अवधारित और संदाय किया जाना पड़ता है ताकि न तो अर्जनकर्ता की ओर से अन्यायपूर्ण संवृद्धि हो और न ही स्वामी की ओर से असम्यक् रूप से वंचित किया जाना हो। जो मूल्य इच्छुक विक्रेता युक्तियुक्त रूप से इच्छुक क्रेता से प्राप्त करने की प्रत्याशा करता है तो उसपर अवश्य विश्वास किया जाना चाहिए; जबकि उसी समय, अपनी भूमि को अलग करने की विक्रेता की अनिच्छा तथा इसको खरीदने के लिए क्रेता की अत्यावश्यकता को अवश्य ही ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए। भूमि की संभाव्यता पर उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर भी विचार किया जाना होता है। यह समानरूपेण सुस्थापित है कि मुआवजा को अवधारित करते समय न्यायालय तुलनीय विक्रय-विलेख पर भी विचार लाता है जिसके द्वारा अर्जित भूमि की पास वाली भूमि को अधिसूचना की एक युक्तियुक्त समय के अन्दर विक्रय किया गया है। उसी समय जहां विशाल क्षेत्र अर्जन दर की विषय-वस्तु है जिस पर लघु भूखंडों का विक्रय किया जाता है, को एक सुरक्षित मानदंड नहीं होना कहा जा सकता है।

8. कलक्टर ऑफ लखीमपुर बनाम भुबनचन्द्र दत्ता [(1972)4 एस॰ सी॰ सी॰ 236] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने प्रेक्षण किया:-

> "4. हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने इस तथ्य का अनदेखी किया कि भूखंड जो विक्रय-विलेखों प्रदर्श 1 से 4 तक की विषय-वस्तु थी, तुलनात्मक दृष्टि से छोटे क्षेत्र थे और यह भली भाँति ज्ञात है कि जब एक बड़े क्षेत्र के समान एक विशाल क्षेत्र का जो अर्जन की विषय-वस्तु है, विक्रय किया जाना होता है तब यह संभवत: उसी दर पर मूल्य ला सकता है जिसपर लघु भूखंडो को बेचा जा सकता है। यह महत्वपूर्ण है कि प्रत्यर्थी ने स्वयं 10,000/- रुपये की दर पर मुआवजा का कलक्टर के समक्ष मूल रूप से दावा किया। हम 10,000/- रुपये से उच्चतर एक दर पर मुआवजा का अधिनिर्णय करने वाले उच्च न्यायालय के लिए कोई कारण नहीं देखते हैं जो चार विक्रय-विलेखों द्वारा दिये गये साक्ष्य के भी संगत होंगे। यद्यपि इन विलेखों का औसत मूल्य 15,000/- रुपये प्रतिबीघा आया लेकिन जब इसपर विचार किया गया जैसे पहले से ही प्रेक्षण किया गया है कि वे तुलनात्मक रूप से अधिक छोटे क्षेत्र थे तो वे उस एक अंक पर दर नियत करने के लिए अच्छे साक्ष्य का गठन करेंगे जो मूल रूप से प्रत्यर्थी द्वारा किया गया, अर्थात् 10,000/- रुपये प्रति बीघा। दूसरे शब्दों में यदि विक्रय द्वारा आच्छादित किये गये भूखंड को बड़े पार्सलो में बेचा जाता तो लाये जाने के लिए संभावित मूल्य 10,000/- रुपये प्रति बीघा से अधिक नहीं होता।''

9. पृथ्वी राज तनेजा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं एक अन्य [(1977)1 एस॰ सी॰ सी॰ 684] के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया:-

> ''6. हमारे समक्ष अपील में, अपीलार्थी की ओर से श्री आन्दले ने यह तर्क दिया है कि विवादित भूमि का आधे से अधिक अशोक नगर नगरपालिका की नगरपालिकीय सीमाओं के अन्दर है, जबकि शेष रहने वाली भूमि का भी संक्षिप्त रूप से उन सीमाओं के अन्दर सम्मिलित किये जाने की संभावना थी। आगे यह कथन किया जाता है कि प्रश्नगत भूमि अशोक नगर इसागढ़ रोड़ एवं तहसील इमारत एवं रेलवे स्टेशन के पास स्थित है। विद्वान अधिवक्ता ने भी इस तथ्य को निर्दिष्ट किया है कि विवादित भूमि से लगी हुई भूमि के छोटे भूखंड वर्ष 1958 से 1960 तक वर्ष के दौरान 9 रुपये और 8 रुपये प्रति वर्ग गज की दरों पर बेचा गया था। इस सम्बन्ध में, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने ऊपर की अधिकांशत: परिस्थितियों पर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर आया है कि 1 रुपया प्रति वर्ग गज विवादित भूमि के उचित बाजार मूल्य को प्रदर्शित करता है। उच्च न्यायालय ने भी उन विशेष परिस्थितियों को निर्दिष्ट किया है जिनके अधीन लघु भूखण्डों को बेचा गया और उनका मूल्य नियत किया गया। हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं कि लघु भूखण्डों के लिए संदाय किया गया मूल्य भूमि के एक विशाल क्षेत्र के लिए मुआवजा की रकम का अवधारण करने के लिए एक सुरक्षित मानदंड का प्रावधान

करता है। हम इस संदर्भ में पद्मा उप्पल बनाम स्टेट ऑफ पंजाब के मामले में एक नये निर्णय को निर्दिष्ट करता है जिसमें इस न्यायालय ने यह प्रेक्षण किया कि यह सुस्थापित है कि मुआवजा अवधारित करने में लघु भूखण्डों के लिए लाया गया मूल्य एक अत्यंत विशाल क्षेत्र को आच्छादित करने वाली भूमियों पर लागू नहीं किया जा सकता है और यह कि भूखण्ड का एक बड़ा क्षेत्र संभवत उसी दर पर मूल्य पा सकता है जिस पर लघु भूखंड बेचे जाते हैं।''

10. वर्तमान मामले में, स्वीकार्यरूपेण, अर्जित भूमि का क्षेत्रफल दावेदार-प्रत्यर्थी द्वारा स्वामित्व प्राप्त 3.97 एकड़ है। भूमि का मूल्य प्रदर्श-2 तथा प्रदर्श 2/A के आधार पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अवधारित किया गया है। प्रदर्श 2 द्वारा, मात्र 500 वर्ग फीट भूमि 20,000/- रुपये प्रति डेसीमल की दर पर बेची गयी थी। उसी तरह, प्रदर्श 2/A द्वारा, मात्र 500 वर्ग फीट भूमि 20,000/- रुपये प्रति डेसीमल की दर पर बेची गयी थी। यह निर्विवादित है कि प्रदर्श-2 एवं प्रदर्श 2/A द्वारा बेची गयी भूमियां प्रश्नगत भूमि से लगी हुई भूमियां थी। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित निर्णयाधार के प्रकाश में, हमारे दृष्टिकोण से, प्रदर्श 2 एवं प्रदर्श 2/A 3.97 एकड़ के क्षेत्रफल की मापमान रखने वाली भूमि के एक वृहद् खण्ड के मूल्यांकन को अवधारित करने के लिए मात्र मानदंड या यार्डस्टिक नहीं हो सकता है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया है।

11. आत्मा सिंह बनाम हरियाणा राज्य [(2008)2 एस॰ सी॰ 568] के मामले में, मुद्दे पर चर्चा करने के पश्चात् सर्वोच्च न्यायालय ने सम्परीक्षण किया:-

"14. इस सिद्धान्त के लिए प्रस्तुत किये गये कारण कि लघु भूखण्डों के लिए लाया गया मूल्य जमीन के बड़े भूखण्ड के मूल्यांकन के लिए सुरक्षित आधार की विरचना नहीं कर सकता है, ऊपर निर्दिष्ट किये गये मामलो के अनुसार, ये हैं कि सारभूत क्षेत्र का प्रयोग स्थलों के विकास के लिए किया जा रहा है जैसे सड़को, नालियों, सीवरो, जल एवं विद्युत लाइनो तथा अन्य नागरिक सुख सुविधाओं का बिछाया जाना। खर्चे भी इन्हीं आधारभूत सुविधाएं प्रदान करने के लिए उपगत किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सड़को की परिकल्पना करने, सीवरो एवं नालियाँ बनाने तथा क्रेताओं की प्रतीक्षा करने में पर्याप्त समय लेता है। इसी दौरान विनिधान किये गये धन अवरूद्ध हो जाता है और समय की एक पर्याप्त कालावधि के पश्चात् विनिधान पर लाभ प्रवाहित होता है। भूमि के क्षेत्रफल को पूरा करने के लिए जिसका प्रयोग नागरिक सुख-सुविधाएं प्रदान करने तथा उस कालावधि तक प्रतीक्षा करने में किया जाता है जिसके दौरान उद्यमी की पूंजी की तालाबन्दी हो जाती है, प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करने वाली 20% से आगे एक कटौती की जाती है।

15. विचार किये जाने योग्य प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामले में वे कारक अस्तित्व रखते हैं जो लघु भूखण्डों के दृष्टान्त प्रस्तुत कर्ताओं द्वारा प्रदर्शित मूल्य से भत्ते के रूप में एक कटौती का समर्थन करते हैं जिन्हें पक्षकारों द्वारा दाखिल किया गया है। भूमि का अर्जन एक आवासीय कॉलोनी या सरकारी कार्यालय या एक संस्था के लिए अर्जित नहीं किया गया है। भूमि का अर्जन एक चीनी कारखाना स्थापित करने के लिए अर्जित की गयी है। कारखाना एक वर्ष में कई करोड़ मूल्य के माल का उत्पादन करेगा। चीनी उत्पादन करने के अलावे चीनी कारखाना उसी प्रक्रिया में अनेक उप-उत्पाद को उत्पादित करता है। अप्रधान-उत्पाद में से एक शीरा है, जो विशाल मात्रा में पैदा किया जाता है। पूर्व में, इसकी कोई उपयोगिता नहीं होती थी और प्रयुक्त इसका निस्तारण एक बड़ी समस्या बन गया था। परन्तु अब शीरा का प्रयोग अल्कोहल तथा इथनॉल के उत्पादन के लिए किया जाता है जो पर्याप्त मात्रा में राजस्व प्रदान करता है। एक अन्य अप्रधान निर्माण निगासी का अब प्रयोग बिजली के उत्पादन के लिए किया जाता है प्रेस-मड् का प्रयोग खाद में किया जाता है। अतएव, एक चीनी कारखाने से लाभ सारभूत होता है। के सिवाय, एक वर्ष तक परिसीमित नहीं किया जाता है अपितु प्रत्येक वर्ष तब तक प्रोद्भूत होगा जबतक कारखाना चलेगा। एक आवासीय बोर्ड कारोबार लाइनो पर नहीं चलता है। एक बार भूखण्डों की भूमि के अर्जन के पश्चात् तथा जनता को बेचे जाने के पश्चात् परिकल्पना की जाती है, तो भविष्य में धनोपार्जन करने का कोई कार्य क्षेत्र नहीं होता है। अर्जित भूमि पर स्थापित उद्योग, अगर दक्षतापूर्वक चलता है, धनोपार्जन करता है या प्रत्येक वर्ष लाभ कमाता है। आवासीय

कॉलोनी, या कार्यालय, या संस्था के प्रयोजनार्थ हेतु अर्जित भूमि से लाभ को दूरस्थ तौर पर भी तुलना उस भूमि से नहीं की जा सकती है जिसका अर्जन एक कारखाना या उद्योग को स्थापित करने के प्रयोजनार्थ हेतु किया गया है। इन सब बातों के होते हुए भी कारखाना भूमि के बिना स्थापित नहीं किया जा सकता है और यदि ऐसी भूमि सारभूत लाभ प्रदान कर रहा है तो दृष्टान्त प्रस्तुतकर्ताओं द्वारा प्रदर्शित मूल्य से भी कोई कटौती करने का कोई औचित्य नहीं है यदि वे लघु भूखंडो में से हो। यह संभव है कि अर्जित भूमि के एक भाग का प्रयोग कारखाने में कार्यरत कर्मचारीवृन्द के लिए आवासीय कॉलोनी के निर्माण के लिए किया जा सकता था। इतना होते हुए भी, जहां अर्जित की गयी भूमि का शेष रहने वाला भाग अच्छा लाभ देने वाले माल के उत्पादन में योगदान दे रहा है, तो लघु भूखंडो का उदाहरण प्रस्तुतकर्ताओं द्वारा प्रदर्शित भूमि के मूल्य में कटौती करना उचित नहीं होगा क्योंकि इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों में इस प्रकार समनुदेशित किये गये कार्य करने हेतु कारण विचाराधीन मामले में लागू नहीं होते हैं।''

12. श्री वी॰ पी॰ सिंह ने आगे यह तर्क दिया कि प्रश्नगत भूमि कोडरमा रेलवे स्टेशन से बहुत बड़ी दूरी पर है और वाणिज्यिक क्षेत्र में स्थित नहीं है। यह बाजार स्थल से लगभग एक कि॰ मी॰ की दूरी पर स्थित है और रेलवे स्टेशन, स्कूल, बैंक, सिनेमा हॉल, इत्यादि से बहुत दूर पर स्थित है।

13. जैसा कि ऊपर उल्लिखित किया गया है, दावेदारों ने अपने इस मामले के समर्थन में, दो विक्रय-विलेख, प्रदर्श 2 एवं प्रदर्श 2/A दाखिल किये कि पास वाली भूमि का विक्रय 20,000/- रुपये प्रति डेसीमल की दर में बेची गयी थी। पूर्वोक्त साक्ष्य के विरूद्ध, पांच विक्रय-विलेखों को भी अपीलार्थी द्वारा अभिलेख पर लाया गया है जो प्रदर्श A, A/1, A/2, A/3 एवं A/4 है। विक्रय-विलेख दिनांकित 8.1.1982 (प्रदर्श-A) द्वारा, 3 डेसीमल भूमि का विक्रय 750/- रुपये प्रति डेसीमल की दर पर किया गया; विक्रय-विलेख दिनांकित 12.1.1982 (प्रदर्श A/1) द्वारा, 2 डेसीमल भूमि को 250/- रुपये प्रति डेसीमल की दर से बेचा गया। इसके समरूप ही, विक्रय-विलेख दिनांकित 6.2.1982 (प्रदर्श A/2) द्वारा, 2 डेसीमल भूमि का विक्रय 500/- रुपये प्रति डेसीमल की दर पर किया गया। प्रदर्श-B आदेश पत्र की सत्य प्रति है जो प्रदर्शित करती है कि भूमि अर्जन अधिकारी ने 50,000/- रुपये प्रति एकड़ की दर अर्थात् 500/- रुपये प्रति डेसीमल की दर पर अर्जित की गयी भूमि के मुआवजे का भुगतान करने के लिए सिफारिश किया।

14. प्रश्न, अतएव, जिस पर वर्तमान मामले में विचार करने की आवश्यकता पड़ती है, इस बारे में भूमि का युक्तियुक्त मूल्यांकन क्या होना चाहिए। जैसे ऊपर सम्प्रेक्ष्ण किया गया है, विक्रय विलेख जिसके द्वारा भूमि के एक छोटे खंड का विक्रय किया गया, उस समय मूल्यांकन का अवधारण करने हेतु प्रयोजनार्थ निश्चयात्मक साक्ष्य नहीं हो सकता है जब अन्य साक्ष्य अभिलेख पर उपलब्ध हो। यह सुस्थापित है कि मूल्यांकन अवधारित करने के कोई ठीक-ठाक या विनिर्दिष्ट मानदंड नहीं हो सकता है। जिसके द्वारा किसी भूमि की कोई अधिक कीमती होने की पूर्वकल्पना की जा सकती है। उसी समय, इस बात को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जब किसी व्यक्ति को अनिवार्य अर्जन द्वारा उसकी भूमि से वंचित कर दिया जाता है, तब उसको भूमि का मूल्य अवधारित करके मुआवजे का अवश्य संदाय करना चाहिए, लेकिन मूल्यांकन को निश्चित रूप से अपरिमित, अत्यधिक तथा कल्पना से परे नहीं होना चाहिए। वर्तमान मामले में, अपने चेतन विचार देने तथा विवेक का प्रयोग करने के पश्चात्, हमारा यह विचार है कि किसी भी दशा में, प्रश्नगत भूमि का मूल्य 10,000/- रुपये प्रति डेसीमल से अधिक नहीं होना चाहिए। 20000/- रुपये प्रति डेसीमल की दर पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अवधारित अर्जित की गयी भूमि का मूल्यांकन अत्यधिक एवं अपरिमित है।

15. अतएव, ये अपीलें अनुज्ञात की जाती है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय संपूर्ण अर्जित भूमियों के लिए 10,000/- रुपये (दस हजार रुपये) प्रति डेसीमल तक मुआवजा की मात्रा घटाकर उपांतरित की जाती है। किन्तु, मामले के तथ्यों में, खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

ekuuh; vej'oj lgk; ,o vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efrx.k

जगदेव महतो

बनाम

आयुक्त, उत्तरी छोटानागपुर प्रमण्डल, हजारीबाग एवं अन्य

L.P.A. No. 425 वर्ष 2006. 10 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

W.P. (C) No. 881 वर्ष 2002 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 9.8.2006 के निर्णय के विरूद्ध।

(क) नामान्तरण विधि–नामान्तरण कार्यवाही–राजस्व प्राधिकारीगण के समक्ष नामान्तरण कार्यवाही किसी न्यायालय की न्यायिक कार्यवाही नहीं हैं एवं यह अचल संपत्तियों के अभिधान का प्रश्न विनिश्चित नहीं कर सकता है। (पैरा 17)

(ख) बिहार काश्तकारी अभिधृति (अभिलेखों का अनुरक्षण) अधिनियम, 1973—धारा 3—जमाबंदी–जमाबन्दी का रद्दकरण–जमाबन्दी को कर्मचारी द्वारा किसी सक्षम प्राधिकारी के किसी आदेश के बिना कर्मचारी द्वारा खोला गया था–अभिनिर्धारित, जमाबन्दी का सृजन एक ऐसे व्यक्ति द्वारा पारित किया गया जो विधि के अधीन प्राधिकृत नहीं था एवं इस प्रकार यह अधिकारिता विहीन है। (पैरा 21)

(ग) नामान्तरण विधि–जमाबन्दी–राजस्व अभिलेख या जमाबन्दी में प्रविष्टियाँ मात्र 'राजकोषीय प्रयोजन' के लिए है–ऐसी प्रविष्टियों के आधार पर कोई स्वामित्व प्रदान नहीं किया गया है–संपति का अभिधान एक सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा ही निर्णित किया जा सकता है। (पैरा 25)

निर्णयज विधि.–1993(2) PLJR 255; (2007)6 SCC 186; 2004(1) JLJR 718; (2007) 2 SCC 355; 2001 (1) JLJR 75; 2003(3) JLJR 793; 2004(1) JLJR 718; 2005(1) JCR 329(Jhr.); 2005(1) JCR 329; (2003)2 SCC 464; 1993(2) PLJR 118; (2004)1 SCC 551; 1987 PLJR 1037—Discussed.

अधिवक्तागण.–M/s Indrajit Sinha, V.K. Prasad, For the Appellant; Mr. Ram Prakash Singh, For the State; M/s Anil Kumar Sinha, Rahul Kumar, For the Respondent No.6; M/s Manjul Prasad, Praveen Kumar, D.K. Pathak, For the Respondent No.8 .

अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति.–इस अपील में, अपीलार्थी ने W.P. (C) No. 881 वर्ष 2002 में पारित दिनांक 9.8.2006 के आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश, उन आदेशों में हस्तक्षेप किये बिना रिट याचिका निस्तारित किया जिसे रिट याचिका में चुनौती दी गयी थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने **"1993(2) PLJR 255** में प्रकाशित **सीताराम चौबे बनाम बिहार राज्य**'' के मामले में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करके यह अभिनिर्धारित किया की जमाबन्दी न तो किसी एक या अन्य के पक्ष में कोई अधिकार या अभिधान सृजित करता है और न ही जमाबन्दी का रद्दकरण वास्तविक मालिक के अधिकार एवं अभिधान को निर्वापित करता है, वास्तविक मालिक के अधिकार एवं अभिधान प्रभावित नहीं करेगा एवं, यह भी कि तथ्य के विवादित प्रश्न को रिट अधिकारिता में विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। यह भी सम्प्रेक्षित किया गया था कि व्यथित व्यक्ति समुचित अनुतोष हेतु सक्षम अधिकारिता के न्यायालय में समावेदन कर सकता है।

2. संक्षेप में तथ्य यह है कि अपीलार्थी/रिट याची ने भूमि सुधार उपायुक्त, रामगढ़ द्वारा पारित दिनांक 8.7.2001 तथा अपर समाहर्त्ता, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 24.4.2001 के आदेश तथा आयुक्त, उत्तरी छोटानागपुर प्रमण्डल, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 18.12.2001 के आदेश को चुनौती

देते हुए इस न्यायालय के समक्ष-उपरोक्त W.P. (C) No. 881 वर्ष 2002 दाखिल किया जिसके द्वारा, गाँव मुर्रमकलाँ में, खाता सं॰ 69 के अधीन 1.04 एकड़ माप के प्लॉट सं॰ 122 के सम्बन्ध में याची के नाम पर चल रहे जमाबन्दी को रद्द करने का आदेश दिया था एवं जमाबन्दी को मूल प्रत्यर्थी सं॰ 5 बाबुलाल महतो के नाम पर खोले जाने का आदेश दिया गया था, जिसकी अब मृत्यु हो गयी है।

3. रिट याची/अपीलार्थी का मामला यह है कि मौजा मुर्रमकलाँ के खाता 69 एवं 52 की भूमियों को अभिलिखित अभिधारीगण, अर्थात् साधु महतो एवं भैरो महतो के विरूद्ध एक लगान डिक्री के निष्पादन में निलामी विक्रय किया गया था एवं यह पूर्व भू-स्वामी उमरांव सिंह एवं अन्यों द्वारा खरीदा गया था। तत्पश्चात्, अपीलार्थी के दादा, अर्थात्, गुनाराम कोईरी को भू-स्वामी उमरांव सिंह एवं अन्यों द्वारा मौजा मुर्रमकलाँ प्लॉट सं॰ 122, 183, 184, 285 एवं 286 से बने खाता सं॰ 69 के अधीन जिसका कुल क्षेत्रफल 2.01 एकड़ था एवं 1.76 एकड़ माप वाले प्लॉट सं॰ 162 से बने खाता सं॰ 52 का व्यवस्थापन विभिन्न आधार पर 13.11.1919 को मंजूर किया गया था।

ऐसे व्यवस्थापन के अनुसरण में, अपीलार्थी के दादा ने, जो अपने पक्ष में बन्दोबस्त किये गये भूमियों के रैयत बन गये थे, भू-स्वामी को लगान का भुगतान किया। तत्पश्चात्, एक निलामी विक्रय के माध्यम से, छोटानागपुर बैंककारी संगठन ने भू-स्वामी के स्वत्वधारी अधिकारों को खरीदा था एवं भू-स्वामी बन गया था एवं जहाँ तक अपीलार्थी के दादा का सम्बन्ध है एवं इस प्रकार, उससे लगान वसूल किया एवं जिसकी प्राप्ति पर गुना राम कोईरी के पक्ष में लगान रसीद निष्पादित किया।

बिहार भूमि सुधार अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात्, छोटानागपुर बैंककारी संगठन ने गुना राम कोइरी को अपना रैयत दर्शाते हुए बिहार भूमि सुधार अधिनियम के अधीन एक विवरणी दाखिल किया था। भूमियों को राज्य सरकार में निहित होने के पश्चात्, गुना राम कोईरी के पक्ष में एक जमाबन्दी सृजित किया गया था एवं उसका नाम रजिस्टर-II में प्रविष्ट किया गया था एवं लगान तत्कालीन बिहार राज्य द्वारा उक्त रैयत से वसूल किया गया था।

वर्ष 1956-57 में, 69 डेसीमल माप वाले प्लॉट सं॰ 285 एवं 286, खाता सं॰ 69, रामगढ़ प्रखण्ड के निर्माण हेतु अर्जित किया गया था। अपने रैयती हितों का प्रयोग करके स्व॰ गुना राम कोईरी के उत्तराधिकारी ने भी दिनांक 11.2.1965 के एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख के माध्यम से किसी इंदर सिंह एवं अन्यों के खाता सं॰ 69 की प्लॉट सं॰ 182 एवं 183 को बेच दी थी, उनलोगो ने अपना नाम नामान्तरित कराया एवं रजिस्टर-II में प्रविष्ट कराया।

वर्ष 1990 में किसी समय, सर्किल अमीन की एक रिपोर्ट के आधार पर, एक कार्यवाही जो प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 था, के सम्बन्ध में प्रारम्भ किया गया था जिसमें विवादित भूमि शामिल था। उक्त कार्यवाही में मूल प्रत्यर्थी सं॰ 5 अर्थात् बाबुलाल महतो (अब मृत) को नोटिसें निर्गत की गयी थी जिसके अनुसरण में वह उपस्थित हुआ एवं अपनी आपत्ति दाखिल की एवं इसी प्रकार, अपीलार्थी भी उपस्थित हुआ एवं मामले को अन्य बातों के साथ-साथ प्रश्नगत भूमि के सम्बन्ध में भी प्रतिवाद किया गया था।

अंचल अधिकारी ने दिनांक 6.10.1990 के एक आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी के नाम पर खोले गये एवं चल रहे जमाबन्दी पर किसी पुर्नविचारण की आवश्यकता नहीं थी एवं इस प्रकार, आदेश दिया कि यह जारी रहना चाहिए एवं परिणामतः, मामले को भूमि-सुधार उपायुक्त के समक्ष रखे जाने का निर्देश दिया, जिन्होंने दिनांक 12.3.1991 के आदेश के निबन्धनो में प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 की कार्यवाहियों को समाप्त किया। उपरोक्त प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 में पारित आदेशों को कभी भी चुनौती नहीं दी गयी थी एवं, इस प्रकार, इसने अन्तिमता प्राप्त कर ली थी।

लगभग 10 वर्ष बीत जाने के उपरान्त, मूल प्रत्यर्थी सं॰ 5 बाबूलाल महतो (अब मृत) ने अंचल अधिकारी, रामगढ़ के समक्ष एतस्मिनपूर्व निर्दिष्ट विवादित भूमियों के सम्बन्ध में लगान के निर्धारण की

प्रार्थना करते हुए 25.5.2000 को एक आवेदन दाखिल किया, जिसे लगान निर्धारण केस सं॰ 3/2000-01 के तौर पर दर्ज किया गया था।

नोटिस दिये जाने पर, अपीलार्थी उपस्थित हुआ एवं इसकी पुनरावृत्ति करते हुए अपना कारण-पृच्छा दाखिल किया कि उसने किस प्रकार से विवादित भूमियों पर अपना अधिकार एवं अभिधान अर्जित किया है।

4. अपीलार्थी के अनुसार, अंचल अधिकारी ने प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 में पारित आदेशों की अपिलार्थी के आपत्ति पर इसके उचित परिप्रेक्ष्य में विचार किये बिना दिनांक 26.6.2000 को आदेश के माध्यम से अपीलार्थी के नाम पर चल रहे जमाबन्दी के रद्दकरण का सिफारिश किया, अन्य बातों के साथ साथ, इस आधार पर किया कि अपीलार्थी के नाम पर खोला गया एवं चल रहा जमाबन्दी संदेहास्पद था। अंचल अधिकारी ने यह भी निर्देश दिया कि मूल प्रत्यर्थी सं॰ 5 के नाम पर जमाबन्दी खोला जाय एवं लगान से वसूल किया जाये एवं परिणामस्वरूप इसे भूमि सुधार उप-समाहर्त्ता को अग्रसारित किया। भूमि सुधार उप-समाहर्त्ता, हजारीबाग ने अंचल अधिकारी से अभिलेखों की प्राप्ति पर, दिनांक 8.7.2000 के एक आदेश के माध्यम से, अपीलार्थी के जमाबन्दी के रद्दकरण तथा रजिस्टर-II में मूल प्रत्यर्थी सं॰ 5 का नाम प्रविष्ट करने का आदेश दिया।

5. दिनांक 8.7.2000 के उपरोक्त आदेश से असंतुष्ट एवं असहमत होकर, अपीलार्थी ने अपर समाहर्त्ता, हजारीबाग के समक्ष एक अपील दाखिल किया, जो प्रकीर्ण केस सं॰ 12 वर्ष 2000 था, जिसे दिनांक 24.4.2001 के आदेश के निबन्धनों में खारिज किया गया था।

6. दिनांक 24.4.2001 के उपरोक्त आदेश के विरूद्ध, आयुक्त, उत्तरी छोटानागपुर प्रमण्डल, हजारीबाग के समक्ष एक पुनरीक्षण दाखिल किया गया था जो जमाबन्दी पुनरीक्षण सं॰ 48/2001 था जिसे भी दिनांक 18.12.2001 के आदेश द्वारा खारिज किया गया था।

7. तत्पश्चात्, रिट याची/अपीलार्थी ने अंचल अधिकारी, भूमि सुधार उप-समाहर्त्ता एवं आयुक्त द्वारा पारित उपरोक्त आदेश को W.P.(C) 881 वर्ष 2002 दाखिल करके चुनौती दी। जैसा कि पहले ही नोटिस किया गया है कि रिट याचिका को दिनांक 9.8.2006 के आक्षेपित आदेश द्वारा निस्तारित किया गया था, जो रिट याची की पहल पर इस अपील में चुनौती के अधीन है।

8. यहाँ यह वर्णन करना प्रासंगिक है कि रिट याचिका के लम्बित रहने के दौरान मूल प्रत्यर्थी सं॰ 5-बाबुलाल महतो की मृत्यु हो गयी एवं तत्पश्चात्, वर्तमान प्रत्यर्थी सं॰ 5 से 8 को उसके स्थान पर प्रतिस्थापित किया गया था जो विवादित भूमि के अन्तरिती हुआ करते थे।

9. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री इन्द्रजीत सिन्हा ने सर्वप्रथम यह निवेदन किया कि लगान निर्धारण केस सं॰ 3/2000-01 पूर्व न्याय के सिद्धान्त द्वारा वर्जित था एवं इस प्रकार, यह पोषणीय नहीं था। अपने तर्कों का विस्तार करते हुए, उन्होंने निवेदन किया कि चूँकि यह मुद्दा कि अभिधारी के नाम पर जमाबन्दी जारी रहने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए, पहले ही प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 में विनिश्चत हो चुका था, इसलिए, इसे इस तथ्य के दृष्टि में किसी पश्चातवर्ती कार्यवाही में पुनर्विचारित एवं पुनर्विवाद करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती थी कि बाबुलाल महतो पूर्ववर्ती मामले, जो प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 था, में उपस्थित हुआ था एवं इसलिए, लगान के निर्धारण के लिए उसके द्वारा दाखिल आवेदन पोषणीय नहीं था।

श्री इंद्रजीत सिन्हा ने आगे प्रतिपाद किया कि यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी एवं उसके हितबद्ध पूर्वाधिकारियों के पक्ष में जमाबन्दी बिहार भूमि सुधार अधिनियम के अधीन भूमि के तत्कालीन बिहार राज्य में निहित होने के समय से चल रहा था एवं इसलिए, इस लम्बी स्थायी जमाबन्दी के

सम्बन्धित प्राधिकारीगण द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता था। इस सम्बन्ध में, विद्वान अधिवक्ता द्वारा **2001(1) JLJR 75, 2003(3) JLJR 793, 2004(1) JLJR 718 एवं 2005(1) JCR 329** में प्रकाशित मामलों पर भरोसा किया है।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं॰ 6 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री अनिल कुमार सिन्हा ने निवेदन किया कि अपीलार्थीगण का तर्क है कि प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 में पारित आदेश अपनी अन्तिमता प्राप्त कर ली है क्योंकि इसे कभी भी चुनौती नहीं दी गयी थी एवं इस प्रकार, कार्यवाही पूर्व न्याय के सिद्धांतों द्वारा वर्जित था, टिकाऊ एवं सत्य नहीं है। वास्तव में, प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 की विषय-वस्तु प्लॉट सं॰ 183 एवं 182 धारित खाता सं॰ 69 की भूमियों के भाग के सम्बन्ध में जिसका क्षेत्रफल क्रमशः 0.31 एवं 0.11 एकड़ था एवं उस मामले में सम्पूर्ण विवाद यह था कि खाता सं॰ 69 एवं 94 के तीनो प्लॉटो के सम्बन्ध में विद्यमान प्रविष्टि शुद्ध रूप से की गयी थी अथवा नहीं एवं समय के किसी भी बिन्दु पर, प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 खाता सं॰ 52 की भूमियों के सम्बन्ध में प्रारम्भ की गयी थी।

उन्होंने यह भी निवेदन किया कि प्रकीर्ण केस सं॰ 2/1990-91 किसी व्यक्ति द्वारा किये गये किसी आवेदन के आधार पर प्रारम्भ नहीं की गयी थी। उक्त कार्यवाही विद्यमान जमाबन्दी के रद्दकरण के लिए नहीं था एवं न ही यह जमाबन्दी के सृजन हेतु था बल्कि यह स्वयं कर्मचारी की पहल पर प्रारम्भ की गयी एक कार्यवाही थी एवं उक्त कार्यवाही में पारित आदेश अपील योग्य नहीं था। आगे यह प्रतिवाद किया गया था कि मूल प्रत्यर्थी सं॰ 5, बाबुलाल महतो ने लगान निर्धारण केस सं॰ 3/2000-01के माध्यम से लगान के निर्धारण हेतु अंचल अधिकारी, रामगढ़ के समक्ष एक आवेदन दाखिल किया जिसमें रिट याची उपस्थित हुआ एवं अपना कारण पृच्छा दाखिल किया एवं उस कार्यवाही में, उसने पूर्व न्याय का अभिवाक् नहीं उठाया। इसलिए, पूर्व न्याय का अभिवाक् इस प्रक्रम पर अपीलार्थी द्वारा नहीं उठाया जा सकता है जैसा कि **(2004)1 SCC 551** में प्रकाशित **''वी॰ राजेश्वरी''** के मामले में अभिनिर्धारित किया गया है।

यह भी निवेदन किया गया है कि चूँकि तीनों राजस्व प्राधिकारियों द्वारा तथ्यों के समान निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं एवं इसलिए, तथ्यों के उन निष्कर्षो को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट अधिकारिता का प्रयोग करके बाधित नहीं किया था। उनके अनुसार, मूल प्रत्यर्थी सं॰ 5 बाबुलाल महतो ने प्रत्यर्थी सं॰ 6 के पक्ष में रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख का निष्पादन किया जिसके नाम पर भी जमाबन्दी खोला गया है।

11. विद्वान वरीय अधिवक्ता के अनुसार, जमाबन्दी का न्याय निर्णयन करते समय, प्राधिकारीगण ने न्यायिककल्प अर्द्ध न्यायिक कृत्य का प्रयोग नहीं किया। प्राधिकारीगण को नामान्तरण कार्यवाही में आदेश पारित करते समय न्यायालय के तौर पर परिभाषित नहीं किया जा सकता है एवं न ही उनके समक्ष रखी गयी कार्यवाहियाँ न्यायिक कार्यवाहियाँ है जैसा कि **1987 PLJR 1037** में रिपोर्ट किये गये **दीप्ता तिवारी एवं अन्य** के मामले में एवं **1993(2) PLJR 118** में प्रकाशित **शान्ति देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले में अभिनिर्धारित किया गया है।

मामले की इस दृष्टि में सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 11 किसी न्यायालय से सम्बन्धित कार्यवाही के साथ आवेदन, वर्तमान मामले में लागू नहीं किया जा सकता है एवं यह एक वर्जन के तौर पर प्रवृत्त नहीं होगा, उन्होंने निवेदन किया कि **(2003)2 SCC 464** में रिपोर्ट किये गए **महिला बजरंगी बनाम बदरी बाई** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि राजस्व प्राधिकारियों के समक्ष नामान्तरण कार्यवाहियाँ न्यायिक कार्यवाही नहीं हैं।

12. एतस्मिन्पूर्व कथित तथ्यों एवं क्रमिक पक्षकारों द्वारा उठाये गए बिन्दुओं की दृष्टि में, जो पूर्वगामी अनुच्छेदों में नोटिस किए गए हैं, हम पक्षकारों द्वारा उठाये गए बिन्दु पर विधि की परीक्षा करेंगे।

13. जहाँ तक की पूर्व न्याय के प्रथम प्रश्न का सम्बन्ध है, जैसा कि पक्षकारों द्वारा उठाया गया है, हम सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के प्रावधानों की परीक्षा करेंगे, जो पूर्व-न्याय के बारे में कहता है, जो निम्नरूप से पठित है:-

"11. **पूर्व न्याय.**–कोई भी न्यायालय किसी ऐसे वाद या मुद्दा का विचारण नहीं करेगा जिसमें प्रत्यक्षत: और सारत: मामला उसी हक के अधीन मुकदमा करने वाले उन्हीं पक्षकारों के बीच में जिनसे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन या उनमें से कोई दावा करतें है, किसी पूर्ववर्ती वाद में भी ऐसे न्यायालय में प्रत्यक्षत: और सारत: विवाद्य रहा है, जो ऐसे पश्चात्वर्ती वाद या उस वाद का, जिसमें, ऐसा विवाद्यक वाद में उठाया गया है, विचारण करने के लिए सक्षम था और ऐसे न्यायालय द्वारा सुना जा चुका है और अन्तिम रूप से विनिश्चत किया जा चुका है।''

14. किसी विशिष्ट मामले में C.P.C. की धारा 11 लागू करने के क्रम में, निम्नलिखित शर्त्तों की पूर्त्ति होना अपेक्षित है:-

(i) मुद्दागत मामले की पहचान।

(ii) पक्षकार की पहचान।

(iii) पश्चातवर्ती वाद में पक्षकारगण, पूर्ववर्ती वाद में उसी अभिधान के अधीन अनिवार्य रूप से मुकदमा लड़ा हो।

(iv) न्यायालय, जिसने पूर्ववर्ती वाद का निर्णय किया, को पश्चातवर्ती वाद को विचारित करने में अनिवार्यत: सक्षम होना चाहिए या उस वाद को जिसमें मुद्दे को तत्पश्चात् उठाया गया है।

(v) पश्चात्वर्ती वाद में मुद्दागत विषय पूर्ववर्ती वाद में प्रत्यक्षत: एवं सारत: सुना जाना चाहिए एवं अंतत: निर्णित होना चाहिए।

15. उक्त शर्त्तों के अतिरिक्त, सर्वप्रथम शर्त्त यह है कि वाद या विषयगत मुद्दा किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विनिश्चित होना चाहिए।

16. वर्तमान मामले में, स्वीकार्यत:, जमाबन्दी का आदेश एक नामान्तरण कार्यवाही में पारित किया गया है। एक नामान्तरण कार्यवाही राजस्व प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित किया जाता है।

17. सर्वोच्च न्यायालय ने **(2003)2 SCC 464** में रिपोर्ट किए गए ''**महिला बजरंगी बनाम बदरी बाई**'' के मामले में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि राजस्व प्राधिकारीगण के समक्ष नामान्तरण कार्यवाही न्यायालय में न्यायिक कार्यवाही नहीं है एवं यह अचल संपत्ति पर अभिधान के प्रश्न को विनिश्चित नहीं करता है।

18. 1993(2) PLJR 118 में रिपोर्ट किए गए **शान्ति देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले में पटना उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय पर भरोसा करके, यह अभिनिर्धारित किया कि नामांतरण कार्यवाहियाँ प्रशासनिक कार्यवाही है एवं न कि न्यायिक कार्यवाही एवं, इसलिए, म्युटेशन मैनुअल के प्रावधानों के अधीन कार्य कर रहे अधिकारीगण न्यायालय नहीं है एवं न ही उनके समक्ष की कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही है।

19. चूँकि राजस्व प्राधिकारीगण को एक नामान्तरण कार्यवाही का निर्णय करते समय एक विधि का न्यायालय नहीं होना एवं उनके समक्ष नामान्तरण कार्यवाही को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक कार्यवाही अभिनिर्धारित नहीं किया है, इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 को एक ऐसी कार्यवाही में लागू नहीं किया जा सकता है जो कि एक न्यायिक कार्यवाही नहीं है एवं यह किसी राजस्व प्राधिकारी द्वारा पारित किसी आदेश में लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश विधि के न्यायालय द्वारा पारित आदेश नहीं है। इसलिए, CPC की धारा 11, अर्थात् पूर्व न्याय के प्रावधान ऐसी कार्यवाही में लागू नहीं होंगे।

20. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री सिन्हा का द्वितीय निवेदन है कि अपीलार्थी के नाम पर लम्बे समय से चल रहे एवं स्थायी जमाबन्दी को **"2001(1) JLJR 75** में रिपोर्ट किये गये **दिलीप कुमार महतो बनाम बिहार राज्य एवं अन्य'', "2003(3) JLJR 793**

में रिपोर्ट किये गए **श्रीमती गुलबसी देवी एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य'', "2004(1) JLJR 718** में रिपोर्ट किये **जीतन महतो एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य एवं 5 अन्य''** के मामले में इस न्यायालय की एकल पीठ एवं **"2005(1) JCR 329 (Jhr.)** में प्रकाशित **झारखण्ड राज्य बनाम मिथिला सहकारी गृह निर्माण सहयोग समिति एवं अन्य''** के मामले में खण्ड पीठ के निर्णय की दृष्टि में रद्द नहीं किया जा सकता है।

2001(1) JLJR 75 में रिपोर्ट किये गए मामले में, इस न्यायालय की एकल पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि किसी विशिष्ट व्यक्ति के नाम पर कई वर्षों से चल रहे जमाबन्दी को एक संक्षिप्त कार्यवाही में दावेदार की पहल पर रद्द नहीं किया जा सकता है। दावेदार के लिए उचित मार्ग उचित अनुतोष के लिए सक्षम अधिकारिता के सिविल न्यायालय में समावेदन करना है।

2003(3) JLJR 793 में रिपोर्ट किये गए मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब एक बार किसी व्यक्ति के पक्ष में जमाबन्दी खोला है एवं वह कई वर्षों तक जारी रहा तो यह बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 4(h) के अधीन समाहर्त्ता द्वारा एक कार्यवाही प्रारम्भ करके ही रद्द किया जा सकता है। **2004(1) JLJR 718** में रिपोर्ट किये मामले में यही दृष्टिकोण अपनाया गया था।

"2005(1) JCR 329 (Jhr.) में रिपोर्ट किये गए **झारखण्ड राज्य बनाम मिथिला सहकारी गृह निर्माण सहयोग समिति एवं अन्य''** के मामले में दिया गया निर्णय जिसपर अपीलार्थी द्वारा विश्वास व्यक्त किया गया है, बिल्कुल उसी बिन्दु पर नहीं है। उक्त निर्णय से यह प्रतीत होता है कि खण्ड पीठ ऐसे मामले पर विचार कर रहा था जिसमें जमाबन्दी को विशिष्ट प्लॉट के सम्पूर्ण भूमि के सम्बन्ध में नहीं बल्कि इसके एक भाग के सम्बन्ध में रद्द किया गया था और वह भी प्रभावित व्यक्तियों को नोटिस दिये बिना।

21. वर्तमान मामले में राजस्व प्राधिकारीगण द्वारा पारित आदेशों से, जिसे रिट याचिका में रिट याची द्वारा चुनौती दी गयी थी, हम यह पाते है कि वास्तव में, जमाबन्दी को पूर्व में एक कर्मचारी द्वारा दी गयी थी एवं वह भी किसी सक्षम प्राधिकारी के किसी आदेश के बिना। आयुक्त ने अपने आदेश में यह निष्कर्ष दिया है कि रिट याची के दावा रैयती भूमि के सम्बन्ध में सादा 'हुकूमनामा' पर आधारित था जिसकी सत्यता न्यायनिर्णित नहीं किया जा सकता था। उनके द्वारा यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि याची निलामी विक्रय में अपने भूमि अर्जन के सम्बन्ध में कागज का एक टुकड़ा भी जमा नहीं कर सका था।

इसलिए, हम पाते हैं कि राजस्व प्राधिकारीगण ने जमाबन्दी के रद्दकरण के अपने आदेशों को तब पारित किया जब उन्होंने यह पाया कि यह सक्षम प्राधिकारी से किसी वैध आदेश के बिना एक कर्मचारी द्वारा खोला गया था। अन्य शब्दों में, जमाबन्दी सृजन का आदेश एक ऐसे व्यक्ति द्वारा पारित किया गया था जो विधि के अधीन प्राधिकृत नहीं था एवं इस प्रकार यह अधिकारिता विहीन था।

22. हमारे अनुसार यदि किसी आदेश को किसी अधिकारिता रहित प्राधिकारी द्वारा पारित हुआ पाया जाता है या जब ऐसे आदेश को आत्यन्तिक रूप से विधि एवं तथ्यों की प्रत्यक्ष त्रुटि पर आधारित होना पाया जाता है या जब इसे अभिलेख के आधार पर अनुचित पाया जाता है तब निश्चित रूप से ऐसे मामले में किसी विशिष्ट व्यक्ति के नाम पर चल रहे या स्थायी जमाबन्दी को एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा रद्द किया जा सकता है परन्तु उस पक्षकार को उचित नोटिस एवं सुनवाई का अवसर दिये जाने के उपरान्त ही जो प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगा।

यह एक सुस्थापित विधि है कि अधिकारितावहीन आदेश एक अकृतता है। इस सम्बन्ध में **''हसम अब्बास सैयद बनाम उसमान अब्बास सैयद एवं अन्य (2007)2 SCC 355"** के मामले में, प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जा सकता है, जिसमें निम्नवत् अभिनिर्धारित किया गया है:-

''मुख्य प्रश्न यह है कि क्या अंतनिर्हित अधिकारिता रहित किसी व्यक्ति द्वारा पारित कोई आदेश एक अकृतता होगा। यह ऐसा ही होगा। विबंध, अधित्यजन एवं उपमति के या यहाँ तक कि पूर्व न्याय के सिद्धाँत भी जो प्रक्रियात्मक प्रकृति के हैं, की एक ऐसे मामले में प्रयोज्यता नहीं होगी, जहाँ अधिकरण/न्यायालय द्वारा एक आदेश पारित किया गया है जिसे उसके सम्बन्ध में कोई प्राधिकार नहीं है। किसी अधिकारिता रहित न्यायालय द्वारा पारित कोई आदेश, अधिकारिता रहित होगा अकृतता होने के कारण इसे सामान्यतया प्रभाविता नहीं दी जा सकती।''

हमें यह इंगित नहीं किया गया है कि किसी विशिष्ट व्यक्ति के नाम पर चल रहे या स्थायी जमाबन्दी के रद्दकरण में विधि के अधीन कोई वर्जन नहीं है।

23. 2001(1) JLJR 75 में प्रकाशित **''दिलीप कुमार महतों बनाम बिहार राज्य एवं अन्य'', "2003(3) JLJR 793** में प्रकाशित **श्रीमती गुलबसी देवी एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य'', तथा "2004(1) JLJR 718** में प्रकाशित **जीतन महतो एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य एवं पाँच अन्य''** के मामलों में एकल न्यायाधीश के उपरोक्त तीनों निर्णयों में हम पाते हैं कि उन निर्णयों में इस बात का कोई कारण नियत नहीं किया गया है कि विशिष्ट व्यक्ति के नाम पर चल रहे या स्थायी जमाबन्दी को किसी समुचित मामले में रद्द क्यों नहीं किया जा सकता है। इसलिए, हम इस पैरा में निर्दिष्ट इस न्यायालय के उपरोक्त तीनों निर्णयों में अभिव्यक्त दृष्टिकोण को अनुमोदित नहीं करते हैं।

24. उक्त चर्चा की दृष्टि में, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि किसी विशिष्ट व्यक्ति के नाम पर चल रहे या स्थायी जमाबन्दी को समुचित मामलों में रद्द किया जा सकता है जैसे कि जब राजस्व प्राधिकारीगण की नोटिश में यह लाया जाता है कि जमाबन्दी सृजन हेतु आदेश एक ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया है जिसे कोई अधिकारिता या प्राधिकार ही नहीं है या जहाँ इसे विधि की या अभिलेख/तथ्यों की प्रत्यक्ष त्रुटि पर आधारित होना पाया गया है परन्तु अश्वय ही सम्बन्धित व्यक्ति को नोटिस एवं सुनवाई का एक अवसर दिये जाने के बाद ही, जिसका हित प्रतिकूल प्रभावित होगा।

25. इस न्यायालय ने **''सीताराम चौबे एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 1993(2) PLJR 255"** में प्रकाशित मामले एवं सर्वोच्च न्यायालय ने **''सूरज भान एवं अन्य बनाम वित्त आयुक्त एवं अन्य, (2007)6 SCC 186"** में प्रकाशित मामले में अभिनिर्धारित किया है कि राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियों ऐसे व्यक्ति को हक प्रदान नहीं करती है जिसका नाम अधिकार के अभिलेख में दर्ज है। जमाबन्दी का सृजन न तो किसी एक या अन्य के पक्ष में किसी अधिकार एवं अभिधान उत्पन्न करता है एवं न ही जमाबन्दी का रद्दकरण वास्तविक मालिक के अधिकार एवं अभिधान को ही निर्वाचित करता है। राजस्व अभिलेखों या जमाबन्दी में प्रविष्टियाँ मात्र ''राजकोषीय प्रयोजन के लिए है'' एवं ऐसे प्रविष्टियों के आधार पर कोई स्वामित्व प्रदत्त नहीं किया जाता है। संपत्ति का अभिधान केवल एक सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा ही निर्णित किया जा सकता है।

हमारी दृष्टि में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह सम्प्रेक्षित करके राजस्व प्राधिकारीगण द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों से उचित रूप से ही इन्कार किया कि व्यथित व्यक्ति समुचित अनुतोष के लिए सक्षम अधिकारिता के एक न्यायालय के समक्ष समावेदन कर सकता है।

26. उक्त चर्चाओं एवं निष्कर्षों की दृष्टि में, हम इस लेटर्स पैटेंट अपील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं। तद्नुसार, यह एतद्द्वारा खारिज किया जाता है। यद्यपि, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, व्ययों के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं होगा।

ekuuh; ,eñ okbñ b'dcky] U;k;efr!

सुमन कुमार सिन्हा

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 6811 वर्ष 2005. 17 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

बिहार वित्त (II वर्ष 2002) अधिनियम, 2001—अनुच्छेद 48(f)—मुख्तारनामा–स्टांप-कर–यदि कोई मुख्तारनामा ऐसा हस्तांतरण नहीं है जिसके द्वारा निष्पादनकर्ता ने मूल्यवान प्रतिफलार्थ मुख्तारनामा धारक के पक्ष में संपत्ति को हस्तांतरित या अन्यसंक्रामित किया है बल्कि यह आदाता को अन्य के साथ विक्रय की कार्यवाही प्रारम्भ करने एवं संपत्ति को बेचने एवं इस प्रकार प्राप्त प्रतिफल राशि को निष्पादनकर्ता को भुगतान करने के लिए प्राधिकृत करता हो, तो ऐसे मुख्तारनामें को प्रतिफलार्थ हस्तांतरण के तौर पर समझा नहीं जा सकता है या जायेगा–ऐसे दस्तावेज पर कोई नया स्टांप-कर भुगतेय नहीं है। (पैरा 10 एवं 17)

(ख) मुख्तारनामा अधिनियम, 1822—धारा 2(21)—मुख्तारनामा–यदि कोई अभिकर्ता सामान्यतया प्रधान के कार्य का प्रबन्ध करने के लिए प्रधान के लिए औपचारिक रूप से नियुक्त किया जाता है, तो ऐसे दस्तावेज को ''सामान्य मुख्तारनामा'' के तौर पर जाना जाता है–ऐसा कोई लिखत प्रधान के नाम का उपयोग करने के लिए आदाता को एक अधिकार प्रदान करता है जबकि यदि कोई करार प्राधिकार के आदाता को कुछ प्रसुविधायें सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ किया जाता है, तो ऐसा एक प्राधिकार अप्रतिसंहरणीय होता है एवं ''अप्रतिसंहरणीय मुख्तारनामा'' के तौर पर जाना जाता है। (पैरा 12)

अधिवक्तागण.–M/s Pratyush Kumar, For the Petitioner; Mr. P.K. Prasad, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ ईकबाल.–इस रिट याचिका में, याची ने प्रत्यर्थी सं॰ 2 जिला रजिस्ट्रार, हजारीबाग द्वारा निर्गत दिनांक 21.1.2005 के नोटिस के अभिखंडन के लिए समुचित प्रकृति में उत्प्रेषण रिट के निर्गतीकरण की प्रार्थना की है जिसके द्वारा उन्होंने याची को दिनांक 9.6.1999 के विलेख सं॰ 13 के सम्बन्ध में 82, 112/- रु॰ की धनराशि का भुगतान करने का निर्देश दिया है जो स्टांप कर है जो याची के पक्ष में निष्पादित मुख्तारनामा के उपरोक्त विलेख के लिए भुगतान करने का दायी है।

2. इस रिट याचिका में अंतर्ग्रस्त विधि के रूचिकर प्रश्न को विनिश्चित करने से पूर्व, मैं कुछ सुसंगत तथ्यों को निम्नवत निर्दिष्ट करना चाहूँगा:-

दिनांक 9.6.1999 का एक पंजीकृत मुख्तारनामा जो विलेख सं॰ 13 है, प्रकाश कुमार, प्रभात कुमार, प्रशांत कुमार एवं सुनील कुमार द्वारा हजारीबाग जिले में स्थित खाता सं॰ 12 के अधीन प्लॉट सं॰ 56 की 0.35 ½ एकड़ भूमि के सम्बन्ध में निष्पादनकर्ता के नाम से एवं उसकी ओर से विक्रय विलेख निष्पादित करके उक्त संपत्ति का अंतरण सहित प्रबन्ध करने, विक्रय करने या किसी मामले को दाखिल करने या प्रतिवाद करने एवं सभी अनिवार्य कार्य करने एवं प्रतिफल राशि प्राप्त करने एवं निष्पादनकर्ता को इसका भुगतान करने के लिए याची को प्राधिकृत करते हुए याची के पक्ष में निष्पादित किया था। याची के अनुसार, मुख्तारनामा को उक्त रजिस्ट्रकृत विलेख को स्टांप अधिनियम के अनुसार सम्यक् रूप से स्टांपित किया गया था। याची उक्त संपत्तियों के सम्बन्ध में अन्य चीजों को करने के अतिरिक्त मुख्तारनामा धारक होने के कारण विभिन्न व्यक्तियों के पक्ष में विभिन्न विक्रय- विलेखों को निष्पादित किया। लेकिन, याची जिला उप-रजिस्ट्रार, हजारीबाग द्वारा निर्गत दिनांक 21.9.2005 के आक्षेपित नोटिस प्राप्त करके स्तब्ध रह गया जिसके द्वारा उक्त मुख्तारनामे को विक्रय को एक लिखत तौर पर मानते हुए 82,112/- रु॰ की धनराशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है जो उक्त मुख्तारनामे में भुगतेय स्टांप-कर था।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने सर्वप्रथम यह निवेदन किया कि उप-रजिस्ट्रार को आक्षेपित नोटिस निर्गत करने की शक्ति नहीं है एवं यह पूर्णतया अधिकारिता विहीन है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि रजिस्ट्रीकृत मुख्तारनामा मात्र उक्त संपत्ति के संबंध में याची के पक्ष में किसी अधिकार, अभिधान या हित सृजित, समनुदेशित, सीमित या निर्वाषित नहीं करता है, बल्कि दस्तावेज याची को मात्र प्रबन्ध करने, सम्व्यवहार करने, अंतरित करने या वैसे आवश्यक कार्य करने को सशक्त करता है एवं प्राधिकृत करता है जो निष्पादनकर्ता की ओर से एवं उसके नाम पर उक्त संपत्ति के सम्बन्ध में अनिवार्य हो सकता है।

4. मुख्तारनामा अधिनियम, 1822 की धारा 2(21) ''मुख्तारनामा'' शब्द को परिभाषित करता है जो निम्नलिखित रूप से पठित है:-

> "(21) **मुख्तारनामा.**–मुख्तारनामा'' में वैसे सभी लिखत (तत्समय प्रवृत्त न्यायालय-शुल्क से जुड़ी विधि के अधीन किसी शुल्क के साथ अप्रभार्य) शामिल हैं जो इसे निष्पादित करने वाले व्यक्ति के नाम से या उसके लिए एक विनिर्दिष्ट व्यक्ति को सशक्त करता हो।''

5. परिभाषा के कोरे पठन से, यह प्रतीत होता है कि मुख्तारनामा एक औपचारिक दस्तावेज है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति किसी संव्यवहार या कई संव्यवहारों के सम्बन्ध में उसके नाम पर कार्य करने एवं उसका प्रतिनिधित्व करने के लिए एक अन्य व्यक्ति को प्राधिकृत करता है। अधिनियम के अनुच्छेद 48 का अनुसूची I मुख्तारनामे के सम्बन्ध में प्रभार्य-कर विहित करता है। अनुच्छेद 48 निम्नवत पठित है:-

संगत राज्य अनुच्छेद/ अनुसूची	लिखत का विवरण	उचित स्टांप-कर
48.	मुख्तारनामा [धारा 2(21) के द्वारा यथा परिभाषित, जो एक परोक्ष (सं॰ 52) न हो–	
	(a) जब एक एकल संव्यवहार के सम्बन्ध में एक या अधिक दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण उपाप्त करने के एकमात्र प्रयोजन से या ऐसे एक या एक से अधिक ऐसे दस्तावेजों का निष्पादन स्वीकार करने के लिए निष्पादित किया गया हो;	आठ आना
	(b) जब प्रेसिडेंसी लघुवाद न्यायालय अधिनियम, 1882 के अधीन वादों या कार्यवाहियों में अपेक्षित हो।	आठ आना
	(c) जब खंड (a) में वर्णित मामले को छोड़कर अन्य मामले में एकल सम्व्यवहार में एक व्यक्ति या अधिक व्यक्ति को प्राधिकृत किया गया हो;	एक रुपया
	(d) जब एक सम्व्यवहार से अधिक में संयुक्त रूप से या पृथक रूप से या सामान्य रूप से पाँच से अधिक व्यक्तियों को प्राधिकृत किया गया हो;	पाँच रुपया
	(e) जब एक सम्व्यवहार से अधिक में संयुक्त रूप से या पृथक रूप से या सामान्य रूप से पाँच से अधिक परन्तु दस से अनधिक व्यक्तियों को प्राधिकृत किया गया है;	दस रुपया

(f) जब अटॉर्नी को किसी अचल संपत्ति को बेचने के लिए प्राधिकृत करते हुए या प्रतिफलार्थ दिया गया हो;	
(g) किसी अन्य मामले में	प्रतिफल राशि हेतु हस्तांतरण (सं॰ 23) के तौर पर वही कर।
स्पष्टीकरण.–इस अनुच्छेद के प्रयोजनार्थ, जब एक से अधिक व्यक्ति एक ही फर्म को निरूपित करते हों तो वे एक ही व्यक्ति समझे जायेंगे।	प्राधिकृत प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक रुपया।
	विशेष टिप्पणी.–
	पद ''रजिस्ट्रीकरण'' में भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1877 के अधीन रजिस्ट्रीकरण के आनुषंगिक प्रत्येक क्रिया शामिल है।

6. बिहार वित्त अधिनियम (II वर्ष 2002) अधिनियम, 2001 द्वारा बिहार संशोधन द्वारा यथा संशोधित अनुच्छेद निम्नवत है:–

I-A/48

मुख्तारनामा.–धारा 2(24) द्वारा यथा परिभाषित जो एक परोक्ष न हो:	
(a) जब एक एकल संव्यवहार के सम्बन्ध में एक या अधिक दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण उपाप्त करने एकमात्र प्रयोजन से या ऐसे एक या अधिक दस्तावेजों का निष्पादन स्वीकार करने के लिए निष्पादित किया गया हो।	(a) 100/- रु॰ (एक सौ रु॰)
(b) जब प्रेसिडेंसी लघु वाद न्यायालय, अधिनियम, 1882 के अधीन वादों या कार्यवाहियों में अपेक्षित हो।	(b) 100/- (एक सौ रुपया)
(c) जब खंड (a) में वर्णित मामले को छोड़कर अन्य मामले में एक एकल सम्व्यवहार में एक व्यक्ति या एक से अधिक व्यक्ति को प्राधिकृत किया गया हो;	(c) 200/- रु॰ (दो सौ रुपया)
(d) जब एक सम्व्यवहार से अधिक में संयुक्त रूप से या पृथक रूप से या सामान्य रूप से पाँच से अनधिक व्यक्तियों को प्राधिकृत किया गया हो;	(d) 300/- रु॰ (तीन सौ रुपया)

(e) जब एक सम्व्यवहार से अधिक में संयुक्त रूप से या पृथक रूप से या सामान्य रूप से पाँच से अधिक परन्तु दस से अनधिक व्यक्तियों को प्राधिकृत किया गया हो;	(e) 500/- रु॰ (पाँच सौ रुपया)
(f) जब अटार्नी को किसी अचल संपत्ति को बेचने के लिए प्राधिकृत करते हुए या प्रतिफलार्थ दिया गया हो;	(f) प्रतिफल राशि हेतु या प्रतिफल राशि के समान बाजार मूल्य के लिए हस्तांतरण (सं॰ 23) के तौर पर वही कर।
(g) किसी अन्य मामले में	(g) प्रत्येक प्राधिकृत व्यक्ति के लिए 500/- रु॰ (पाँच सौ रुपया)
(h) जब किसी अचल संपत्ति (किसी अन्य मामले में) के विकास पर सन्निर्माण या विक्रय या अंतरण हेतु दिया गया हो।	(h) संपत्ति के बाजार मूल्य पर प्रत्येक सौ रुपया या इसके भाग पर 5/- रु॰।

स्पष्टीकरण I.—इस अनुच्छेद के प्रयोजनार्थ जब एक से अधिक व्यक्ति एक ही फर्म को निरूपित करते हों तो वे एक ही व्यक्ति माने जायेंगे।

स्पष्टीकरण II.—पद ''रजिस्ट्रीकरण'' में रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के अधीन रजिस्ट्रीकरण के आनुषंगिक प्रत्येक क्रिया शामिल है।

स्पष्टीकरण III.—जहाँ खण्ड (f) एवं (h) के अधीन, मुख्तारनामें पर कर का भुगतान किया गया है एवं मुख्तारनामें के निष्पादक एवं उस व्यक्ति के बीच जिसके पक्ष में यह निष्पादित किया गया है, मुख्तारनामें के अनुशरण में उस संपत्ति से सम्बन्धित एक हस्तांतरण निष्पादित किया जाता है तो हस्तांतरण-कर संपत्ति के बाजार मूल्य पर प्रकल्पित किया गया कर होगा जिसे मुख्तारनामें पर भुगतेय कर से घटाया गया है।

7. न तो याची के अधिवक्ता और न विद्वान महाधिवक्ता ने झारखंड राज्य द्वारा अनुच्छेद 48 में किए गए किसी संशोधन की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया या इसकी ओर कि बिहार संशोधन को राज्य में अंगीकार किया गया था।

8. अनुच्छेद 48(f) के कोरे पठन से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि किसी अचल संपत्ति को बेचने के लिए अटॉर्नी को प्राधिकृत करते हुए प्रतिफलार्थ दिया जाता है तो यह कर प्रतिफल राशि के समान बाजार मूल्य पर एक प्रतिफल हेतु हस्तांतरण के सम्बन्ध में भुगतेय होता है।

9. एकमात्र प्रश्न जो विचारणार्थ उत्पन्न होता है, यह है कि क्या संपत्ति को बचाने के क्रम में किसी या सभी क्रियाओं को करने के लिए एवं साथ ही संपत्ति के विक्रय हेतु व्यवस्थित करने या विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए याची के पक्ष में निष्पादित मुख्यतारनामा प्रतिफलार्थ है? बेहतर मूल्यांकन के लिए प्रश्नगत मुख्तारनामा की विषय वस्तु यहाँ पर नीचे पुनरूत्पादित करना उपयोगी है:–

लेख्यकारी श्री प्रकाश कुमार 2. श्री प्रभात कुमार 3. श्री प्रशान्त कुमार 4. श्री सुनील कुमार पिता का नाम स्व॰ वैद्यनाथ प्रसाद जाति कायस्थ, पेशा नौकरी, साकिन लागर, बरस बाजार, हजारीबाग प्रगना चम्पा थाना डाकघर वा जिला हजारीबाग।

लेख्यधारी श्री सुमन कुमार सिन्हा पिता का नाम स्व॰ विश्वरंजन सिन्हा जाति कायस्थ साकिन सदर हजारीबाग, मुहल्ला–रामनगर प्रगना चंपा, थाना डाकघर वो जिला हजारीबाग–2।

लेख्य प्रकार–मोख्तारनामा (Deed of Power of Attorney) सम्पत्ति मवाजी 35 1/2 साढ़े पैतिस डिसिमल जमीन वसीयत तैयती कायमी वाकि मौजा काम्मा नं॰ 1 थाना नं॰ 142 प्रगना चम्पा लाल राय रजिस्ट्री डिसटिक्ट वा जिला हजारीबाग अन्दर खाता नं॰ 12 बारह प्लौट नं॰ 56 रकबवा 0.35 1/2 साढ़े पैंतीस डिसिमल जमीन।

शरायत

यह कि लेख्यकारीगण अपने कार्य में व्यस्त होने के कारण उपरोक्त संपत्ति उचित ढंग से देखभाल नहीं कर सकते हैं जिसके चलते उपरोक्त संपत्ति से संबंधित कोई भी कार्य करने में काफी कठिनाई होती है। इसलिए लेख्यकारीगण लेख्यधारी को जिनपर लेख्यकारियों को काफी विश्वास है उपरोक्त संपत्ति की देखभाल तथा उपरोक्त संपत्ति से संबंधित कोई भी कार्य करने का जिम्मेवारी देते हैं जिसके तहत लेख्यकारीगण लेख्यधारी को यह अधिकार देते हैं कि लेख्यधारी उपरोक्त संपत्ति का उचित देखभाल करें यदि किसी प्रकार उपरोक्त संपत्ति का केस मोकदमा हो तो उसका देखभाल अपने स्तर से करें किसी कार्यालय–13 या न्यायालय में उपरोक्त संपत्ति से संबंधित डिसमिस का काम हो तो वैसे स्थिति में लेख्यधारी उपस्थित होकर कार्य कर सकते हैं। यदि उपरोक्त संपत्ति का रसीद कटवाना हो तो कटवा सकते हैं। किसी व्यक्ति से बिक्री या एग्रीमेंट करने का बातचीत करना हो तो कर सकते हैं। उपरोक्त संपत्ति से संबंधित यदि लेख्यधारी का जरूरत महसूस हो तो सादा कागजात अपने हस्ताक्षर से इजार के इजरार कर सकते हैं। इसलिए लेख्यकारीगण लेख्यधारी को पूर्ण अधिकार देते हुए अपने राजी वो खुशी से मोख्तारनामा (Deed of Power of Attorney) लिख दिया कि वक्त पर काम आवे। आज तारीख 9 माह जून सन् 1999 ई॰ हजारीबाग।

नोट उपरोक्त संपत्ति से संबंधित उनकी भुगतान होगा उसे लेख्यधारी लेख्यकारीगण को कर देवेगें। अन्यथा ता॰ 9 जून 99 प्रशांत कुमार 9 जून 99 सुनील कुमार 9.6.99 इन्टेस आशुतोष एरास मुदय सलान हसन बाई 9.6.99 प्रकाश कुमार 9.6.99 प्रभात कुमार 9.6.99 सुनील कुमार 9.6.99 प्रशांत कुमार 9.6.99 महेश दीपक कुमार सिंह भिलेज माण्डी कालांदा, हजारीबाग 9.6.99 कातिव वा गवाह अजीत कुमार सिन्हा को माण्डी कालांदा, हजारीबाग ता॰ 9.6.99 ई॰ मोख्तारनामा (Deed of Power of Attorney) पढ़कर मोकिर को सुना वो समझ लिया व तारीख 9.6.99 के जिला–हजारीबाग 9.6.99 प्रकाश कुमार हजारीबाग मोख्तार 20 गणेश 25 प्रागना 593-1-5 गणेश कुमार 1931 दिनांक डायरी 9.6.99 प्रकाश कुमार हजारीबाग मोख्तार 5 गणेश कुमार।

1–भा॰–4–13

श्री पी॰ बसिया है सिज दि हजारीबाग

प्रकाश कुमार
वैद्यनाथ प्रसाद
लोकर बंउम बाजार
तिथि 9.6.99

सतिश कुमार

1.6.99

लेख्यकारी 27740 का प्रकाश कुमार अभिप्रमाणित।

27740 कुमार 3, प्रशांत कुमार, प्रकाश कुमार 9.6.99 को सुनील कुमार ने जिनकी पहचान एस॰/ओ॰ आर॰ कुमार

श्री नन्दन कुमार, पिता प्रेम नारायण ने किस कारा को उन्होंने दस्तावेज विस्थापित की है।

1. 197-27/99 प्रकाश कुमार 9.6.99

2. 198-27/99 प्रभात कुमार 9.6.99

3. 199-27/99 प्रशांत कुमार 9.6.99

4. 200-27/99 सुनील कुमार 9.6.99

5. 201-27/99 नन्दन कुमार 9.6.99

प्रतिलिपि प्राप्त

मुदालय

दिनांक–28.6.99	तीन प्रति पाया	प्रवेश कुमार मिश्रा
	24.7.99	24.7.99

10. मुख्तारनामें की विषय वस्तु से, यह स्पष्ट है कि निष्पादनकर्ता ने आदाता को अपनी संपत्ति की देखभाल करने एवं प्रबन्ध करने के लिए प्राधिकृत किया है, जिसपर उसका पूर्ण विश्वास है, क्योंकि वह पूर्व उपजीविका के कारण संपत्ति की देखभाल करने की स्थिति में नहीं है। इसलिए, निष्पादनकर्ता ने अपनी ओर से एवं अपने नाम पर अन्य के साथ–साथ संपत्ति बेचने या विक्रय का करार करने के लिए आदाता को प्राधिकृत किया। लिखत में यह विनिर्दिष्ट रूप से वर्णित किया गया है कि आदाता द्वारा संपत्ति के विक्रय के प्रतिफल में जो कुछ भी प्राप्त किया गया था वह निष्पादनकर्ता को भुगतेय होगा।

11. इसलिए, यह सुस्पष्ट है कि मुख्तारनामा किसी प्रतिफल से रहित है। यह सुस्थापित है कि संविदा अधिनियम की धारा 185 के अधीन यथा उपबंधित एक अभिकरण के सृजन के क्रम में कोई प्रतिफल अनिवार्य नहीं है। इसलिए इसके लिए किसी भी अभिव्यक्त प्रतिफल नियत किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

12. सामान्य मुख्तारनामा एवं अप्रतिसंहरणीय मुख्तारनामा के बीच काफी भिन्नता है। जहाँ अभिकरण का प्राधिकार एक विलेख द्वारा प्रदत्त किए जाने के लिए अपेक्षित था या जहाँ कोई अभिकर्ता एक सम्व्यवहार या सम्व्यवहार की एक श्रृंखला में प्रधान के लिए औपचारिक रूप से कार्य करने के लिए या सामान्यतया प्रधान के मामले का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किया जाता है, तो ऐसे दस्तावेज को मुख्तारनामा के तौर पर जाना जाता है। ऐसा कोई लिखत आदाता को प्रधान के नाम का उपयोग करने का अधिकार प्रदान करता है। जबकि कोई करार प्राधिकार के आदाता को कुछ प्रसुविधायें सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ किया जाता है, तो ऐसा एक प्राधिकार अप्रतिसंहरणीय होता है एवं अप्रतिसंहरणीय मुख्तारनामा के तौर पर जाना जाता है।

13. वर्तमान मामले में, निष्पादनकर्ता द्वारा याची के पक्ष में निष्पादित मुख्तारनामा के लिए कोई प्रतिफल प्राप्त नहीं हुआ है और न ही याची के पक्ष में कोई प्रसुविधा प्राप्त हुआ है। याची को दिए गए प्राधिकार के लिए कोई प्रतिफल प्राप्त नहीं हुआ है। शब्द ''प्रतिफल'' का तात्पर्य है मूल्यवान प्रतिफल।

14. अधिनियम से संलग्न अनुसूची के अनुच्छेद 48(f) की ओर वापस आते हुए, जो यह प्रावधान करता है कि यदि मुख्तारनामा संपत्ति को बेचने के लिए अटॉर्नी को प्राधिकृत करते हुए प्रतिफलार्थ है तो यह कर प्रतिफल राशि हेतु एक अंतरण के तौर पर भुगतेय होता है।

15. शब्द ''स्थानान्तरण'' को अधिनियम की धारा 2(10) के अधीन परिभाषित किया गया है जो निम्नवत पठित है;

> ''**हस्तांतरण.**–''हस्तांतरण'' में वैसा प्रत्येक लिखत एवं विक्रय का हस्तांतरण शामिल है जिसके द्वारा संपत्ति को चाहे वह चल हो अथवा अचल जीवित व्यक्तियों के बीच अंतरित किया जाता है एवं जो अनुसूची 1 द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से अन्यथा उपबन्धित नहीं किया गया है।''

16. इसलिए, विक्रय का हस्तांतरण एक ऐसा विलेख है जिसके द्वारा किसी संपत्ति को विधित: या साम्यापूर्ण रूप से क्रेता को अंतरित अथवा निहित किया जाता है। परिणामस्वरूप किसी हस्तांतरण पर भुगतेय स्टांप-कर को स्टांप अधिनियम संलग्न अनुसूची के अनुच्छेद 23 के अधीन यथा उपबंधित रीति से एवं उसमें आगे लाये गए प्रतिफल के मूल्य पर परिकलित किया जाना होता है।

17. जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रश्नगत मुख्तारनामा एक ऐसा हस्तांतरण नहीं है जिसके द्वारा निष्पादनकर्ता ने मूल्यवान प्रतिफलार्थ याची के पक्ष में संपत्ति को हस्तांतरित या अन्यसंक्रामित किया है बल्कि यह आदाता को अन्य के साथ-साथ विक्रय की कार्यवाही प्रारम्भ करने एवं संपत्ति को बेचने एवं इस प्रकार प्राप्त प्रतिफल राशि को निष्पादनकर्ता को भुगतान करने के लिए प्राधिकृत करता है। ऐसे मुख्तारनामें को प्रतिफलार्थ हस्तांतरण के तौर पर समझा नहीं जा सकता है या जायेगा। इस प्रकार, ऐसे दस्तावेज पर कोई नया स्टांप-कर भुगतेय नहीं है।

18. प्रति-शपथपत्र में राज्य का अभिमत यह है कि ए॰ जी॰ कार्यालय ने रजिस्ट्रार कार्यालय, हजारीबाग का संपरीक्षा किया एवं आपत्ति उठायी कि वर्तमान मुख्तारनामा को गलत ढंग से रखा गया है एवं स्टांप में 69,332/- रु॰ प्लस रजिस्ट्रीकरण शुल्क के तौर पर 12,780/-रु॰ कुल 82,112/-रु॰ का हानि हुआ है। उक्त संपरीक्षा आपत्ति पर रजिस्ट्री ने यह निवेदन किया कि वह मामले की जाँच एवं आवश्यक कार्रवाई करेगा। यह भी कहा गया है कि संपरीक्षा रिपोर्ट के अनुपालन में अटार्नी धारक याची को नोटिस की तामीला की गयी है। अंतत: यह कहा गया है कि संपरीक्षा दल न्यायोचित एवं न्यायसम्मत नहीं था।

19. प्रति-शपथ पत्र में किया गया उपरोक्त अभिकथन स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारी ने चाहे वह रजिस्ट्रार हों या उप-रजिस्ट्रार, स्टांप, कर के भुगतान हेतु पक्षों को ऐसी नोटिसें निर्गत करते समय अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया। रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारी को कम-से-कम रजिस्ट्रीकरण अधिनियम एवं स्टांप-कर या रजिस्ट्रीकरण शुल्क के भुगतान के मामले में स्टांप अधिनियम के उपबंधों को जानना चाहिए। मेरी सुविचारित राय में संपरीक्षा आपत्ति के आधार पर प्रत्यर्थीगण द्वारा निर्गत आक्षेपित नोटिस प्रत्यक्ष रूप से, अविधिमान्य, मनमाना, दुर्भावपूर्ण एवं अधिकारिता रहित है।

20. उपरोक्त कारणों से, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है एवं अतिरिक्त स्टांप-कर का निदेश याची को देने वाला आक्षेपित नोटिस अविधिमान्य एवं पूर्णतया अधिकारितावहीन है।

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr!

लक्ष्मण प्रसाद

बनाम

बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2716 वर्ष 2007. 17 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000—धारा 65(1) सह-पठित भारत संघ का आदेश दिनांकित 7.8.2003—बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड ने झारखण्ड राज्य में कार्यरत एक कनीय अभियंता को प्रोन्नति दिया–अधिनियम की धारा 65(1) के अधीन अधिसूचना के निर्गत होने के उपरांत बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड को झारखण्ड राज्य में कार्यरत किसी कनीय अभियंता को सहायक अभियंता के पद पर प्रोन्नति देने की कोई शक्ति, अधिकारिता और प्राधिकार नहीं है–प्रत्यर्थी संख्या 7 को प्रोन्नति देने वाला आदेश अपास्त और झारखण्ड राज्य हाऊसिंग बोर्ड को याची और इसी प्रकार की स्थिति वाले अन्य अभियंताओं के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 3 एवं 5)

अधिवक्तागण.–M/s Gouri Devi, Ajit Kumar, For the Petitioner; M/s P.K. Prasad, I. Sen Choudhary, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका मुख्यत: इस कारण से दाखिल की गई है कि बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड ने दिनांक 18.5.2002 को एक आदेश (अपील के ज्ञापन का परिशिष्ट-12) पारित किया है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 7, जो झारखण्ड राज्य में कार्यरत है को किसी शक्ति, अधिकारिता और प्राधिकार के बिना कनीय अभियंता के पद से सहायक अभियंता के पद पर प्रोन्नत किया गया था, विशेषकर बिहार राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 2000 (याचिका के ज्ञापन का परिशिष्ट-10) जिसे सिविल अपील 7242 वर्ष 2003 (एस॰ एल॰ पी॰ (सी॰) संख्या 15442 वर्ष 2002 से उद्भूत होने वाली) (याचिका के ज्ञापन का परिशिष्ट-11) में निर्णय पारित करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट किया गया है, के अनुसरण में भारत सरकार की दिनांक 21 अगस्त, 2003 की अधिसूचना के अनुसार झारखण्ड राज्य एवं बिहार राज्य के विभाजन के उपरांत और, इसलिए, इस नास्ति का आदेश से व्यथित होकर, जिसे बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड द्वारा पूर्णरूप से कोई अधिकारिता और प्राधिकार के बिना पारित किया गया है और कनीय अभियंता को सहायक अभियंता के तौर पर प्रोन्नति दिया गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह याचिका दाखिल की गई है।

2. दोनों ओर के विद्वान अधिवक्तागण को सुनकर और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है:–

(a) कि बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 65 की उप-धारा 1 द्वारा प्रदत्त शक्ति के इस्तेमाल में भारत संघ ने दिनांक 7 अगस्त, 2003 को एक आदेश प्रकाशित किया है। आदेश का आदेश 1(III) निम्नांकित रूप से पठित है:–

"(iii) बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड जो एक अंतर्राज्यीय निगमित निकाय के तौर पर कार्य कर रहा है, 21.8.2003 के पश्चात अस्तित्व रहित हो जाएगा जिसके पश्चात, यह केवल बिहार के लिए एक पृथक हाऊसिंग बोर्ड के तौर पर कार्य करना प्रारम्भ करेगा।''

यह अधिसूचना याचिका के वर्तमान ज्ञापन के परिशिष्ट-10 पर है।

(b) बिहार राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के कारण यह अन्तर-राज्यीय निगमित निकाय बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड 21.8.2003 से अस्तित्व में नहीं रहेगा और केवल बिहार राज्य के लिए कार्य करेगा। एस॰ एल॰ पी॰ (सिविल) संख्या 15442 वर्ष 2002 दिनांक 10 सितम्बर, 2003

से उद्भूत होने वाली सिविल अपील संख्या 7242 वर्ष 2003 का निर्णय करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी इस अधिसूचना पर विचार किया गया था। यह आदेश याचिका के वर्तमान ज्ञापन में परिशिष्ट-11 के तौर पर संलग्न है और यह अवधारित किया गया है कि पूर्वोक्त अधिसूचना के अनुसार दोनों राज्यों का विभाजन हुआ था और इस अधिसूचना के कारण ही कर्मचारीगण का विभाजन हुआ था।

(c) पूर्वोक्त बिहार राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 2000 (परिशिष्ट-10) के बावजूद, बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड ने दिनांक 18 मई, 2003 का आदेश पारित किया है और कनीय अभियंताओं को सहायक अभियंताओं के तौर पर प्रोन्नति दी है, जो बिल्कुल पूर्ण रूप से एक स्वतंत्र राज्य, अर्थात्, झारखण्ड राज्य में कार्य कर रहे थे। बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड द्वारा विवेक का कोई इस्तेमाल नहीं किया गया है, जो प्रत्यर्थी संख्या 1, 2 एवं 3 है। प्रत्यर्थी संख्या 1, 2 एवं 3 ने सम्यक् रूप से बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 पर विचार नहीं किया है और पड़ोसी राज्य में कार्यरत कनीय अभियंताओं को बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड द्वारा प्रोन्नत कर दिया गया है। अगर सचिव, बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड द्वारा कुछ सावधानी बरती गई होती तो उनके द्वारा इस याचिका से बचा जा सकता था। बिहार राज्य पुनर्गठन अधिनियम, वर्ष 2000 में पारित किया गया था, पांच वर्ष के उपरांत भी प्रत्यर्थी संख्या 1, 2 एवं 3 इस प्रकार बैठे हैं कि जैसे वे दोनों राज्यों के लिए प्राधिकारी हो। यह प्रतीत होता है कि बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड के सम्बद्ध उच्च पदाधिकारीगण ने ऐसे कनीय अभियंताओं को सहायक अभियंताओं के तौर पर प्रोन्नति देने में पूर्ण रूप से लापरवाही की है, जो एक पड़ोसी और पूर्ण रूप से एक अन्य राज्य, अर्थात्, झारखण्ड राज्य में कार्य कर रहे थे।

3. पूर्वोक्त तथ्यों एवं कारणों के एक संचयी प्रभाव के तौर पर मैं एतद् द्वारा इस याचिका को अनुज्ञात करता हूँ और उस सीमा तक दिनांक 18.5.2005 के आदेश अपास्त करता हूँ जिस सीमा तक इसने बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 7 को कनीय अभियंता से के पद से सहायक अभियंता के पद पर प्रोन्नति दी थी और झारखण्ड राज्य हाऊसिंग बोर्ड को याची और प्रत्यर्थी संख्या 7 को शामिल करते हुए इसी प्रकार की स्थिति वाले अभियंताओं के मामले पर सहायक अभियंताओं और आगे के पद के लिए विचार करने का निर्देश देता हूँ।

4. प्रत्यर्थी संख्या 7 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता या बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड द्वारा निर्गत दिनांक 18 मई, 2005 की अधिसूचना (परिशिष्ट-12) में क्रम संख्या 4 पर निर्दिष्ट व्यक्ति ने निवेदन किया कि मामले के सभी सुसंगत पहलु पर उचित रूप से विचार किया गया है। और, इसलिए, बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 18 मई, 2003' का आदेश उचित है।

5. मामले के तथ्यों में प्रत्यर्थी संख्या 7 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए इस विरोधात्मक तर्क को मुख्यत: इस कारण से इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता कि बिहार राज्य हाऊसिंग बोर्ड को कनिय अभियंता से सहायक अभियंता के पद पर किसी प्रोन्नति को देने की कोई **शक्ति, अधिकारिता और प्राधिकार** नहीं है, जो झारखण्ड राज्य में कार्य कर रहा है, विशेषकर बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 65 की उप-धारा (1) के अधीन अधिसूचना (याचिका के ज्ञापन का परिशिष्ट-10) के निर्गमन के उपरांत। जो भी हो, जैसा कि इसमें ऊपर कहा गया है, वर्तमान याचिका में याची और प्रत्यर्थी संख्या 7 को शामिल करते हुए सभी अभियंताओं की प्रोन्नति का प्रश्न प्रत्यर्थी संख्या 1 (याचिका के ज्ञापन का परिशिष्ट-12) द्वारा पारित आदेश से प्रभावित हुए बगैर झारखण्ड राज्य हाऊसिंग बोर्ड द्वारा लिए जाने वाले इसके अन्तिम निर्णय तक अपने स्वयं के गुणावगुणों पर खुला रखा गया है और प्रत्यर्थी संख्या 2 सहायक अभियंताओं के पद के लिए आगे की प्रोन्नति का भी निर्णय करेगा।

6. यह रिट याचिका पूर्वोक्त सीमा तक अनुज्ञात किया जाता है और एतद् द्वारा निस्तारित की जाती है।

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky ,o Mhñ ,uñ iVy] U;k;efrx.k

सुरेश भण्डारी

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 130 वर्ष 2007. 13 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

लेटर्स पैटेन्ट के खण्ड 10 के अधीन एक अपील के मामले में।

सेवा विधि–बर्खास्तगी–20 वर्षों की सेवा के उपरांत और कालबद्ध प्रोन्नति प्रदान करने के उपरांत नियुक्तियाँ अविधिमान्य धारित–अपीलार्थी को साक्षात्कार में सफल घोषित करने के उपरांत उसकी नियुक्ति की गई थी–झारखण्ड राज्य के गठन के पहले प्राधिकारों द्वारा ये सारे निर्णय लिए गए थे–20 वर्षों से अधिक समय तक लगातार रूप से किए गए कार्य पर विचार करते हुए छः सप्ताह की अवधि के भीतर सचिव, स्वास्थ्य विभाग को निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। (पैरा 5)

निर्णयज विधि.–(2006)4 SCC 1.

अधिवक्तागण.–M/s Amit Kumar Das, Chandrajit Mukherjee, For the Appellant; Mr. G.P. III, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3836 वर्ष 2003 में पारित दिनांक 6.2.2007 के निर्णय के विरूद्ध लेटर्स पेटेण्ट के खण्ड 10 के अधीन यह अपील निर्दिष्ट है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने कोई अनुतोष प्रदान करने से इन्कार कर दिया और **सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमा देवी (3) एवं अन्य [(2006)4 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 1]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित मार्ग-निर्देशों का अनुपालन करने का प्रत्यर्थीगण को एक निर्देश के साथ रिट याचिका का निस्तारण कर दिया।

2. सचिव, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, झारखण्ड, राँची द्वारा पारित दिनांक 14.8.2002 के उस आदेश को निरस्त करने के लिए यथोचित रिट का निर्गमन इप्सित करते हुए याची–अपीलार्थी ने पूर्वोल्लिखित रिट याचिका दाखिल किया, जिसके द्वारा अन्यों के साथ साथ अपीलार्थी की नियुक्ति को अविधिमान्य अवधारित किया गया है और जिसके परिणामतः, उन्हें सेवा से हटा दिया गया है। बेहतर मूल्यांकन के लिए, आक्षेपित निर्णय इसमें नीचे उत्कथित किया गया है:–

> ''रिट याचिका के अन्तिम निस्तारण के लिए पक्षों को सुना।
>
> याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले श्री दास ने निवेदन किया कि चार व्यक्तियों ने संयुक्त रूप से रिट याचिका जो डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ संख्या 687 वर्ष 2003 दाखिल की, जिनमें से मो॰ कलीमुद्दीन एवं मो॰ कलामुद्दीन की रिट याचिका अनुज्ञात किया गया था जबकि शंभू कुमार एवं मो॰ मोबिन की रिट याचिका को खारिज कर दिया गया। श्री दास ने निवेदन किया कि मो॰ कलीमुद्दीन एवं मो॰ कलामुद्दीन के संबन्ध में, उक्त डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ संख्या 687 वर्ष 2003 में पारित दिनांक 9.9.2003 के आदेश द्वारा याची संख्या 1 भीम चन्द्र डे का मामला पूर्णरूपेण आच्छादित है।
>
> G.P. III की कनीय अधिवक्ता, श्रीमती लीली सहाय ने इस स्थिति पर विवाद नहीं किया।
>
> तद्नुसार, याची संख्या 1 भीम चन्द्र डे को ड्यूटी से अवमुक्त करने वाला दिनांक 25.6.2003 का आदेश, अपास्त किया जाता है।
>
> याची संख्या 2-सुरेश भण्डारी के संबंध में, श्री दास ने निवेदन किया कि उसे 1.7.1981 को दैनिक वेतनभोगी के तौर पर नियुक्त किया गया था और स्वदेशी औषधि उपाधीक्षक, दुमका द्वारा उसे 1.10.1982 को चपरासी–सह–सफाई कर्मचारी के रिक्त पद के विरूद्ध नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात्, उसे 26.10.1992 को प्रोन्नति भी प्रदान की गयी थी। इसलिए, उसे इस आधार पर अवमुक्त नहीं किया जा सकता था कि उसकी नियुक्ति अवैध थी। श्री दास ने निवेदन किया कि याची संख्या 2 का नियमितीकरण कर देना चाहिए।

राज्य के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची संख्या 2 के मामले में नियुक्ति की प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया गया था। न तो पद का विज्ञापन दिया गया था, और न ही रोजगार कार्यालय से नामों की मांग की गई थी। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि जब स्वयं की नियुक्ति अवैधानिक और शून्य थी, तो उसकी प्रोन्नति इत्यादि के पश्चातवर्ती आदेश भी शून्य थे। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि (2006)4 एस॰ सी॰ सी॰ 1 में रिपोर्ट किए गए सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमा देवी (3) एवं अन्य के मामले में संविधान पीठ के निर्णय की दृष्टि में, इस न्यायालय को याची संख्या 2 के नियमितीकरण के लिए आदेश पारित नहीं करना चाहिए।

जब मैनें अभिव्यक्त किया कि इन परिस्थितियों में याची संख्या 2 को कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता, तो श्री दास ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण को उमा देवी के उक्त निर्णय के पैराग्राफ 53 में दिए गए निर्देशों का अनुपालन करने का निर्देश दिया जाए। उन्होंने अभिनेश कुमार बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य के मामले में एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 21 वर्ष 2006 में पारित, दिनांक 31.10.2006 के एक आदेश को निर्दिष्ट किया।

तद्नुसार, प्रत्यर्थीगण को उमा देवी (ऊपर) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित मार्ग-निर्देशों का अनुपालन करने और उसके पैराग्राफ 53 में दिए गए निर्देश का भी अनुपालन करने का निर्देश दिया गया है।

इन सम्परीक्षणों एवं निर्देशों के साथ, यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।''

3. अपीलार्थी का मामला यह है कि उसे प्रारम्भ में दैनिक वेतनभोगी के आधार पर जिला देशी चिकित्सा पदाधिकारी, दुमका के कार्यालय में चपरासी-सह-रात्रि प्रहरी के तौर पर नियुक्त किया गया था और उसने 1.7.1981 से उसी रूप में लगातार कार्य किया। जबकि अपीलार्थी दैनिक-वेतन पर कार्य कर रहा था, राज्य सरकार ने निदेशक, स्वास्थ्य सेवाएं, बिहार, पटना द्वारा निर्गत दिनांक 5.12.1981 के पत्र के माध्यम से दैनिक-वेतन पर कार्यरत सभी व्यक्तियों के नियमितीकरण हेतु निर्देश दिया और इसके बाद से किसी व्यक्ति को दैनिक वेतन पर नियुक्त न करने का भी निर्णय लिया। इस निर्णय के आधार पर, दिनांक 1.10.1982 के पत्र के माध्यम से 1.10.1982 के प्रभाव से अपीलार्थी की सेवा नियमित कर दी गई थी। 10 वर्षों की सतत सेवा पूरी करने के उपरांत, अपीलार्थी को 26.10.1992 के प्रभाव से कनिष्ठ चयन श्रेणी प्रदान किया गया था और वह राज्य सरकार के एक नियमित कर्मचारी के तौर पर सभी वार्षिक वेतन वृद्धियों के साथ अपने वेतन प्राप्त करता रहा है। तत्पश्चात् 10 वर्ष पूरा करने के उपरांत, अपीलार्थी को कालबद्ध प्रोन्नति भी प्राप्त हुई। 2003 में, किसी कार्यवाही प्रारम्भ किए बगैर, प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 25.6.2003 के पत्र द्वारा याची-अपीलार्थी को सूचित किया कि उसने दिनांक 14.5.2003 के एक आदेश द्वारा उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई है। उक्त निर्णय से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने तत्काल पूर्वोक्त रिट याचिका जो डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ संख्या 3836 वर्ष 2003 थी, दाखिल किया है, जिसमें प्रत्यर्थीगण ने प्रति-शपथपत्र दाखिल किया यह कहते हुए कि चूँकि नियमावली के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुपालन नियुक्ति की प्रक्रिया में' किया गया था, इसलिए उसकी प्रारम्भिक नियुक्ति अवैधानिक एवं पश्चातवर्ती प्रोन्नतियां किसी महत्व का नहीं है। अपीलार्थी ने भी इसका प्रत्युत्तर दाखिल किया, यह कहते हुए कि उसके प्रारम्भिक नियुक्ति दैनिक-वेतन के आधार पर किया गया था और 13.2.1982 तक मास्टर रौल में सतत् बना रहा और बाद में निदेशक, स्वास्थ्य सेवाएं (देशी चिकित्सा) बिहार, पटना के आदेशों द्वारा उसकी सेवा को नियमित किया गया था। अपीलार्थी ने यह आधार भी लिया कि उसे काफी पहले 1982 में नियमित किया गया था और तब से वह सभी पारिणामिक लाभ प्राप्त कर रहा है, और तत्पश्चात् 20 वर्षों के उपरांत, उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका का निस्तारण करते समय, प्रत्यर्थीगण को **उमा देवी के मामले** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित मार्ग-निर्देशों का अनुपालन करने का निर्देश दिया और निर्णय के पैरा 53 में दिए गए निर्देश का अनुपालन करने को भी कहा।

4. बेहतर मूल्यांकन के लिए **उमा देवी के मामले (ऊपर)** में निर्णय के पैरा 53 के इसमें नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है:-

"58. एक पहलु को स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ अनियमित नियुक्तियों (अवैधानिक नियुक्तियां नहीं) जैसा कि एस॰ वी॰ नारायणप्पा, आर॰ एन॰

नन्जुन्दप्पा एवं बी॰ एन॰ नागराजन में स्पष्टीकृत किया गया है और उपरोक्त पैरा 15 में निर्दिष्ट किया गया है, विधिवत् रूप से योग्य व्यक्तियों को स्वीकृत रिक्त पदों पर सम्यक् रूप से कर दी गई हो परंतु कर्मचारीगण ने न्यायालयों या अधिकरणों के आदेशों में हस्तक्षेप के बगैर दस वर्षों या उससे अधिक तक लगातार रूप से कार्य किया हो। पूर्वोक्त निर्दिष्ट मामलों में इस न्यायालय द्वारा स्थापित सिद्धांतों के आलोक में और इस निर्णय के आलोक में ऐसे कर्मचारीगण की सेवाओं के नियमितीकरण के प्रश्न पर गुणावगुणों पर विचार करना होगा। उस संदर्भ में, भारत संघ, राज्य सरकारों एवं उनके उपकरण अनियमित रूप से स्वीकृत पदों पर दस वर्षों या इससे अधिक तक कार्य किया है, परन्तु न्यायालय या अधिकरण के आदेशों के आवरण के अधीन नहीं, की सेवाओं को नियमित करने के लिए एक एककालिक उपाय के तौर पर कदम उठाने चाहिए और यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि उन रिक्त स्वीकृत पदों, जिन्हें भरे जाने की आवश्यकता है, को भरने के लिए नियमित भर्त्तीयां कराई जाए जिन मामलो में अस्थायी कर्मचारीगण या दैनिक वेतन भोगियों को अभी नियोजित किया जा रहा है। इस तिथि से छः महीनों के भीतर इस प्रक्रिया को अनिवार्यतः गतिमान कर देना है। हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि नियमितीकरण, अगर कोई पहले कर दिया गया हो, परन्तु न्यायाधीन नहीं हो, को इस निर्णय के आधार पर पुनः खोलने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु संवैधानिक योजना के अनुसार सम्यक् रूप से नियुक्त नहीं किए गए व्यक्तियों के नियमितीकरण या स्थायी करने में संवैधानिक आवश्यकता का और उल्लंघन नहीं चाहिए।''

5. चूँकि मामला उक्त निर्णय के पैरा 53 के आलोक में अपीलार्थी के मामले पर विचार करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्दिष्ट किया गया है, अतः हम उक्त निर्देश के साथ हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं। तथापि, हम यह सम्परीक्षित करने के लिए बाध्य हैं कि प्रत्यर्थीगण के प्राधिकारी, अपीलार्थी के मामले पर विचार करते समय, इस तथ्य को ध्यान में रखेंगे कि अपीलार्थी ने लिखित कथन में स्पष्ट रूप से अभिवाक् किया है कि सुयोग्य उम्मीदवारों के नामों को अग्रसारित करने के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा रोजगार कार्यालय को भेजी गई अध्यपेक्षा के आधार पर, अपीलार्थी का नाम अन्यों के साथ-साथ रोजगार कार्यालय द्वारा भेजा गया था। तत्पश्चात, अपीलार्थी का साक्षात्कार किया गया और सफल घोषित किया गया एवं तत्पश्चात् उसे नियुक्ति दी गई थी। अपीलार्थी-याची को 1992 में कनिष्ठ चयन ग्रेड प्रदान किया गया था और दस वर्ष पूरे होने के उपरांत उसे कालबद्ध प्रोन्नति प्रदान की गई थी। ये सारे निर्णय 2000 में झारखण्ड राज्य के सृजन के पहले प्रत्यर्थीगण के प्राधिकारीगण द्वारा लिए गए थे। प्रत्यर्थीगण को इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि अपीलार्थी ने 20 वर्षों से अधिक लगातार रूप से कार्य किया। अपीलार्थी द्वारा दाखिल अभ्यावेदन के साथ इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति की तिथि से छः सप्ताह की एक अवधि के भीतर सचिव, स्वास्थ्य विभाग एक निर्णय लेगा।

6. पूर्वोक्त उपान्तरण और सम्परीक्षण के साथ, यह अपील निस्तारित की जाती है।

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

---

ekuuh; vftr dqekj flUgk] U;k;efr

शशी कुमार सिंह (3 में)

तबरेज आलम (11 में)

अजय कुमार राम (19 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य (सभी में)

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3, 11, 19 वर्ष 2009. 10 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

विद्युत अधिनियम, 1910—धाराएँ 21A एवं 22—नए संयोजन–परिसर के भूतपूर्व स्वामी/मकान मालिक के बकायों के कारण नए विद्युत संयोजन की मंजुरी हेतु आवेदन का अस्वीकरण–अभिनिर्धारित, वह न्याय के हित में होगा कि प्रत्यर्थी बोर्ड को एक महीने की अवधि के भीतर नए विद्युत संयोजन हेतु याची के दावे के गुणागुणों पर बिचार किया जाना चाजिए। (पैरा 9 एवं 10)

निर्णयज विधि.–1999(3) PLJR 222; 2008(4) JCR 768; 2006(3) SCC 101; (1995)2 SCC 648; 2008(10) SCC 720—Relied upon

अधिवक्तागण.–M/s M.A. Khan, Jawed Sultan, For the petitioner; M/s D.K.Pathak, Rahul Kumar, For the Respondent.

आदेश

धोबी मोहल्ला, डोरण्डा, पोस्ट ऑफिस एवं थाना डोरण्डा, जिला रॉची में अवस्थित होल्डिंग संख्या 17, प्लॉट संख्या 965, वार्ड संख्या 46 धारण किए हुए याची के वाणिज्यिक आबंटित परिसर, जिसे याची ने मो॰ आरिफ अहमद से किराए पर लिया है, को पृथक विद्युत संयोजन प्रदान करने हेतु आवश्यक शुल्क के साथ विद्युत संयोजन की मंजूरी के लिए आवेदन प्रपत्र को स्वीकार करने का निर्देश प्रत्यर्थी बोर्ड को देने वाले परमादेश की एक प्रकृति के यथोचित रिट/आदेश/निर्देश के निर्गतीकरण के लिए याचीगण ने इन रिट याचिकाओं को दाखिल किया है क्योंकि उक्त परिसर के तत्कालीन स्वामी/मकान–मालिक के बकायों के कारण प्रत्यर्थीगण ने विद्युत संयोजन के लिए याचीगण के आवेदन को स्वीकारने से इन्कार कर दिया है।

2. याची द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि भूतपूर्व स्वामी/मकान–मालिक के संबंध में विद्युत उपभोग के बकायों के आधार पर याची को नए विद्युत संयोजन के लिए याची के प्रदत्त आवेदन को अस्वीकारने में प्रत्यर्थीगण औचित्य पर नहीं थे।

3. याची के अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि विद्युत लाईन का पृथक संयोजन प्राप्त करने के लिए याची को मकान–मालिक की दायिता पूरा करने का दायी नहीं बनाया जा सकता और इस प्रकार अस्वीकरण प्रकटत: अवैधानिक, मनमाना था और वैधानिक स्वामी से किराए पर वाणिज्यिक परिसर को किराए पर लेने के लिए उसपर मकान–मालिक की दायिता को नहीं थोपा जा सकता।

4. अपने तर्क का समर्थन करने के लिए याची के अधिवक्ता ने **(1995)2 एस॰ सी॰ पृष्ठ 648** में यथा रिपोर्ट किए गए **इशा मार्बल्स बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड एवं एक अन्य** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय और अन्य संबंधित मामलों को निर्दिष्ट किया है और उनपर भरोसा किया है।

5. पूर्वोक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से बिल्कुल भिन्न है। इशा मार्बलस एवं संबंधित मामले एक ऐसा मामला था जहाँ परिसर पर क्रेता द्वारा स्वामित्व या अधिभोग प्राप्त किया गया था चूँकि यूनिट के भुतपूर्व स्वामियों, जिन्हें निगम से उधार ली गई विद्युत आपूर्ति का लाभ था, ने इन लाईन को प्राप्त करने के लिए सम्पत्ति को गिरवी रखा दिया था/आडमान कर दिया था। इन परिसरों के संबंध में पूर्वोक्त बकाया उत्पन्न हुए थे क्योंकि उन्होंने भुगतान करने में लापरवाही की थी और इसीलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि क्रेताओं पर वह दायिता अधिरोपित करना असंभव था जो उनके द्वारा उपगत नहीं हुई थी और उस समय प्रयोज्य प्रावधानों के अर्थ के भीतर उन्हें उपभोक्ता या अधिभोगी का दर्जा नहीं दिया जा सकता।

6. निर्दिष्ट एवं भरोसा किया गया एक अन्य मामला **2002(3) जे॰ सी॰ आर॰ पृष्ठ 368 (झारखण्ड)** में यथा रिपोर्ट किए गए **विजय कुमार तांतिया बनाम झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड** के मामले में इस न्यायालय की एक खण्डपीठ द्वारा दिया गया एक निर्णय है जिसमें इसी प्रकार के मुद्दे

पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने अवधारित किया कि विद्युत उपभोग के बकायों के लिए उपभोक्ता के उपभोग प्रभारो का भुगतान करने की दायिता उसके स्वयं के विद्युत संयोजन प्राप्त करने के लिए एक पूर्व शर्त के तौर पर अधिरोपित नहीं की जा सकती। इसी आदेश में निर्णय के पैरा-7 पर यह सम्परीक्षित किया गया है कि अगर बोर्ड को यह संदेह है कि नया आवेदन भुतपूर्व उपभोक्ता द्वारा तैयार किया गया है या भूतपूर्व उपभोक्ता एक नए रूप में सामने आया है तब ऐसी स्थिति में बोर्ड एक युक्तिसंगत आदेश पारित करके ऐसे पहलुओं की जांच करने की सदा स्वतंत्रता है और तद्नुसार एक स्वतंत्रता प्रदान की गई और पूर्वोक्त सम्परीक्षण की दृष्टि में मामले की जाँच करने का निर्देश दिया गया था।

7. याची के अधिवक्ता ने 1999(3) पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ पृष्ठ 222 और 2008(4) जे॰ सी॰ आर॰ पृष्ठ 768 को भी निर्दिष्ट किया है जो ग्रामीण वैद्युत संयोजन के संबंध में एक जनहित याचिका से उत्पन्न हुआ है जिसमें इच्छुक उपभोक्ताओं ने विद्युत संयोजनो के लिए आवश्यक निक्षेपों के साथ ऊर्जा का उपभोग करने हेतु आवेदन किया था।

8. चाहे जो भी स्थिति हो, प्रश्नाधीन मुद्दा अब res integra नहीं रह गया है और **2006 (13) एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 101** में रिपोर्ट किए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक हाल के निर्णय में निश्चयी रूप से निर्णीत हो चुका है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(1995)2 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 648** में यथा रिपोर्ट किए, गए **इशा मार्बल्स बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड एवं एक अन्य** के मामले और अन्य संबंधित मामलों पर भी विचार किया, और अवधारित किया कि उस मामले, अर्थात, दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड में अपीलार्थी द्वारा विद्युत ऊर्जा की आपूर्त्ति के निबंधनों एवं शर्तों के खण्ड 21A के अंत:स्थापन की दृष्टि में, ईशा मार्बल्स का मामला लागू नहीं होता। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-15 पर निम्नांकित रूप से अवधारित किया;

> "15. हम यह अनिवार्यत: सम्परीक्षित करते हैं कि ईशा मार्बल्स में निर्णय अपने आप में ही अधिसूचना द्वारा अंत:स्थापित निबंधनों एवं शर्तों के खण्ड-21-A की वैद्यता का उत्तर नहीं है। आपूर्त्ति अधिनियम की धारा 49 के अधीन लाईसेंसी या अपितु, विद्युत बोर्ड, विद्युत ऊर्जा की आपूर्त्ति के निबंधनों और शर्तों को निर्धारित करने का अधिकारी है। इसे उपलब्ध शक्ति के आलोक में, आपूर्त्ति अधिनियम की धारा 79(j) के संदर्भ में भी, यह नहीं कहा जा सकता कि विद्युत ऊर्जा की आपूर्त्ति की शर्तों एवं निबंधनों में खण्ड 21-A का अंत:स्थापन अपीलार्थी की शक्ति के बाहर है। यह केवल संविदात्मक भी नहीं है। इस न्यायालय ने हैदराबाद वनस्पति लिमिटेड बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड में अवधारित किया है कि विद्युत (आपूर्त्ति) की धारा 49 के अधीन विद्युत बोर्ड द्वारा अधिसूचित विद्युत की आपूर्त्ति के निबंधनों एवं शर्तें सांविधिक हैं और यह तथ्य कि बोर्ड द्वारा प्रत्येक उपभोक्ता के साथ व्यक्तिगत समझौता किया जाता है, आपूर्त्ति के निबंधनों एवं शर्तों को संविदात्मक नहीं बना देता। इस न्यायालय ने यह भी अवधारित किया है कि यद्यपि विद्युत बोर्ड एक वाणिज्यिक ईकाई नहीं है, परन्तु यह अपने प्रशुल्क का इस प्रकार विनियमन करने का अधिकारी है कि जिससे एक मुनासिब लाभ बना रहे ताकि आवश्यक गतिविधियो को चलाते रहने में यह सक्षम हो सके एक परिसर, जिसे आपूर्त्ति की गई है, बकायों की वसूली के संबंध में इसी प्रक्रिया में अगर उपक्रम के एक अन्तरिती से इसकी वसूली के लिए एक शर्त अंत:स्थापित की जाती है, तो स्पष्टत: ही इसे अनधिकृत या अयुक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। निस्संदेह, एक न्यायालय अभी भी इसे भारत के संविधान के निहित मौलिक अधिकारों के उल्लंघनकारी होने के तौर पर निरस्त करने में सक्षम हो सकता है। इस मामले में, उच्च न्यायालय ने यह कार्य नहीं किया है।''
>
> "34. विद्युत के संबंध में विधि प्रधानता इन दो अधिनियमों में निहित है:-
>
> (i) विद्युत अधिनियम: यह विद्युत को आपूर्त्ति और उपक्रमो की खरीद के संबंध में लाईसेंस प्रदान किए जाने का प्रावधान करता है। protective खण्डों को शामिल करते हुए यह विद्युत की आपूर्त्ति हेतु भी प्रावधान करता है।

(ii) आपूर्त्ति अधिनियम: यह राज्य विद्युत बोर्ड के गठन, ऐसे बोर्डो की शक्तियों एवं कर्तव्यों हेतु प्रावधान करता है।

"35. विद्युत अधिनियम की धारा 2 खण्ड (c) में एक 'उपभोक्ता' को इस प्रकार परिभाषित करती है:

''उपभोक्ता' का अर्थ एक ऐसे व्यक्ति से है जिसे एक लाईसेंस या सरकार द्वारा या इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन या जनता को ऊर्जा-आपूर्त्ति के व्यवसाय में संलग्न किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऊर्जा की आपूर्त्ति की जाती है, और इसमें ऐसा हर व्यक्ति शामिल है जिसका परिसर उस समय ऊर्जा प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए एक लाईसेंसी सरकार या ऐसे किसी अन्य व्यक्ति, संकर्मों से संयोजित हो।''

निस्संदेह, यह एक समावेशी परिभाषा है। इसके दो भाग है।

(i) वह व्यक्ति जिसे ऊर्जा की आपूर्त्ति की जाती है; और

(ii) यह अपने भीतर किसी ऐसे व्यक्ति को सम्मिलित करती है जिसके परिसरों में ऊर्जा प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए एक लाईसेंसी के संकर्मों से संपादित है।

"36. नियम 2(af) एक 'अधिभोगी' को निम्नांकित रूप से परिभाषित करता है:

''अधिभोगी'' का अर्थ परिसर के अधिभोग में स्वामी या व्यक्ति जहाँ ऊर्जा का इस्तेमाल होता है या इस्तेमाल किए जाने का प्रस्ताव है।''

"37. विद्युत अधिनियम की धारा 22 निम्नांकित रूप में है:

''**लाईसेंसी पर ऊर्जा आपूर्त्ति की बाध्यता.**–जहाँ एक लाईसेंसी द्वारा ऊर्जा आपूर्त्ति की जाती है, आपूर्त्ति के क्षेत्र के भीतर प्रत्येक व्यक्ति, लाईसेंस के निबंधनों और शर्तों द्वारा किसी सीमा तक अन्यथा प्रावधान किए जाने को छोड़कर, आवेदन करने पर, उसी प्रकार से आपूर्त्ति पाने का अधिकारी होगा जिस प्रकार से एक तत्सम आपूर्त्ति को लेकर समान परिस्थितियों में उसी क्षेत्र में कोई अन्य व्यक्ति अधिकारी होगी।''

दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड एवं एक अन्य बनाम एक्सेल बिल्डकोन प्राईवेट लिमिटेड एवं अन्य के मामले को **(2008)10 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 720** में यथा रिपोर्ट किया गया, में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ईशा मार्बल्स के मामले** को अलग से परखा और अवधारित किया कि जब तक की खण्ड 21-A में ऐसे वर्जन को चिन्हित करने वाली शर्त की वैधानिकता/वैधता, जो चुनौती के अधीन थी, निर्णीत नहीं की जाती, शर्तरहित स्थगन विधिक रूप से असमर्थनीय था। तथापि, 85 लाख रुपए के कुल बकायों में से 35 लाख रुपए जैसी बड़ी रकम के जमा करने पर इसने विद्युत के संयोजन की अनुमति दे दी।

9. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों और स्थापित विधि पर विचार करके, यह न्याय के हित में होगा कि नए विद्युत संयोजन के लिए प्रत्यर्थी बोर्ड ने याची के दावे के गुणागुणों पर विचार करे और मामले में अगर वह प्रश्नाधीन मकान-मालिक/स्वामी, जिसके विरूद्ध कतिपय बकाया है, का एक रूप या नया अवतार नहीं है या उससे संबंधित नहीं है तब नए विद्युत संयोजन के लिए इसपर इसके स्वयं के गुणावगुणों के आधार पर विचार किया जा सकता है।

10. यह रिट याचिका तद्नुसार अनुज्ञात की जाती है और इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति की तिथि से एक महीने की अवधि के भीतर एक आख्यानक आदेश द्वारा मामले के स्वयं के गुणवगुणों पर विचारित किए जाने के लिए इसे महाप्रबंधक को प्रतिप्रेषित किया जाता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o çk'kkr dekj] U;k;efrZx.k

रमन लोहरा

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखण्ड)

दां॰ अपील सं॰ 28 वर्ष 2000(R). 22 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 289 वर्ष 1993 में श्री तारकेश्वर प्रसाद, सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 6.8.1999 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–अपीलार्थी को इस संदेह के आधार पर दोषसिद्ध किया गया कि उसको घटना के पश्चात् अपने घर से अनुपस्थित पाया गया था–दोहरे हत्या का मामला–अपीलार्थी लगभग 15 वर्षों से अभिरक्षा में कष्ट झेल रहा था–अभिनिर्धारित, चूंकि साक्षीगण अपने साक्ष्य में कहीं भी यह कथन नहीं किया है कि अपीलार्थी ने दोनों मृतक की शरीर पर कोई चोटें पहुँचायी थी इसलिए मात्र संदेह पर उसे दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है–वह संदेह का लाभ पाने योग्य है–दोषमुक्त किया गया। (पैरा 7 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s Ram Kishore Prasad, Pradeep Kumar, Praful Kumar Jojo, For the Appellant; Mr. I.N. Gupta, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 289/93 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया एवं उसको आजीवन कारावास भोगने का दण्ड दिया।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला सूचनादाता अ॰ सा॰ 5 के फर्दबयान के अनुसार यह है कि 23.4.1992 को अपीलार्थी, उसका पिता रतिया लोहरा एवं पत्नी करिओ देवी अपने घर में थी। 24.4.1992 को लगभग 3 बजे अपरान्ह को उसने यह देखा कि मृतका रतिया लोहरा का घर बाहर से बन्द था। यह भी कथन किया गया है कि बाद में सूचनादाता एवं अन्य ग्रामीणों ने दरवाजा खोला और घर के अन्दर प्रवेश किया और उन्होंने यह पाया कि रतिया लोहरा, मृतको में से एक अचेत की दशा में जमीन पर पड़ी हुई थी जबकि एक दूसरा मृतक अर्थात्, करियो देवी एक चटाई पर मरी पड़ी थी। यह आगे कथन किया जाता है कि सूचनादाता एवं अन्य ग्रामीणों ने चोट पायी थी तथा तत्पश्चात् उन्हें अस्पताल ले जाया गया था जहां उपहत अर्थात्, रतिया लोहरा की भी मृत्यु हो गयी। यह अभिकथन किया जाता है कि रमन लोहरा घर में नहीं पाया गया। यह आगे अभिकथन किया जाता है कि मृतक करियो देवी जो अपीलार्थी की पत्नी थी, उस समय गर्भवती थी और अपीलार्थी ने यह आशंका किया कि वह उसके छोटे भाई के साथ लैगिंक सम्बन्ध से गर्भवती हो गयी थी और उसके कारण अपीलार्थी तथा मृतक के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध हो गये थे।

3. पूर्वोक्त फर्दबयान के आधार पर, गुमला पी॰ एस॰ केस सं॰ 28 वर्ष 1992 दिनांकित 24.4.1992 के माध्यम से एक मामला संस्थित किया गया और पुलिस ने अन्वेषण प्रारम्भ किया। अन्वेषण पूरा करने के पश्चात्, पुलिस ने अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया और उसके आधार पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए उसके विरूद्ध संज्ञान लिया गया था। यह प्रतीत होता है कि चूंकि मामला अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, इसलिए मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया। अपीलार्थी के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित किया गया था और उसका उसको स्पष्टीकरण दिया गया जिसका उसने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किये जाने का दावा किया।

तत्पश्चात, अभियोजन ने अपने मामले का समर्थन करने के लिए एक साथ दस साक्षियों की परीक्षा की और एक साक्षी को न्यायालय साक्षी के रूप में भी परीक्षा की गयी जिसने पोस्टमार्टम रिपोर्ट साबित किया है। आगे यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों की ओर से अधिवक्ता को सुनने के पश्चात्, अवर न्यायालय ने यथापूर्वोक्त अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया था और दण्ड दिया था, जिसके विरूद्ध अपील दाखिल की गयी है।

4. अवर न्यायालय के निर्णय की आलोचना करते समय, श्री राम किशोर प्रसाद, अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि वर्तमान मामले में, अपीलार्थी के विरूद्ध कोई साक्ष्य नहीं है। तद्नुसार, वह यह तर्क देते हैं कि मात्र संदेह पर आक्षेपित निर्णय पारित किया गया था जिसे इस अपील में कायम नहीं रखा जा सकता है। वह अंत में यह तर्क देते हैं कि अपीलार्थी लगभग 15 वर्षों से कारागार में है।

5. विद्वान अतिरिक्त लो॰ अ॰ श्री आई॰ एन॰ गुप्ता यह तर्क देते हैं कि यह दोहरे हत्या का एक मामला है और यह साक्ष्य में आया है कि अपीलार्थी पूर्ववर्ती रात्रि में अपने घर में उपस्थित था लेकिन अगले दिन घर बाहर से बन्द पाया गया था और अपीलार्थी को अनुपस्थित पाया गया था, जो यह संदेह पैदा करता है कि उसने अपराध कारित किया था और, इसलिए, अवर न्यायालय ने पूर्वोक्त अपराध के लिए अपीलार्थी को उचित रूप से दोषसिद्ध एवं दण्डित किया है।

6. यह विधि का सुस्थापित सिद्धान्त है कि संदेह जितना भी प्रबल हो, यह अभियुक्त के दोष को साबित करने के लिए साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता है। अभियोजन से तर्कपूर्ण साक्ष्य के जरिये प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य से मामले को साबित करने की अपेक्षा की जाती है। विधि के पूर्वोक्त स्थापित सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए, हमने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परीक्षा किया है। वर्तमान मामले में, अ॰ सा॰ 1, 2, 3, 4 एवं 5 (सूचनादाता) तथ्य के साक्षीगण हैं जिन लोगों ने मात्र यह कथन किया है कि घटना के अगले दिन, शाम को लगभग 3:00 बजे अपरान्ह में उन लोगों ने मृतक के घर में प्रवेश किया और यह पाया कि मृतक, रतिया लोहरा घायल दशा में जमीन पर पडी हुई थी जब कि एक दूसरा मृतक करियो देवी एक चटाई पर मरी पड़ी हुई थी। उन लोगों ने अपने साक्ष्य में यह कथन नहीं किया है कि पूर्वोक्त दो मृतकों के शरीर पर ऐसी चोट कारित किया है। किन्तु, उन्होंने अपीलार्थी पर संदेह उसने किया है, जो मृतक करियो देवी का पति रहा था क्योंकि अपीलार्थी एवं करियो देवी के बीच संबंध अच्छा नहीं था कारण कि अपीलार्थी का विचार यह है कि करियो देवी का उसके भाई के साथ लैंगिक सम्बन्ध है।

7. अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्य के परिशीलन से, हम पाते हैं कि साक्षियों ने अपने साक्ष्य में कहीं भी यह कथन नहीं किया है कि अपीलार्थी ने मृतक की शरीर पर कोई चोट किया था। मात्र इसलिए क्योंकि अपीलार्थी घर में मौजूद नहीं पाया गया, यह प्रदर्शित नहीं करता है कि उसने पूर्वोक्त दो मृतकों की हत्या कारित किया है।

8. पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचारकर, हम पाते हैं कि अवर न्यायालय का निष्कर्ष मात्र उस संदेह पर आधारित है, जो हमारे विचार में, सही नहीं है। अतएव, हमारे विचार में, अपीलार्थी संदेह के लाभ के योग्य है।

9. परिणामतः, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और अवर न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी को उसके विरूद्ध लगाये गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले श्री राम किशोर प्रसाद द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि अपीलार्थी अभी भी अभिरक्षा में है, इसलिए, अपीलार्थी को तुरंत निर्मोचित किये जाने का निर्देश जाता है यदि किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

महादेव कुमार चौबे

बनाम

भारत कोकिंग कोल लि॰ एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6625 वर्ष 2007. 19 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति–विलम्ब–अनुकम्पा पर नियुक्ति के लिए दावा दाखिल करने में दस महीने का विलम्ब–विलम्ब अनियंत्रित था जो याची के हाथों में नहीं था–कोई विलम्ब किये बिना याची के दावे पर विचार करने का निर्देश दिया गया।

(पैरा 2 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Ajit Kumar, For the Petitioner; Mr. Anoop Kr. Mehta, For the B.C.C.L.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका मुख्यत: इस कारण से दाखिल की गयी है कि प्रत्यर्थीगण मात्र इस आधार पर याची को अनुकम्पा पर नियुक्ति प्रदान नहीं कर रहे हैं कि वर्तमान याची के पिता की मृत्यु की तारीख से अठारह महीने के भीतर, आवेदन वर्तमान याची द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था, अन्यथा कोई निरर्हता वर्तमान याची के साथ जुड़ी हुई नहीं रही है।

2. याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि, वास्तव में, वर्तमान याची की ओर से कोई स्वैच्छिक विलम्ब नहीं हुआ है। विधि के कार्य द्वारा, उसे अनुकंपा नियुक्ति हेतु आवेदन करने से रोका गया था। वर्तमान याची के विरूद्ध संस्थित किये गये, एक मिथ्या मामले के आधार पर 30 जून, 2004 को उसे अनुचित रूप से गिरफ्तार किया गया था, जिसका परिणाम दिनांकित 14 अगस्त, 2006 के आदेश के माध्यम से गुणागुणों पर ससम्मान दोषमुक्ति हुआ। कथित आदेश वर्तमान याचिका के ज्ञाप का परिशिष्ट-2 है। अतएव, इस अकल्पित और अनियंत्रित कारणो से, जो याची के हाथो में नहीं था, वह अठारह महीने के अन्दर आवेदन नहीं कर सकता था। यद्यपि, दिनांक 7 नवम्बर, 2006 को वर्तमान याची द्वारा एक आवेदन पत्र प्रस्तुत किया गया है। अतएव, वास्तव में, दिनांक 14 अगस्त, 2006 के आदेश के माध्यम से परिरोध से वर्तमान याची को निर्मोचित करने वाले वर्तमान याचिका के ज्ञाप के परिशिष्ट-2 में आदेश को देखते हुए कोई विलम्ब नहीं हुआ है। मामले के इस पहलू का प्रत्यर्थियों द्वारा उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है और, अतएव, मामले को आवेदन प्रस्तुत करने में विलम्ब के आधार पर विचार किये बिना स्वयं इसके गुणागुण पर नवीन विनिश्चय करने के लिए सम्बन्धित प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को प्रतिप्रेषित किया जा सकेगा। यह भी याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया जाता है कि राष्ट्रीय कोयला मजदूरी करार के खंड 9.30 के अधीन, मृतक कर्मचारी के विधिक वारिस की अनुकम्पा पर नियुक्ति के लिए एक प्रावधान है, यदि कर्मचारी की मृत्यु कार्यावधि में हो गयी हो। याची के पिता की मृत्यु 6 जून, 2004 को प्रत्यर्थी सं॰ 1 की सेवा में रहते समय ही हो गयी थी।

3. मैंने प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने मुख्य रूप से यह तर्क दिया है कि अनुकम्पा पर नियुक्ति प्राप्त करने के लिए मात्र आवेदन प्रस्तुत करने में विलम्ब के आधार पर वर्तमान याची के मामले को अस्वीकार कर दिया गया है। वास्तव में, आवेदन कर्मचारी की मृत्यु की तारीख से अठारह महीनों के भीतर प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिए जबकी वर्तमान मामले के तथ्यो में, आवेदन लगभग अठारह महीने पश्चात् वर्तमान याची द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अतएव, दस महीने के विलम्ब के कारण, याची के मामले पर विचार नहीं किया गया है।

4. दोनो पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने तथा मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करने पर, यह प्रतीत होता है:–

(i) वर्तमान याची के पिता, जो प्रत्यर्थीगण के अधीन कार्य कर रहा था, की मृत्यु 6 जून, 2004 को हो गयी।

(ii) याची को एक मिथ्या मामले में आलिप्त किया गया और 30 जून, 2004 को अभिरक्षा में लिया गया था। वर्तमान याची के विरूद्ध लगाये गये आरोपों को साबित नहीं किया गया था एवं दिनांक 14 अक्टूबर, 2006 के आदेश के माध्यम से ससम्मान दोषमुक्ति किया गया था। कथित आदेश वर्तमान याचिका के ज्ञाप का परिशिष्ट–2 है।

(iii) अतएव, उसके पिता की मृत्यु के ठीक बाद, वर्तमान याची की पत्नी की मृत्यु 28 जून, 2004 को हो गयी और याची को सभी आरोपो से दोषमुक्त कर दिया गया देखें, आदेश दिनांकित 14 अगस्त, 2006 एवं ज्यों ही उसको दोषमुक्त किया गया त्यों ही उसके द्वारा एक आवेदन 27 नवम्बर, 2006 को दाखिल किया गया। अतएव, वर्तमान याची के नियंत्रण से परे कारणों एवं परिस्थितियों से, आवेदन को प्रस्तुत करने में कुछ विलम्ब हुआ है जो कि याची के कारण नहीं है। याची को आवेदन दाखिल करने में सुस्त होना नहीं कहा जा सकता है और न ही वर्तमान याची की ओर से कोई उपेक्षा हुई है।

(iv) जब कभी भी किसी परोपकारी योजना का निर्वचन किया जाना पड़ता है या उसको लागू किया जाना पड़ता है तब सम्बन्धित प्राधिकारी को इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इसका निर्वचन उदारवादी रूप में, विशेषकर राष्ट्रीय कोयला मजदूरी करार के खंड 9.3.0 को देखते हुए किया जाना चाहिए। प्रत्यर्थीगण के अनुसार भी, वर्तमान याची में कोई अन्य दोष नहीं है।

5. पूर्वोक्त तथ्यों एवं कारणों के एक संचयी प्रभाव के रूप में, मैं एतद् द्वारा प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा लिये गये निर्णय दिनांकित 10/22 नवम्बर, 2006 (वर्तमान याचिका के ज्ञाप के परिशिष्ट–5) को अभिखंडित एवं अपास्त करता हूँ और आवेदन प्रस्तुत करने में विलम्ब पर विचार किये बिना अनुकम्पा नियुक्ति के लिए वर्तमान याची के मामले पर विचार करने के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 2, निदेशक (कार्मिक), भारत कोकिंग कोल लि॰, कोयला भवन, धनबाद को निर्देश देता हूँ। यदि याची को नियुक्त किये जाने के लिए अन्यथा पात्र एवं सक्षम पाया जाता है तो उसको नियुक्ति यथा संभव शीघ्रता से तथा यथा व्यवहारिक रूप से प्रदान की जायेगी यह इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति की तारीख से सोलह सप्ताहों की एक कालावधि के अन्दर अधिमानी तौर पर प्रदान किया जायेगा।

6. रिट याचिका पूर्वोक्त सम्प्रेक्षणों/निर्देशों की दृष्टि में निस्तारित की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ i!lkn] U;k;efr!

गया राम उर्फ गया राम साह

बनाम

मेसर्स बी॰ सी॰ सी॰ एल॰, धनबाद इसके अध्यक्ष-सह-प्रबन्ध निदेशक के माध्यम से एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3594 वर्ष 2007. 13 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

(क) बिहार पेंशन नियमावली, 1950—नियम 58—स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति–याची ने बिहार सरकार के जल संसाधन विभाग में निर्धारित कर्म स्थापन में सेवा किया और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना को पसंद किया और बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ की सेवा से निवृत्त हो गया–अभिनिर्धारित याची नियमित पेंशन का हकदार नहीं है। (पैरा 6 एवं 8)

(ख) सेवा विधि–नियुक्ति–अनुकम्पा के आधार–याची का पुत्र अनुकम्पा पर नियुक्ति का हकदार नहीं है क्योंकि कर्मचारी की मात्र दोनों आंखो की दृष्टि खो गयी है और उसकी मृत्यु दैनिक कार्य के क्रम में नहीं हुई और स्वेच्छया सेवानिवृत्ति को भी स्वीकार किया था। (पैरा 6 से 9)

निर्णयज विधि.–2005 (3) JLJR 38 (FB)—Discussed.

अधिवक्तागण.–M/s M.K. Mishra, Sanjay Prasad, For the Petitioner; Mr. S.K.Verma, For the Respondents; Mr. S.P. Roy, For the State of Bihar; Mr. S. Srivastava, For the Accountant General.

आदेश

याची को जल संसाधन विभाग, बिहार सरकार के निर्धारित कर्म स्थापना में 16.12.1959 को नियुक्त किया गया था जहां उसने 17.10.1977 तक कार्य किया। 18.10.1977 को उसे उत्तरी कोइल निर्माण खंड-1 से भारमुक्त कर दिया गया था और तदुपरि, उसको बी॰ सी॰ सी॰ एल॰, धनबाद में डम्पर ऑपरेटर के तौर पर नियुक्त किया गया था। याची का आगे मामला यह है कि जब वह बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के नियोजन के अधीन था तब उसके दोनों आंखों में कुछ परेशानी पैदा हो गयी, जिसके परिणामस्वरूप, उसको वी॰ आर॰ एस॰ लेने हेतु विवश किया गया था। तदनुसार, उसे वी॰ आर॰ एस॰ योजना के अधीन 25.6.2003 को सेवानिवृत किया गया था। तत्पश्चात् याची ने अपनी सेवा निवृत्ति सम्बन्धी प्रसुविधा को निर्मोचित करने के लिए बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के प्राधिकारियों से कहा और उसके आश्रितों में से एक को रोजगार देने के लिए प्रार्थना किया क्योंकि उसने ड्यूटी के अनुक्रम में अपने नेत्र की दृष्टि खो दी थी लेकिन प्राधिकारी ने निवेदन पर कोई भी ध्यान नहीं दिया और, इसलिए, उसने एक रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 4349 वर्ष 2006 दाखिल किया जिसके द्वारा सेवानिवृत्ति सम्बन्धी देयों का संदाय करने के लिए तथा याची के आश्रित को रोजगार देने के लिए बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के प्राधिकारियो को निर्देश देने के लिए प्रार्थना की गयी और सेवानिवृत्ति संबंधी प्रसुविधा का भुगतान करने के लिए झारखंड सरकार को निर्देश देने के लिए भी प्रार्थना की गयी जो झारखंड राज्य में उसके द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं के लिए उसको संदेय है। कथित रिट याचिका का निपटारा सम्बन्धित प्राधिकारियों के समक्ष एक ब्यौरेवार अभ्यावेदन दाखिल करने के लिए याची को निर्देश देकर किया गया ताकि प्राधिकारीगण मामले में निर्णय ले सकें। तदुपरि, याची ने झारखंड के प्राधिकारी तथा बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। झारखंड राज्य तथा बिहार राज्य द्वारा सेवानिवृत्ति सम्बन्धी देयो के संदाय से सम्बन्धित याची का दावा इस आधार पर नामंजूर कर दिया गया कि याची पेंशनी प्रसुविधा की हकदार नहीं था क्योंकि वह निर्धारित कर्म स्थापन के रोजगार के अधीन था और कथित आदेश की संसूचना याची को दी गयी, देखें, पत्र सं॰ 3750 दिनांकित 21.12.2006 (परिशिष्ट-4)। इसी प्रकार, याची की प्रार्थना को उसमें यह अभिनिर्धारित करने वाले परिशिष्ट 3 में यथा अन्तर्विष्ट एक आदेश के अधीन बी॰ सी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के प्राधिकारी द्वारा भी नामंजूर किया गया कि याची को चूंकि संपूर्ण प्रसुविधा प्रदान की गयी है जिसका वह बी॰ आर॰ एस॰ की स्कीम के अधीन हकदार था, इसलिए वह किसी और प्रसुविधा का हकदार नहीं है।

2. उन आदेशो से व्यथित होने के कारण, इस रिट याचिका को 25.6.2003 से 1.5.2006 तक की कालावधि के लिए सेवानिवृत्ति सम्बन्धी प्रसुविधा प्रदान करने के लिए बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के प्राधिकारी को निर्देश देने के लिए क्योंकि याची को समयपूर्व रूप से सेवानिवृत्त होने के लिए विवश किया गया और 16.12.1959 से अक्टूबर, 1977 तक की कालावधि के लिए सेवानिवृत्ति सम्बन्धी प्रसुविधा प्रदान करने हेतु झारखंड राज्य/बिहार राज्य को निर्देश देने के लिए जिस कालावधि के दौरान याची ने जल संसाधन विभाग, बिहार राज्य/झारखंड के अधीन अपनी सेवा प्रदान की थी तथा याची के आश्रित को रोजगार देने का उन्हें निर्देश देने के लिए भी उसमें प्रार्थना करते हुए दाखिल किया गया है।

3. एक प्रति-शपथपत्र बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ की ओर से दाखिल किया गया है जिसमें यह कथन किया गया है कि स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति की मांग करने पर, याची को बी॰ आर॰ एस॰ की योजना के अधीन निवृत्त होने को एवं उन सभी प्रसुविधाओं की अनुज्ञा दी गयी थी जिनका याची उस योजना के

अधीन हकदार है, पहले ही प्रदान किया गया है और यह कि चूंकि याची ने स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति की मांग की, इसलिए वह अनुकम्पा पर नियुक्ति की योजना के अधीन बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के स्थापन में अपने आश्रित को नियुक्त करवाने का हकदार नहीं है।

4. झारखंड राज्य द्वारा दाखिल किये गये प्रति-शपथपत्र के अनुसार, याची पेंशनी प्रसुविधा का हकदार नहीं है क्योंकि याची को सारभूत एवं स्थायी पद पर कभी नहीं नियुक्त किया गया था, वल्कि उसको एक निर्धारित कर्म स्थापन में नियोजित किया गया था और ऐसे रूप में, बिहार पेंशन नियमावली के नियम 58 को ध्यान में रखते हुए, याची पेंशनी प्रसुविधा का हकदार नहीं है।

5. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता यह तर्क देते हैं कि **राम प्रसाद सिंह बनाम झारखंड राज्य [2005 (3) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 38 (पूर्ण न्यायपीठ)** के मामले में दिये गये निर्णय को ध्यान में रखते हुए, निर्धारित कर्म स्थापन के कर्मचारी भी सेवानिवृत्ति सम्बन्धी प्रसुविधा का हकदार है और उनकी मृत्यु के पश्चात्, उनके वारिसगण/आश्रितगण मृत्यु सह सेवानिवृत्ति सम्बन्धी प्रसुविधाओं का दावा करने का हकदार हैं, जैसे कि, पेंशन/कुटुम्ब पेंशन, उपदान, अवकाश भुनाई इत्यादि और अतएव, आदेश जिसके अधीन प्रत्यर्थी-राज्य के प्राधिकारियों ने उस कालावधि के लिए सेवानिवृत्ति सम्बन्धी देयों के संदाय के लिए याची के दावे को नामंजूर कर दिया जब उसने जल संसाधन स्थापन में कार्य किया, अवैधानिक, अमान्य और अपास्त किये जाने योग्य है।

6. कथित विनिश्चिय की जांच करने पर यह कभी नहीं प्रतीत होता है कि न्यायाधीशों ने अनर्हित शब्दो में यह कभी भी यह अभिनिर्धारित नहीं किया है कि निर्धारित कर्म स्थापन के कर्मचारी सेवानिवृत्ति सम्बन्धी प्रसुविधा का हकदार है वल्कि इसमें नीचे यह अभिनिर्धारित किया गया है:-

> ''नियमित वेतनमान में एक पद के विरूद्ध कार्य करने वाले निर्धारित कर्म स्थापन के कर्मचारीगण अपनी सेवानिवृत्ति पर और उसकी मृत्यु के पश्चात्, उनके वारिसगण/आश्रितगण मृत्यु सहित सेवानिवृत्ति सम्बन्धी प्रसुविधाओं का दावा करने के हकदार है जैसे कि जी॰ पी॰ एफ॰ और सामूहिक बीमा रकम से पृथक पेंशन/कुटुम्ब पेंशन, उपदान, अवकाश भुनाई इत्यादि, यदि वह अन्यथा पेंशन, उपदान एवं अवकाश भुनाई को अर्जित करने के लिए अपेक्षित अर्हता कालावधि को पूरा करता हो।''

7. अतएव, यह सुव्यक्त है कि न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि निर्धारित कर्म स्थापन के कर्मचारी प्रसुविधा के हकदार है परंतु यह तब जबकि उन्होंने नियमित एक वेतनमान में पद के विरूद्ध कार्य किया है और यह कि अन्यथा वे पेंशन, उपदान एवं अवकाश भुनाई अर्जित करने के लिए अपेक्षित अर्हता कालावधि को पूरा करते हैं लेकिन यहाँ, वर्तमान मामले में, याची इस मामला लेकर कभी भी नहीं आया था की याची ने नियमित वेतनमान में एक पद के विरूद्ध कार्य किया था और उसके अतिरिक्त, वित्त विभाग द्वारा निर्गत दिनांक 18.2.1974 ज्ञाप सं॰ पी॰ सी॰ पेन 1044/70-1050 एफ॰ में यथा अन्तर्विष्ट आदेश के अधीन, यदि सरकारी सेवक ने उसके स्वयं के आवेदन के आधार पर स्वायत्त निकाय (सार्वजनिक उपक्रमों को सम्मिलित कर) में नियुक्ति के लिए चयन किया, तो अंतरण लोक हित में होना नहीं समझा जाना चाहिए और सरकार किसी सेवानिवृत्ति सम्बन्धी प्रसुविधाओं का संदाय करने के लिए तथा सरकार के अधीन प्रदान की गयी सेवा की कालावधि तक अवकाश को आगे बढ़ाने के लिए किसी दायित्व को नहीं स्वीकार करेगा। यह झारखंड राज्य का विशिष्ट आधार हो रहा है कि याची द्वारा किये गये अनुरोध पर, याची को 18.10.1977 को भारमुक्त कर दिया गया और, अतएव, ऊपर निर्दिष्ट किये गये परिपत्र के निबंधनो में याची झारखंड राज्य से या बिहार राज्य से किसी भी पेंशनी प्रसुविधा को प्राप्त करने का हकदार नहीं है।

8. इसी प्रकार, याची अपने दोनो नेत्रों की दृष्टि खोने के कारण विकलांग हो जाने पर अपने आश्रित को रोजगार दिलाने का भी हकदार नहीं है क्योंकि याची ने स्वयं स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति चाही थी और ऐसे रूप में याची के आश्रित अनुकम्पा पर नियुक्ति की योजना के अधीन नियुक्ति प्राप्त करने का हकदार नहीं है।

9. तद्नुसार, मुझे इस आवेदन में कोई गुणावगुण नहीं मिलता है। इस प्रकार, यह खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ i!lkn] U;k;efr!

नूतन लकरा

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 661 वर्ष 2007. 4 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

(क) सेवा विधि–नियुक्ति–अनुकम्पा के आधार–याची के पति की मृत्यु मलेरिया से हो गयी–सरकारी ज्ञाप सं॰ 5(48)09/2003, रांची दिनांकित 15.6.2004 ने पारा मिलिटरी बल के उन कार्मिको की विधवाओं/आश्रितों को रोजगार देना अधिकथित किया जिन्होंने सीमा पर या आतंकवादी क्रिया-कलाप में मुठभेड़ करते समय अपनी जान दे दी–अनुकम्पा के आधार पर याची को रोजगार का प्रत्याख्यान किया गया क्योंकि उसके पति की मृत्यु मलेरिया से हो गयी थी। (पैरा 5)

(ख) सेवा विधि–अनुकम्पा पर नियुक्ति–सरकारी ज्ञाप सं॰ 5(48)09/2003, रांची दिनांकित 15.6.2004–अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति की प्रार्थना मात्र स्कीम के अनुसार ही विचार की जा सकती है–इस प्रकार, योजना से परे अनुकंपा पर नियुक्ति करने का कोई विवेकाधिकार किसी प्राधिकारी के पास शेष नहीं बचा है। (पैरा 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Sanjeev Kumar Mishra, For the Petitioner; M/s M.S. Akhtar, A.K. Mehta, For the State.

आदेश

याची का मामला यह है कि उसके पति जयंत लाकरा को जब धूबिन (आसाम) के भारत-बंगलादेश सीमा क्षेत्र में सीमा सुरक्षा बल की 112 बटालियन में एक कॉन्स्टेबल के तौर पर तैनात किया गया था तभी 25.3.2000 को मलेरिया से उसकी मृत्यु हो गयी। तदुपरि याची का एक नाबालिग बच्चा होने के कारण उसने प्रबल वित्तीय समस्या का सामना करना प्रारम्भ कर दिया और, अतएव, याची ने अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने के लिए सीमा सुरक्षा बल के प्राधिकारी के समक्ष आवेदन किया। याची द्वारा ऐसा निवेदन किये जाने पर, सीमा सुरक्षा बल के प्राधिकारी ने ज्ञाप सं॰ 5 (48) 09/2003, रांची दिनांकित 15.6.2004 (परिशिष्ट-3) में यथा अन्तर्विष्ट संकल्प के निबंधनों में अनुकंपा पर नियुक्ति के मामले में आवश्यक कार्रवाई करने के लिए मुख्य सचिव, झारखंड सरकार के समक्ष याची के आवेदन को प्रेषित किया, जिसमें सीमा सुरक्षा बल इत्यादि के समान सशस्त्र बलों के सदस्यों की विधवाओं/आश्रितों को रोजगार देने के लिए पॉलिसी विनिश्चय लिया गया है जिन्होने देश की सेवा में अपना जीवन दे दिया और उस प्रभाव की सूचना याची को दी गयी थी लेकिन जब इस सम्बन्ध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया, तब याची ने मुख्य सचिव, झारखंड सरकार, प्रत्यर्थी सं॰ 2 के समक्ष अभ्यावेदन किया लेकिन वह भी प्राधिकारी को प्रभावित नहीं किया अतएव, यह रिट आवेदन संकल्प दिनांकित 15.6.2004 (परिशिष्ट 3) के निबन्धनों में अनुकंपा के आधार पर याची को उपयुक्त रोजगार देने के लिए प्रत्यर्थी को निर्देश देने के लिए एक प्रार्थना के साथ दाखिल किया गया।

2. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि ज्ञाप सं॰ 5(48)09/2003, रांची दिनांकित 15.6.2004 (परिशिष्ट 3) में यथा अन्तर्विष्ट संकल्प के अधीन झारखंड

सरकार ने पारा मिलिटरी बलों के कार्मिकों की विधवा/आश्रितों को रोजगार देने के लिए एक निर्णय लिया है जिन्होंने सीमा पर अपने कर्तव्यों का पालन करते समय या आतंकवादी क्रिया-कलाप सम्बन्धी लड़ाई में अपना जीवन दे दिया और जब याची का पति की मृत्यु उस समय हो गयी, जब उसको सीमा सुरक्षा बल के कॉन्स्टेबल के तौर पर तैनात किया गया था, तब सीमा सुरक्षा बल के प्राधिकारी ने याची को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने की सिफारिश की क्योंकि वह सरकार के कथित संकल्प के निबन्धनों में नियुक्त किये जाने के लिए स्वयं को हकदार बनाने वाले सभी मानदंडो को पूरा कर रही थी, लेकिन प्रत्यर्थी ने इस सम्बन्ध में कोई विनिश्चय नहीं लिया है।

3. तथापि, एक प्रति-शपथपत्र प्रत्यर्थी सं॰ 3 की ओर से दाखिल किया गया है जिसमें यह कथन किया गया है कि चूंकि याची के पति की मृत्यु 25.3.2000 को मलेरिया से हो गयी, इसलिए याची अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किये जाने का हकदार नहीं है क्योंकि पूर्वोक्त संकल्प के अधीन लिया गया विनिश्चिय 15.11.2000 से प्रभावकारी बनाया जाना है।

4. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता यह तर्क देते हैं कि चूंकि संकल्प (परिशिष्ट-3) के अधीन विनिश्चय परिवार के पोषणकर्ता की मृत्यु के आधार पर कुटुम्ब द्वारा सामना की जा रही परेशानी को दूर करने के लिए लिया गया है इसलिए इसके उपबंध का यथावत् रूप से अनुपालन नहीं किया जा सकता है वस्तुतः इसको शाब्दिक तौर पर अर्थान्वयन किये जाने की आवश्यकता पड़ती है और अतएव, तारीख अर्थात् 15.11.2000 जब से संकल्प प्रभावकारी बनाया गया, के अन्तर्गत उस कालावधि को भी सम्मिलित करना चाहिए जिसके दौरान अनुकम्पा पर नियुक्ति के लिए आवेदन पत्र लम्बित था और इसलिए प्राधिकारी को याची की नियुक्ति के मामले में विनिश्चय लेने का निर्देश दिया जाय।

5. स्वीकार्यतः, झारखंड सरकार ने परिशिष्ट 3 में यथा अन्तर्विष्ट संकल्प के अधीन एक पॉलिसी निर्णय लिया है जिसके द्वारा सशस्त्र बलों के सदस्यों की विधवा। आश्रितगण, जिन्होंने सीमा पर कर्तव्य का निर्वहन करते समय या आतंकवादी क्रियाकलापो में मुठभेड़ करने में अपना जीवन दे दिया है, अन्य मानदंड को पूरा करने पर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति प्रदान की जानी है और कथित विनिश्चिय 15.11.2000 से प्रभावकारी बनाया जाना होता है जबकि याची के पति की मृत्यु झारखंड राज्य द्वारा ऐसा निर्णय लेने के पूर्व 25.3.2000 को हो गयी और ऐसे रूप में, याची को अनुकंपा आधार पर नियुक्ति का दावा करने के लिए कोई अधिकार नहीं है क्योंकि यह सुस्थापित हो गया है कि प्रत्यर्थी से मात्र इसके द्वारा विरचित की गयी स्कीम के अनुसार ही अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए प्रार्थना पर विचार करने की अपेक्षा की जाती है और ऐसे रूप में असम्बद्ध स्कीम के अधीन अनुकंपा पर नियुक्ति करने के लिए प्राधिकारी में से किसी को कोई विवेकाधिकार रोष नहीं बचा है। अनुकंपा पर नियुक्ति का दावा और अधिकार, यदि कोई हो, अनुकंपा आधारो पर नियोजन प्रदान करने के मामले में नियोजक द्वारा विरचित स्कीम, कार्यपालिका अनुदेशों नियमों, इत्यादि तक मात्र पता लगाने योग्य है। यथास्थिति स्कीम या अनुदेशों के रूप में नियोजक द्वारा, प्रदत्त, यदि कोई हो आधार से भिन्न किसी आधार पर अनुकम्पा नियुक्ति का दावा करने का कोई अधिकार नहीं होता है चाहे जो कुछ भी उसकी प्रकृति हो।

6. विधि के पूर्वोक्त प्रतिपादना **स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम सोमवीर सिंह [(2007)4 एस॰ सी॰ सी॰ 778]** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित की गयी है।

7. स्थापित विधि की दृष्टि में, याची यथा दावाकृत अनुतोष का हकदार नहीं है। तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky ,o Mhñ ,uñ iVy] U;k;efrx.k

निदेशक, केन्द्रीय मनोचिकित्सा संस्थान, राँची

बनाम

कुन्दन सिंह

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 4084 वर्ष 2008. 13 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–असंतोषप्रद सेवा के लिए एक परिवीक्षु की सेवा समाप्ति–प्रत्यर्थी अस्थायी रूप से परिवीक्षा पर नियुक्त–परिवीक्षा की अवधि के दौरान, उसके विरूद्ध कदाचार, अवज्ञा, कर्तव्यों से घोर लापरवाही और अनधिकृत अनुपस्थिति के आरोप लगाए गए–जाँच की गई और प्रत्यर्थी को उसके आचरण और निष्पादन में उसकी कमियों से अवगत कराकर स्वयं को सुधारने का पर्याप्त अवसर दिया गया परन्तु प्रत्यर्थी ऐसा करने में विफल रहा–उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई–सेवा समाप्ति दण्डादेश नहीं है–अगर प्राधिकार, सामग्रियों के आधार पर पाता है कि परिवीक्षु कमोबेश एक कर्मचारी का कर्तव्य निष्पादन में संतोषप्रद नहीं है, तो ऐसे कर्मचारी को सेवा में बने रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती–सेवा-समाप्ति को अपास्त करने वाला आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैरा 10 एवं 13)

निर्णयज विधि.–2005 AIR SCW 3477; 2004 AIR SCW 5248; (2000)3 SCC 239; AIR 1958 SC 36; (1974)2 SCC 831; (1997)2 SCC 191; (1999)3 SCC 60; (2005)5 SCC 569; (2006) 4 SCC 469—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s A. Allam, Nehala Sharmin, S. Kumar, For the Petitioner; M/s M.M. Pal, M. Palit, For the Respondent.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–वर्तमान रिट याचिका में मूल आवेदन संख्या 201/2006 में, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना शाखा, सर्किट शाखा, राँची द्वारा पारित दिनांक 23.6.2008 के आदेश को निरस्त करने के लिए याची केन्द्रीय मनोचिकित्सा संस्थान ने प्रार्थना की है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी की सेवाओं को समाप्त करने वाले दिनांक 25.2.2006 एवं 25.8.2006 के आदेशों को अपास्त कर दिया गया था और याची को प्रत्यर्थी को सेवा में पुनर्बहाल करने का निर्देश भी दिया गया था।

2. मामले के तथ्य एक संकीर्ण क्षेत्र में स्थित है।

3. प्रत्यर्थी (रिट याची) को याची द्वारा कार्यालय ज्ञापांक दिनांक 21.8.2002 के माध्यम से, अस्थायी आधार पर वार्ड परिचारक के तौर पर नियुक्त किया गया था। सक्षम प्राधिकारी के विवेकाधिकार पर विस्तार के अध्यधीन रहते प्रत्यर्थी की सेवा दो वर्षों के एक अवधि के लिए परिवीक्षा पर थी। जबकि एक वार्ड परिचारक के तौर पर कार्य करते हुए, प्रत्यर्थी के विरूद्ध कई शिकायते एवं अभिकथन लगाए गए जिनमें अवज्ञा, कर्तव्य में भारी लापरवाही और अनधिकृत अनुपस्थिति शामिल थे। प्रत्येक शिकायत और अभिकथन की याची की एक समिति द्वारा की गई प्रारंभिक जाँच के उपरांत प्रत्यर्थी को स्पष्टीकरण रखने का अवसर दिया गया। जाँच के उपरांत प्रत्यर्थी को मामले की जाँच-पड़ताल के उपरांत चेतावनी दी गई थी या निंदा की गई और प्रत्यर्थी को तामीला कराए गए ज्ञापांकों की एक श्रृंखला द्वारा उसे उसके आचरण और निष्पादन में उसकी कमियों के बारे में अवगत कराया गया था। यह भी प्रतीत होता है कि नियुक्ति-पत्र के निबंधनो एवं शर्तों के अनुसार दिनांक 25.1.2005 के कार्यालय आदेश के माध्यम से प्रत्यर्थी की परिवीक्षा अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ा दी गई। प्रत्यर्थी ने विस्तार के दिनांक 25.1.2005 के उक्त आदेश को सक्षम प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी जिसने एक वर्ष के विस्तार को न्यायसंगत ठहराया। उक्त आदेश से व्यथित होकर, याची ओ॰ ए॰ संख्या 148/2005 के माध्यम से केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (संक्षेप में अधिकरण) के पास

समावेदन किया। प्रत्यर्थी की सेवा कारणों और कमियों को उपलब्ध कराने का याची को एक निर्देश देते हुए अधिकरण ने आवेदन का निस्तारण किया और स्पष्टीकरण की प्राप्ति पर याची के प्राधिकारी परिवीक्षा के विस्तार के आदेश की वापसी पर विचार करेंगे। तत्पश्चात्, याची ने उसके आचरण और निष्पादन में कमियों के बारे में उसको सूचित करते हुए ज्ञापांक का तामीला कराया। परिवीक्षा की अवधि के दौरान, कर्तव्य के स्थान से उसकी अनधिकृत अनुपस्थिति, कर्तव्य में घोर लापरवाही, अनधीनता, कदाचार की शिकायतों पर प्रारम्भिक जांच करने के उपरांत प्रत्यर्थी को चेतावनी दी गई या निंदा की गई और एक वर्ष की वार्षिक वेतनवृद्धि भी रोक दी गईं। अन्ततः परिवीक्षा की अवधि के दौरान सक्षम प्राधिकारी ने प्रत्यर्थी के समूचे सेवा रिकार्ड और निष्पादन का मूल्यांकन किया और अन्ततः उसे वार्ड परिचर के पद के लिए उपयुक्त नहीं पाया एवं उसकी सेवा समाप्ति की अनुशंसा की। तद्नुसार, दिनांक 25.2.2006 के कार्यालय आदेश के माध्यम से प्रत्यर्थी की सेवा समाप्त कर दी गई। सेवा समाप्ति के उक्त आदेश को दोबारा केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना शाखा, सर्किट शाखा, राँची के समक्ष ओ॰ ए॰ संख्या 201/2006 के माध्यम से चुनौती दी गई। तत्पश्चात्, आवेदन दाखिल करके, प्रत्यर्थी ने भी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 25.8.2006 के आदेश को चुनौती दी। अधिकरण ने एक प्रश्न विरचित किया कि क्या सेवा-समाप्ति का आदेश लांछनपूर्ण है या नहीं। अधिकरण ने अवधारित किया कि चूँकि कारण-पृच्छा नोटिस निर्गत किए बिना और किसी जाँच का संचालन लिए बगैर कुछ अभिकथनों एवं परिवादों पर प्रत्यर्थी की सेवा समाप्ति आधृत थी, अतः सेवा-समाप्ति का आक्षेपित आदेश केवल एक बर्खास्तगी नहीं है, अपितु यह लांछनपूर्ण और दण्डात्मक प्रकृति का है। तद्नुसार, सेवा-समाप्ति का आदेश अपास्त कर दिया गया और याची ने प्रत्यर्थी को सेवा में पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया गया। अधिकरण द्वारा पारित आदेश इस आवेदन में आक्षेपित हैं।

4. याची-संस्थान की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ आलम ने अधिकरण के आक्षेपित आदेश को अवैधानिक और अधिकारिता रहित बताते हुए इसकी आलोचना की। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि स्वीकार्यतः प्रत्यर्थी को अस्थायी रूप से दो वर्षों की एक अवधि के लिए परिवीक्षा पर नियुक्त किया गया था, जिसे एक और वर्ष की अवधि के लिए बढ़ाया गया था। परिवीक्षा की अवधि के दौरान कई परिवाद और अभिकथन सामने आए थे जिनकी समय-समय पर जाँच की गई थी और अभिनिंदा चेतावनी और वार्षिक-वेतनवृद्धि को वापस लेने तक का आदेश पारित किए गए थे। इसके उपरांत भी प्रत्यर्थी ने स्वयं को नहीं सुधारा और उसका निष्पादन सदा असंतोषजनक बना रहा। इसलिए, याची-नियोक्ता ने प्रत्यर्थी की सेवाएं समाप्त करने का निर्णय लिया। इस प्रकार, बर्खास्तगी का आदेश मात्र सेवा-समाप्ति का आदेश है और दण्डात्मक नहीं है। **पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम सुखविंदर सिंह** के मामले **[2005 ए॰ आई॰ आर॰ एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 3477] एवं पंजाब राज्य बनाम बलबीर सिंह** के मामले **[2004 ए॰ आई॰ आर॰ एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 5248]** के मामले में निर्णय पर विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाली विद्वान अधिवक्ता, श्रीमती एम॰ एम॰ पाल ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी की सेवाएं उसके विरूद्ध लगाए गए अभिकथित गंभीर आरोपों के आधार पर समाप्त की गई थी और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याची ने केन्द्रीय सिविल सेवाएं एवं अपील नियमावली के अधीन, आगे कार्यवाही की थी सेवा-समाप्ति का आदेश दण्डात्मक है क्योंकि उसके विरूद्ध कोई विभागीय जाँच प्रारम्भ नहीं की गई थी। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आरोपों का अभिकथन कारण नहीं बल्कि आधार है और, इसलिए, सेवा-समाप्ति विधि में दूषित है। विद्वान अधिवक्ता ने **वी॰ पी॰ आहूजा बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य [(2000)3 एस॰ सी॰ सी॰ 239]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय को एक निर्णय पर भरोसा किया।

6. काफी पहले 1958 में **पुरूषोत्तम लाल धींगरा बनाम भारत संघ (ए॰ आई॰ आर॰ 1958 एस॰ सी॰ 36]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परिवीक्षु की स्थिति पर विचार किया गया था।

न्यायाधीशों ने अवधारित किया कि जहाँ एक व्यक्ति सरकार में एक स्थायी पद पर परिवीक्षा पर नियुक्त किया जाता है तो परिवीक्षा की अवधि के दौरान या अन्त में उसकी सेवा की समाप्ति सामान्यत: और अपने आप में एक दण्ड नहीं होगी क्योंकि इस प्रकार नियुक्त सरकारी सेवक को एक निजी नियोक्ता द्वारा परिवीक्षा पर नियुक्त एक सेवक की अपेक्षा ऐसा एक पद को धारित करते रहने का अधिक अधिकार नहीं होता है। ऐसी एक सेवा–समाप्ति पद को धारण करने में एक सेवक को किसी अधिकार के एक समपहरण के तौर पर कार्य नहीं करती है। **शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य [(1974)2 एस॰ सी॰ सी॰ 831]** के मामले में सात न्यायाधीशों की एक संविधान पीठ इसको लेकर एक प्रश्न पर विचार कर रही थी कि कब एक परिवीक्षु की सेवा समाप्ति दण्ड के समतुल्य होगा। न्यायाधीशों ने सम्परीक्षित किया।

63. ऐसी कोई संक्षिप्त प्रतिपादना अधिकथित नहीं की जा सकती कि जब सेवा समाप्ति के आदेश में सेवाओं को समाप्त करने से अधिक कहे बगैर एक परिवीक्षु की सेवाएं समाप्त की जाती है तब ये मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में एक दण्ड के तुल्य कभी नहीं होती है। अगर कदाचार या अकुशलता या इसी प्रकार के कारण के आधार पर एक परिवीक्षु को एक उपयुक्त जांच के बगैर और उसे अवमुक्त किए जाने के विरूद्ध कारण दर्शाने के लिए उसके द्वारा एक युक्तिसंगत अवसर प्राप्त किए बगैर अवमुक्त किया जाता है तो यह एक दिए गए मामले से संविधान के अनुच्छेद 311(2) के अर्थ के भीतर सेवा से हटाए जाने के तुल्य हो सकता है।

64. एक परिवीक्षु को संपुष्ट किए जाने से पहले सम्बद्ध प्राधिकार को यह विचार करने की बाध्यता होती है कि परिवीक्षा का कार्य संतोषप्रद है या नहीं या वह पद के योग्य है या नहीं। इस संबंध में एक परिवीक्षु पर प्रभावी होने वाली किसी नियमावली की अनुपस्थिति में प्राधिकारी इस निष्कर्ष तक पहुँच सकता है कि कार्य के लिए अनुपयुक्तता के कारण या किसी स्वभावगत या नैतिक अधमता को शामिल नहीं करने वाले किसी कारक के कारण याची नौकरी के लिए अयोग्य है और इसलिए उसे अनिवार्यत: सेवोन्मुक्त किया जाना चाहिए। इसमें कोई दण्ड अंतर्ग्रस्त नहीं है। प्राधिकार का कुछ मामलों में यह दृष्टिकोण हो सकता है कि एक जांच पर याची के आचरण का परिणाम बर्खास्तगी या हटाया जाना हो सकता है। परन्तु इन मामलों में प्राधिकारी संभवत: एक जांच न करें और केवल परिवीक्षु को सेवामुक्त करके इसे दृष्टिगत रखते हुए कि परिवीक्षा की समाप्ति के समय एक कलंक के बगैर उसे जीवन के अन्य क्षेत्रो में अच्छा करने का एक अवसर मिल सके। दूसरी ओर, अगर परिवीक्षु कदाचार या अकुशलता या भ्रष्टाचार के आरोपों पर एक जाँच का सामना करता है और अगर अनुच्छेद 311(2) के प्रावधानों का अनुपालन किए बगैर उसकी सेवाएं समाप्त की जाती है, तो वह संरक्षण का दावा कर सकता है। गोपी किशोर प्रसाद बनाम भारत संघ में यह कहा गया था कि अगर सरकार ने परिवीक्षु की सत्यनिष्ठा या सक्षमता पर कोई धब्बा लगाए बिना प्रत्यक्ष रूप से उसके विरूद्ध कार्यवाही की तो उसकी सेवामुक्ति में दण्ड के माध्यम से हटाए जाने का प्रभाव नहीं होगा। आसान रास्ता अपनाने की बजाय, सरकार उसके विरूद्ध कार्यवाही प्रारम्भ करने और उसे एक असत्यनिष्ठा और अक्षम पदाधिकारी चिन्हित करने का अधिक दुष्कर मार्ग अपना रही है।

65. एक जाँच संचालित करने का तथ्य सदा निश्चायक नहीं होता है। निर्णायक यह है कि क्या आदेश वास्तव में एक दण्ड के रूप में है (देखें उड़ीसा राज्य बनाम राम नारायण दास), अगर एक जाँच होती है तो मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों का अवलोकन किया जाएगा यह पता लगाने के लिए कि आदेश वास्तव में तात्विक रूप से बर्खास्तगी का एक आदेश है। देखें मदन गोपाल बनाम पंजाब राज्य)। आर॰ सी॰ लेसी बनाम बिहार राज्य में यह अवधारित किया गया कि परिवीक्षु के आचरण की एक जाँच के उपरांत पारित प्रतिवर्तन का एक आदेश उस मामले की परिस्थितियों में प्रारम्भिक जाँच की प्रकृति का था ताकि सरकार को यह निर्णय करने में सक्षम बनाया जा सके कि अनुशासनिक कार्यवाही करनी चाहिए या नहीं। एक परिवीक्षु

जिसकी सेवा के निबंधन यह प्रावधान करते थे कि इसे बिना किसी नोटिस के और बिना कोई कारण बताये समाप्त किया जा सकता था, अनुच्छेद 311(2) के संरक्षण का दावा नहीं कर सकता था (देखे आर॰ सी॰ बनर्जी बनाम भारत संघ)। यह समाधान करने के लिए की गई एक प्रारम्भिक जाँच किए कि एक अस्थायी कर्मचारी को सेवाओं से मुक्त करने का कारण था, अनुच्छेद 311 को आकर्षित करने वाली अवधारित नहीं की गई है (देखें चम्पकलाल जी॰ शाह बनाम भारत संघ)। दूसरी ओर, सेवा समाप्ति के आदेश में यह कथन कि अस्थायी सेवक अवांछनीय है दण्ड का एक अवयव चिन्हित करने वाला अवधारित किया गया है। (देखें जगदीश मितर बनाम भारत संघ)।

7. कुंवर अरूण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश हिल इलेक्ट्रॉनिक कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य [(1997)2 एस॰ सी॰ सी॰ 191] के मामले में, याची की नियुक्ति नियमित वेतनमान पर की गई थी परन्तु उसे परिवीक्षा पर रखा गया था और परिवीक्षा की अवधि के दौरान उसकी सेवाएं इस आधार पर समाप्त कर दी गई कि कार्य-निष्पादन असंतोषजनक पायी गई थी। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि असंतोषजनक निष्पादन के संबंध में नियोक्ता द्वारा दर्ज निष्कर्ष कलंक के तुल्य है और, इसलिए, सेवा-समाप्ति का आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) का उल्लंघनकारी है। तर्क को खारिज करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि परिवीक्षा की अवधि के दौरान प्राधिकारीगण उम्मीदवार की उपयुक्तता का आकलन करने के हकदार हैं और अगर यह पाया जाता है कि उम्मीदवार सेवा में बने रहने के लिए उपयुक्त नहीं है तो वे कार्य एवं कर्तव्यों के असंतोषजनक निष्पादन का एक निष्कर्ष अभिलिखित करने के हकदार हैं। इन परिस्थितियो के अधीन, नियुक्तिकर्ता प्राधिकारी को आवश्यक रूप से परिवीक्षा की अवधि के दौरान कार्य एवं दायित्वों के निष्पादन का अवलोकन करना होता है और अगर वे एक निष्कर्ष अभिलिखित करते हैं कि उस परिवीक्षा अवधि के दौरान कार्य एवं दायित्वों का निष्पादन असंतोषजनक था तो वे बिना किसी जाँच का संचालन किए नियुक्ति-पत्र के निबंधनों में सेवा समाप्त करने के अधिकारी है। यह किसी लांछन के तुल्य नहीं है।

8. दीप्ति प्रकाश बनर्जी बनाम सत्येन्द्र नाथ बोस नेशनल सेंटर फॉर बेसिक साइंसेज, कलकत्ता एवं अन्य [(1999) 3 एस॰ सी॰ सी॰ 60] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इसको लेकर एक प्रश्न पर विचार किया कि परिवीक्षु के विरूद्ध अभिकथन उसकी सेवा समाप्ति के लिए क्या ''आधार'' या ''मंशा'' होंगे। उस मामले में अपीलार्थी को प्रत्यर्थी संगठन में कार्यालय अधीक्षक के तौर पर नियुक्त किया गया था आरम्भिक परिवीक्षा अवधि एक वर्ष थी। इस अवधि के दौरान अपीलार्थी को सूचित किया गया कि कतिपय घटनाओं के कारण उसका कार्य संतोषजनक नहीं था जो उसे इंगित भी कर दिए गए थे। एक अन्य पत्र द्वारा उसके कार्य एवं आचरण में कुछ और विसंगतियां इंगित की गई थी। ऐसे और पत्र निर्गत किए गए थे अपीलार्थी को यह सूचित करते हुए कि उसका कार्य संतोषप्रद होने से काफी दूर था और उसकी परिवीक्षा अवधि छः महीने और बढ़ाई जा रही है। इस अवधि के दौरान भी उनके कार्य एवं आचरण में गंभीर विसंगतियाँ थी और अपीलार्थी के विरूद्ध एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इन तथ्यों पर माननीय न्यायाधीशों ने ''आधार'' एवं 'मंशा' के बीच अन्तर करने के लिए मानदंड अधिकथित किए। माननीय न्यायाधीशों ने अवधारित किया:-

21. अगर पदाधिकारी की पीठ पीछे या एक नियमित विभागीय जाँच के बगैर एक जाँच में कदाचार को लेकर निष्कर्षों पर पहुँच जाता है तो सेवा-समाप्ति के साधारण आदेश को अभिकथनो पर ''आधृत'' माना जाएगा और दूषित होगा। परन्तु जाँच अगर नहीं हुई थी, किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा गया था और नियोक्ता एक जाँच का संचालन करने का इच्छुक नहीं था परन्तु, इसी समय वह कर्मचारी को सेवा में बनाए रखना नहीं चाहता था जिसके विरूद्ध शिकायतें थी, तो यह केवल मंशा का एक मामला होगा और आदेश दूषित नहीं होगा। इसी प्रकार की स्थिति तब होती है। जब नियमित विभागीय कार्यवाही में विलम्ब के कारण या पर्याप्त साक्ष्य प्राप्त

करने को लेकर नियोक्ता के संदिग्ध होने के कारण वह अभिकथनो की सत्यता की जाँच करना नहीं चाहता हो। ऐसी एक परिस्थिति में अभिकथन एक मंशा होंगे, आधार नहीं और सेवा-समाप्ति का साधारण आदेश वैध होगा।

माननीय न्यायाधीशों ने यह भी सम्परीक्षित किया:-

36. इसी संदर्भ में प्रत्यर्थी की ओर से तर्क दिया गया कि नियोक्ता ने वर्तमान मामले में कर्मचारी को उसे चेतावनियाँ देकर, उससे सुधरने की मांग करके पर्याप्त अवसर दिया था और उसकी परिवीक्षा को भी दो बार बढ़ाया था और यह अनुचितता का मामला नहीं था और इस न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यह सही है कि जहाँ कर्मचारी को उपयुक्त चेतावनियाँ दी गई थी, सुधारने का आग्रह किया गया था, या परिवीक्षा को बढ़ाकर उसे एक लम्बा रास्ता दिया गया था, वहाँ इस न्यायालय ने कहा है कि सेवा समाप्ति के आदेशों को दण्डात्मक अवधारित नहीं किया जा सकता (इस संबंध में देखें हिन्दुस्तान पेपर कार्पोरेशन बनाम पुर्णेन्दु चक्रवर्ती, ऑयल एवं नेचुरल गैस कमीशन बनाम मो॰ एस॰ सिकन्दर अली, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया बनाम टी॰ बिजय कुमार, प्रधानाध्यापक, स्नातकोत्तर, चिकित्सीय शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान पांडिचेरी बनाम एस॰ अन्देल एवं एक श्रम मामला ओसवाल प्रेशर डाई कॉस्टिंग इण्डस्ट्री बनाम पीठासीन पदाधिकारी] परन्तु इन सभी मामलों में, आदेश केवल सेवा समाप्ति के साधारण आदेश थे जिनमें लांछन के तुल्य कोई शब्द निहित नहीं थे। मामले में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आक्षेपित आदेश में कलंक है, तो हम उस प्रभाव की उपेक्षा नहीं कर सकते जो परिवीक्षु के भविष्य पर होगा जब कभी भी पूर्व में अपीलार्थी को सुधरने के लिए प्रत्यर्थी संगठन द्वारा अवसर प्रदान किए गए थे।

37. इसलिए, इस बिन्दु पर, हम अवधारित करते हैं कि ''कलंक'' के समतुल्य शब्दों को सेवा-समाप्ति के आदेश में ही निहित होने की आवश्यकता नहीं है बल्कि सेवा-समाप्ति के आदेश में निर्दिष्ट एक आदेश या एक कार्यवाही में या इसके एक परिशिष्ट में भी निहित हो सकते हैं और ये सेवा-समाप्ति के आदेश को दूषित करेंगे। बिन्दु 3 का तद्नुसार निर्णय किया जाता है।

9. पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम सुखविंदर सिंह (2005)5 एस॰ सी॰ सी॰ 569] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अपना मत दुहराया कि एक परिवीक्षु की सेवा की समाप्ति सामान्यत: और अपने-आप में ही एक दण्ड नहीं होगी क्योंकि इस प्रकार नियुक्त सेवक को ऐसे एक पद पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं होता है। इसलिए, परीवीक्षा की अवधि मालिक को परिवीक्षु के कार्य को निकट से परखने का एक बहुमूल्य अवसर उपलब्ध कराती है और परिवीक्षा की अवधि पूरी होने तक उसे यह निर्णय करने में सहायता करती है कि सेवा को नियमित सेवा में बनाए रखा जाए या उसे सेवा से मुक्त कर दिया जाय।

10. वर्तमान मामले पर आते हुए, जैसा कि ऊपर नोटिस किया गया है, प्रत्यर्थी को 21.8.2002 के प्रभाव से दो वर्षों की एक अवधि के लिए परिवीक्षा पर अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया था। परिवीक्षा की अवधि के दौरान, उसके विरूद्ध गंभीर अभिकथन और आरोप लगाए गए जिनमें कदाचार, अवज्ञा, कर्त्तव्यों में घोर लापरवाही और अनधिकृत अनुपस्थिति के अभिकथन शामिल थे। समिति ने प्रत्येक बार जाँच की ओर उससे स्पष्टीकरण की मांग की गई। प्रत्यर्थी को उसके आचरण और निष्पादन में कमियों के बारे में अवगत कराया गया। याची ने प्रत्यर्थी को अपने आचरण और निष्पादन में सुधार करने का अवसर प्रदान करने के लिए उसकी परिवीक्षा की अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ा दी। वह विस्तार के आदेश से असंतुष्ट था और अधिकरण के पास गया और अधिकरण के निर्देश के अनुसार, याची ने प्रत्यर्थी की सेवा में कारणों और कमियों के विवरण उसे उपलब्ध करा दिए। परिवीक्षा की विस्तारित अवधि के दौरान, कई शिकायतों पर याची ने कारण-पृच्छा और स्पष्टीकरण पर विचार करने के उपरांत वेतन-वृद्धि रोकने का आदेश और परिनिंदा का आदेश पारित किया। प्रत्यर्थी ने अपने ऊपर

अधिरोपित दण्ड को स्वीकार किया, परन्तु स्वयं में सुधार नहीं किया। इस तरह से प्रत्यर्थी से सुधारने की मांग करते हुए उसे पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया था और उसकी परिवीक्षा की अवधि का भी विस्तार किया गया था। उसके बावजूद, प्रत्यर्थी अपने से सुधार करने में विफल रहा। अत: हमारे सुविचारित मत में सेवा-समाप्ति का उक्त आदेश दण्डात्मक अवधारित नहीं किया जा सकता।

11. परिवीक्षु को संपुष्टि के लिए उपयुक्त नहीं घोषित करने वाला विभागीय आदेश निर्गत किया गया क्योंकि उसकी सेवा असंतोषजनक थी, और यह कि बार-बार दी गई सलाह के बावजूद उसने कई सुधार नहीं दर्शाया था। पूर्व के पत्रों को निर्दिष्ट करने वाले उक्त आदेश में परिवीक्षु को एक विकृत मानसिकता और अनुशासनहीन व्यवहार से युक्त व्यक्ति बताया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि परिवीक्षु की ओर से पूर्व के कदाचार ने इंगित किया कि उसके सुधार की उम्मीद का न होना सेवा-समाप्ति का कारण था और ऐसा आदेश किसी दुर्भावना या पक्षपात को प्रतिबिम्बित नहीं करता या परिवीक्षु की सेवा समाप्ति का आदेश साधारण या लांछनपूर्ण नहीं था। **अभिजीत गुप्ता बनाम एस॰ एन॰ बी॰ नेशनल सेन्टर, बेसिक साइन्सेज एवं अन्य [(2006)4 एस॰ सी॰ सी॰ 469]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लिया गया निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

12. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, **श्रीमती एम॰ एम॰ पाल ने वी॰ पी॰ आहूजा बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य [(2000)3 एस॰ सी॰ सी॰ 239]** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया। हमारे विचार में वर्तमान मामले के तथ्य सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मामले में तथ्यों से बिल्कुल भिन्न है। इसलिए, यह प्रत्यर्थी के किसी काम का नहीं होगा।

13. उपरोक्त के अतिरिक्त, यह सभी को ज्ञात है कि केन्द्रीय मनोचिकित्सा संस्थान, राँची मानसिक रूप से बीमार और मंदबुद्धि वाले रोगियों के उपचार का एक शीर्ष संस्थान है और ऐसे रोगी अपनी वैयक्तिक आवश्यकता का ख्याल रखने में अक्षम होते हैं। न केवल सर्वोत्तम उपचार के लिए बल्कि अनुशासन बनाए रखने के लिए भी यह देश के शीर्ष संस्थानो में से एक है। वार्ड परिचर की भूमिका अति महत्वपूर्ण है और उन्हें कर्तव्यों के प्रति समर्पित होना चाहिए। वार्ड परिचर को अपने कर्तव्यों में उच्च स्तर, सत्यनिष्ठा, समर्पण और लगन बनाये रखने की आवश्यकता होती है। अच्छा आचरण और अनुशासन ऐसे संस्थान में प्रत्येक कर्मचारी के कार्यकलाप के अभिन्न अंग है। इसलिए, हमारे विचार में, अगर प्राधिकारी सामग्रियों के आधार पर पाता है कि एक परिवीक्षु की बात तो दूर रही, एक कर्मचारी के कर्तव्य का निष्पादन संतोषजनक नहीं है, तो इसका कोई कारण नहीं है कि ऐसे कर्मचारियों की सेवा में बने रहने की अनुमति की जाए। प्रत्यर्थी जो परिवीक्षा पर था की सेवाओं को कर्त्तव्य के असंतोषजनक निष्पादन के आधार पर समाप्त करने वाले याची-संस्थान के प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में न्यायालयों द्वारा या अधिकरणों द्वारा किसी हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है।

14. पूर्वोक्त कारणो से, यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है और केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। परिणामत:, प्रत्यर्थी की सेवाएं समाप्त करने वाला याची-संस्थान द्वारा पारित आदेश पुन: स्थापित किया जाता है।

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

कृष्णजी

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3928 वर्ष 2007. 18 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–बर्खास्तगी–याची को कॉन्स्टेबल के पद पर चयनित किया गया और पश्चातवर्ती तौर पर नियुक्ति प्राप्त करने में कपट कारित करने के आधार पर बर्खास्त कर दिया गया–कपट के प्रश्न को साक्ष्य पेश किये बिना न्यायनिर्णीत नहीं किया जा सकता है–रिट अधिकारिता तथ्य के विवादित प्रश्न को न्यायनिर्णित करने के प्रयोजन से नहीं होता है–बर्खास्तगी कायम रखा गया। (पैरा 5)

अधिवक्तागण.–Mr. V.P. Singh, For the Petitioner; Mr. A. Allam, For the State.

आदेश

वर्तमान याचिका मुख्य रूप से इस आधार पर दायर किया गया है कि आरंम्भिक तौर पर याची का चयन एक कॉन्स्टेबल के पद पर किया गया था, लेकिन यह प्रतीत होता है कि कतिपय घोर अनियमितताएं चयन प्रक्रिया में पायी गयी और, इसलिए, मुख्य रूप से कपट के आधार पर अभ्यर्थियों का चयन एवं नियुक्ति समाप्त की गयी थी और, इसलिए, वर्तमान याचिका दायर की गयी है, क्योंकि याची की सेवाएं समाप्त कर दी गयी है।

2. मामले पर दोनो पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने तथा तथ्यों एवं परिस्थितियों का निरीक्षण करने पर यह प्रतीत होता है कि:–

(i) प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, वर्तमान याची को कॉन्स्टेबल पद पर कभी भी चयनित नहीं किया गया था। प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष भर्ती की नामावली की मूल प्रतिलिपि पेश किया है।

(ii) प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि भर्ती की पंजी के क्रमिक कॉलम में निर्दिष्ट किये गये नामों के साथ छेड़छाड़ की गयी है।

(iii) यह प्रत्यर्थियो की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया जाता है कि याची का कभी चयन नहीं किया गया और दस्तावेजों के साथ भारी छेड़छाड़ किया जा रहा है और कपट कारित किया गया है और कपटपूर्वक उसके नाम को एक चयनित अभ्यर्थी के रूप में अन्त:स्थापित किया गया है। पूर्वोक्त रजिस्टर की मूल प्रति इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गयी है।

(iv) प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट किये गये दस्तावेजों तथा पूर्वोक्त रजिस्टर की जांच करने से प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि मूल दस्तावेज के साथ छेड़छाड़ की गयी है, जो एक चयनित अभ्यर्थी के रूप में याची के नाम को प्रकट करता है। कपट संपूर्ण कार्यवाही को दूषित कर देता है। एकबार चयन प्रक्रिया में कपट होता है तब चयन बेकार हो जाता है। शब्द के विरूद्ध एक शब्द होता है।

(v) याची की ओर से अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि प्राधिकारी ने यह कपट किया है क्योंकि वे पूर्वोक्त रजिस्टर के अभिरक्षक हैं।

(vi) यदि यह तर्क स्वीकृत भी किया जाता है, तो तथ्य यही रहता है कि कपट किया गया है। किसने यह कपट किया, यह जांच का एक मुद्दा है, लेकिन यह एक तथ्य शेष रहता है कि यद्यपि याची का मूल नाम पर पर्ची लगाकर के कभी चयन नहीं किया गया फिर भी दो नामो पर विचार किया जाता है।

3. जहां तक वर्तमान याची का सम्बन्ध है, प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि वर्तमान याची का चयन नहीं हुआ है लेकिन चयनित अभ्यर्थियों के मूल नाम के बजाय, कतिपय पर्चियां लगायी गयी है और एक व्यक्ति के स्थान पर, दो व्यक्तियों के नामो का चिपकाया जाना प्रदर्शित किया गया है। पर्ची का सम्बन्ध दो व्यक्तियों के नामो से है और नामावली संख्या का भी परिवर्तन किया गया है। अब क्रम सं॰ 430 एवं 430A दिये गये हैं।

4. इस दस्तावेज को देखकर, यह प्रतीत होता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण अधिकारिता के प्रयोग में, याची का मामला साक्ष्य प्रस्तुत किये बिना विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। साक्ष्य याची द्वारा अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए और उन्हें अनुतोष की मंजूरी के लिए निश्चित रूप से तर्कपूर्ण एवं विश्वास करने योग्य साक्ष्य होना चाहिए जैसे वर्तमान याचिका के ज्ञाप में प्रार्थना की गयी है और, इसलिए, मैं एतद् द्वारा वर्तमान रिट याचिका में अन्तर्ग्रस्त तथ्यों के विवादित प्रश्न तथा मूल रजिस्टर में याची द्वारा यथा अभिकथित कपट के आधार पर इस रिट याचिका को खारिज करता हूँ और इसी प्रकार प्रत्यर्थीगण भी कपट का अभिकथन कर रहे हैं जो या तो याची द्वारा या याची की प्रेरणा पर कारित किया गया है ताकि याची उसका असम्यक् लाभ ले सके। परिस्थितियों के इस समुच्चय में, मैं भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय में निहित असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करने का इच्छुक नहीं हूँ। याची उपचार रहित नहीं है। जहाँ अधिकार है वहाँ उपचार भी है। रिट अधिकारिता वैवेकिक अधिकारिता है। तथ्यों के इन समुच्चयों में, विशेष तौर पर, जहां कपट के बादलो को भगाने के लिए साक्ष्य पेश किये जाने की अपेक्षा की जाती है वहां मैं असाधारण अधिकारिता के अधीन इस न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ।

5. यह रिट याचिका मात्र इस आधार पर निपटायी जाती है कि यह तथ्यों के विवादित प्रश्न को अन्तर्ग्रस्त करता है और इसलिए अनुतोष जिसके लिए याची द्वारा प्रार्थना की गयी है, इस रिट याचिका में मंजूर नहीं किया जा सकता है।

---

ekuuh; vej'oj lgk; ,o vkjñ vkjñ ilkn] U;k;efr

शिव सिंह

बनाम

झारखंड राज्य

दाण्डिक अपील (DB) सं० 884 वर्ष 2003. 13 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं० 367 वर्ष 1995 में श्रीमती शकुन्तला सिन्हा, प्रथम अपर न्यायिक आयुक्त, खूँटी (राँची) द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 9.1.1997 एवं 13.1.1997 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–अन्वेषण अधिकारी की गैर परीक्षण–यदि बचाव पक्ष यह स्थापित कर देता है कि उस पर अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा न किये जाने के कारण बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि यह उन कतिपय तथ्यों को न्यायालय के समक्ष नहीं ला सका जिसपर उसकी निर्दोषिता को साबित करने में उसके पक्ष में अवश्य विचार किया जाना चाहिए था तो अन्वेषण अधिकारी की गैर-परीक्षा निश्चित रूप से अभियोजन मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली एक प्रबल परिस्थिति होगी। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–2008(4) JCR 509—Discussed.

अधिवक्तागण.–Mr. A.A. Kumar, For the Appellant; Mr. Binod Singh, For the State.

न्यायालय द्वारा.–एक मात्र अपीलार्थी को मृतक मंगरू ओराँव की हत्या कारित करने के लिए दोषी पाया गया है एवं, तद्द्वारा, उसको भा० द० सं० की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और दिनांक 9.1.1997 के निर्णय द्वारा सत्र विचारण सं० 367 वर्ष 1995 में प्रथम अपर न्यायिक आयुक्त, खुँटी (राँची) द्वारा आजीवन कठोर कारावास भोगने के लिए दण्डित किया गया है। विचारण न्यायालय का यह आक्षेपित निर्णय इस अपील में चुनौती के अधीन है।

2. वर्तमान अपील की ओर से ले जाने वाले संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि मतियास खाल्को (अ० सा० 4) ने 3.1.1995 को 5:30 बजे पूर्वान्ह को दायर किये गये अपने फर्दबयान में, यह अभिकथन किया

कि 2.1.1995 को लगभग 4 बजे अपरान्ह वह अपने घर में था, उसी समय उसने ग्रामीण बालकों का ''हल्ला'' सुना कि शिव सिंह (अपीलार्थी) द्वारा मंगरू ओरांव पर तलवार से हमला किया जा रहा था। यह सुनकर वह बाहर आया और यह देखा कि अपीलार्थी शिव सिंह अपने हाथ में एक तलवार लिये हुए उक्त हथियार से मंगरू उरांव पर हमला कर रहा था। उसी समय वह अन्य गाँव वालों के साथ घटनास्थल पर पहुँचा, शिव सिंह मंगरू ओरांव की हत्या कारित करने के पश्चात् वहां से भाग गया। सूचनादाता ने यह अभिकथन किया कि अपीलार्थी ने निर्दयतापूर्वक तलवार द्वारा मंगरू ओरांव के गला, चेहरा एवं आंखों पर चोटें कारित किया जिसके कारण मंगरू की घटना स्थल पर मृत्यु हो गयी। उसने आगे यह भी अभिकथन किया कि मृतक के घर में मात्र छोटा बच्चा मौजूद था और मृतक की पत्नी अर्थात् जोसेफिन लाकरा बाहर गयी हुई थी। उक्त घटना ग्रामीण बच्चे एवं अन्यों द्वारा प्रमाणित किया गया था।

3. पुलिस ने फर्दबयान अभिलिखित करने के पश्चात्, प्राथमिकी दर्ज किया और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् आरोप पत्र प्रस्तुत किया। मामले को तत्पश्चात्, सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया जहां आरोप विरचित किये गये, तथा अपीलार्थी को विचारण के लिए पेश किया गया जहां उसने दोषी न होने का अभिवाक् किया।

4. विचारण के अनुक्रम में, कुल छः साक्षियों की अभियोजन की ओर से परीक्षा की गयी। छः अभियोजन साक्षियों में से, अ॰ सा॰ 2, 3 तथा 4 घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण हैं। अ॰ सा॰–2 चारवा ओराँव, जबकि अ॰ सा॰ 3 एवं 4 अर्थात् पुनई ओराँव तथा मटियास खल्को अ॰ सा॰–2 चरवा ओराँव के पुत्र हैं। अ॰ सा॰ 1 जोसेफिन लकरा मृतक मंगरू ओराँव की विधवा है और वह एक अनुश्रुत साक्षी है। अ॰ सा॰ 5 डॉ॰ विजय कुमार प्रसाद है। जिसने मृतक के शव का पोस्टमार्टम परीक्षण किया। जबकि अ॰ सा॰ 6 निसार अंसारी, एक औपचारिक साक्षी है, जो प्रदर्श–4, अर्थात् औपचारिक प्राथमिकी को साबित किया। अन्वेषण अधिकारी की अभियोजन द्वारा परीक्षा नहीं की गयी थी।

5. विद्वान विचारण न्यायालय अभिलेख पर साक्ष्य एवं सामग्रियों के आधार पर, अपीलार्थी को आक्षेपित निर्णय के माध्यम से, दोषसिद्ध एवं दण्डित किया जैसा कि इसमें ऊपर पहले से ही कथन किया गया है; जिसके विरूद्ध वर्तमान अपील अपीलार्थी द्वारा दायर की गयी है।

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री अखौरी अंजनी कुमार ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किये गये दोषसिद्धि एवं दंडादेश को चुनौती देते हुए निम्नलिखित रूप से निवेदन किया:–

(i) विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन साक्षियों के साक्ष्यों में भिन्नता पर विचार नहीं किया।

(ii) अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा नहीं किये जाने के कारण बचाव पक्ष पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव डाला गया है।

(iii) हमला का हथियार, जिसे अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण के अनुक्रम में बरामद किया गया था, को परीक्षा के लिए न्यायपालिका प्रयोगशाला को नहीं भेजा गया और अतएव, अपीलार्थी की प्रेरणा पर हथियार की अभिकथित बरामदगी का प्रयोग अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा के अभाव में उसके विरूद्ध नहीं किया जा सकता है।

अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने **"2008 (4) जे॰ सी॰ आर॰ 509** में प्रकाशित **मंघी हो बनाम बिहार राज्य (अब झारखंड)** के मामले में इस न्यायालय के एक विनिश्चय पर विश्वास किया है।

7. अब, हमनें अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किये गये मौखिक साक्ष्यों की परीक्षा की। अ॰ सा॰–2 चारवा ओराँव, जो इत्तिला देने वाला और घटना का एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, ने यह कथन किया है कि 2 जनवरी, 1995 को लगभग 4 बजे अपरान्ह जब वह अपने धर के दरवाजे पर बैठा था और सूर्य

धुप का आनन्द ले रहा था, उसी समय उसने अपीलार्थी शिव सिंह को उसके भवन को पार करते हुए देखा और, तत्पश्चात्, उसने दक्षिण की ओर से मंगरू ओराँव को भी आते हुए देखा। इसके तुरन्त बाद उसने उसके अपीलार्थी द्वारा मंगरू के गले पर तलवार से हमला किये जाते हुए देखा। मंगरू चोटें खाकर जमीन पर गिर पड़ा। समीप में ही कुछ लड़के में खेल रहे थे। इस साक्षी ने अपने मुख्य परीक्षा के पैरा-2 में कथन किया कि यद्यपि वह इस बारे में नहीं कह सका था कि अपीलार्थी ने मंगरू ओराँव का वध क्यों किया लेकिन उसी समय, उसने यह भी कथन किया कि उसकी उपस्थिति में उसने तलवार द्वारा मंगरू का वध कर दिया।

प्रति-परीक्षा में, उसने यह कथन किया कि घटना स्थल उसके भवन से मात्र 50-60 गज की दूरी पर था जहां वह बैठा हुआ था। उसने यह भी कथन किया कि तलवार का प्रथम प्रहार तभी मंगरू पर अपीलार्थी द्वारा किया गया जब वह खड़ा था और, तत्पश्चात्, जब वह गिर गया तब पुनः उसपर इस अपीलार्थी द्वारा तलवार से वार किया गया।

8. अ॰ सा॰-3 पुनई ओराँव घटना का एक दूसरा प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है और वह अ॰ सा॰ 2 चरवा ओरांव का पुत्र है। उसने अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य का समर्थन किया है। उसने स्पष्ट शब्दों में यह कथन किया है कि उसने अपीलार्थी को 20-22 गजों की दूरी से मृतक की हत्या कारित करने वाले अपीलार्थी को देखा। उस समय मृतक की पत्नी गाँव में नहीं थी और वह मात्र तीसरे दिन ही वापस आ गयी और तत्पश्चात्, उसने उससे कहानी का वर्णन किया। उसने यह भी कथन किया कि अपीलार्थी के घर से एक तलवार की बरामदगी की गयी थी और तब अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी जिसमें उसने अपना हस्ताक्षर भी किया।

प्रति-परीक्षा में, उसने यह कथन किया है कि तलवार, जिसे अपीलार्थी के घर से बरामद किया गया था उसके ऊपर रक्त के दाग लगे हुए थे।

9. अ॰ सा॰ 4 मतियास खल्खो, जो इत्तिला देने वाला है, ने भी फर्दबयान में किये गये अपने कथनों की पुनरावृत्ति की है और अन्य दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य का भी समर्थन किया है। उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि 2.1.1995 को लगभग 3 बजे अपरान्ह में जबकि अपना भोजन करने के पश्चात् वह सूर्य धूप का आनन्द ले रहा था तभी उसकी पुत्री, जो बाहर खेल रही थी, आयी और उससे कही कि अपीलार्थी शिव सिंह तलवार से मंगरू पर हमला कर रहा था। वह अपने आंगन से बाहर आया और अभियुक्त को तलवार से मृतक पर हमला करते हुए देखा। दृश्य देखकर वह स्तब्ध रह गया। इस साक्षी के अनुसार, अपीलार्थी ने मृतक पर तलवार से बारम्बार वार किया। उसने और यह कथन किया कि मृतक की पत्नी उस समय गाँव में नहीं थी।

अपनी प्रति-परीक्षा में इस साक्षी ने इस सुझाव का प्रत्याख्यान किया कि अपीलार्थी की भूमियों को हड़पने के लिए; उन्होंने इस मामले में उसे मिथ्यापूर्वक फंसाया है।

10. अ॰ सा॰ 1 जोसफिन लकरा, मृतक की विधवा ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि 2 जनवरी, 1995 को अपनी पुत्री को पहुँचाने हेतु राजा उल्लीहातू गयी हुई थी, जो वह एक स्कूल में अध्ययन कर रही थी और जब वह 3 जनवरी, 1995 को रात्रि में 12 बजे वापस लौटी तो, वह अपने पति को भवन में नहीं पाई। उसके बच्चे संजय, अमरदीप, नीलू तथा पवन ने उससे कहा कि उनके पिता को अपीलार्थी शिव सिंह द्वारा वध कर दिया गया था। उसने यह भी कथन किया कि पुनई एवं छारवा इत्यादि ने भी उससे यह कहा कि शिव सिंह ने तलवार से उसके पति का वध किया था।

11. अ॰ सा॰ 5, डॉ॰ विजय कुमार प्रसाद, जिन्होंने मृतक मंगरू ओराव के शव का पोस्ट मार्टम परीक्षण किया, निम्नलिखित चोटें पाईः-

(i) कोमल ऊतकों, मांसपेशियों अस्थि की मांसपेशियों तथा मतिष्क सम्बन्धी पदार्थ को काटने वाली, मस्तक या ललाट पर क्षैतिज 6" x 5" x 2" की धारदार आयुध से कटने की उपहति।

(ii) कोमल ऊतकों, मांसपेशियों तथा अस्थि को काटने वाली दोनो आंखो के नीचे चेहरे पर 6" x 5" x 2" की धारदार आयुध से कटने की उपहति।

उसकी राय के अनुसार, पायी गयी चोटे मृत्यु होने से पूर्व की थी और भारी धारदार काटने वाले आयुध द्वारा कारित हो सकती है। मृत्यु का कारण उसके द्वारा खायी गयी चोटे के कारण सदमा एवं रक्तस्राव था और पृथक तौर पर चोटे की प्रकृति सामान्य अनुक्रम में उसकी मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी। मृत्यु के बाद से 40 घण्टा बीत गया था।

प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य का डॉक्टर अ॰ सा॰ 5 के साक्ष्य द्वारा पूर्णतया समर्थन किया गया।

12. नि:संदेह, अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा अभियोजन द्वारा नहीं की गयी है लेकिन कोई भी बात इस बारे में अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा हमारे समक्ष नहीं बतायी गयी है कि अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा न किये जाने के कारण कौन-सा प्रतिकूल प्रभाव अपीलार्थी पर कारित किया गया है। यह सुस्थापित विधि है कि मात्र अन्वेषण अधिकारी की गैर-परीक्षा के कारण अभियोजन मामले को अवश्य असफल हो जाना चाहिए, बल्कि विधि यह है कि यदि बचावपक्ष यह स्थापित कर देता है कि अन्वेषण अधिकारी की गैर-परीक्षा किये जाने के कारण उसपर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव डाला गया क्योंकि यह उन कतिपय तथ्यों को न्यायालय के समक्ष नहीं प्रस्तुत कर सका जिनका मूल्य उसकी निदोर्षिता को साबित करने में उसके पक्ष में अवश्य लगाया जाना चाहिए था तो अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा नहीं करना निश्चित रूप से अभियोजन मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डाले वाली एक प्रबल परिस्थिति होगी। मात्र क्योंकि अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा नहीं की गयी है, इसलिए अभियोजन संपूर्ण मामला, जो विनिर्दिष्ट एवं प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित है, नामंजूर नहीं किया जा सकता है।

13. वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि तीन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने इस तथ्य को पूर्णतया स्थापित किया है कि उनकी उपस्थिति में अपीलार्थी ने तलवार से उनपर हमला करके मृतक की हत्या कारित की थी।

14. अपीलार्थी द्वारा किया गया अभिवाक् कि हमले का आयुध, जो अपीलार्थी के घर से बरामद किया गया था न्याय सम्बन्धी परीक्षण हेतु नहीं भेजा गया और इसलिए, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन उसकी दोषसिद्धि गलत है, इस तथ्य की दृष्टि में हमें स्वीकार्य नहीं है कि अभियोजन मामला प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों, अर्थात् अ॰ सा॰ 2, 3 एवं 4 के विशिष्ट एवं प्रत्यक्ष साक्ष्यों पर आधारित है, जिनका चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा सम्यक् रूप में समर्थन किया गया है। अपीलार्थी की ओर से उद्धृत की गयी निर्णयज विधि अभियोजन मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में नहीं लागू होता है।

15. हमारे विचार में, विद्वान विचारण न्यायालय ने मृतक मंगरू ओराँव की हत्या कारित करने के लिए भा॰ द॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन आरोपो के लिए अपीलार्थी को उचित प्रकार से दोषसिद्ध किया है। हम आक्षेपित निर्णय में कोई गलती नहीं पाते हैं।

16. तद्नुसार, अपीलार्थी के विरूद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दंडादेश की पुष्टि करके, यह अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; t;k jk;] U;k;efr

गोपाल लोहार

बनाम

बिहार राज्य

दांडिक अपील सं॰ 68 वर्ष 2000. 17 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

S.T. No. 526 वर्ष 1998 में द्वितीय अपर न्यायिक आयुक्त, खूँटी द्वारा पारित दिनांक 18.2.2000 एवं 19.2.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 376—बलात्संग का अभिकथन–अभिनिर्धारित, सूचनादाता ने अपीलार्थी को उसकी साईकिल पर अभियोक्त्रि को ले जाने की अनुमति दी–वह 18 वर्ष की थी–स्वयं उसके अभिकथन से प्रकट हुआ कि उसने बलात्संग किए जाते समय शोर नहीं मचायी–घटनास्थल व्यस्त सड़क से मात्र 20 गज की दूरी पर था–डॉक्टर ने कोई बाह्य उपहति एवं मैथुन का कोई साक्ष्य नहीं पाया–अपीलार्थी को आरोप से मुक्त किया गया। (पैरा 2, 8, 10 से 12)

अधिवक्तागण.–M/s S.K. Dutta, M. Patra, For the Appellant; Miss Anita Srivastava, For the Respondent.

आदेश

यह दाण्डिक अपील सत्र विचारण सं॰ 526 वर्ष 1998 (G.R. No. 95 वर्ष 1997) में श्री रबीन्द्र नाथ वर्मा, द्वितीय अपर न्यायिक आयुक्त, खूँटी (राँची) द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा अपीलार्थी को I.P.C. की धारा 376 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है एवं दस वर्षों के लिए कठोर कारावास भुगतने से दण्डित किया गया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचनादाता डोंडा मुंडा ने 29.11.1997 के एक लिखित परिवाद जो प्रदर्श-1 है दाखिल किया, इसमें यह अभिकथित करते हुए कि 28.11.1997 को वह एवं उसकी बहन सोमारी कुमारी एक साथ साप्ताहिक सैको बाजार गए थे। जब दोनों शाम में लौट रहे थे, तो गोपाल लोहार रास्ते में लगभग 6 बजे शाम में उनके पास आया एवं उसकी बहन को साईकिल पर ले जाने एवं उसको घर पहुँचा देने का प्रस्ताव किया। तत्पश्चात् गोपाल लोहार सोमारी कुमारी को अपने साथ साईकिल पर बैठाकर आगे बढ़ा एवं सूचनादाता पैदल अपने घर के लिए प्रस्थान किया। यह भी अभिकथित किया गया है कि सूचनादाता अपने घर पहुँचा परन्तु उसकी बहन घर नहीं पहुँची। वह कुछ समय के बाद घर आयी एवं उसे सूचित किया कि गोपाल लोहार उसे एक एकान्त स्थान में सुसुबुरू जंगल में लगभग 6.30 बजे शाम में ले गया एवं उससे बलपूर्वक बलात्संग किया। सूचनादाता ने घटना के बारे में गाँववालों को सूचित किया एवं पुलिस को भी सूचित किया। तब पुलिस ने गोपाल लोहार के विरूद्ध I.P.C. की धारा 376 के अधीन दिनांक 29.11.1997 को मुहू थाना केस सं॰ 48 वर्ष 1997 दर्ज किया।

3. पुलिस ने मामले का अन्वेषण किया एवं अभियुक्त के विरूद्ध आरोप-पत्र सुपुर्द किया। साक्षियों को परीक्षित किया गया था एवं दोनों पक्षों की सुनवायी करने के उपरांत, विचारण न्यायालय ने उक्त वर्णित रीति से अपीलार्थी को दोषसिद्ध एवं दण्डित किया।

4. अपीलार्थी ने अपने विरूद्ध लगाये गये आरोप का दोषी नहीं होने का अभिवाक् किया है एवं स्वयं को निर्दोष होने का दावा करता है।

5. अभियोजन ने कुल 13 साक्षियों की परीक्षा की है।

अ॰ सा॰ 1 डोंडा मुंडा मामले का सूचनादाता है, अ॰ सा॰ 2 सोमारी मुंडाइन मामले की पीड़िता एवं घटना की एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है। अ॰ सा॰ सं॰ 3, 4, 5, 6, 9, 10, 11 एवं 12 सूचनादाता एवं पीड़िता लड़की की ओर से अनुश्रुत साक्षीगण हैं। अ॰ सा॰ 7 प्रदर्श 1 का लेखक है जिसने कहा है कि वह सूचनादाता के साथ थाने गया था एवं सूचनादाता के शब्दों पर प्रदर्श-1 लिखा। अ॰ सा॰ 8 डॉ॰ ललिला वर्मा चिकित्सा अधिकारी हैं जिन्होंने पीड़ित लड़की की परीक्षा की एवं अ॰ सा॰ 13 इस मामले के अन्वेषण अधिकारी है।

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्रीमती एम॰ पत्रा निवेदन करते हैं कि विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलार्थी को दोष का निष्कर्ष प्राप्त करने में प्रत्यक्ष त्रुटि कारित की

है एवं अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य पर पूरी बारीकी से विचार नहीं किया। मेरी राय में अ॰ सा॰ 1, 2, 8 एवं 13 के साक्ष्य पर सावधानीपूर्वक संवीक्षा किए जाने की आवश्यकता है। मैं पाती हूँ कि अ॰ सा॰ 2 पीड़ित लड़की ने अपने साक्ष्य में यह कहा है कि जब वह सैको बाजार से अकेली लौट रही थी, तब अभियुक्त गोपाल लोहार ने बलपूर्वक अपनी साईकिल पर बैठाकर उसके गाँव की ओर ले गया परन्तु अभियुक्त ने रास्ते में सुसुबुरू जंगल के पास उसे बलपूर्वक नीचे उतारा एवं उससे बलात्संग कारित किया। उसने यह भी अभिकथित किया है कि जब वह अपने घर लौटी, तो उसने घटना के बारे में अपने भाई, चाचा एवं अन्य लोगों को बताया एवं तब अगले दिन वह अपने भाई डोंडा मुंडा एवं अन्य साक्षियों के साथ मुर्मु थाना में गयी एवं वहाँ घटना के बारे में कथन किया। प्रति-परीक्षण के दौरान उसने कहा है कि वह सैको बाजार में अपने भाई से नहीं मिली। उसने यह भी कहा है कि गोपाल लोहर ने उसे बलपूर्वक साईकिल पर बैठाया एवं कटार की नोक पर उसे धमकी दी। इस प्रकार उसने एक नया वृत्तांत बताते हुए न्यायालय में अभिसाक्ष्य दिया है जो कि न तो प्राथमिकी में वर्णित है न ही Cr.P.C. की धारा 164 के अधीन अभिलिखित उसके अभिकथनों में वर्णित है।

7. सूचनदाता अ॰ सा॰ 1 डोंडा मुंडा के अभिकथनों के परिशीलन से, मैं पाती हूँ कि उसने विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि वह अपनी बहन सोमारी मुंडाइन के साथ सैको बाजार गया था एवं दोनों लगभग 7 बजे शाम में लौट रहे थे एवं रास्ते में अभियुक्त गोपाल लोहार उनसे मिला एवं कहा कि वह अपनी साईकिल पर उसकी बहन को बैठायेगा और उसे घर छोड़ देगा जिसपर सूचनादाता की सहमति हुई थी। अ॰ सा॰ 1 ने आगे यह भी कहा कि जब वह अपने घर पहुँचा, तो वहाँ अपनी बहन को नहीं पाया। उसकी बहन लगभग 7.30 बजे शाम में लौटी एवं उसे बताया कि अभियुक्त गोपाल लोहार उसे एक 'कुतुश बुश' के पास सुसुबुरू जंगल ले गया एवं उससे बलपूर्वक बलात्संग कारित किया। परन्तु अपने प्रति-परीक्षण में उसने कहा है कि जब वह शौच के लिए गया था, तब गोपाल लोहार ने उसी समय उसकी बहन को बलपूर्वक बैठाया एवं गाँव की ओर ले गया।

8. इस प्रकार अभियोजन साक्ष्य का विश्लेषण करके मैं यह पाती हूँ कि पीड़ित लड़की के साक्ष्य में कई विरोधाभाष हैं। पीड़ित लड़की अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य से, घटना की यथा वर्णित रीति आत्यंतिक रूप से असम्भाव्य है क्योंकि वह 18 वर्ष उम्र की है अर्थात् एक पूर्ण विकसित महिला को अभियुक्त द्वारा उसके भाई की उपस्थिति में बलपूर्वक नहीं ले जाया जा सकता है। विशेष रूप से साइकिल पर पीड़ित लड़की को ले जाने से अन्य प्रकार से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पीड़ित लड़की की सहमति थी। पुनः मैं यह पाती हूँ कि अ॰ सा॰ 1 ने अपने साक्ष्य में काफी विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि उसने अपीलार्थी को साइकिल पर अपनी बहन को ले जाने की अनुमति दी। ये सारी परिस्थितियाँ अपीलार्थी के साथ पीड़ित लड़की की घनिष्ठता दर्शाती है। यह इस तथ्य से और अधिक अभिपुष्ट होता है कि उसने स्वयं यह कहा कि उसने शोर नहीं मचाया जब उससे बलात्संग किया गया। इसके अतिरिक्त, उक्त घटना एक बाजार वाले दिन घटित हुई एवं घटनास्थल व्यस्त सड़क से मात्र बीस यार्ड दूर था इस प्रकार ऐसी परिस्थितियों में ऐसी रीति से किसी व्यक्ति के साथ बलपूर्वक बलात्संग करना संभव नहीं है।

9. अन्य साक्षीगण अर्थात् अ॰ सा॰ 3, 11, 12 अभियोक्त्रि के पारिवारिक सदस्य हैं एवं उनलोगों का एक ही अभिकथन है कि उनलोगों को सूचनादाता डोंडा मुंडा (अ॰ सा॰ 1) द्वारा घटना के बारे में सूचित किया गया था। विद्वान न्यायाधीश यह भी कहते हैं कि अभियोजन मामले का किसी स्वतंत्र स्त्रोत से कोई सम्पोषकता नहीं है।

10. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अभियोक्त्रि की परीक्षा डॉक्टर (अ॰ सा॰ 8) द्वारा 29.11.1997 को लगभग 10.30 बजे सुबह में की गयी थी जिन्होंने पुष्टि की कि बलात्संग का कोई चिन्ह या अभियोक्त्रि के शरीर पर बाह्य उपहति नहीं पायी गयी थी। डॉक्टर के साक्ष्य पर विचार करने पर मैं पाती हूँ कि उसने निम्नलिखित राय दी है:-

(a) लड़की की उम्र लगभग 18 वर्ष है।

(b) उसके शरीर के बाह्य भाग पर कोई उपहति नहीं है।

(c) मैथुन का कोई साक्ष्य नहीं है।

अपीलार्थी ने यह भी इंगित किया है कि प्राथमिकी लगभग 6.30 बजे शाम में 29.11.97 को दर्ज की गयी थी परन्तु सर्वाधिक आश्चर्य की बात यह है कि डॉक्टर ने उसी दिन अर्थात् उपरोक्त प्राथमिकी दर्ज किए जाने से पहले 10.30 बजे दिन में पीड़िता की परीक्षा की है। इस प्रकार मैं पाती हूँ कि अभियोक्त्रि द्वारा किया गया अभिकथन डॉक्टर के साक्ष्य से कोई समर्थन या सम्पोषकता नहीं पाता है।

11. विचारण न्यायालय ने पूर्णतया अभियोक्त्रि के साक्ष्य पर भरोसा व्यक्त किया है। परन्तु, मेरी राय में, अभियोक्त्रि के साक्ष्य की प्रकृति या गुणवत्ता विश्वसनीय ही नहीं हैं जैसा कि पूर्व में चर्चा की गयी है। अभियोक्त्रि के साक्ष्य एवं अन्य साक्षियों तथा डॉक्टर के साक्ष्य के बीच स्पष्ट असंगतता पर विचार करने पर, मेरी राय में, अभियोजन युक्तियुक्त संदेह से परे अपने मामले को प्रमाणित करने में असफल हुआ है। इस स्थिति में, अपीलार्थी को संदेह का लाभ प्राप्त होना चाहिए।

12. परिणामस्वरूप, अपील अनुज्ञात किया जाता है।

अपीलार्थी गोपाल कहार को I.P.C. की धारा 376 के अधीन अपराध के आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है एवं एतद् द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय एवं दण्डादेश को अपास्त किया जाता है। चूँकि अपीलार्थी जमानत पर है, इसलिए उसे जमानत बंधपत्रों के दायित्वों से मुक्त किया जाता है।

---

ekuuh; vftr dqekj flUgk] U;k;efr

अरबिन्द प्रसाद भगत

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5656 वर्ष 2004. 2 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

(क) बिहार पंचायत ग्रामीण स्वयंसेवी बल नियमावली, 1949—नियम 3 एवं 4—पंचायत सेवक की नियुक्ति–दलपति से पंचायत सेवक पर प्रोन्नति–दलपति/पंचायत सेवक के पद पर नियुक्ति/प्रोन्नति के लिए पंचायत में स्थायी निवास की आवश्यकता को नियमावली के नियम 3 के अधीन एक पूर्व शर्त्त नहीं रखी गई है–ऐसे आधार पर सेवा की समाप्ति अवैधानिक है। (पैरा 7 एवं 8)

(ख) सेवा विधि–बर्खास्तगी–मुख्य आधार यह कि दलपति/पंचायत सेवक उस पंचायत का स्थायी निवासी नहीं था जहाँ उसकी नियुक्ति की गई थी–जब सुसंगत नियम ऐसी किसी आवश्यकता को अभिकथित नहीं करता तो सेवा के 21 वर्षों के उपरांत याची की सेवा समाप्त नहीं की जा सकती–नियम की आवश्यकता केवल इतनी थी कि किसी व्यक्ति को कम-से-कम कुल मिलाकर 6 महीने या 180 दिनों के लिए निवास किया हो। (पैरा 8 एवं 9)

अधिवक्तागण.–M/s V. Shivnath, Gautam Kumar, For the Petitioner; Mr. Baleshwar Yadav, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 2 की हस्ताक्षराधीन निर्गत ज्ञापन जांच 353 दिनांक 24.8.2004 में निहित कार्यालय आदेश संख्या 7/2004 को निरस्त करने के लिए एक यथोचित, रिट,

आदेश या निर्देश को निर्गत करने की प्रार्थना करती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 24.8.2004 के अनुसार और अग्रतर करने में कार्रवाई करने से प्रत्यर्थीगण को स्थायी रूप से रोकने के लिए याची एक और रिट, आदेश या निर्देश की प्रार्थना करता है।

2. संक्षेप में, तथ्य, निम्नांकित रूप से है:-

पत्र संख्या 57 दिनांक 5.11.1983 के माध्यम से समिति की अनुशंसा पर बिहार पंचायत ग्रामीण स्वयंसेवी बल नियम, 1949 के नियम 3 एवं 4 के अर्थ के भीतर मुखिया की अनुशंसा पर प्रयोज्य नियमों के अनुसार 3.9.1983 को याची की नियुक्ति दलपति के तौर पर की गई थी। याची को जिला पंचायत राज अधिकारी, संथाल परगना, दुमका द्वारा अनुमोदित किया गया था। उसके अनुसार वह नियम 3 एवं 4 में विहित सभी मानदेयों एवं आवश्यकता को पूरा करता था क्योंकि उसकी आयु 21 से 30 वर्ष के बीच था, एक अच्छा नैतिक चरित्र और सुदृढ़ शारीरिक क्षमता इत्यादि का था और मध्यमा देशी भाषा का प्रमाणपत्र भी था। याची ने एक बेदाग सेवा रिकार्ड के साथ 1983 से 1989 तक दलपति के तौर पर कराकरम पंचायत में कार्य किया और 1986 में उसे ग्रामीण विकास एवं पंचायत राज विभाग के अधीन प्रशिक्षण भी किया और प्रशिक्षण को सफलतापूर्वक पूरा करने पर उसे 20 दिसम्बर, 1986 को प्रमाण-पत्र भी प्रदान किया गया। याची को कई अन्य के साथ 27.3.1989 को पंचायत सेवक के पद पर अन्तिम चयन के लिए चयनित किया गया। चयन के उपरांत याची को पंचायत सेवक के तौर पर नियुक्ति की गई और उसने 9.5.1989 को साहेबगंज में योगदान दिया और 4 मई, 1989 को उसे प्रशिक्षण के लिए भेज दिया गया। प्रशिक्षण पूरा होने पर उसे 11.5.89 से 8.8.89 के प्रभाव से उसके प्रदर्शन के लिए एक प्रमाण पत्र प्रदान किया गया और दिनांक 8.8.89 के प्रमाण पत्र के अनुसार उसे द्वितीय श्रेणी में सफल घोषित किया गया। तत्पश्चात् याची ने अपने पदस्थापन के स्थान पर योगदान दिया, याची को संबोधित पत्र संख्या 163 दिनांक 3.6.2000 के माध्यम से उसे दलपति/पंचायत सेवक के तौर पर उसकी नियुक्ति के सम्बन्ध में सभी सुसंगत कागजों/दस्तावेजों को पेश करने के लिए कहा गया। याची ने जिला पंचायत राज अधिकारी, साहेबगंज में 14.6.2000 को सभी सुसंगत कागजात जमा कर दिया। उसी दिन बी॰ डी॰ ओ॰, मान्द्रो को जिला पंचायत राज्य पदाधिकारी, साहेबगंज द्वारा संबोधित पत्र संख्या 166 दिनांक 3.6.2000 के साथ सुसंगत प्रमाण पत्र को पेश करने के लिए याची ने बी॰ डी॰ ओ॰ द्वारा पत्र संख्या 247, 14.6.2000 को प्राप्त किया। याची ने बी॰ डी॰ ओ॰ की नोटिस पर उसे सूचित किया कि उसने जिला पंचायत राज अधिकारी, साहेबगंज के समक्ष पहले ही आवश्यक कागजात जमा कर दिया है जिन्हें प्राप्त किया गया है और इस प्रकार किसी भी हालत में आदेश का अनुपालन हो चुका है। इसी दौरान याची ने आवेदन किया और बभनगामा पंचायत के एक निवासी के तौर पर अंचलअधिकारी, राज महल से एक आवासीय प्रमाण-पत्र भी प्राप्त कर लिया और जाँच पर 12.2.2001 को आवासीय प्रमाण-पत्र निर्गत किया गया जिसे जिला पंचायत राज पदाधिकारी, साहेबगंज के समक्ष प्रस्तुत किया गया। 9.7.2002 को याची को उपायुक्त, साहेबगंज द्वारा निलंबित कर दिया गया जिसके परिणामत: रिट याचिका (एस॰) संख्या 6979 वर्ष 2002 दाखिल किया गया और यह निरर्थक हो गई और तत्पश्चात् यह कथन किया गया कि याची द्वारा वापस ले ली गई। 22.9.2002 को याची को अभियोग-पत्र प्राप्त हुआ और एक जाँच के लिए उसे 25.11.2002 को उपस्थित होने का आदेश दिया गया। अपने विरूद्ध लगाए गए सभी आरोपो से इन्कार करते हुए याची ने 27.2.2003 को लिखित स्पष्टीकरण जमा किया। अन्तत: दिनांक 24.8.2004 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से याची को अवमुक्त/बर्खास्त कर दिया गया, यही आदेश इस रिट याचिका में चुनौती के अधीन है।

3. याची द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क इसको लेकर है कि क्या प्रोन्नति पाने और 21 वर्षों तक सेवा में बने रहने के उपरांत प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश अवैधानिक, मनमाना और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी था। याची द्वारा उठाया गया दूसरा तर्क यह

है कि जिस आधार पर उसे बर्खास्त किया गया है वह प्रकटत: अवैधानिक और अपोषणीय था क्योंकि बिहार पंचायत ग्रामीण स्वयंसेवी बल नियम, 1949 के नियम 3 के अधीन, दलपति के पद पर नियुक्ति के लिए गांव में एक स्थायी निवास का प्रमाण पत्र को प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। याची द्वारा उठाया गया तीसरा तर्क यह है कि बार-बार मांग करने के बावजूद जाँच रिपोर्ट की आपूर्त्ति नहीं की गई जो नैसर्गिक न्याय के स्थापित मूलभूत सिद्धांतो के विरूद्ध था और इस प्रकार समूची कार्रवाई दूषित था और जिस आधार पर आक्षेपित आदेश या बर्खास्तगी आदेश पारित किया गया था, वह प्रकटत महत्वहीन भ्रामक और विधि की दृष्टि में अपोषणीय था।

4. जवाब में प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची ने अपने आवासीय सबूत के संबंध में कोई कागज प्रस्तुत नहीं किया और वह यह भी निवेदन करते हैं कि एक वैकल्पिक उपाय है और आयुक्त के समक्ष एक अपील द्वारा वह कार्यवाही कर सकता है।

5. मैंने प्रतिद्वंदी निवेदनों एवं अभिवाको द्वारा चुनौती के अधीन आक्षेपित आदेश पर भी विचार किया है। यह प्रतीत होता है कि उपायुक्त, साहेबगंज द्वारा निर्गत दिनांक 24.8.2004 के आक्षेपित आदेश द्वारा ऐसे पाँच आरोप थे जिनपर विचार किया गया था और आरोप सं॰ 5 को छोड़कर सभी आरोप किसी-न-किसी प्रकार से आवासीय प्रमाण के संबंध में है और बिहार पंचायत ग्रामीण स्वयंसेवी बल नियम, 1949 के नियम 3 पर भरोसा करते हुए इसे याची के विरूद्ध निर्णित किया गया है, जिसे नीचे उत्कथित किया जा रहा है:-

> ''मुखिया, अपने चुनाव के एक महीने के भीतर भर्ती के लिए ग्राम पंचायत के क्षेत्र के भीतर निवास कर रहे सभी पुरूष व्यक्तियों का प्रपत्र-I में एक पंजी तैयार करेगा जो 18-30 आयु वर्ग के बीच हो और शारीरिक रूप से सक्षम हो।

6. पूर्वोक्त नियम 3 के परिशीलन पर यह स्पष्ट होगा कि नियम के अधीन मात्र यह आवश्यकता थी कि भर्ती के समय उसे उसी ग्राम पंचायत में रहने वाला होना था जहाँ उसकी नियुक्ति की गई थी। पूर्वोक्त नियम कभी भी उम्मीदवार को उस पंचायत का एक स्थायी निवासी होना आवश्यक नहीं बनाता और इस प्रकार कूटरचित दस्तावेजों पर आधृत होकर या जालसाजी करके नियोजन प्राप्त करने का आरोप युक्तिसंगत नहीं ठहरता और विधि की दृष्टि में समर्पित नहीं किया जा सकता। यह तथ्य शेष रह जाता है कि अन्यथा भी उसने जांच के समय मतदाता-सूची पेश की थी जिसमें उसका नाम दर्ज था और ऐसा कोई अन्य दस्तावेज नहीं था जो उसने नियुक्ति के समय पेश किया था जैसा कि आक्षेपित आदेश में ही अभिलिखित है। और इस प्रकार जालसाजी का आरोप लगाना आधारहीन और अवैधानिक है। मुखिया एवं समिति के सदस्यों को दिग्भ्रमित करने के अन्य आरोप भी प्रकटत त्रुटिपूर्ण और असमर्थनीय है।

7. आक्षेपित आदेश में मतदाता सूची को पेश किए जाने और एक वर्ष में याची का उसमें नाम होने के बारे में विनिदिष्ट रूप से अभिलिखित किया गया है परन्तु, यह त्रुटिपूर्ण रूप से अवधारित किया गया कि यह उस तथ्य को न्यायसंगत नहीं ठहराना कि याची उस पंचायत का एक स्थायी निवासी था। जब विधि के अधीन और विशेष रूप से बिहार ग्राम पंचायत स्वयंसेवी बल नियम, 1949 के नियम 3 के अधीन ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है, तो वह आधार और कारण ही प्रकटत: अभिलेख पर त्रुटि प्रतीत होता है और अपास्त किए जाने का दायी है जिसके आधार पर याची को सेवा से बर्खास्त किया गया है। यह तथ्य शेष रह जाता है कि याची अपने कथन के अनुसार लगभग 7 वर्षों की अवधि से निवास कर रहा था और इन सारे तथ्यों पर विचार करके याची की नियुक्ति की गई थी और 3.9.1983 से पूर्वोक्त प्रखण्ड में वह दलपति के तौर पर कार्य कर रहा था। आक्षेपित आदेश में यह सम्परीक्षण कि याची ने कराकारम पंचायत के अपने निवासी होने के बारे में कोई ठोस साक्ष्य पेश नहीं किया था,

जो बिहार पंचायत ग्राम स्वयंसेवी बल नियम, 1949 के नियम 3 के अधीन आवश्यक था, दिमाग के बिल्कुल गैर-इस्तेमाल को सिद्ध करता है क्योंकि स्वयं नियम ही ऐसी किसी आवश्यकता को अभिकथित नहीं करता। याची ने कोई झूठी सूचना या त्रुटिपूर्ण सूचना नहीं दी है और इस प्रकार बर्खास्तगी के दिनांक 24.8.2004 का आक्षेपित आदेश प्रकटतः त्रुटिपूर्ण और असमर्थनीय है मात्र यह कारण से कि कदाचार का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता था और निष्कर्ष अटकलों एवं अनुमानों पर आधृत है तथा अनुचित है एवं विधि की दृष्टि में पोषित नहीं किए जा सकते।

8. याची उचित ही निवेदन करता है कि नियम 4 के अधीन आवश्यकता यह थी कि किसी व्यक्ति को आवश्यक रूप से कुल मिलाकर 6 महीनों या 180 दिनों के लिए निवास करना था, जैसा कि पृष्ठ 82 पर परिशिष्ट-20 के तौर पर संलग्न है और याची उस शर्त को स्पष्ट रूप से पूरा करता था। यह भी स्पष्ट करना सुसंगत है कि आरोप संख्या 5 अनुशासनहीनता से संबंधित है जो स्वतः-विरोधी और अपोषणीय है जबकि स्वयं अनुशासनिक प्राधिकारी ने अपने आक्षेपित आदेश में इस तत्व को अभिलिखित किया है कि कारण-पृच्छा का स्पष्टीकरण प्राप्त किया गया था और संतोषजनक नहीं पाया गया था और इस प्रकार यह आरोप कि कारण-पृच्छा का जवाब नहीं देने का कृत्य अनुशासनहीनता का एक कृत्य था, बेबुनियाद है और दिमाग के बिल्कुल गैर इस्तेमाल को प्रतिबिम्बित करता है।

9. अन्यथा भी याची 21 वर्षों तक सेवा में बना रहा और प्रोन्नति भी दिया गया और इतनी विलम्बित प्रक्रम पर जिस आधार पर उसे बर्खास्त किया गया है वह अपोषणीय और अवैधानिक है।

10. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके दिनांक 24.8.2004 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky ,o t;k jk;] U;k;efr|x.k

ओरियेंटल इन्श्योरेंस कंपनी लि॰

बनाम

श्रीमती बिमला देवी एवं अन्य (99 में)

श्रीमती बसन्ती मुखी एवं अन्य (100 में)

श्रीमती दीपा कौर एवं अन्य (101 में)

लता देवी एवं अन्य (181 में)

शांति देवी एवं अन्य (182 में)

एम॰ ए॰ सं॰ 99, 100, 101, 181 एवं 182 वर्ष 2008. 23 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 147, 166 एवं 168—अधिनिर्णय-बस के चालक की चालन अनुज्ञप्ति पेश एवं प्रदर्शित की गयी थी।-अनुज्ञप्ति पुनर्नवीकृत की गयी थी एवं उस अवधि के दौरान दुर्घटना घटित हुई थी-सर्वेक्षक, जिन्होंने सर्वेक्षण किया था, को बीमा कंपनी द्वारा परीक्षित नहीं किया गया है-दावेदार प्रतिकर का हकदार है। (पैरा 7)

अधिवक्तागण.-Mr. Alok Lal, For the Appellants; M/s Ananda Sen, For the Respondents; Mr. G.C. Jha (in all), For the Insurance Company.

आदेश

चूँकि ये सभी अपीलें एक ही दुर्घटना से उद्भूत निर्णय से उद्भूत हुए हैं एवं उन सभी में विधि के सर्वनिष्ठ प्रश्न अंतर्ग्रस्त है, इसलिए उन सभी को एक साथ सुना गया है एवं इस सम्मिलित निर्णय से निस्तारित किया जा रहा है।

2. आक्षेपित निर्णय एवं अधिनिर्णय द्वारा मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जमशेदपुर ने एक मोटर दुर्घटना में मृतक की मृत्यु के लिए यह अभिनिर्धारित करते हुए प्रतिकर अधिनिर्णीत किया कि अपीलार्थी, जो कि पथ परिवहन बस का बीमाकर्ता है, प्रतिकर भुकतान के लिए दायी है क्योंकि वाहन अपीलार्थी द्वारा बीमित था।

3. यह प्रतीत होता है कि घटना की दुर्भाग्यपूर्ण तिथि को मृतक टाटा सूमो वाहन से यात्रा कर रहा था जो बिहार राज्य पथ परिवहन निगम की बस द्वारा टक्कर मारा गया जो उपेक्षापूर्वक एवं उतावलेपन से चलाया जा रहा था एवं इससे कई व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी। दावेदारों के मामलों का अपीलार्थी द्वारा, जो कि बस का बीमाकर्त्ता है, अन्य के साथ-साथ, इस आधार पर प्रतिवाद किया गया था कि अपराधकारी बस का चालक विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति धारण किए हुए नहीं था। अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि दुर्घटना की संगत तिथि को, बस का चालक एक विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति धारण किए था। इस प्रकार, बीमा कंपनी को इसके दायित्वों से मुक्त नहीं किया जा सकता है।

4. अपीलार्थी-बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता, श्री आलोक लाल ने मुख्य रूप से यह तर्क दिया कि एक और प्रतिकर मामला जो प्रतिकर केस सं॰ 143 वर्ष 2005 था, उसी दुर्घटना में कारित मृत्यु के लिए प्रतिकर हेतु दाखिल किया गया था। उस मामले में, अपीलार्थी ने यही बचाव अपनाया कि बस का चालक एक विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण किए हुए नहीं था। अधिकरण ने दिनांक 25 जून, 2007 के निर्णय द्वारा अभिनिर्धारित किया कि चालक विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण किए हुए नहीं था एवं बीमा कंपनी को उसके दायित्व से मुक्त किया। लेकिन, अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी राशि का भुगतान करेगा एवं यही राशि पथ परिवहन निगम से वसूलेगा। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अधिकरण ने इन सभी प्रतिकर मामलों में जो कि इन सभी अपीलों की विषय वस्तु है, एक विरोधी दृष्टिकोण अपनाया है।

5. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में हम कोई बल नहीं पाते हैं। प्रतिकर केस सं॰ 143 वर्ष 2005 में चूँकि प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई चालन अनुज्ञप्ति पेश नहीं की गयी थी एवं इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिकरण *(sic)* एक वैध चालन अनुज्ञप्ति धारण किये हुए नहीं था। बेहतर मूल्यांकन के लिए उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 9 के संगत भाग को इसमें इसके नीचे उत्कथित किया गया है:-

> ''जहाँ तक कि बस सं॰ JH05G-9887 के चालक निरंजन कुमार मिश्र के चालन अनुज्ञप्ति का प्रश्न है आवेदन के पैरा 9(a) में वर्णित दावेदारों का यह अभिवाक् कि जिला परिवहन अधिकारी, भागलपुर द्वारा निर्गत उसकी चालन अनुज्ञप्ति सं॰ 5944/88, 10.10.1996 तक विधिमान्य था। उक्त घटना की तिथि 6.6.04 है। इस प्रकार दावेदारों/आवेदनों से यह स्पष्ट है कि घटना की तिथि को बस की चालन अनुज्ञप्ति विधिमान्य नहीं थी। <u>बस के चालक की कोई भी चालन अनुज्ञप्ति यह दर्शाने के लिए प्रदर्शित नहीं किया गया है कि यह उक्त दुर्घटना के दौरान विधिमान्य था।</u>''

6. उपरोक्त उत्कथन के अंतिम दो पंक्तियों से, प्रत्यक्षत: यह स्पष्ट है कि बस के चालक की कोई भी चालन अनुज्ञप्ति यह दर्शाने के लिए पेश नहीं की गयी थी कि यह एक विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति था।

7. वर्तमान मामले में, बस के चालक की चालन अनुज्ञप्ति पेश एवं प्रदर्शित की गयी थी। अब अपीलार्थी यह अभिवाक् अपना रहा है कि सर्वेक्षक, जिन्होंने सर्वेक्षण किया था, कि रिपोर्ट के अनुसार, यह पाया गया था मूल अनुज्ञप्ति राँची से निर्गत की गयी थी जो कि एक जाली अनुज्ञप्ति थी एवं इसे भागलपुर में पुनर्नवीकृत कराया गया था। स्वीकार्यत: यह अनुज्ञप्ति जिला परिवहन अधिकारी, भागलपुर द्वारा 11.10.2003 से 10.10.2006 तक की अवधि हेतु पुनर्नवीकृत किया गया था एवं इसी अवधि के दौरान दुर्घटना घटित हुई थी। सर्वेक्षक जिन्होंने सर्वेक्षण कराया, को अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा

अपनाये गये अभिवाक् को प्रमाणित करने के लिए परीक्षित नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त चालन अनुज्ञप्ति से यह परिलक्षित होता है कि चालक 1981 से चालन अनुज्ञप्ति धारण किये हुए था एवं उसे 20 वर्षों से अधिक समय से वाहन चलाने का अनुभव था। इसलिए, हमारी राय में, अपीलार्थी–बीमा कंपनी द्वारा अपनाया गया बचाव टिकाउ नहीं है एवं आधार रहित है।

8. उपरोक्त कारणों से, हम अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय एवं अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं।

9. इस प्रकार, इन सभी अपीलों को खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ thñ vkjñ iVuk;d] U;k;efr

मेसर्स आदित्य राईस मिल्स प्रा॰ लि॰, हजारीबाग

बनाम

झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 651 वर्ष 2009. 20 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

भारतीय विद्युत अधिनियम, 2003—धाराएँ 135 एवं 126—अनंन्तिम विपत्र–इस आधार पर चुनौती दी गयी कि निरीक्षण याची अथवा उसके प्रतिनिधि की अनुपस्थिति में कराया गया था जो कि विहित नियमावली के विपरीत है इस प्रकार, निर्धारण पूर्णतया अविधिमान्य है–अभिनिर्धारित, उच्च न्यायालय ऐसे विवाद पर विचार नहीं करेगा क्योंकि याची अधिनियम की धारा 126 के उपबन्धों के अधीन सम्बन्धित प्राधिकारियों के समक्ष शिकायत कर सकता है–अपील का प्रावधान भी याची को उपलब्ध है। (पैरा 9, 10 एवं 12)

निर्णयज विधि.–AIR 2007 Delhi 85; AIR 2006 Calcutta 59—Discussed.

अधिवक्तागण.–Mr. Ajit Kumar, For the Petitioner; M/s A.K. Sinha, Rajesh Shankar, A. Prakash, D. Kumar, For the Respondent-JSEB; Mr. Sudarshan Srivastava, For the Respondent No. 2.

आदेश

इस रिट आवेदन में याची ने दिनांक 31.1.2009 के निरीक्षण रिपोर्ट, अस्थायी निर्धारण एवं तत्सम्बन्धी विपत्र दिनांकित 3.2.2009 को अभिखंडित करने वाले एक आदेश के निर्गतीकरण की प्रार्थना की है, जो क्रमशः प्रत्यर्थी सं॰ 4 एवं 5 द्वारा निर्गत किया गया था। इसके अतिरिक्त विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 126 के उपबन्धों के अधीन याची के विरूद्ध कार्यवाही करने से प्रत्यर्थीगण को रोकने वाले एक आदेश के निर्गतीकरण के लिए भी प्रार्थना की गयी है। किसी धनराशि के भुगतान के लिए कोई शर्त अधिरोपित किए बिना याची के परिसर में तत्क्षण विद्युत आपूर्त्ति प्रत्यावर्तित करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने के लिए भी प्रार्थना की गयी है।

2. याची ने भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन एक निगमित कंपनी होने के कारण, प्रत्यर्थी विद्युत बोर्ड से HT विद्युत संयोजन अभिप्राप्त किया था एवं यह विद्युत ऊर्जा के 200KVA की संविदा मांग का उपभोग करता रहा है। याची अपने परिसर के भीतर संस्थापित मीटर में रिकार्ड के अनुसार, उपभुक्त ऊर्जा हेतु विद्युत प्रभारों का भुगतान करता रहा है। विद्युत ऊर्जा का औसत उपभोग, जैसा कि याची द्वारा 20,000 इकाई प्रति माह का दावा किया गया है।

प्रत्यर्थी JSEB के सम्बन्धित प्राधिकारीगण याची के परिसर में संस्थापित मीटरों का नियमित निरीक्षण किया करते थे एवं किसी भी अवसर पर, उन लोगों ने मीटरों में इकाईयों के अभिलेखन में कोई अनियमितता या असंगति नहीं पायी। ऐसा अंतिम निरीक्षण 10.9.2008 को किया गया था।

3. याची का दावा यह है कि जब इसका पता चला कि उसके परिसर में संस्थापित ट्राँसफार्मर से ट्राँसफार्मर तेल रिस रहा था, तो प्रत्यर्थी JSEB के सम्बन्धित प्राधिकारीगण के समक्ष उस प्रभाव का एक रिपोर्ट दर्ज कराया गया, परन्तु उनलोगों ने त्रुटि को ठीक करने के लिए त्वरित कदम नहीं उठायें।

अभी तक, 31.1.2009 को प्रत्यर्थी बोर्ड के कुछ अधिकारियों ने, सभी प्रत्यर्थी सं॰ 4, अर्थात्, विद्युत अधीक्षण अभियंता के दर्जे से नीचे, याची के परिसर में आये, इस अभिवाक् पर कि वे लोग ट्राँसफार्मर की क्षति का मरम्मत करने आये थे। अभिप्रायित निरीक्षण करने के पश्चात्, वह भी याची के उत्तरदायी अधिकारियों की अनुपस्थिति में, निरीक्षक दल ने एक निरीक्षण रिपोर्ट तैयार की एवं इस अभिकथन पर कि वितरण ट्राँसफार्मर के सेकेण्डरी (द्वितीयक) LT पर चिपकाये गए कतिपय संख्या की सीलों को डुप्लिकेट होना पाया गया था एवं डुप्लिकेट सील लगाये जाने के लिए याची को उत्तरदायी अभिनिर्धारित करके एवं तद्द्वारा यह अनुमान लगाकर कि याची ने विद्युत ऊर्जा का अनधिकृत उपयोग किया था, उनलोगों ने IPC की धारा 379 के अधीन एवं साथ ही विद्युत अधिनियम, 2003 की धाराएँ 126, 135 एवं 138 के अधीन अभिकथित अपराधों हेतु याची के विरूद्ध 1.2.2009 को एक प्राथमिकी दर्ज करायी। याची के परिसर का विद्युत संयोजन उसी दिन काट दिया गया था।

विद्युत ऊर्जा के अभिकथित मूषण के कारण कारित क्षति के निर्धारण के आधार पर 24,29,520/- रु॰ तक की सीमा तक का एक अनंतिम विपत्र प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा याची के विरूद्ध पेश किया गया था।

4. याची ने उस रीति को जिसमें प्रत्यर्थी बोर्ड के अधिकारियों द्वारा निरीक्षण कराया गया था, एवं उनलोगों द्वारा तैयार एवं पेश की गयी निरीक्षण रिपोर्ट को इस आधार पर चुनौती दी है कि निरीक्षण याची के किसी अधिकृत प्रतिनिधि की अनुपस्थिति में कराये जाने के कारण, यह अविधिमान्य एवं विहित नियमावली के विपरीत है एवं इसलिए, निरीक्षण रिपोर्ट अविधिमान्य है एवं प्रत्यर्थी बोर्ड के किसी काम का नहीं है।

याची ने अस्थायी विपत्र को इस आधार पर भी चुनौती दी है कि निर्धारण का ढंग पूर्णतया गलत एवं विहित नियमावली के विपरीत है एवं यह इसके बारे में कोई निष्कर्ष अभिलिखित किए बिना ही पेश किया गया है कि क्या उपभोक्ता द्वारा विद्युत का अनधिकृत उपयोग किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में याची द्वारा AIR 2007 दिल्ली 85 एवं AIR 2006 कलकत्ता 59 में प्रकाशित निर्णय को संदर्भ बनाया गया है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री अजीत कुमार ने तर्क दिया कि निरीक्षण के समय उपभोक्ता के किसी अधिकृत प्रतिनिधि की अनुपस्थिति में, या निरीक्षण रिपोर्ट पर उपभोक्ता के हस्ताक्षर से इनकार करने पर, यह किसी स्वतंत्र व्यक्ति की उपस्थिति में निरीक्षण कराने के उपरांत उस स्वतंत्र व्यक्ति से हस्ताक्षर अभिप्राप्त करना निरीक्षक दल के लिए अनिवार्य था। निरीक्षक दल के अधिकारियों द्वारा इस प्रक्रिया का पालन न किये जाने या अपनाये न जाने के कारण, निरीक्षण एवं निरीक्षण रिपोर्ट दोनों पर ही विश्वास व्यक्त नहीं किया जा सकता है, और न ही यह विद्युत अधिनियम की धारा 126 के उपबन्धों के अधीन याची के विरूद्ध कार्यवाही करने का आधार हो सकता है।

विद्वान अधिवक्ता यह भी तर्क देते हैं कि स्वीकार्यत:, भी हानि को पाँच माह की अवधि के लिए अर्थात्, अंतिम निरीक्षण की तिथि जो कि सितम्बर, 2008 के महीने में किया गया था, से जनवरी 2009 तक के लिए अभिप्रायित रूप से निर्धारित किया गया था। याची का औसत उपभोग, जैसा कि प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा स्वीकार किया गया है, कभी भी 20,000 इकाई प्रति माह से अधिक नहीं था। यदि औसत उपभोग के आधार पर निर्धारण किया जाता है, तब भी, कल्पना के किसी भी विस्तार में क्षति

की धनराशि के तौर पर 24,29,520/- रु॰ की धनराशि का निर्धारण नहीं किया जा सकता था। विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा लागू किए जाने वाले निर्धारण के तरीके के सम्बन्ध में भी विवाद उत्पन्न किया है, यह दावा करते हुए कि उक्त विधि जो कि 1993 में प्रचलित टैरिफ के अनुरूप लागू किया जाता था, का अब विद्युत (कठिनाईयों का निराकरण आदेश), 2005 के माध्यम से प्रत्यर्थी JSEB द्वारा निर्गत अधिसूचना द्वारा निरसित कर दिया गया है।

सभी महाप्रबंधक-सह-मुख्य अभियंताओं, सभी विद्युत अधीक्षण अभियंताओं, सभी विद्युत कार्यपालक अभियंताओं, सभी सहायक कार्यपालक अभियंताओं एवं सभी सहायक विद्युत अभियंताओं को संबोधित JSEB द्वारा 29.1.2009 को निर्गत आक्षेपित परिपत्र (परिशिष्ट-5) की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इस परिपत्र के द्वारा, प्रत्यर्थी बोर्ड ने विद्युत के अनधिकृत उपयोग की दशा में एक विशिष्ट रीति विनिर्दिष्ट करके क्षति का निर्धारण करने का निर्देश अपने अधिकारियों को दिया है। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थी बोर्ड को विद्युत ऊर्जा की क्षति का निर्धारण करने के लिए विनिर्दिष्ट सन्नियम अधिसूचित करने वाला ऐसा परिपत्र निर्गत करने का कोई प्राधिकार या अधिकारिता जो कुछ भी हो, नहीं है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 50 के उपबंध के अधीन या विद्युत (कठिनाईयों का निराकरण आदेश), 2005 के उपबन्धों के अधीन ऐसा प्राधिकार मात्र राज्य विद्युत विनियामक आयोग (प्रत्यर्थी सं॰ 2) में ही निहित है। विद्वान अधिवक्ता इंगित करते हैं कि निर्धारण अधिकारी विद्युत कार्यपालक अभियंता हैं, इसलिए परिपत्र में दिया गया दिशा निर्देश निश्चित रूप से उनपर लागू होगा एवं वे परिपत्र में यथा निर्दिष्ट प्रक्रिया अपनाने को बाध्य होंगे एवं तद्द्वारा यदि याची अस्थायी विपत्र के विरूद्ध निर्धारण अधिकारी के समक्ष अपना आक्षेप दायर करेगा तब भी याची न्याय नहीं पायेगा चूँकि निर्धारण अधिकारी को परिपत्र में अंतर्विष्ट निर्देश के अनुरूप सदैव निर्धारण करना है।

विद्वान अधिवक्ता यह भी कहते हैं कि अस्थायी निर्धारण के माध्यम से मनमाना धन मांगकर एवं याची द्वारा पेश किए गए आक्षेप के आधारों में निर्धारण के विषय पर निर्धारण अधिकारी को अपने विवेक के प्रयोग में बाधा उत्पन्न करने वाले आक्षेपित परिपत्र के माध्यम से, प्रत्यर्थी JSEB ने वास्तविक रूप से अस्थायी रूप से निर्धारित अत्यधिक एवं मनमानी धनराशि के विरूद्ध अनुतोष का दावा करने के विद्युत अधिनियम के अधीन याची के अधिकार को बाधित किया है।

6. प्रत्यर्थी बोर्ड की ओर से एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है। प्रत्यर्थी बोर्ड की ओर से उपस्थित होने वाले वरीय अधिवक्ता श्री अनिल कुमार सिन्हा ने निवेदन किया कि वर्तमान मामला इस तथ्य की दृष्टि में पोषणीय नहीं है कि याची ने विद्युत अधिनियम की धारा 126 के उपबन्धों के अधीन उसे उपलब्ध उपचार प्राप्त नहीं किया है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी स्पष्ट किया कि जैसा कि रिट आवेदन में याची की प्रार्थना से प्रतीत होता है, याची कि शिकायत अनंतिम विपत्र के विरूद्ध है। विद्युत अधिनियम की धारा 135 सह-पठित विद्युत अधिनियम की धारा 126 के उपबन्धों को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची द्वारा कारित विद्युत के मूषण का पता चलने पर विद्युत आपूर्त्ति वियोजित करना प्रत्यर्थी बोर्ड की क्षमता एवं प्राधिकार के अंतर्गत था। विद्युत के अनधिकृत उपयोग के फलस्वरूप बोर्ड को कारित क्षति का निर्धारण करना एवं उपभोक्ता से इस धनराशि का भुगतान करने की अपेक्षा करते हुए एक अनंतिम विपत्र पेश करना एवं विद्युत आपूर्त्ति प्रत्यावर्तित करना भी प्रत्यर्थी बोर्ड के प्राधिकृत अधिकारियों की क्षमता के अंतर्गत था। यह उपबन्ध यह भी प्रावधान करता है कि यदि उपभोक्ता अनंतिम विपत्र की धनराशि स्वीकार नहीं करता है, तो वह अनंतिम विपत्र की तामीला की तिथि से सात दिनों के भीतर इसपर आक्षेप दाखिल कर सकता है एवं ऐसे आक्षेप पर आक्षेप की तिथि से एक माह के भीतर निर्धारण अधिकारी द्वारा विचारित एवं निस्तारित होगा। विद्वान अधिवक्ता

यह स्पष्ट करते हैं कि मात्र अनंतिम विपत्र पेश करना ही अंतिम कार्य नहीं है। बल्कि, यह मात्र एक आधार निर्धारण है जिसके विरूद्ध उपभोक्ता को निर्धारण प्राधिकारी के समक्ष आक्षेप करने का एक अधिकार है एवं यदि उपभोक्ता निर्धारण प्राधिकारी द्वारा किये गए अंतिम निर्धारण से व्यथित महसूस करता है, तो उपभोक्ता को विद्युत अधिनियम की धारा 127 के अधीन यथा उपबन्धित अपील का एक उपचार है। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची ने विपत्र की तामीला की तिथि से सात दिनों के भीतर अनंतिम विपत्र पर आक्षेप दाखिल करने के बजाय वर्तमान रिट आवेदन दाखिल करके सीधे इस न्यायालय से संपर्क किया है। विद्वान अधिवक्ता यह भी तर्क देते हैं कि अनंतिम विपत्र के विरूद्ध इस न्यायालय की रिट अधिकारिता का आश्रय नहीं लिया जा सकता है जबतक कि अधिनियम के अधीन याची को उपलब्ध सभी वैकल्पिक उपचार का प्रयोग उसने नहीं किया हो।

आक्षेपित परिपत्र के सम्बन्ध में, विद्वान अधिवक्ता ने यह स्पष्ट किया कि परिपत्र निर्धारण करने के लिए बोर्ड के प्राधिकृत अधिकारियों को दिया गया मात्र दिशा निर्देश है एवं यह इस स्थापित प्रक्रिया की पुनरावृत्ति मात्र है जिसे सम्पूर्ण देश के प्रत्येक राज्य में समान रूप से अपनाया गया है।

7. प्रत्यर्थी सं॰ 2, झारखण्ड राज्य विद्युत विनियामक आयोग की ओर से एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है। आयोग की ओर से एक प्रारम्भिक आक्षेप इस आधार पर किया गया है कि झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड न तो एक 'राज्य' है और न ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन इसका अभिकरण है एवं इस प्रकार, वर्तमान रिट आवेदन पोषणीय नहीं है। लेकिन, तर्क के दौरान, इस आधार पर गंभीरतापूर्वक बल नहीं दिया गया है एवं इसलिए, यह न्यायालय पेश किए गए उन सभी आधारों को अभिलिखित करना पसन्द नहीं करेगा जिसपर प्रारम्भिक आक्षेप पेश किए जाने की ईप्सा की गयी थी।

प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता, श्री सुदर्शन श्रीवास्तव ने यद्यपि तर्क दिया कि विद्युत अधिनियम, 2003 के अधिनियमन से पूर्व, झारखण्ड राज्य 'विनियामक' था परन्तु झारखण्ड राज्य में राज्य विनियामक आयोग के गठन के उपरांत, अनुज्ञप्तिधारियों की सभी गतिविधियाँ विनियामक आयोग द्वारा विनियमित किया जाना होता है। व्यक्तिगत अनुज्ञप्तिधारियों को अनुज्ञप्ति की शर्त्तों द्वारा शासित किया जाता है जिसे विद्युत अधिनियम, 2003 के उपबन्धों के अनुरूप विनियामक आयोग द्वारा विनियमित किया जाना है। वितरण अनुज्ञप्तिधारी द्वारा विद्युत की आपूर्त्ति को उपभोक्ताओं एवं अनुज्ञप्तिधारी के बीच किये गये 'आपूर्त्ति हेतु करार' द्वारा शासित होता है एवं विपत्रों को विनियामक आयोग द्वारा निर्गत टैरिफ आदेश के आधार पर ही पेश किया जाता है। इस सम्बन्ध में किसी कठिनाई को दूर करने के लिए अधिनियम में ही पर्याप्त प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है। विद्वान अधिवक्ता का प्रतिविरोध यह है कि याची द्वारा उठाये गये अंतिम विपत्र पेश किए जाने के लिए निर्धारण की रीति से सम्बन्धित मुद्दों के आलोक में, पक्षकार कोई सन्नियम विकसित करने के लिए विनियामक आयोग से भी संपर्क कर सकता था।

8. परस्पर विरोधी तर्कों से तथ्य जो उद्‌भूत होते हैं, वे ये हैं कि याची के परिसर का निरीक्षण प्रत्यर्थी बोर्ड के अधिकारियों द्वारा 31.1.2009 को किया गया था। निरीक्षण के दौरान, निरीक्षक दल ने याची द्वारा अभिकथित रूप से कारित की गयी कतिपय अनियमितताओं को अभिकथित रूप से पाया गया था, जिसके आधार पर एक अनुमान लगाया गया था कि याची विद्युत ऊर्जा के अनधिकृत उपयोग में संलिप्त रहा है। इस प्रकार से बोर्ड को कारित क्षति का निर्धारण बोर्ड के सम्बन्धित अधिकारी द्वारा 24 लाख रु॰ से अधिक तक का लगाया गया था एवं ऐसे अभिकथनों के आधार पर, याची के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी थी जबकि साथ-ही-साथ याची के इकाई की विद्युत आपूर्त्ति वियोजित की गयी थी।

अंतिम विपत्र, जैसा कि प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा पेश किया गया था, तामीला, याची से अपना आक्षेप, यदि कोई हो, सात दिनों के भीतर दाखिल करने की अपेक्षा करते हुए उसे की गयी थी। याची ने कोई आक्षेप दाखिल नहीं किया एवं उसने निर्धारण की रीति पर ही विवाद करके अनंतिम विपत्र को चुनौती देने का विकल्प चुना है जैसा कि प्रत्यर्थी बोर्ड के अधिकारियों द्वारा लागू किया गया था।

याची ने प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा निर्गत परिपत्र (उपाबंध-5) को भी चुनौती दी है जिसके अधीन विद्युत ऊर्जा के अनधिकृत उपयोग की दशा में कारित विद्युत ऊर्जा की क्षति का अनंतिम निर्धारण करने के विषय में एक विनिर्दिष्ट सन्नियम विहित किया गया है।

9. विपत्र की निर्धारित धनराशि के विरूद्ध याची द्वारा पेश किए गये आधारों में सर्वप्रथम लागू की गयी संगणना की रीति के सम्बन्ध में है एवं इस आधार पर भी है कि प्रज्ञा एवं साम्या के नियम के द्वारा, प्रत्यर्थी बोर्ड के प्राधिकारियों को विगत बारह महीनों के दौरान औसत मासिक उपभोग के आधार पर क्षति की संगणना करनी चाहिए थी। स्पष्ट रूप से ये सारे आधार अनंतिम विपत्र के विरूद्ध आक्षेप को याची के आधार गठित करते हैं।

विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 126 के उपबन्धों के अधीन याची को अनंतिम विपत्र के विरूद्ध आक्षेप करने का अधिकार है एवं अधिनियम की धारा 126 के उपबन्धों के अनुसार विवाद को निर्धारण अधिकारी को निर्दिष्ट किया जा सकता था। इसलिए यह न्यायालय याची द्वारा उठाये गये विवाद पर विचार करने का इच्छुक नहीं है, क्योंकि विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 126 के उपबन्धों के अनुसार, ऐसे विवाद को निर्धारण अधिकारी द्वारा (को) संबोधित किया जाना है।

10. प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा निर्गत आक्षेपित परिपत्र (उपाबंध-5) के विरूद्ध शिकायत के सम्बन्ध में, याची द्वारा पेश किए गए आधार प्रत्यर्थी सं॰ 2 से भी समर्थन प्राप्त करते हुये प्रतीत होते हैं, इस आधार पर कि चूँकि विद्युत अधिनियम, 2003 के अधिनियमन एवं राज्य विद्युत विनियामक आयोग के गठन के उपरांत अनुज्ञप्तिधारी की समस्त गतिविधियों को आयोग द्वारा विनियमित की जानी है। विद्युत उपभोग के विपत्रों को विनियामक आयोग द्वारा निर्गत टैरिफ आदेश के आधार पर पेश किया जाता है एवं मात्र विनियामक आयोग ही विद्युत ऊर्जा के अनधिकृत उपयोग की दशा में अनंतिम विपत्र का निर्धारण करने के लिए सन्नियम विकसित करने के लिए प्राधिकृत है।

11. प्रत्यर्थी विनियामक आयोग के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों में बल है। इसलिए, क्षति की संगणना एवं विपत्र पेश करने के लिए निर्धारण की रीति विनिर्दिष्ट करते हुए प्रत्यर्थी बोर्ड द्वारा निर्गत परिपत्र (उपाबन्ध-5) के सम्बन्ध में याची द्वारा उठाये गये विवाद की असंगत के तौर पर उपेक्षा नहीं की जा सकती है। यद्यपि जैसा कि प्रत्यर्थी बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्पष्ट किया गया है, परिपत्र निदेशात्मक नहीं था बल्कि यह मात्र एक दिशा निर्देश था, फिर भी अभिप्रायित दिशानिर्देश निश्चित रूप से अनंतिम विपत्र के विरूद्ध उपभोक्ता द्वारा उठाये गये आक्षेप को विनिश्चित करने एवं क्षति को निर्धारण हेतु अपनायी गयी रीति के सम्बन्ध में अपना विवेक स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करने में सक्षम प्राधिकारी अर्थात्, निर्धारण अधिकारी पर अपना प्रभाव रखेगा।

12. सम्पूर्ण तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके, याची अनंतिम विपत्र के विरूद्ध अपना आक्षेप इस आदेश की तिथि से एक महीने के भीतर निर्धारण अधिकारी के समक्ष दाखिल करेगा। निर्धारण अधिकारी आक्षेपों पर विचार करेंगे एवं परिपत्र (उपाबंध-5) में अंतर्विष्ट दिशा-निर्देशों/निदेशों से किसी भी रीति से प्रभावित हुए बिना उठाये गये मुद्दों पर स्वतंत्रतापूर्वक अपने विवेक का प्रयोग करके

याची द्वारा उठाये गए आक्षेप पर विचार करके निर्धारण का एक अंतिम आदेश पारित करेंगे। निर्धारण अधिकारी याची को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान करने के उपरांत आक्षेपों की प्राप्ति की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर निर्धारण का अंतिम आदेश पारित करेंगे। निर्धारण के अंतिम आदेश के विरूद्ध, यदि याची व्यथित हो, तो उसे अधिनियम के अधीन उपलब्ध, अपील के सांविधिक उपचार का उपभोग करने की स्वतंत्रता होगी।

13. उक्त संप्रेक्षणों के साथ, यह रिट आवेदन स्वीकृति के प्रक्रम पर ही निस्तारित किया जाता है।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थी बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता को दी जाय।

---

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky ,o t;k jk;] U;k;efrx.k

जुगल महतो (317 में)

बुधन महतो एवं अन्य (299 में)

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड) (दोनों में)

दां॰ अपील सं॰ 317 एवं 299 वर्ष 2000 (P). 25 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 438 वर्ष 1998 में अपर सत्र न्यायाधीश-II, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 19.6.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 396 सह-पठित धारा 412—डकैती के साथ हत्या–अपीलार्थीगण प्राथमिकी में नामजद नहीं–सूचनादाता एवं अंतःवासी डकैतों में से किसी को भी पहचान नहीं सके थे–टेस्ट आइडेंटिफिकेशन परेड में किए गए पहचान को विश्वसनीय अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि साक्षियों में से किसी ने भी अपीलार्थीगण को इससे पूर्व नहीं देखा है–अभिनिर्धारित, अपीलार्थीगण को संगत तर्कपूर्ण एवं विश्वसनीय साक्ष्य की अनुपस्थिति में दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है। (पैरा 10 एवं 13 से 15)

निर्णयज विधि.–AIR 1972 SC 102—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. A.S. Dayal, For the Appellants; Mr. V.S. Sahay, For the State.

एम॰ वाई॰ ईकबाल, न्यायमूर्ति.–ये दोनों अपीलें सत्र विचारण सं॰ 438/98 में अपर सत्र न्यायाधीश-II, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 19.6.2000 के सम्मिलित निर्णय के विरूद्ध निर्दिष्ट हैं। सभी अपीलार्थीयों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 396 सह-पठित धारा 412 के अधीन अपराध के लिए दोषी पाया गया है। परिणामतः उपर नामजद अपीलार्थियों को दोषसिद्ध किया गया था। लेकिन, विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूँकि मृतक सतीरामन मेहता पर उसके घर में अपीलार्थी जुगल महतो (दां॰ अपील सं॰ 317/2000 में) द्वारा डकैती कारित करने के दौरान प्रहार किया गया था जिससे उसकी मृत्यु कारित हुई, तद्नुसार, उसे आई॰ पी॰ सी॰ की धारा 396 सह-पठित धारा 412 के अधीन आजीवन कारावास भुगतने से दंडित किया गया था। यद्यपि, दाण्डिक अपील सं॰ 299/2000 के अपीलार्थीगण को आई॰ पी॰ सी॰ की धारा 396 सह-पठित धारा 412 के अधीन 10 वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दण्ड दिया गया है। जहाँ तक कि इन अपीलार्थियों का सम्बन्ध है, अभिरक्षा की अवधि कारावास की अवधि से घटाया गया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि 30-31 जनवरी, 1998 की रात्रि में, जबकि सूचनादाता के पारिवारिक सदस्य भोजन करने के उपरांत सोये हुए थे, तभी लगभग 1-2 बजे रात्रि में सूचनादाता शीला कुमारी मेहता को एक अपीलार्थी द्वारा जगाया गया एवं उसके पीछे अन्य अभियुक्त भी खड़े थे। सूचनादाता द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि उसपर एक अभियुक्त द्वारा अन्य अभियुक्त के निर्देश पर प्रहार किया गया था एवं एक अभियुक्त ने उसकी बाली एवं मंगल सूत्र छीन ली एवं जब उसके देवर ने ''चोर-चोर'' हल्ला किया, तो अभियुक्त व्यक्ति उसके कमरे में प्रवेश कर गये एवं उसपर लाठी से एवं तेज धार वाले हथियार से उसपर वार किया। अभियोजन का मामला यह भी है कि सूचनादाता के देवर अर्थात् चंद्रशेखर मेहता, सतीरामन मेहता, राजेश कुमार एवं सुधांशु पर अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा प्रहार कारित किया गया था एवं उनलोगों को गंभीर उपहति हुई थी। अभियुक्त व्यक्तियों ने सूचनादाता के ननद पर भी प्रहार कारित किया एवं उसकी कनबाली, चाँदी की पायल उनलोगों में से एक ने छीन ली। यह भी अभिकथित किया गया है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने सूचनादाता से पूछा कि उसने 1,50,000/- रु॰ कहाँ रखे हैं एवं धन की तलाश में, अभियुक्त व्यक्तियों ने घर के समानों को बिखेर दिया एवं बक्से में से 700/- रु॰ एवं सोने की एक चेन, एक चाँदी की चेन एवं दो जोड़े चाँदी की पायल एवं 1700/- रु॰ एवं अन्य गहने निकाल लिये। अभियोजन का मामला यह भी है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने चंद्रशेखर के हाथों को एवं सूचनादाता की ननद के हाथों एवं पैरों को बाँध दिया एवं तदुपरांत वे चले गये एवं तब सूचनादाता ने अपने देवरों एवं ननद के हाथ एवं पैर को मुक्त किया एवं हल्ला करने पर, पड़ोस से कई व्यक्ति पहुँचे जो सूचनादाता के देवर को अस्पताल ले गये जहाँ उसके देवरों में से एक को अर्थात् सती रामन की उपहतियों के कारण मृत्यु हो गयी।

3. पुलिस द्वारा सूचनादाता का फर्दबयान अभिलिखित किया गया था जिसके आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी एवं मामला संस्थित किया गया था। अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण पूरा करने के उपरांत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में आरोप-पत्र सुपुर्द किया, जिसके आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 396 सह-पठित धारा 412 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था एवं तत्पश्चात्, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने केस अभिलेख को न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय में अंतरित किया। अंतत: मामले को सत्र न्यायालय में पेश किया गया था। अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा आरोप विरचित किये गये थे, जिन आरोपों को उनलोगों ने प्रत्याख्यान किया एवं विचारित किए जाने का दावा किया।

4. अभियोजन द्वारा परीक्षित 19 साक्षियों में से, अ॰ सा॰ 1 एवं 2 अर्थात्, लक्ष्मी नाथ घोष एवं प्रदीप कुमार भगत हल्ला सुनकर घटनास्थल पर पहुँचे एवं पाए कि सूचनादाता सहित चार भाई घायल थे। अ॰ सा॰ 1 ने अभिसाक्ष्य दिया कि पुलिस ने एक टैंक में से चार फुलपैंट, तीन शर्ट, एक कुर्त्ता, एक जोड़ा जूता एक प्लास्टिक की चप्पल बरामद की थी एवं एक अभिग्रहण सूची तैयार की थी। वह अभिग्रहण सूची का साक्षी हो गया। अ॰ सा॰ 2 भी हल्ला सुनकर घटनास्थल पर पहुँचे एवं सूचनादाता एवं अन्य व्यक्तियों को घायल पाया। इसी प्रकार अ॰ सा॰ 3 रूपक चन्द्र दास एवं अ॰ सा॰ 4 हीरा लाल बोस ने हल्ला सुनकर घटनास्थल पर पहुँचने एवं सूचनादाता एवं उसके देवर को घायल अवस्था में पाने का अभिकथन किया। उनलोगों ने सूचनादाता के घर में कारित डकैती के बारे में भी अभिसाक्ष्य दिया है। अ॰ सा॰ 5, सूर्य भूषण प्रसाद भी हल्ला सुनकर घटनास्थल पर पहुँचे थे एवं सूचनादाता के घर में डकैती कारित होने के बारे में अभिसाक्ष्य दिया था। अ॰ सा॰ 5 पुलिस द्वारा तैयार की गयी अभिग्रहण सूची का साक्षी है। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1, 2, 4 एवं 5 घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है बल्कि वे लोग घटनास्थल पर पहुँचे एवं सूचनादाता एवं उसके देवर का घायलवस्था में पाया। अ॰ सा॰ 6 ने अपने अभिसाक्ष्य में अभिकथित किया है कि घटना की तिथि को वह सो रहा था एवं सूचनादाता शीला देवी का हल्ला सुनकर जाग गया। अभियुक्त व्यक्ति कमरे में प्रवेश कर गये एवं सभी पारिवारिक सदस्यों

पर प्रहार कारित किया, जो वहाँ सो रहे थे। अभियुक्त ने उसके सिर पर भी प्रहार किया एवं उपहति के कारण वह अचेत हो गया। लेकिन, उसने पुलिस द्वारा बरामद किये गये कपड़ों में से कुछ की पहचान भी की है एवं अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त व्यक्ति वही कपड़े पहन रखे थे जब वे उसके घर में मजदूर के तौर पर कार्य कर रहे थे। अ॰ सा॰ 7 चंद्रशेखर मेहता, अ॰ सा॰ 8 अंजु भास्कर एवं अ॰ सा॰ 9 सुधांशु कुमार मेहता है। इन सभी साक्षियों को कमरे में सोते रहने का अभिकथन किया गया है। उनके साक्ष्य के अनुसार, वे हल्ला सुनकर जागे एवं अभियुक्त व्यक्तियों को कमरे में प्रवेश करते एवं उनपर प्रहार करते हुए पाया। उनलोगों ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि अभियुक्त व्यक्ति उनलोगों से 1,50,000/- रु॰ के बारे में पूछ रहे थे। उनलोगों ने अभियुक्त व्यक्तियों को उनके घर में डकैती कारित करने एवं धन तथा अन्य सामान लूटने के पश्चात् उनलोगों को घायल करने के बारे में भी अभिसाक्ष्य दिया है। अ॰ सा॰ 8 एवं 9 ने अभिसाक्ष्य दिया कि उनलोगों ने एक टेस्ट आइडेंटिफिकेशन परेड (T.I.P.) में उस अभियुक्त सहित दो अभियुक्त व्यक्तियों की पहचान की जिसे मृतक पर प्रहार कारित करने का अभिकथन किया गया है। अ॰ सा॰ 11 डॉ॰ शैलेन्द्र कुमार है, जिन्होंने मृतक सती रामन मेहता का मृत्योपरांत परीक्षण किया था, जिसकी डकैतों द्वारा कारित उपहति से मृत्यु हो जाने का अभिकथन किया गया है। अ॰ सा॰ 12 डॉ॰ कैप्टन ईश्वरी नारायण हैं जिन्होंने पीड़ितों में से एक चंद्रशेखर मेहता की परीक्षा की है। अ॰ सा॰ 15, 16 एवं 17 न्यायिक मजिस्ट्रेट हैं जिन्होंने अभियुक्त का T.I.P. जिला कारागार में आयोजित किया एवं T.I.P. चार्ट प्रमाणित किया।

5. ऊपर वर्णित साक्षियों के अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 14 सूचनादाता एवं अ॰ सा॰ 18 तोपचाँची थाने के प्रभारी अधिकारी हैं। अ॰ सा॰ 14 शीला कुमारी मेहता, जो कि सूचनादाता हैं, ने अपने मुख्य परीक्षण में अभिसाक्ष्य दिया कि 30/31 जनवरी, 1998 की रात्रि में, जब वह अपने घर के कमरे में सो रही थी, तभी अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके कमरे में प्रवेश किया। उसने अभिकथित किया है कि अभियुक्तों में से एक उसकी बायीं ओर खड़ा था एवं तीन अभियुक्त उसके पीछे खड़े थे एवं जब उसने शोर मचाया, तो एक अभियुक्त ने उसपर उसके सिर पर प्रहार किया एवं अन्य अभियुक्त व्यक्तियों ने उसकी कनबाली, मंगलसूत्र, सोने की चेन, चाँदी की चेन, चार जोड़े पायल एवं 700/- रु॰ नकद छीन लिया। उसने अभिसाक्ष्य दिया कि उसके देवर एवं अन्य पारिवारिक सदस्य पास के कमरो में सो रहे थे एवं जब उसने 'चोर-चोर' का हल्ला किया, तो अभियुक्त व्यक्ति उसके कमरे में प्रवेश कर गये एवं उनलोगों द्वारा अन्य पारिवारिक सदस्यों पर प्रहार किया गया। उनलोगों ने गहने छीन लिये। उसने यह भी अभिकथित किया कि डकैतों ने उसके हाथ एवं उसके ननद एवं देवरों के भी हाथ बाँध दिये एवं एक बैग कपड़े एवं छोटा रेडियो भी लूट लिया। उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि पुलिस घटनास्थल पर आयी एवं उसने अपना फर्दबयान दिया जिसे पुलिस द्वारा लिखा गया था एवं उसे सुनाया गया था जिसपर उसने अपने हस्ताक्षर किये। उसने एक एयरबैग, शर्ट, दो फुलपैंट एवं एक रेडियो की शिनाख्त थाने में टी॰ आई॰ पी॰ में की है। सूचनादाता ने अपने प्रति-परीक्षण में स्पष्ट रूप से अभिसाक्ष्य दिया है कि वह अभियुक्त व्यक्तियों को नहीं पहचान सकी जिन्होंने घर में डकैती कारित की थी।

6. अ॰ सा॰ 18 जो कि प्रभारी अधिकारी हैं, ने अभिसाक्ष्य दिया कि डकैती के बारे में दूरभाष पर सूचना दिये जाने पर वे अन्य पुलिस अधिकारियों के साथ घटनास्थल पर लगभग 4.00 बजे सुबह में पहुँचे एवं सूचनादाता शीला कुमारी मेहता का फर्दबयान अभिलिखित किया एवं तत्पश्चात् अस्पताल में पीड़ित का अभिकथन अभिलिखित करने के उपरांत मामले का अन्वेषण किया। उन्होंने मृतक सतीरामन मेहता की मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट की कार्बन प्रति को प्रमाणित किया। उन्होंने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि सूचनादाता के घर से उन्होने एक शॉल, दो चादर, एक स्वेटर एवं एक रक्त से सना हुआ तौलिया अभिग्रहित किया एवं अभिग्रहण सूची तैयार किया। उन्होंने बरामद की गयी अन्य सामग्रियों की अभिग्रहण सूची को भी प्रमाणित किया। उन्होंने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि अभियुक्तों में से एक पूरन महतो द्वारा पुलिस के समक्ष दिये गए संस्वीकारात्मक अभिकथन के आधार पर उन्होंने अभियुक्त के

घर के पीछे उसकी 'बारी' से एक रेडियो बरामद किया एवं अभिग्रहण सूची तैयार किया। यद्यपि उन्होंने अभिकथित किया कि अन्वेषण के बीच में, उन्हें स्थानांतरित किया गया था एवं मामले के अन्वेषण का प्रभार तोपचाँची थाने के प्रभारी-अधिकारी श्री बिनोद कुमार रावत को दिया गया था जिन्होंने आरोप-पत्र पेश किया था। प्रति-परीक्षण में, उन्होंने अभिसाक्ष्य दिया कि उन्होंने रक्तमिश्रित कपड़ों का रसायनिक रूप से परीक्षित नहीं कराया। उन्होंने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि अभियुक्त व्यक्तियों को उनके घर से गिरफ्तार किया गया था एवं अभियुक्त जुगल महतो के दोष की संस्वीकृति के पूर्व उसे मामले में अभियुक्त नहीं बनाया गया था। अ॰ सा॰ 19 तोपचाँची थाने का उप-निरीक्षक पन्नालाल राम है। उन्होंने अभिकथित रूप से अन्वेषण के दौरान अभिग्रहित शर्ट, पैंट, रेडियो एवं अन्य सामग्रियाँ पेश की है। इन सभी साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों को उनके विरूद्ध लगाये गये आरोपों का दोषी अभिनिर्धारित किया।

7. हमने अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ एस॰ दयाल एवं विद्वान अपर लोक अभियोजक को सुना है।

8. स्वीकार्यत:, अभियुक्त व्यक्ति प्राथमिकी में नामजद नहीं है। अ॰ सा॰ 14, सूचनादाता ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से अभिकथित किया कि वह डकैतों में से किसी को भी पहचान नहीं सकी थी क्योंकि उनलोगों ने कपड़ों से अपना चेहरा ढक रखा था। अन्य घायल साक्षियों ने भी डकैती कारित किए जाने के समय अभियुक्त व्यक्तियों में से किसी की भी पहचान नहीं की।

9. अ॰ सा॰ 8 सूचनादाता की ननद हैं जो हल्ला सुनकर जागी। अपने साक्ष्य में उसने अभिकथित किया कि उसके भाईयों एवं भाभी के हाथ एवं पैर बंधे थे एवं यह कि दो डकैतों ने अपना चेहरा गमछा से ढक रखा था। अ॰ सा॰ 9, पीड़ितों में से एक ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह T.I.P. के लिए दो बार गया था। लेकिन, उसने डकैतों को इसके पहले नहीं देखा है जिसे उसने T.I.P. में पहचाना था।

10. इसलिए, यह स्पष्ट है कि पहचान के बिन्दु पर यह साक्ष्य पूर्णतया संदेहयुक्त है क्योंकि स्वीकार्यत:, सूचनादाता के साक्ष्य के अनुसार, डकैतों ने अभिकथित घटना के समय अपने चेहरे ढंक रखे थें मात्र इस कारण से कि साक्ष्य में यह आया है कि अपीलार्थियों में से कुछ सूचनादाता के घर में राजमिस्त्री के तौर पर कार्य कर रहे थे, यह उपधारित नहीं किया जा सकता है कि उनका पहचान प्रमाणित हुआ है। वास्तव में, अभियोजन साक्षी ने तात्विक बिन्दुओं पर विरोधी साक्ष्य दिया है जो मामले के गुणागुणों के विपरीत जाता है एवं यह अभियोजन कथन पर संदेह उत्पन्न करता है।

11. यह सुस्थापित है कि T.I.P. के साक्ष्य को साक्षियों द्वारा अभियुक्त की पहचान के सम्बन्ध में न्यायालय में दिए गए सारवान साक्ष्य को मात्र सम्पुष्ट करने के लिए ही प्रयोग किया जा सकता है यदि T.I.P. कराये जाने की रीति पर पुलिस संदेह उत्पन्न करता है, तो यह साक्ष्य किसी महत्व का हकदार नहीं होता है।

12. रामेश्वर सिंह बनाम जम्मू एण्ड कश्मीर राज्य [AIR 1972 SC 102] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इसके बारे में दिशानिर्देश तय किये हैं कि साक्ष्य अभिलेखन पहचान का उपयोग किस प्रकार से किया जा सकता है। माननीय न्यायाधीशों से सम्प्रेक्षित किया:-

> "6. अपीलार्थी की पहचान से सम्बन्धित साक्ष्य पर विचार करने से पूर्व यह याद रखा जा सकता है कि किसी साक्षी का सारवान साक्ष्य न्यायालय में उसका साक्ष्य होता है परन्तु जब अभियुक्त व्यक्ति सम्बन्धित साक्षी को पहले से ही ज्ञात न हों तब अभियुक्त की गिरफ्तारी के तुरन्त बाद साक्षी द्वारा अभियुक्त की पहचान काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अन्वेषक अभिकरण को यह आश्वस्तता उपलब्ध कराता है कि साक्षी द्वारा बाद में विचारण के दौरान न्यायालय में दिये जाने वाले साक्ष्य को सम्पोषकता उपलब्ध कराने के अतिरिक्त अन्वेषण की कार्यवाही उचित

दिशा में हो रही है। इस दृष्टिकोण से यह अन्वेषण अभिकरण एवं अभियुक्तों दोनों के लिए काफी महतवपूर्ण है एवं न्याय के उचित प्रशासन के लिए एक Fortiori है कि ऐसी पहचान अभियुक्त की गिरफ्तारी के पश्चात अयुक्तिसंगत एवं परिहार्य विलम्ब के उपरांत किया गया है एवं यह कि सभी आवश्यक पूर्वावधानी एवं रक्षोपाय को प्रभावी रूप से अपनाया गया है ताकि अन्वेषण वास्तविक दोषी को दंडित कराने के लिए उचित दिशा में कार्यवाही करे। इसके अतिरिक्त, यह सम्बन्धित साक्षी के लिए पक्षपात रहित होगा जो कि अभियुक्त के लिए एक अजनबी था क्योंकि उस दशा में उसकी याददास्त क्षमता घट जाती है एवं वह घटना के पश्चात् यथासंभव शीघ्र अवसर पर अभिकथित दोषी की पहचान करने की अपेक्षा की जाती है। इसी एवं मात्र इसी प्रकार से ही न्याय एवं सभी के साथ समानता अभियुक्त एवं अभियोजन दोनों के लिए सुनिश्चित किया जा सकता है। पुलिस अन्वेषण के दौरान किया गया पहचान, यादि किया जा सकता है, विधि में सारवान नहीं है एवं इसका उपयोग मात्र सम्बन्धित साक्षी के साक्ष्य को सम्पुष्ट या खंडन करने के लिए ही किया जा सकता है जैसा कि न्यायालय में दिया जाता है। इसलिए, पहचान कार्यवाहियों को इस प्रकार से संचालित किया जाना चाहिए कि उनके सम्बन्ध में साक्ष्य, जब विचारण के दौरान दिये जाते हैं, पहचानकर्त्ता साक्षी के न्यायालय में दिए गए अभिकथन का सम्पोषण अथवा खंडन करने के प्रयोजनार्थ इसके साक्ष्यिक मूल्य के बारे में सुरक्षित रूप से यथोचित न्यायिक राय बनाने में न्यायालय को सक्षम बनाता है।''

13. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि अभियुक्त व्यक्ति प्राथमिकी में नामजद नहीं हैं एवं सूचनादाता ने न केवल प्राथमिकी में बल्कि अपने साक्ष्य में भी अभिकथित किया है कि वह अभियुक्त व्यक्तियों की पहचान नहीं कर सकी थी क्योंकि उनलोगों ने अपना चेहरा ढक रखा था। मात्र कुछ कपड़ों के आधार पर ही, जो अभिकथित रूप से अभियुक्त व्यक्तियों के थे, उनलोगों पर शंका की गयी थी। अभियोजन साक्षीगण जिनकी उपस्थिति में अभिकथित अपराध कारित किया गया है, मृतक सहित एक दूसरे से जुड़े हैं। यह भी प्रतीत होता है कि अभियोजन साक्षीगण अभियोजन मामले के नतीजों से महत्वपूर्ण रूप से हितबद्ध हैं। इस प्रकार, सुस्थापित विधि की दृष्टि में, उनलोगों के साक्ष्य पर पर्याप्त सावधानी एवं उचित देख रेख के साथ विचार करने की आवश्यकता है।

14. उक्त के अतिरिक्त, अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों के मुकाबले सूचनादाता का साक्ष्य असंगत होना एवं विश्वास योग्य न होना प्रतीत होता है। प्रकाश में आये तथ्यों एवं परिस्थितियों अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध प्रबल संदेह उत्पन्न कर सकते हैं परन्तु यह प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता है। संगत, तर्कपूर्ण एवं विश्वसनीय साक्ष्य की अनुपस्थिति में, हमारी राय में, अभियुक्त व्यक्ति संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं।

15. अभियोजन साक्षियों द्वारा दिये गये साक्ष्य पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के उपरांत, हम विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों को दिये गये दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को न्यायोचित नहीं पाते हैं।

16. उपरोक्त कारणों से, इन सभी अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है एवं विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है एवं अभियुक्त व्यक्तियों, अर्थात् अपीलार्थिगण को आरोपों से मुक्त किया जाता है। दां॰ अपील सं॰ 299 वर्ष 2000 (P) के अपीलार्थीगण को जो जमानत पर है, अपने-अपने जमानत बंधपत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है एवं दां॰ अपील सं॰ 317 वर्ष 2000 (P) के अपीलार्थी, अर्थात् जुगल महतो, जो कि अभिरक्षा में है, को यदि किसी अन्य मामले में वांछित न हो, तत्क्षण निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है।

जया राय, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

ekuuh; Mhñ thñ vkjñ iVuk;d] U;k;efr

मेसर्स ईस्टर्न सिनपैक्स लिमिटेड

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1311 वर्ष 2008. 4 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

राज्य सरकार की औद्योगिक नीति, 1993—खण्ड 6—ऊर्जा सब्सिडी–इस आधार पर ऊर्जा सब्सिडी से वंचित किया जाना कि याची-उद्योग टिस्को नामक निजी कम्पनी से ऊर्जा की आपूर्त्ति प्राप्त कर रही है–अभिनिर्धारित, याची-उद्योग सब्सिडी का अधिकारी क्योंकि उद्योग टिस्को लिमिटेड के कमाण्ड क्षेत्र के भीतर आता है, जिसे विद्युत आपूर्त्ति करने का अनन्य अधिकार है–ऊर्जा सब्सिडी से वंचित किया जाना अन्यायसंगत, मनमाना एवं अवैधानिक है। (पैरा 10 एवं 11)

अधिवक्तागण.–M/s M.S. Mittal, A.R. Choudhary, For the Petitioner; M/s M.S. Akhtar, A.K. Mehta, For the Respondent Nos. 1 & 2; Mr. Ramit Satender, For the Respondent Nos. 3 to 5; Mr. A.K. Das, For the Respondent No. 6.

आदेश

इस रिट आवेदन में उद्योग विभाग, बिहार सरकार (प्रत्यर्थी संख्या 4) द्वारा निर्गत दिनांक 4.5.2000 के आदेश (परिशिष्ट-5) एवं दिनांक 15.6.2007 के आदेश (परिशिष्ट-10) को चुनौती दी गई है तद द्वारा यह घोषित किया गया कि याची-कम्पनी इस तथ्य के कारण किसी ऊर्जा सब्सिडी की अधिकारी नहीं है कि याची-कम्पनी टिस्को नामक निजी कम्पनी से विद्युत आपूर्त्ति प्राप्त करती रही है और औद्योगिक नीति वर्ष 1993 के अधीन वैसे उपभोक्ताओं को ऊर्जा-सब्सिडी उपलब्ध कराने का कोई प्रावधान नहीं है जो निजी कम्पनी से विद्युत आपूर्त्ति प्राप्त करते हैं। उद्योग निदेशक, बिहार सरकार द्वारा निर्गत पत्र (परिशिष्ट-6) के आधार पर उद्योग निदेशक, झारखंड सरकार द्वारा निर्गत दिनांक 27.9.2007 के आदेश (परिशिष्ट-9) को इसी प्रकार की चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा यह सूचित किया गया कि याची औद्योगिक नीति वर्ष 1993 के अधीन ऊर्जा के उपभोग पर विद्युत सब्सिडी प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है।

2. याची के मामले के तथ्य संक्षेप में ये है कि याची की जोजोबेरा, जमशेदपुर में एक मध्यम-स्तरीय इकाई है जो HDPE/PP के बुने हुए थैलों को विनिर्मित करने का व्यवसाय करती है। चूँकि याची की ईकाई की अवस्थिति टिस्को लिमिटेड के कार्य कलाप के कमाण्ड क्षेत्र के भीतर है, जिसे अपने कमाण्ड क्षेत्र के भीतर विद्युत आपूर्त्ति करने का अनन्य अधिकार है, अत: याची टिस्को से विद्युत आपूर्त्ति प्राप्त करता रहा है।

भूतपूर्व संयुक्त बिहार राज्य ने 1993 में एक औद्योगिक नीति घोषित की थी। उक्त नीति में प्रस्तावित एक प्रोत्साहन यह था कि सरकार संयत्र एवं मशीनरी में 75 लाख रुपए का एक निवेश करने वाली औद्योगिक ईकाइयों के विद्युत उपभोग पर 18 पैसे प्रति यूनिट की दर से और 75 लाख रुपये से अधिक और 15 करोड़ रुपए तक का निवेश करने वाली ईकाइयों को 15 पैसे प्रति यूनिट की दर से सब्सिडी उपलब्ध कराएगी। ऐसी सब्सिडी देय थी, अगर यूनिट उत्पादन का कार्य 1.4.1993 से 31.3.1998 के बीच प्रारम्भ होता है।

याची संस्था ने 75 लाख रुपए से अधिक निवेश किया था और इसने 18.3.1995 से उत्पादन प्रारम्भ किया। इस विश्वास पर कि सरकार की 1993 की औद्योगिक नीति के अधीन यह 18.3.1995 से प्रारम्भ करते हुए पाँच वर्षों की अवधि के लिए उपभोग पर सब्सिडी का दावा करने के लिए अधिकृत

था, याची ने विहित प्रपत्र में, BICICO (प्रत्यर्थी संख्या 6) के माध्यम से यथा आवश्यक रूप से अपना दावा रखा था।

तथापि, ऐसी दावे के बावजूद और विद्युत उपभोग के संबंध में सभी आवश्यक दस्तावेजों एवं विपत्रों को उपलब्ध कराने के बावजूद, याची-कम्पनी को उर्जा सब्सिडी प्रदान नहीं की गई थी।

राज्य सरकार की औद्योगिक नीति वर्ष 1993 में स्पष्ट अनुवद्धताओं के बावजूद, प्रबंधक, BICICO (प्रत्यर्थी संख्या 6) ने इसको लेकर औद्योगिक विकास आयुक्त, बिहार से एक स्पष्टीकरण इप्सित किया कि क्या इस तथ्य की दृष्टि में याची-कम्पनी सब्सिडी प्राप्त करने की अधिकारी है कि याची-कम्पनी टिस्को लिमिटेड नामक एक निजी लाईसेंसी के अधीन उर्जा आपूर्त्ति प्राप्त कर रही है।

जबकि स्पष्टीकरण की प्रतीक्षा की जा रही थी, 15.12.2000 के प्रभाव से झारखंड राज्य का सृजन किया गया था।

चूँकि बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के अधीन, भूतपूर्व बिहार राज्य द्वारा बनाई गई नीतियाँ झारखंड राज्य में भी बाध्यकारी और प्रयोज्य थी, याची-कम्पनी ने औद्योगिक नीति वर्ष 1993 के अधीन उर्जा सब्सिडी को प्राप्त करने के लिए उद्योग निदेशक, झारखण्ड सरकार, राँची को संपर्क किया। उद्योग निदेशक, झारखण्ड ने BICICO से मुद्दे पर सूचना इप्सित की। जवाब में BICICO ने दिनांक 5.1.2004 के अपने पत्र के माध्यम से इसके साथ दिनांक 4.5.2000 के एक पूर्व के पत्र संलग्न करते हुए उद्योग निदेशक, झारखंड को सूचित किया, कि चूँकि राज्य औद्योगिक नीति वर्ष 1993 के अधीन विद्युत आपूर्त्ति पर निजी कम्पनियों को सब्सिडी प्रदान करने का कोई प्रावधान नहीं था, इसलिए, ऊर्जा सब्सिडी याची को देय नहीं है।

याची ने तत्पश्चात् ऊर्जा सब्सीडी की मांग करते हुए सचिव, उद्योग विभाग, झारखड सरकार के समक्ष विस्तृत अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। याची के अभ्यावेदन पर, महाधिवक्ता, झारखण्ड सरकार से एक मत इप्सित किया गया और अन्ततः दिनांक 27.9.2007 के आक्षेपित पत्र द्वारा, याची को सूचित किया गया कि उद्योग विभाग, बिहार सरकार, पटना द्वारा पूर्व में लिए गए पक्ष के आधार पर याची ऊर्जा-सब्सिडी प्रदान किए जाने का अधिकारी नहीं है।

3. आक्षेपित आदेशों की आलोचना करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री एम॰ एस॰ मित्तल ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण द्वारा लिया गया निर्णय प्रकट तौर पर, अवैधानिक, मनमाना एवं औद्योगिक नीति वर्ष 1993 के विरुद्ध है। औद्योगिक नीति वर्ष 1993 (परिशिष्ट-2) का सुसंगत खण्डों को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि किसी भी खण्डों में नीति पर घोषणा नहीं करती कि ऊर्जा सब्सिडी वैसी निजी-कम्पनी को प्रदान नहीं की जाएगी जो निजी लाईसेंसधारी से ऊर्जा आपूर्त्ति प्राप्त करती है। विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि वस्तुतः जब एक पूर्व के अवसर पर इसी प्रकार का मुद्दा उठाया गया था, तो उद्योग निदेशक, बिहार, पटना ने अपने कार्यालय ज्ञापांक दिनांक 29.10.1986 (परिशिष्ट-1) के द्वारा संपुष्ट किया था कि निजी लाईसेंसधारियों से विद्युत आपूर्त्ति प्राप्त करने वाली औद्योगिक ईकाइयों ऊर्जा सब्सिडी के उसी लाभ की अधिकारी है क्योंकि औद्योगिक नीति का आशय विद्युत आपूर्ति प्राप्त करने वाले स्त्रोत के निरपेक्ष रहते हुए औद्योगिक ईकाईयों को ऊर्जा सब्सिडी के माध्यम से प्रोत्साहन प्रदान करना था।

विद्वान अधिवक्ता यह भी जोड़ते हैं कि 9.5.1996 से 19.9.2000 तक की अवधि के लिए अवैधानिक रूप से ऊर्जा सब्सिडी को रोककर प्रत्यर्थीगण ने अन्यायसंगत रूप से याची-कम्पनी को 9,61,464,02/- रुपए की हानि एवं क्षति के अध्यधीन किया है। जिससे याची यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया से प्राप्त वर्किंग पूँजी पर ब्याज देने के लिए बाध्य हुआ है।

4. प्रत्यर्थी-झारखण्ड राज्य की ओर से एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है। प्रति-शपथपत्र में लिया गया पक्ष यह है कि यद्यपि सब्सिडी देय है एवं BICICO द्वारा इसे निर्गत किया जाना है परन्तु सब्सिडी का भुगतान करने की दायिता बिहार राज्य पर है इस तथ्य के कारण कि याची का समूचा दावा 15.12.2000 से पहले की अवधि का है।

5. उद्योग विभाग, बिहार, पटना (प्रत्यर्थी संख्या 3 से 5) की ओर से एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है इस आधार पर याची के दावे से इन्कार करते हुए कि औद्योगिक नीति वर्ष 1993 वैसी औद्योगिक ईकाइयों की ऊर्जा सब्सिडी प्रदान नहीं करती, मामले में ऐसी ईकाइ जो निजी लाईसेंस धारको से प्राप्त विद्युत पर ऊर्जा सब्सिडी का दावा करती है।

BICICO (प्रत्यर्थी संख्या 6) की ओर से भी एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 3 से 5 द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को ही अपनाया गया है।

6. प्रत्यर्थी संख्या 3 से 5 का प्रतिनिधित्व करने वाले, श्री रमित सत्येन्द्र ने तर्क दिया कि ऊर्जा सब्सिडी के लिए औद्योगिक विभाग, बिहार सरकार द्वारा याची का दावे का 1993 की औद्योगिक नीति के आधार पर मूल्यांकन किया गया था और सावधानी से किए गए मूल्यांकन पर, यह पाया गया था की याची टिस्को लिमिटेड नामक निजी कम्पनी से विद्युत आपूर्त्ति प्राप्त की थी और औद्योगिक नीति ऐसी ईकाइयों को ऊर्जा सब्सिडी प्रदान नहीं करती जिसने एक निजी कम्पनी से विद्युत संयोजन प्राप्त किया है। इसलिए, ऊर्जा सब्सिडी के लिए याची के दावे को काफी पहले 4.4.2000 को खारिज कर दिया गया था और दिनांक 4.5.2000 के पत्र (परिशिष्ट-D) द्वारा याची को ऐसा अस्वीकरण प्रेषित कर दिया गया था। याची ने समूचे प्रकरण के दौरान पूर्वोक्त पत्र के विरूद्ध कोई मुद्दा नहीं उठाया था और बिहार राज्य के विभाजन के उपरांत ही याची ने झारखण्ड राज्य के समक्ष अपना दावा रखने का मार्ग चुना है।

औद्योगिक नीति वर्ष 1993 के परिशिष्ट-IV में यथा निहित बिक्री कर में छूट के लिए शर्तों से संबंधित एक खण्ड को पठित करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि नीति घोषित करती है कि बिक्री-कर छूट की सुविधा केवल ऐसी ईकाई/फर्म को अनुमान्य होगी जिसने अपने मालिक/साझेदार/निदेशक/कम्पनी के नाम से विद्युत संयोजन लिया है और चूँकि याची की स्थापना इस शर्त के अधीन अर्हक नहीं बनता, यह बिक्री-कर छूट का अधिकारी नहीं है और इस सदृशता से, याची एक निजी लाईसेंसधारी से विद्युत ऊर्जा प्राप्त करने के कारण, ऊर्जा सब्सिडी का अधिकारी नहीं है।

7. प्रत्यर्थी संख्या 3 से 5 के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों से मेरा जो नजरिया बनता है वह यह है कि यह संभवत: और अधिक विचित्र और अतार्किक नहीं हो सकता था और विवाद में अंतर्ग्रस्त मुद्दे से पूर्णरूप से विचलित है। औद्योगिक नीति वर्ष 1993 के समूचे पठन से विद्वान अधिवक्ता यह दर्शाने में असफल रहे हैं कि नीति वैसी औद्योगिक ईकाईयों के ऊर्जा सब्सिडी के लाभ को निषेधित करती है, जो निजी लाईसेंस से ऊर्जा आपूर्त्ति प्राप्त करती है।

8. औद्योगिक प्रोत्साहन नीति वर्ष 1993 के तौर पर उद्योग विभाग, बिहार सरकार द्वारा घोषित, औद्योगिक नीति वर्ष 1993, राज्य में औद्योगिक प्रगति को तीव्र करने के स्पष्ट उद्देश्य के साथ थी। नीति को ऊर्जा उपभोग, तकनीकी ज्ञान-कौशल, पूँजी निवेश, आधुनिकीकरण इत्यादि पर विभिन्न प्रकार की सब्सिडी समेत का प्रोत्साहन देने के लिए पुर:स्थापित किया गया था, इसके अतिरिक्त वित्तीय सहायता, औद्योगिक ईकाईयों को में छूट बिक्री-कर/डेफरमेंट सुविधा भी थी। नीति का खण्ड-6 ऊर्जा उपभोग पर सब्सिडी से संबंधित है, जो निम्नांकित रूप से पठित है:-

"1.4.1993 से 31.3.1998 के बीच उत्पादन में आने वाली औद्योगिक ईकाई और विस्तारीकरण एवं विविधीकरण के अधीन परिभाषिक ईकाई पर ऐसे विस्तार/विविधीकरण के उत्पादन की तिथि से पाँच वर्षो के लिए निम्नांकित प्रोत्साहन प्राप्त करेगा।

1. 500 KVA तक के संपोषित लोड रखने वाली ईकाइयों के लिए न्यूनतम गारंटी प्रभारों के भुगतान से छूट।

2. (i) संयत्र एवं मशीनरी पर 75 लाख रुपए का निवेश करने वाली औद्योगिक इकाईयों @ 18 पैसे प्रति यूनिट की दर से ऊर्जा सब्सिडी प्राप्त करेगी।

(b) संयंत्र एवं मशीनरी पर 75 लाख रुपए से अधिक और 15 करोड़ का रुपए तक का निवेश करने वाली औद्योगिक ईकाई 15 पैसा प्रति यूनिट की दर से ऊर्जा सब्सिडी प्राप्त करेगी।

(c) ऊपर पैरा-A एवं B में यथा उल्लिखित परिभाषित विस्तार/विविधीकरण प्रावधानों के अधीन औद्योगिक ईकाई विद्युत के अतिरिक्त उपभोग पर ही ऊर्जा सब्सिडी प्राप्त करेगी, जो अतिरिक्त वास्तविक उत्पादन पर छूट के लिए आवश्यक होगा। विस्तार से तीन वर्ष पहले अधिकतम वार्षिक उत्पादन के आधार पर विस्तार क्षमता का परिकलन किया जाएगा।''

9. नीति के उपरोक्त प्रावधानों के कोरे पठन से यह प्रकट है कि यह ऊर्जा सब्सिडी प्रदान करने के लिए किसी भी प्रकार की शर्त्त को अधिकथित नहीं करती और न ही यह शर्त्त लगाती है कि प्रावधानों के निबंधनों में ऊर्जा-सब्सिडी उन औद्योगिक ईकाईयों को नहीं दी जाएगी जो किसी निजी लाईसेंसी से ऊर्जा आपूर्त्ति प्राप्त करती है। प्रत्यर्थी संख्या 3 से 5 के विद्वान अधिवक्ता ने बिक्री-कर की छूट से संबंधित नीति के खण्डों में जिस सदृशता को निकालने का प्रयास किया है कि वह पूर्णत: भ्रामक है और तथ्यों एवं परिस्थितियों में और याची के दावे पर लागू नहीं होती जो ऊर्जा उपभोग पर सब्सिडी से संबंधित है।

10. यह विवादित नहीं है कि याची उद्योग 18.3.1995 से अपना उत्पादन प्रारम्भ किया था जैसा कि निदेशक, तकनीकी विभाग, उद्योग विभाग बिहार सरकार, पटना द्वारा निर्गत प्रमाणपत्र (परिशिष्ट-3) से संपुष्ट होता है। यह विवादित नहीं है कि याची ने 75 लाख रूपये से अधिक निवेश करके अपना उद्योग स्थापित किया था। यह इन्कार नहीं किया गया है कि याची उद्योग की अवस्थिति टिस्को लिमिटेड के कमाण्ड क्षेत्र के भीतर आती है, जिसे अपने कमाण्ड क्षेत्र के भीतर विद्युत आपूर्त्ति करने का अनन्य अधिकार है और इसलिए, याची टिस्को लिमिटेड से विद्युत आपूर्त्ति प्राप्त करने के लिए बाध्य है और किसी और से नहीं। याची ने ऊर्जा सब्सिडी प्रदान किए जाने के लिए औद्योगिक प्रोत्साहन नीति वर्ष 1993 में यथा अधिकथित आवश्यक शर्तों को प्रत्यक्षत: पूरा किया है और सब्सिडी का दावा करने और इसे प्राप्त करने का अधिकारी है इस तथ्य से निरपेक्ष है कि इसने टिस्को लिमिटेड से ऊर्जा आपूर्त्ति प्राप्त की थी जो संयोगवश सरकार से प्राधिकृत लाईसेंसधारकों में से एक है। याची को ऊर्जा सब्सिडी से वंचित किया जाना, प्रत्यर्थीगण द्वारा याची के दावे के संगत अवधि के लिए ऊर्जा सब्सिडी के भुगतान को रोके रखना, मेरी राय में अन्यायपूर्ण, मनमाना एवं अवैधानिक है, क्योंकि यह न केवल राज्य सरकार की औद्योगिक नीति के उद्देश्यों के विरूद्ध है परन्तु, औद्योगिक प्रोत्साहन नीति के अधीन उत्पन्न हुई औचित्यपूर्ण अपेक्षाओं के आधार पर याची के अधिकार से भी उसे वंचित करता है।

11. ऊपर कथित कारणों से, मैं इस आवेदन में गुनागुण पाता हूँ। तद्नुसार, यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। परिशिष्ट-5, परिशिष्ट-8, परिशिष्ट-9 एवं परिशिष्ट-10 के माध्यम से प्रत्यर्थीगण

के आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अपास्त किये जाते हैं। इस आदेश की तिथि से तीन महीने के भीतर, सम्बद्ध प्रत्यर्थीगण को 9.5.1996 से 1999-2000 तक प्रोद्भूत ऊर्जा सब्सिडी की राशि को 12% वार्षिक ब्याज के साथ याची को निर्गत करने का निर्देश दिया जाता है। चूँकि राज्य के पुनर्गठित की तिथि से पहले की अवधि से सब्सिडी के दावे की अवधि संबंधित है, अत: इसमें दिए गए निर्देशों के अनुसार उद्योग विभाग, बिहार सरकार, याची द्वारा यथा दावा की गई ऊर्जा सब्सिडी की राशि का भुगतान करेगा।

12. झारखण्ड राज्य, बिहार राज्य के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 6 के विद्वान अधिवक्ता को भी उस आदेश की एक प्रति प्रदान की जाय।

---

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky] U;k;efr

जोसेफ मुंडा

बनाम

मोस्मात फुदी एवं अन्य

द्वितीय अपील सं॰ 132 वर्ष 1988 (R). 17 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

अभिधान अपील सं॰ 26 वर्ष 1983 में अपर न्यायिक आयुक्त, IV, राँची द्वारा पारित दिनांक 8.4.1988 के उस निर्णय एवं डिक्री (डिक्री 21.4.1988 को हस्ताक्षरित) के विरुद्ध जिसमें अभिधान वाद सं॰ 132 वर्ष 1978 में अपर सबॉर्डिनेट जज, रॉची द्वारा पारित दिनांक 10.2.1982 के निर्णय एवं डिक्री (डिक्री 17.2.1983 को हस्ताक्षरित) को उलटा गया।

(क) छोटानागपुर भूधृति अधिनियम, 1908—धाराएँ 83, 85 एवं 86—भूधृति अधिकार–एक अभिलिखित अभिधारी के महिला उत्तराधिकारी को अधिकार अभिलेख में उसका नाम प्रविष्ट कराकर रैयत के तौर पर मान्यता दी गयी थी–अभिनिर्धारित, अंतिम रूप से प्रकाशित अधिकार अभिलेख को 58 वर्ष बीत जाने के पश्चात् परिवर्तित नहीं किया जा सकता है–महिला उत्तराधिकारी के अधिकार को प्रथाजन्य विधि लागू करके छीना नहीं जा सकता है। (पैरा 22 एवं 23)

(ख) छोटानागपुर भूधृति अधिनियम, 1908—धाराएँ 7 एवं 8—प्रथाजन्य विधि–यह प्रथा कि मात्र पुरूष वंशज ही अपने पूर्वजों द्वारा छोड़ी गयी भूमि को विरासत में प्राप्त करेंगे, ऐसे महिला उत्तराधिकारी के मामले में लागू नहीं किया जा सकता है जिसका नाम अधिकार अभिलेख में प्रविष्ट किया गया है एवं जिसने एक अभिलिखित अभिधारी की प्रास्थिति पहले ही अर्जित कर ली है क्योंकि यह महिला के जीविका के संवैधानिक अधिकार के गम्भीर उल्लंघन की कोटि का होगा। (पैरा 22 से 24)

अधिवक्तागण.–Mr. Lalit Kumar Lal, For the Appellant; Mr. P.K. Bhowmik, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ ईकबाल, न्यायमूर्ति.–यह द्वितीय अपील अभिधान अपील सं॰ 26 वर्ष 1983 में अपर न्यायिक आयुक्त-IV, राँची द्वारा पारित दिनांक 8.4.1988 के निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध निर्दिष्ट है, जिसके द्वारा उन्होंने अभिधान वाद सं॰ 132 वर्ष 1978 में अपर सबॉर्डिनेट जज, राँची द्वारा पारित दिनांक 10.2.1983 के निर्णय एवं डिक्री को उलटा गया है।

2. दिनांक 23.3.1995 के आदेश के निबन्धनों में, द्वितीय अपील विधि के निम्नलिखित सारवान प्रश्न पर सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया था:–

> ''क्या अवर अपीलीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में विधि में त्रुटि की है कि वादीगण राशु मुंडा के गोत्रज उत्तराधिकारी होने के कारण, वादित भूमियों पर वैध हक प्राप्त

किया है एवं मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, वे लोग प्रतिवादीगण से कब्जा वापस लेने के हकदार थे, जो स्वीकार्यत: कब्जेदार थे?''

3. वादीगण ने ग्राम सियूयंकेल, थाना खूँटी, जिला राँची में स्थित वादित भूमि जो खाता सं॰ 5 एवं 148 के सम्बन्ध में अपने हक की घोषणा के लिए अभिधान वाद सं॰ 132 वर्ष 1978 दाखिल किया था। वादीगण का मामला, संक्षेप में, यह है कि वे लोग जाति से मुंडा हैं एवं उत्तराधिकार एवं विरासत के मामले में स्वयं अपने प्रथाजन्य विधि द्वारा शासित है। पक्षकारों के एक ही पूर्वज पाण्डु मुण्डा, जिनके तीन पुत्र थे–सिमोन मुंडा, राशु मुंडा एवं पत्रास मुंडा। सिमोन मुंडा एवं पत्रास मुंडा के उत्तराधिकारी वादीगण हैं, जबकि राशु मुंडा का उत्तराधिकारी प्रतिवादी सं॰ 1 है। वादीगण का मामला यह है कि राशु मुंडा को मात्र एक ही बेटी थी, अर्थात् करूणा, जिसकी शादी ग्राम बेजीगँवा के मतियस पूर्ति उर्फ मुंडा से हुई थी। प्रतिवादी सं॰ 1 मतियस पूर्ति से मोस्मात करूणा का पुत्र है। राशु मुंडा की मृत्यु पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण कार्य के कुछ वर्ष पूर्व अपने पीछे एकमात्र पुत्री के रूप में मोस्मात करूणा को छोड़कर हो गयी। राशु मुंडा की मृत्यु के उपरांत, वादित भूमि को अधिकारों के पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण अभिलेख में उसकी पुत्री मोस्मात करूणा का नाम अभिलिखित कराया गया था। यह अभिकथित किया गया था कि यद्यपि मोस्मात करूणा का नाम अधिकारों के अभिलेख में अभिलिखित किया गया था, परन्तु वादीगण इस भूमि पर खेती कर रहे थे एवं करूणा का भरण–पोषण वादीगण के पूर्वजों द्वारा किया जा रहा था। वादीगण के पूर्वजों ने वादित भूमि पर अपना अधिकार, अभिधान एवं हित प्राप्त कर चुकने का अभिकथन किया। वादीगण का मामला यह है कि मोस्मात करूणा की मृत्यु के उपरांत, वादीगण को राशु मुंडा के निकटतम गोत्रज रिश्तेदार होने के कारण, उनलोगों ने वादित भूमि पर अपना आत्यंतिक अधिकार, अभिधान एवं हित अर्जित किया, क्योंकि प्रथा के अंतर्गत बेटियों को विरासत से वंचित किया जाता है।

4. मोस्मात करूणा के पुत्र, प्रतिवादी सं॰ 1 ने लिखित अभिकथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद किया। प्रतिवादीगण का मामला यह है कि वाद परिसीमा, प्रतिकूल कब्जा एवं बेदखली एवं साथ ही विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 के अधीन भी वर्जित है। प्रतिवादी ने यह भी अभिवाक् किया कि वाद को न्यून–मूल्यांकित किया गया है एवं यह पोषणीय नहीं है एवं यह इस आधार पर खारिज किए जाने योग्य है कि एक नियत घोषणात्मक न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया था। वादी के अनुसार, मुंडा समुदाय में विवाहित पुत्रियाँ अपने–अपने पिताओं द्वारा छोड़ी गयी संपत्तियों को विरासत में पाने के हकदार हैं। प्रतिवादीगण का भी मामला यह है कि मोस्मात करूणा की शादी कभी भी मतियस मुंडा से नहीं हुई थी। यह कहा गया है कि मतियस मुंडा राशु मुण्डा के घर पर धांगर था एवं प्रतिवादी का जन्म मोस्मात करूणा के साथ मतियस के शारीरिक सम्बन्ध से हुआ था। प्रतिवादीगण का भी मामला यह है कि मोस्मात करूणा वादित भूमि का कब्जेदार बनी रही एवं उसका नाम अधिकारों के पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण विलेख में अभिलिखित किया गया था जो 1930 में प्रकाशित हुआ था। प्रतिवादीगण का आगे मामला यह है कि वादी के पूर्वजों ने पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण के दौरान असत्य दावा पेश किया था एवं उनके दावे को राजस्व प्राधिकारियों द्वारा 1930 में अननुज्ञात किया गया था। वादीगण ने धान काट लेने की धमकी देने की भी कोशिश की जिसके फलस्वरूप दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराएँ 144 एवं 145 के अधीन कार्यवाही प्रारम्भ हुआ एवं उस कार्यवाही में, मोस्मात करूणा का कब्जा घोषित किया गया था। प्रतिवादीगण का मामला यह है कि मोस्मात करूणा ने स्वयं एवं प्रतिकूल कब्जे द्वारा भी अधिकार, अभिधान एवं हित अर्जित कर लिया था। उसकी मृत्यु के उपरांत, प्रतिवादी उसके द्वारा छोड़ी गयी संपूर्ण संपत्ति को विरासत में प्राप्त कर चुका है एवं वह इसका अनन्य कब्जेदार है।

5. विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित कुल आठ मुद्दों की विरचना की थी:–

1. क्या यथा विरचित वाद पोषणीय है?

2. क्या वादीगण को विधिमान्य वाद हेतुक या वाद चलाने का अधिकार है?

3. क्या वाद परिसीमा विधि, विबंध, परित्याग या उपमति के सिद्धाँतों द्वारा वर्जित है?

4. क्या वाद का उचित मूल्यांकन किया गया है एवं पर्याप्त न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया है?

5. क्या यह वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 के अधीन वर्जित है?

6. क्या यह वाद, वाद हेतुक के कुसंयोजन एवं बाहुल्यपूर्णता के कारण अनुचित है?

7. क्या वादीगण को वादित संपत्ति पर अधिकार, अभिधान एवं हित है तथा वे लोग वादित भूमि पर अपने अधिकार, अभिधान एवं हित की घोषणा पाने का विधिसम्मत रूप से हकदार हैं एवं वे लोग उपरोक्त भूमि पर कब्जे के प्रत्युद्धरण के भी हकदार हैं?

8. और कौन से अन्य अनुतोष या अनुतोषों, यदि कोई हो, के वादीगण हकदार हैं?

6. मुद्दा सं॰ 7 पर चर्चा करते समय, विचारण न्यायालय ने सभी दस्तावेजी साक्ष्य पर विमर्श करने के उपरांत एक निष्कर्ष अभिलिखित किया कि मोस्मात करूणा ने वर्ष 1929 से अपने पिता के उत्तराधिकारी के तौर पर कब्जाधारी रहकर विधिमान्य अधिकार, अभिधान एवं हित अर्जित कर लिया था। विचारण न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा पेश किए गए मौखिक साक्ष्य पर भी चर्चा की एवं यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि वादीगण 60 वर्षों से अधिक समय से वादित भूमि पर अपना कब्जा एवं अभिधान प्रमाणित करने में निराशापूर्ण रूप से असफल रहे हैं। विचारण न्यायालय ने यह भी पाया कि वादीगण वादित भूमि पर अपने अधिकार, अभिधान एवं हित की घोषणा के लिए एक डिक्री पाने के हकदार नहीं हैं।

7. दूसरी ओर, अपीलीय न्यायालय ने दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर सर्वप्रथम यह निष्कर्ष निकाला कि पांडु मुंडा के तीनों पुत्र अलग-अलग थे एवं उनलोगों की संपत्तियाँ उनलोगों के अपने-अपने कब्जे में अभिलिखित थे। मोस्मात करूणा राशु मुंडा की पुत्री थी। राशु का कोई बेटा नहीं था। पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण कार्य के समय पर, राशु मुंडा की मृत्यु हो गयी थी परन्तु पुत्री करूणा जीवित थी एवं वह अपने पिता की संपत्तियों का कब्जेदार थी। अपीलीय न्यायालय ने यह भी पाया कि मो॰ करूणा जो वादित संपत्तियों का कब्जेदार थी, का नाम अधिकारों के सर्वेक्षण अभिलेख में अभिलिखित किया गया था, यद्यपि वादी-प्रत्यर्थीगण ने सहायक परिनिर्धारण अधिकारी के समक्ष आपत्ति उठायी थी, परन्तु उनलोगों की आपत्तियों को खारिज कर दिया गया था। लेकिन, अपीलीय न्यायालय ने कार्यवाही की, चूँकि मोस्मात करूणा राशु मुंडा की विवाहित पुत्री थी, इसलिए वह अपने पिता की संपत्तियों को विरासत में पाने एवं अपने जीवनकाल के दौरान कब्जाधारी रहने की भी हकदार नहीं थी। अपीलीय न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि भले ही मुंडा जनजाति की प्रथा के अनुसार मतियस मुंडा के साथ उसका सम्बन्ध विधिमान्य सम्बन्ध न होने के कारण मोस्मात करूणा को अविवाहित माना गया था फिर भी वह केवल अपने जीवनकाल के दौरान संपत्तियों का कब्जेदार रहने की हकदार थी, पुरूष संतान की अनुपस्थिति में उसके पिता की संपत्तियाँ राशु मुंडा के गोत्रज उत्तराधिकारियों को वापस लौट जाएगी। उपरोक्त निष्कर्ष पर, अपीलीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णय को उलट दिया कि वादीगण ने वादित संपत्तियों पर विधिमान्य अधिकार, अभिधान एवं हित अर्जित किया था। अपीलीय न्यायालय ने पुनः विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलट दिया एवं अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादीगण ने प्रतिकूल कब्जा द्वारा अभिधान अर्जित नहीं किया है एवं वाद परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं था।

8. वादपत्र के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि वादीगण-प्रत्यर्थीगण ने मात्र वादित भूमि पर अपने अभिधान की घोषणा के लिए एक वाद दाखिल किया। वादपत्र में, यह अभिवाक् किया गया था कि पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण कार्य के दौरान, वाद भूमि को राशु मुंडा की पुत्री, मोस्मात करूणा के नाम पर अभिलिखित किया गया था। यह भी अभिवाक् किया गया था कि यद्यपि अधिकारों का अभिलेख मोस्मात करूणा के नाम पर तैयार किया गया था परन्तु वादीगण के पूर्वज इस भूमि पर खेती कर रहे थे एवं उनके पूर्वजों की मृत्यु के उपरांत, वादीगण स्वयं अपने अधिकार, अभिधान एवं हित में वादित

भूमि के कब्जेदार बन गए। मोस्मात करूणा की मृत्यु के उपरांत, जिसकी मृत्यु हाल ही में हो गयी, वादीगण ने वादित भूमि पर आत्यंतिक अधिकार, अभिधान एवं हित अर्जित किया। संक्षेप में, इसलिए, वादीगण ने यह अभिकथित करते हुए अपने अभिधान की घोषणा के लिए एक घोषणात्मक वाद दाखिल किया कि राशु मुंडा की मृत्यु के समय से ही वे लोग वादित भूमि के कब्जेदार रहे हैं। वादीगण ने यह तथ्य छिपाया है, जिसे लिखित अभिकथन में प्रकट किया गया है कि पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण कार्य के दौरान मोस्मात करूणा सम्पूर्ण वाद सम्पत्ति का कब्जेदार थी एवं जब वाद संपत्तियों को मोस्मात करूणा के नाम पर अनन्य रूप से अभिलिखित किया गया था एवं वर्ष 1930 में अधिकारों के अंतिम अभिलेख का प्रकाशन किया गया था, तब वादीगण के पूर्वजों ने अपना दावा पेश किया, जिसे 1929-30 में राजस्व प्राधिकारियों द्वारा अननुज्ञात किया गया था। प्रतिवादी ने बताया कि वर्ष 1931 में वादीगण के पूर्वजों ने वाद संपत्ति पर मोस्मात करूणा के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप किया एवं दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144 के अधीन एक कार्यवाही प्रारम्भ किया गया था जो एम॰ पी॰ केस सं॰ 19/31 था एवं उक्त कार्यवाही में वादीगण के पूर्वजों ने मोस्मात करूणा के अधिकार, अभिधान, हित एवं कब्जे में हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया, जो 1958 तक लगातार कब्जे में रही एवं तत्पश्चात् प्रतिवादी ने अपनी माता की संपत्तियों को विरासत में प्राप्त किया एवं अनन्य कब्जेदार रहे।

9. विचारण न्यायालय ने एक निष्कर्ष अभिलिखित किया कि वाद संपत्ति मोस्मात करूणा के कब्जे में रहा एवं मोस्मात करूणा की मृत्यु के उपरांत उसके पुत्र, प्रतिवादी, 60 वर्ष से अधिक समय तक कब्जेदार रहा। दस्तावेजी साक्ष्य से, जिसे प्रतिवादी की ओर से प्रदर्शित किया गया है, यह सुव्यक्त है कि संपदा के बिहार भूमि सुधार अधिनियम के अधीन निहित होने के पूर्व, लगान रसीदों को भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा मोस्मात करूणा के नाम पर एवं उसकी मृत्यु के उपरांत प्रतिवादी के नाम पर निर्गत किया गया था। यह भी प्रतीत होता है कि निहित होने के उपरांत लगान रसीदों को बिहार राज्य द्वारा निर्गत किया गया था। प्रदर्श F/1 तनाजा की प्रमाणित प्रति है। उक्त दस्तावेज के परिशीलन से, यह सुव्यक्तत: स्पष्ट है कि वादीगण के पूर्वजों द्वारा 1929 में तनाजा मामले में छोटानागपुर भूधृति अधिनियम की धारा 87 के अधीन दाखिल किए गए आपत्ति को सहायक परिनिर्धारण अधिकारी द्वारा 1929 में ही खारिज किया गया था। जैसा कि उपर उल्लेख किया गया है, 1931 में वादीगण के पूर्वजों ने वाद संपत्ति पर मोस्मात करूणा के कब्जे में हस्तक्षेप करने की कोशिश की, जिसपर अंतत: समझौता किया गया था एवं वादीगण के पूर्वजों ने मोस्मात करूणा के अभिधान एवं कब्जे में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया था।

10. छोटानागपुर भूधृति अधिनियम का अध्याय XII अधिकारों के अभिलेख की तैयारी की प्रक्रिया एवं लगान के परिनिर्धारण का वर्णन करता है। धारा 80 अधिकारों के अभिलेख की सर्वेक्षण एवं तैयारी करने का निर्देश देने वाला एक आदेश देने की शक्ति राज्य सरकार को प्रदान करता है। धारा 81 अधिकारों के अभिलेख में अभिलिखित किए जाने वाली विशिष्टियों को विहित करता है। धारा 83 यह प्रावधान करता है कि सर्वेक्षण कार्य के उपरांत राजस्व अधिकारी द्वारा एक प्रारूप अधिकारों का अभिलेख तैयार किया जाना है एवं इसे प्रकाशित किया जाना है। धारा 83 की उप-धारा (2) यह प्रावधान करता है कि यदि अधिकार के अभिलेखों के प्रारूप प्रकाशन में आपत्तियाँ उठायी गयी हो, तो राजस्व अधिकारी द्वारा ऐसी आपत्ति पर विचार किया जाएगा एवं तत्पश्चात् अधिकारों के अभिलेख को अंतिम रूप से प्रकाशित किया जाएगा। धारा 84 अधिकारों के अभिलेख के अंतिम प्रकाशन एवं सत्यता के बारे में एक उपधारणा करता है। धारा 84 निम्नलिखित रूप से पठित है:-

> ''84. **अधिकारों के अभिलेख के अंतिम प्रकाशन एवं सत्यता के बारे में उपधारणा.**-(1) किसी वाद या अन्य कार्यवाहियों में, जिसमें इस अध्याय के अधीन अधिकारों का अभिलेख तैयार एवं प्रकाशित किया गया है या इसकी सम्यक् रूप से प्रमाणित प्रति या इसमें से उद्धरण पेश किया गया है, तो ऐसे अधिकारों का अभिलेख का अंतिम रूप से प्रकाशित हो चुकने की

उपधारणा की जायेगी जबतक कि ऐसे प्रकाशन से अभिव्यक्त रूप से इनकार न किया जाए एवं राजस्व अधिकारी या किसी जिले के उपायुक्त द्वारा, जिसमें इसका स्थानीय क्षेत्र, संपदा या भूधृति या इसका एक भाग, जिससे अधिकारों का अभिलेख संबंधित है, पूर्णत: या अंशत: स्थित है, हस्ताक्षरित एक प्रमाणपत्र यह अभिकथित करते हुए कि अधिकारों के अभिलेख का प्रकाशन अंतिम रूप से इस अध्याय के अधीन कर दिया गया है, ऐसे प्रकाशन का निश्चायक साक्ष्य होगा।

(2) राज्य सरकार, किसी विनिर्दिष्ट क्षेत्र के सम्बन्ध में अधिसूचना द्वारा यह घोषणा कर सकेगा, कि अधिकारों के अभिलेख को उस क्षेत्र सहित पूरे गाँव के लिए अंतिम रूप से प्रकाशित कर दिया गया है; एवं ऐसी अधिसूचना ऐसे प्रकाशन का निश्चायक साक्ष्य होगा।

(3) इस प्रकार से प्रकाशित अधिकारों के अभिलेख में प्रत्येक प्रविष्टि ऐसी प्रविष्टि में निर्दिष्ट मामले का साक्ष्य होगी एवं इसके सत्य होने की उपधारणा की जायेगी जब तक कि साक्ष्य द्वारा असत्य प्रमाणित न हो जाए।''

11. अधिनियम की धारा 87 अधिकारों के अभिलेख के अंतिम प्रकाशन के लिए प्रमाणपत्र की तिथि से तीन महीनों के भीतर राजस्व अधिकारी के समक्ष वाद संस्थित करने का प्रावधान करता है। धारा 87 निम्न रूप से पठित है:–

"राजस्व अधिकारी के समक्ष वाद संस्थित करना.–(1) इस अध्याय के अधीन कार्यवाहियों में किसी ऐसी प्रविष्टि के सम्बन्ध में जिसे राजस्व अधिकारी ने किया है या किसी ऐसे लोप के सम्बन्ध में जो उन्होंने अधिकारों के अभिलेख के अंतिम प्रकाशन के पूर्व धारा 85 के प्रावधानों के अधीन व्यवस्थापित एक उचित लगान की प्रविष्टि के अतिरिक्त किया है, किसी विवाद का निर्णय के धारा 83 की उप–धारा (2) के अधीन अधिकारों के अभिलेख के अंतिम प्रकाशन के लिए प्रमाणपत्र की तिथि से तीन महीनों के भीतर किसी भी समय राजस्व अधिकारी के समक्ष संस्थित किया जा सकेगा, चाहे ऐसा विवाद,–

(a) भूस्वामी एवं अभिधारी के बीच हो, या

(b) इसके भूस्वामियों के बीच या पड़ोसी संपदा के बीच हो, या

(c) अभिधारी एवं अभिधारी के बीच हो, या

(d) इस बारे में हो कि क्या भूस्वामी एवं अभिधारी का सम्बन्ध मौजूद है, या

(e) इस बारे में हो कि क्या लगान मुक्त अभिनिर्धारित किया गया भूमि उचित रूप से इस प्रकार अभिनिर्धारित है, या

(ee) वाद के पक्षकारों के बीच भूमि के अभिधान से एवं या किसी हित से सम्बन्धित कोई प्रश्न के बारे में; या

(f) किसी अन्य विषय के बारे में;

एवं राजस्व अधिकारी विवाद को सुनेंगे एवं निर्णीत करेंगे:

परन्तु यह कि राजस्व अधिकारी धारा 264 के अधीन इसके बारे में बनायी गयी नियमावली के अध्यधीन, कोई विशिष्ट मामला या मामलों के वर्ग को विचारणार्थ सक्षम सिविल न्यायालय में अंतरित कर सकेगा:

परन्तु यह और भी कि इस धारा के अधीन कोई वाद में, राजस्व अधिकारी किसी ऐसे मुद्दे को विचारित नहीं करेंगे जो उसी पक्षकारों के बीच पहले से ही प्रत्यक्षत: या सारत: मुद्दे में है या रहा है या उन पक्षकारों के बीच जिसके अधीन वे लोग या उनलोगों में से कोई इस अध्याय के अधीन लगान के परिनिर्धारण का दावा करते हैं, जहाँ ऐसे मुद्दे को अधिकारों के अभिलेख के अंतिम प्रकाशन के उपरांत संस्थित कार्यवाहियों में धारा 86 के अधीन किसी राजस्व अधिकारी द्वारा विचारित या संस्थित किया गया है या पहले से ही विचारित किया जा रहा है।

(2) कोई अपील उप-धारा (1) के अधीन विनिश्चयों के विरुद्ध विहित अधिकारी को एवं विहित रीति में किया जा सकेगा एवं ऐसे अधिकारी के अपील पर किसी निर्णय के विरुद्ध द्वितीय अपील उच्च न्यायालय में संस्थित किया जायेगा मानो ऐसा निर्णय अध्याय-XVI के अधीन न्यायिक आयुक्त द्वारा पारित एक अपीलीय-डिक्री हो।''

12. धारा 89 अधिकारों के प्रारूप अभिलेख में प्रविष्टि की तिथि से या धाराएँ 83, 85 एवं 86 के अधीन किसी निर्णय से 12 माह के भीतर राज्य सरकार द्वारा सम्यक् रूप से सशक्त राजस्व अधिकारी के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल करने का अधिकार किसी व्यक्ति को प्रदान करता है एवं वह इसे संशोधित कर सकता है धारा 89 निम्न रूप से पठित है:-

"89. **राजस्व अधिकारी द्वारा पुनरीक्षण.**-(1) इसके सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से सशक्त कोई राजस्व अधिकारी द्वारा आवेदन किए जाने पर या स्वयं अपनी प्रेरणा से प्रारूप अधिकार अभिलेख में कोई प्रविष्टि किए जाने या धाराएँ 83, 85 एवं 86 के अधीन कोई आदेश या निर्णय लिए जाने के बारह महीनों के भीतर इसे संशोधित कर सकता है, चाहे यह स्वयं उसके द्वारा किया गया हो या किसी अन्य राजस्व अधिकारी द्वारा परन्तु ऐसा नहीं कि धारा 87 के अधीन पारित कोई आदेश या धारा 85 की उप-धारा (4) के अधीन अपील में पारित कोई आदेश को प्रभावित कर सके:

परन्तु यह कि ऐसा कोई आदेश या निर्णय इस प्रकार से संशोधित नहीं किया जाएगा यदि कोई वाद या इसके सम्बन्ध में कोई अपील धारा 85, उप-धारा (4) या धारा 87 के अधीन लम्बित हो जबतक कि सम्बन्धित पक्षकारों को उपस्थित होने के लिए युक्तियुक्त नोटिस न दिया जाए एवं मामले को सुना न जाय।

(2) उप-धारा (1) के अधीन पारित किसी आदेश के विरूद्ध कोई अपील, विहित रीति में एवं विहित अधिकारी के समक्ष किया जायेगा।

13. जैसा कि ऊपर में देखा गया है, अधिकारों के पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण अभिलेख मोस्मात करूणा के नाम पर वाद संपत्ति के सम्बन्ध में अंतिम रूप से प्रकाशित किए जाने के उपरांत, वादीगण के पूर्वजों ने दावा याचिका दाखिल करके राजस्व प्राधिकारीगण के समक्ष उक्त प्रविष्टि को चुनौती दी जिसे आपत्ति सं॰ 5 के तौर पर पंजीकृत किया गया था। वादीगण के पूर्वजों द्वारा की गयी प्रार्थना वादित भूमि के सम्बन्ध में मोस्मात करूणा के नाम पर की गयी प्रविष्टि के रद्दकरण के लिए था। राजस्व प्राधिकारीगण द्वारा नोटिसें निर्गत की गयी थी एवं पक्षकारों की सुनवाई करने के उपरांत, दावे को 16.6.1930 को एक युक्तियुक्त आदेश पारित करके अस्वीकार किया गया था। परिनिर्धारण अधिकारी द्वारा पारित आदेश की एक प्रमाणित प्रति प्रदर्श F/1 है। बेहतर मूल्यांकन के लिए, दिनांक 16.6.1930 के आदेश को इसमें इसके नीचे उत्कथित किया गया है:-

''दोनों पक्षकार उपस्थित हैं। आपत्तिकर्ता सुलेमान पहान का अभिकथन यह है कि मोस्मात करूणा एक अविवाहित महिला है एवं इस प्रकार वह अपने माता-पिता, जिसमें से पिता की मृत्यु लगभग 4 या 5 वर्ष पूर्व हो गयी जबकि माता की मृत्यु मात्र एक वर्ष पूर्व हुई है, द्वारा छोड़ी गयी संपत्ति का हकदार नहीं है। मुंडाओं के बीच रिवाज के अनुसार, कोई विवाहित महिला अपने माता-पिता द्वारा छोड़ी गयी संपत्ति का हकदार नहीं होती है एवं किसी पुरूष संतान की अनुपस्थिति में, यह निकटतम रिश्तेदारों में हस्तांतरित हो जाता है। परन्तु इस विशिष्ट मामले में मैं पाता हूँ कि मोस्मात करूणा मुंडाओं के बीच प्रचलित रिवाज के अनुसार विवाहित नहीं थी। वह बाजगामा के किसी व्यक्ति द्वारा ले जायी गयी थी एवं उसके साथ, वह कुछ वर्षों तक रही एवं तब लौटी है। वह अपने माता-पिता के साथ पिछले 15 या 16 वर्षों से साथ रह रही है। पिता, राशु मुंडा का आपत्तिकर्ताओं से पृथक रसोई एवं संपत्ति पर कब्जा था। अब प्रतिवादिनी एक असहाय विधवा हैं। चूँकि वह व्यक्ति जो उसे ले गया था एवं उसके माता-पिता, सभी की मृत्यु हो गई है। मैं यह नहीं समझता हूँ की उसे अपने माता-पिता द्वारा छोड़ी गयी संपत्ति से वंचित करना सही होगा, विशेष रूप से जब वह विवाहित नहीं थी। अविवाहित पुत्री अपने

माता-पिता द्वारा छोड़ी गयी संपत्ति पर अपना अधिकार प्राप्त करती है जब कोई पुरूष संतान न हो। इन परिस्थितियों में, मैं खानापूरी अधिकारी के निष्कर्षों से सहमत हूँ एवं निर्देश देता हूँ कि उसके नाम पर तैयार किया गया खेवट बरकरार रहेगा।

आदेश:-अननुज्ञात''।

ह०/-परिनिर्धारण अधिकारी

राँची

14. यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि उपरोक्त आदेश को वादीगण के पूर्वजों द्वारा कभी भी चुनौती दी गयी थी एवं यह अंतिमता प्राप्त कर ली थी। मोस्मात करूणा का भूमि पर कब्जा बना रहा। यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि वर्ष 1931 में, वादीगण के पूर्वजों ने मोस्मात करूणा के कब्जे में हस्तक्षेप करने की कोशिश की जिसे दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144/145 के अधीन कार्यवाहियाँ प्रारम्भ हुई एवं उक्त कार्यवाहियों में, वादीगण के पूर्वजों ने मोस्मात करूणा जो 1958 तक कब्जेदार रही, के अधिकार, अभिधान, हित एवं कब्जे में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया एवं तत्पश्चात, प्रतिवादीगण-प्रत्यर्थीगण मोस्मात करूणा के उत्तराधिकारी होने के कारण वाद संपत्ति के कब्जेदार रहे हैं।

15. उपरोक्त स्वीकृत तथ्यों एवं अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य में, एक प्रश्न जो विचारणार्थ उत्पन्न होता है, यह है कि वाद संपत्ति पर मात्र अभिधान की घोषणा के लिए कोई वाद पोषणीय है। यदि पोषणीय है, तो क्या यह निराशापूर्ण रूप से परिसीमा एवं प्रतिकूल कब्जे द्वारा वर्जित है?

16. पूर्वगामी पैराग्राफों में इसमें इसके पूर्व विवेचित तथ्यों से, मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि वाद पोषणीय नहीं है एवं यह परिसीमा, प्रतिकूल कब्जा एवं बेदखली द्वारा वर्जित है। मैं विचारण न्यायालय के इस दृष्टिकोण से भी सहमत हूँ कि वादीगण-प्रत्यर्थीगण ने वादित भूमि पर अपना अधिकार, अभिधान एवं हित प्राप्त कर लिया है एवं वाद विबन्ध, अधित्यजन एवं उपमति के सिद्धाँतों द्वारा भी वर्जित है।

17. एक और रोचक प्रश्न जिसपर विचार किये जाने की जरूरत है यह है कि क्या मामले के तथ्यों में, प्रथाजन्य विधि जैसा कि वादीगण द्वारा अभिवाक् किया गया है, अभी भी प्रयोज्य है। उक्त प्रश्न पर विवेचन करने से पूर्व, मैं छोटानागपुर भूधृति अधिनियम के उपबंधों में से कुछ को निर्दिष्ट करना चाहूँगा। भूमि धारण करने में पक्षकारों की प्रास्थिति का पता लगाने के क्रम में ''रैयत'' को अधिनियम की धारा 6 में परिभाषित किया गया है जो निम्नवत पठित है:-

"6. **''रैयत'' का अर्थ.**-(I) ''रैयत'' से अभिप्रेत है प्रारंभिक रूप से वह व्यक्ति जिसने धारण करने के लिए एवं स्वयं या उसके पारिवारिक सदस्यों द्वारा या मजदूरों द्वारा या भागीदारों की सहायता से कृषि के प्रयोजनार्थ अधिकार अर्जित किया है, एवं इसमें से उन व्यक्तियों के हित उत्तराधिकारी भी शामिल हैं जिसने ऐसा एक अधिकार अर्जित किया है, परन्तु इसमें मुंडारी-खूंट-काटिदार शामिल नहीं होता है।

स्पष्टीकरण.-जहाँ भूमि के किसी अभिधारी को खेती करने का अधिकार प्राप्त है, तो उसे कृषि के प्रयोजनार्थ हेतु इसे धारण करने का अधिकार अर्जित कर चुका समझा जायेगा, इसके होते हुए भी कि वह इसकी उपज एकत्र करने या इसपर पशु चराने के प्रयोजनार्थ इसका उपयोग करता हो।

(2) कोई व्यक्ति एक रैयत होना समझा नहीं जायेगा जबतक कि वह या तो किसी भूधृति-धारी के तुरन्त अधीन या मुंडारी-खूँट-काटीदार के तुरन्त अधीन एक स्वत्वधारी के अधीन न हो।

(3) यह अवधारित करने में कि क्या अभिधारी एक भूधृति-धारी है या रैयत, न्यायालय ध्यान में रखेगा,-

(a) स्थानीय प्रथा को, एवं

(b) उस प्रयोजन को जिसके लिए भूधृति का अधिकार मूलरूप से अर्जित किया गया था।

18. धारा 7 शब्द ''खून-काँटी अधिकार रखने वाला रैयत'' जो निम्न रूप से पठित है:-

"7. **''खूँट-कटी अधिकार रखने वाले रैयत'' का अर्थ.**–(1) ''खूँटी-कटी अधिकार रखने वाले रैयत'' से अभिप्रेत है, ऐसा व्यक्ति जो गाँव के मूल स्थापनकर्ताओं या उनके पुरूष वर्ग के वंशजों द्वारा जंगल से उपयोग के लायक बनायी गयी भूमि का कब्जाधारी हो या कोई विद्यमान अधिकार रख रहा हो, जब ऐसा रैयत उस परिवार का सदस्य हो जिसने गाँव की नींव डाली थी या ऐसे परिवार के किसी सदस्य के पुरूष वर्ग का कोई वंशज हो:

परन्तु यह कि कोई भी रैयत किसी भूमि में खूँट-कटी अधिकार रखने वाला समझा नहीं जायेगा जबतक कि वह या उसके सभी हक पूर्वाधिकारी ने गाँव के मूल स्थापनकर्ताओं से विरासत के फलस्वरूप ऐसी भूमि धारण या इसपर हक अभिप्राप्त नहीं किया हो।

(2) इस अधिनियम की कोई भी बात किसी ऐसे व्यक्ति के अधिकारों को प्रतिकूल प्रभावित नहीं करेगा जिसने इस अधिनियम की प्रारम्भ के पूर्व खूँट-कटीदारी भूधृति में विधिसम्मत रूप से अभिधान अर्जित किया है।''

19. धारा 8, जो भी महत्वपूर्ण है, शब्द ''मुंडारी-खूँट-कटीदारी'' को परिभाषित करता है जो निम्नलिखित रूप से पठित है:-

"8. **मुँडारी-खूँट-कटीदारी.**–मुंडारी-खूँट-कटीदारी का अर्थ है एक मुंडारी, जिसने स्वयं या उसके परिवार के पुरूष सदस्यों द्वारा जंगली भूमि को कृषि के उपयुक्त भाग बनाने के प्रयोजन से इसपर अधिकार अर्जित किया है, एवं इसमें शामिल है:-

(a) ऐसे मुंडारी के पुरूष वर्ग का पुरूष उत्तराधिकारी जब वे ऐसी भूमियों का कब्जेदार हैं या इसमें कोई विद्यमान अधिकार रखते हों, एवं

(b) ऐसी भूमि के किसी ऐसे भाग के सम्बन्ध में, जो किसी ऐसे मुंडारी एवं पुरूष वर्ग में उसके वंशजों के निरन्तर कब्जे में रहा है, ऐसे वंशज।''

20. वादीगण का मामला यह नहीं है कि उनके पूर्वज मुंडारी-खूँट-कटीदारी थे अर्थात् उनलोगों ने स्वयं या अपने परिवार के पुरूष सदस्यों द्वारा जंगली भूमि को खेती के उपयुक्त भाग बनाने के प्रयोजनार्थ इसपर अधिकार अर्जित किया था। वादीगण का मामला यह भी नहीं है कि उनके पूर्वजों का रैयत जंगल से स्वयं द्वारा उपयोग के लायक बनायी गयी भूमि पर अधिकार विद्यमान था या गाँव के स्थापनाकर्ता या पुरूष वर्ग में उनके वंशज थे। खूँट-कटीदारी की प्रास्थिति गाँव के मूल स्थापनाकर्ता से प्राप्त की जाती है। परन्तु खूँटकटी अधिकार रखने वाले रैयत को मुँडारी होने की जरूरत नहीं है। मुंडारी खूँटकटीदार एवं खूँटकटी अधिकार रखने वाले रैयत के बीच सुभिन्नता है।

21. पूर्व भू-स्वामी द्वारा निर्गत लगान रसीदों (प्रदर्श A-श्रृंखला) से यह परिलक्षित होता है कि कोई ठाकुर महेन्द्र नाथ शहदेव झरिया इस्टेट के भू-स्वामी था एवं वह पक्षकारों के पूर्वजों से लगान एकत्रित किया करता था। उक्त ठाकुर महेन्द्र नाथ शाहदेव को भी अधिकार अभिलेख में भूस्वामी के तौर पर अभिलिखित किया गया था। इसलिए, यह सुव्यक्त है कि पक्षकारगण एक मुंडारी-खूँट कटीदारी के तौर पर भूमि के कब्जेदार नहीं थे। यह भी सुव्यक्त है कि पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण से पूर्व, वादीगण के पूर्वजों ने रसोई एवं संपत्ति के अपने-अपने हिस्सों का कब्जा भी पृथक कर लिया था एवं वाद भूमि राशु मुंडा, मोस्मात करूणा के पिता के हिस्से में आया। पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण के दौरान, मोस्मात करूणा

का नाम वादीगण के पूर्वजों के दावे को अस्वीकार करने के उपरांत, अंतिम रूप से प्रकाशित अधिकारों के पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण अभिलेख में प्रविष्ट कराया गया था।

22. स्वीकार्यत: पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण के दौरान राशु मुंडा की पुत्री होने के कारण मोस्मात करूणा का नाम अधिकारों के अभिलेख में प्रविष्ट किया गया था, जो कि वादीगण के पूर्वजों के आक्षेप को अस्वीकार करने के उपरांत अंतिम रूप से प्रकाशित कराया गया था। महिला उत्तराधिकारी होने के कारण अधिकारों के अभिलेख में मोस्मात करूणा का नाम प्रविष्ट करके एक रैयत के तौर पर उसे मान्यता दी गयी थी जिसे बाद में वर्ष 1931 में धाराएँ 144/145 के कार्यवाहियों में वादीगण के पूर्वजों द्वारा स्वीकार किया गया था। उपरोक्त परिसर में अंतिम रूप से प्रकाशित अधिकारों के अभिलेख में सम्यक् रूप से प्रविष्ट मोस्मात करूणा की प्रास्थिति को 1978 में वाद दाखिल करके 58 वर्षों के उपरांत परिवर्तित नहीं किया जा सकता है एवं साथ ही मोस्मात करूणा या उसके उत्तराधिकारियों का अधिकार इस प्रथा को लागू करके छीना नहीं जा सकता है कि मात्र पुरूष वंशज ही अपने पूर्वजों द्वारा छोड़ी गयी भूमि विरासत में प्राप्त करेंगे। छोटानागपुर भूधृति अधिनियम की धाराएँ 7 एवं 8 की प्रयोज्यता वर्तमान मामले में नहीं होगी।

23. उक्त के अतिरिक्त यदि अभिकथित रूप से प्रचलित प्रथा को वर्तमान मामले के तथ्यों में कठोरतापूर्वक प्रयोज्य किया जाय, तो यह उस महिला के जीविका के संवैधानिक अधिकार का गम्भीर उल्लंघन होगा, जिसके अधिकार को 1928 के पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण के दौरान मान्यता दी गयी थी एवं जिसने वाद भूमि के सम्बन्ध में एक अभिलिखित रैयत की प्रास्थिति अर्जित की थी।

24. मामले के समस्त तथ्यों एवं परिस्थितियों एवं एतस्मिनपूर्व विवेचित विधि को ध्यान में रखते हुए, मुझे यह अभिनिर्धारित करने में संकोच नहीं है कि वादीगण-प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल किया गया वाद पोषणीय नहीं है एवं परिसीमा एवं प्रतिकूल कब्जा द्वारा वर्जित है।

25. उपरोक्त कारणों से, यह अपील अनुज्ञात किया जाता है एवं अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री को अपास्त किया जाता है। परिणामत:, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री प्रत्यावर्तित किया जाता है।

---

ekuuh; vej'oj lgk;] U;k;efr

नसीम अंसारी @ गुरा मियाँ

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

क्रि॰ एम॰ पी॰ सं॰ 1380 वर्ष 2008. 16 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 167(2)(a)(ii)—बाध्यकारी जमानत–यह अभिवाक् कि चूंकि मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 363 एवं 366A के अधीन दर्ज किया गया है और दंड का प्रावधान 10 वर्षों तक के कारावास का किया गया है इसलिए अभियुक्त उस समय जमानत का हकदार है जब आरोप-पत्र 60 दिनों के अन्दर प्रस्तुत नहीं किया गया है–इस आधार पर बाध्यकारी जमानत से इनकार कि आरोप-पत्र भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन प्रस्तुत किया गया है, इस प्रकार याची जमानत का हकदार नहीं है–अभिनिर्धारित, जमानत की मंजूरी का दावा उस अपराध के अधीन आरोप-पत्र प्रस्तुत किये जाने पर न्यून नहीं किया जा सकता है जो 10 से अधिक वर्षों के लिए कारावास के दंड का प्रावधान करता है–जमानत मंजूर की गयी।

(पैरा 13 एवं 14)

अधिवक्तागण.–Mr. K.P. Deo, For the Petitioner, Mr. A.P.P., For the State; M/s Mahesh Tewari, N.P.I. Choudhary, For the informant.

आदेश

पक्षकारों को सुना।

2. याची ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 110/2008 को खारिज करने वाले सत्र न्यायाधीश, देवघर द्वारा पारित दिनांक 2.9.2008 के आदेश तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(a)(ii) का लाभ उसको प्रदान करके जमानत पर याची को छोड़ने से इंकार करने वाले, सब-डिबिजनल न्यायिक मजिस्ट्रेट, मधुपुर, देवघर द्वारा पारित किये गये दिनांक 14.8.2008 के आदेश को चुनौती देने वाला यह आवेदन प्रस्तुत किया है।

3. संक्षेप में, तथ्य ये हैं कि तैयब अंसारी ने तीन नामजद अभियुक्त व्यक्तियों, अर्थात् याची एवं दो अन्यों अर्थात्, फुरकंत मियां एवं महबूब मियां के विरुद्ध सरथ (चित्रा) थाना केस सं॰ 53/2008 की एक प्राथमिकी दर्ज किया। भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 363 एवं 366-A के अधीन प्राथमिकी दर्ज किया गया था, जिसमें सूचनादाता द्वारा यह अभिकथन किया गया था कि यह याची उसका ड्राइवर था और वह उसके घर में निवास किया करता था। घटना की अभिकथित तिथि पर, इस याची उसकी नाबालिग पुत्री को फुसलाकर अपने साथ उसको लेकर भाग गया था और दोनों लापता थे। यह अभिकथन किया गया कि याची विवाह एवं बलात्संग के अवैधानिक प्रयोजनों के लिए उसकी नाबालिग पुत्री के साथ चुपके से भाग गया। जहां तक दो अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध, जो प्राथमिकी में नामित किये गये थे, यह अभिकथन किया गया था कि उन्होंने सूचनादाता की नाबालिग पुत्री के साथ भागने में मुख्य अभियुक्त, अर्थात् याची के साथ षडयंत्र किया।

4. पुलिस ने अन्वेषण किया और याची को गिरफ्तार किया गया और उसको 3.6.2008 से अभिरक्षा को प्रतिप्रेषित कर दिया गया था।

5. 14.8.2008 को, एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, मधुपुर, देवघर के समक्ष याची द्वारा एक याचिका दाखिल किया था, जो दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167(2)(a)(ii) के अधीन एक याचिका होने का तात्पर्य था, उसमें यह प्रार्थना करते हुए कि जमानत के आधार पर उसे छोड़ा जाय कि 60 से अधिक दिनों तक अभिरक्षा में निरूद्ध नहीं रखा जा सकता है क्योंकि पुलिस ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167(2)(a)(ii) के अधीन यथा उपबंधित 60 दिनों की कालावधि के भीतर मामले में अन्वेषण पूरा करने तथा आरोप-पत्र प्रस्तुत करने में असफल हो गया था एवं, इसलिए, वह जमानत पर छोड़े जाने का हकदार था।

6. दिनांक 14.8.2008 के आदेश द्वारा विद्वान सब-डिबिजनल मजिस्ट्रेट ने याचिका नामंजूर कर दिया एवं जमानत पर याची को छोड़ने से इस आधार पर इंकार कर दिया कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 366A के अधीन उपबंधित दंड 10 वर्षों की एक कालावधि तक कारावास एवं जुर्माना भी था एवं, इसलिए, मामला दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167(2)(a)(i) के अधीन आएगा जिसमें अन्वेषण को पूरा करने की कालावधि 90 दिन होना उपबन्धित था एवं न कि 60 दिन।

7. याची ने सत्र न्यायाधीश, देवघर के समक्ष पुनरीक्षण में उक्त आदेश को चुनौती दिया, जिसे दिनांक 2.9.2008 के आक्षेपित आदेश से सत्र न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया है, जो इस आवेदन में चुनौती के अधीन है।

8. सत्र न्यायाधीश के आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि याची को जमानत पर छोड़ने के लिए उसकी प्रार्थना इस आधार पर नामंजूर कर दी गयी है कि पुलिस ने भी भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन 88वें दिन आरोप-पत्र प्रस्तुत किया एवं भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन उपबंधित दंड 10 वर्षों से और अधिक उच्चतर था एवं, इसलिए, 60 दिनों का प्रावधान लागू नहीं होगा बल्कि मामले में 90 दिनों का प्रावधान लागू होगा।

9. याची की ओर उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री के॰ पी॰ देव ने यह तर्क दिया कि यदि अभियुक्त को 10 वर्षों या उससे कम के कारावास के दण्डनीय एक अपराध के सम्बन्ध में गिरफ्तार किया गया और अभिरक्षा को प्रतिप्रेषित किया गया तो उसको 60 दिनों से अधिक दिन तक अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं किया जा सकेगा, यदि पुलिस दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167(2)(a)(ii) के अधीन यथाकल्पित 60 दिनों की कालावधि के अन्दर अंतिम फॉर्म/आरोप-पत्र प्रस्तुत नहीं करती है। उन्होंने आगे यह निवेदन किया कि 90 दिनों तक निरोध की कालावधि मात्र उन अपराधों के सम्बन्ध में अनुज्ञेय है जिसमें मृत्युदंड, आजीवन कारावास या 10 वर्षों से कम न होने वाली एक अवधि तक कारावास के दंड का प्रावधान किया गया है। जबकि वर्तमान मामले में अभिकथनों के अनुसार, भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 363 तथा 366A के अधीन प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और दोनों अपराध 10 वर्षों तक या कम कारावास के लिए दंडनीय है और इसलिए याची उस समय 60 दिनों की कालावधि की समाप्ति के पश्चात् जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है जब पुलिस ने आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया हो। श्री देव के अनुसार, जो अधिकार अभिरक्षा में उसके प्रतिप्रेषण की तारीख से 61वें दिन को जमानत पर उसके छोड़े जाने के लिए याची को प्रोद्भूत हुआ, उसको मात्र इसलिए नहीं छीना जा सकता है क्योंकि बाद में पुलिस ने 88वें दिन भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन आरोप-पत्र प्रस्तुत किया और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन उपबंधित दंड 10 से अधिक वर्षों तक के लिए कारावास है।

10. दूसरी ओर, सूचनादाता/वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री महेश तिवारी ने यह तर्क दिया कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन अपराध से सम्बन्धित एक मामले में आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के लिए कानूनी कालावधि 90 दिनों की होगी क्योंकि यह 10 वर्षों और इसके ऊपर के कारावास से दंडनीय है और वर्तमान मामले में, स्वीकार्यरूपेण आरोप-पत्र 88वें दिन, अर्थात् 90 दिनों की कालावधि के भीतर प्रस्तुत किया गया था एवं, इसलिए, याची जमानत पर छोड़े जाने का हकदार नहीं है। उन्होंने आगे यह निवेदन किया कि याची द्वारा कारित अपराध जघन्य प्रकृति का है एवं, इसलिए, यह विधि के प्रबल हाथों से निपटाया जाना चाहिए।

11. पक्षकारों के विरोधी निवेदनों का मूल्यांकन करने के लिए, इस सम्बन्ध में विधि के उपबन्ध का सार निकालना आवश्यक है। धारा 167(2)(a)(i) एवं धारा 167(2)(a)(ii) सुगम निर्देश के लिए इसमें नीचे उद्धृत किये जाते हैं:-

"167 (1).....

(2) .....

(a) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का पुलिस अभिरक्षा में अन्यथा निरोध पन्द्रह दिनों की अवधि से आगे के लिए उस दशा में प्राधिकृत कर सकता है जिसमें उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार हैं, किन्तु दण्डाधिकारी ने कुल बढाई गई अवधी हेतु इस धारा के अधीन अभिरक्षा में अभियुक्त व्यक्ति का निरोध प्राधिकृत नहीं करेगा–

(i) कुल मिलाकर नब्बे दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा, जहाँ अन्वेषण ऐसे अपराध के सम्बन्ध में जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से न्यून की अवधि के लिए कारावास से दण्डनीय है;

(ii) कुल मिलाकर साठ दिनों से अधिक की कालावधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा, जहां अन्वेषण किसी अन्य अपराध से सम्बन्धित है,

एवं, नब्बे दिनों या साठ दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति पर, यथास्थिति यदि वह अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोडने के लिए तैयार है और दे देता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जायेगा और यह समझा जायेगा कि इस उप-धारा के अधीन जमानत पर छोड़ा गया प्रत्येक व्यक्ति अध्याय-XXXIII के प्रयोजनों के लिए उस उपबन्धों के अधीन छोड़ा गया है।''

12. यह तथ्य निर्विवादित है कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 366A के अधीन अपराध के लिए उपबन्धित दंड 10 वर्षों या कम की कालावधि के लिए कारावास है। मामले के इस दृष्टि में, धारा 167(2)(a)(i) के उपबंध लागू नहीं होंगे क्योंकि वह उन मामलों के बारे में कहती है कि जहां अन्वेषण मृत्यु, आजीवन कारावास या 10 वर्षो से कम न होने वाली एक कालावधि तक के कारावास से दंडनीय एक अपराध से सम्बन्धित होता है। क्योंकि ऐसे प्रकार के अपराधों के लिए के लिए जो 10 वर्षों से अधिक के कारावास से दंडनीय है, एक अभियुक्त के निरोध की अधिकतम कालावधि 90 दिनों की हो सकती है। जबकि, धारा 167(2)(a)(ii), (i) में वर्णित अपराधों के सिवाय अन्य अपराधो के बारे में कहती है, वहां एक अभियुक्त के निरोध की अधिकतम कालावधि 60 दिन होगी और यदि कोई आरोप-पत्र या अंतिम प्रपत्र कथित अवधि के भीतर प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने का हकदार होगा।

13. यदि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167(2)(a)(i) के अधीन यथाकल्पित 90 दिनों की कालावधि या अभियुक्त के विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल के लिए उपबन्धित धारा 167(2)(a)(ii) के अधीन यथाकल्पित 60 दिनों की कालावधि समाप्त हो जाती है तो उस मामले में उन निबन्धनों एवं शर्तों पर स्वयं को जमानत पर छुड़ाने का, यथास्थिति 91वें या 61वें दिनों को, और उनसे अभियुक्त का एक अजेय अधिकार प्रोद्‌भूत होता है जिन्हें विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित किया जा सकता है। यह अधिकार न्यायालय द्वारा किसी भी रीति से कम नहीं किया जा सकता है या छीना नहीं जा सकता है। वर्तमान मामले में स्वीकार्यरूपेण आरोप-पत्र भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 अंत:स्थापित करके याची के प्रतिप्रेषण की तिथि से 88वें दिन पुलिस द्वारा पेश किया गया था मेरी राय में, यद्यपि पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन आरोप-पत्र प्रस्तुत किया तथापि इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा और जो अधिकार पुलिस द्वारा आरोप-पत्र के प्रस्तुत न किये जाने के कारण उसके रिमांड की तारीख से 61 वें दिन को और उस तारीख से जमानत पर उसे छोड़े जाने के लिए याची को पहले से ही प्रोद्‌भूत हुआ था उसे एसे एक अपराध के अधीन आरोप-पत्र प्रस्तुत किये जाने से न्यून नहीं किया जा सकता है या छीना नहीं जा सकता है जो 10 से अधिक वर्षों के कारावास के दंड का प्रावधान करता है। विद्वान सत्र न्यायाधीश एवं विचारण न्यायालय दोनों ने याची को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(a)(ii) के अधीन उसे लाभ दे करके जमानत पर छोड़ने से इंकार करने में गंभीरतापूर्वक गलती की है।

14. ऊपर की चर्चाओं एवं निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए क्रमश: सत्र न्यायाधीश, देवघर एवं एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, मधुपुर, देवघर द्वारा पारित दिनांक 2.9.2008 तथा 14.8.2008 के आक्षेपित आदेशों को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है। विचारण न्यायालय को जमानत पर याची को छोड़ने का निर्देश दिया जाता है यदि वह विधि के अधीन अनुज्ञेय ऐसे निबन्धनों एवं शर्तों पर, जिन्हें विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित किया जाय, जमानत बन्धपत्र देने को तैयार है। परिणामत:, यह आवेदन उक्त सम्प्रेक्षणों एवं निर्देशों के साथ अनुज्ञात हो जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o ç'kkr dekj] U;k;efrx.k

पत्रिक किन्दो

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

दां॰ अपील (डी॰ बी॰) सं॰ 126 वर्ष 2000 (आर॰). 23 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

श्री तारकेश्वर प्रसाद, सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा S.T. सं॰ 193 वर्ष 1994 में पारित दिनांक 9.8.1999 के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201—हत्या-सबूत का मानक-परिस्थितियों को पूर्णतया अवश्य स्थापित किया जाना चाहिए और उन परिस्थितियों

द्वारा प्रस्तुत किये गये साक्ष्य की श्रृंखला को यह अवश्य प्रदर्शित करना चाहिए कि सभी माननवीय संभाव्यताओं के अन्दर उस कार्य को अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

(पैरा 7, 12, 13 एवं 14)

(ख) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201—हत्या का विचारण–पारिस्थितिक साक्ष्य–यह अभिकथन कि अपीलार्थी को दूर से देखा गया था–एक व्यक्ति को देखा गया जो स्वयं को कम्बल से ढ़के हुए था, अतएव, यह कहना कठिन था कि वह वहीं अपीलार्थी था–कटार बरामद लेकिन रक्त रंजित नहीं–ये सभी परिस्थितियाँ उस श्रृंखला को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है जो यह बताती है कि एकमात्र अभियुक्त ने ही कथित अपराध कारित किया है–दोषमुक्त किया गया। (पैरा 12 से 14)

अधिवक्तागण.–Mr. R.K. Prasad, For the Appellant; Mr. APP, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अंशत: सुना गया एक मुद्दा है। आज कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं हुआ है।

यह अपील S.T. सं॰ 193 वर्ष 1994 में 9.8.1999 को विद्वान सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के आदेश के विरूद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302 एवं 201 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया एवं भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास एवं भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन अपराध के लिए 5 वर्षों तक कठोर कारावास भुगतने का उसे दंडादेश दिया।

2. सूचनादाता विलियम तोप्पो के फर्दबयान के अनुसार संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि 20.3.1994 को वह रंजित जजा, पियूष तोप्पो, विलफ्रेड मिंज, ललित इक्का, जगदीयश इक्का, राजेन्द्र जजा के साथ सगाई (लोटा-पानी) के एक समारोह के सम्बन्ध में ईश्वर इक्का के घर गया था। यह आगे अभिकथन किया गया है कि उसी दिन लगभग 7 बजे पूर्वान्ह में सूचनादाता मृतक एवं अन्यों के साथ गांव में घूमने के लिए गया। उसी कालावधि के दौरान अपीलार्थी पत्रिक किन्दो उससे मिला और उससे कच्चा तम्बाकू मांगा जिसपर उनलोगों ने कहा कि उनके पास नहीं है, जिसपर अपीलार्थी पत्रिक किन्दो एवं मृतक रंजीत जजा के बीच कुछ कहा सुनी हुई। यह भी अभिकथन किया गया है कि उक्त कहासुनी के अनुक्रम में, मृतक रंजीत जजा ने अपीलार्थी पर हमला किया। किन्तु, बाद में, सूचनादाता एवं उसके मित्रगण भाग गये तथा ईश्वर इक्का के भवन में शरण लिये। यह आगे अभिकथन किया जाता है कि रात्रि में वे नाच देखने गये थे एवं बाद में वे सोने चले गये थे। यह आगे कथन किया जाता है कि रात्रि में जब सूचनादाता और उसके मित्रगण नाच देख रहे थे तब अपीलार्थी ईश्वर इक्का के घर के पीछे बैठा हुआ था एवं उसको ईश्वर इक्का की माता, अर्थात् जसफीना मिंज द्वारा देखा गया था। उस समय अपीलार्थी स्वयं को कम्बल से ढके हुए था। यह आगे कथन किया गया है कि जब जसफीना मिंज ने उसे पकड़ने और उसका उसे पीछा करने के लिए कहा तब तक वह भाग गया। यह आगे कथन किया जाता है कि सुबह कतिपय बच्चों ने पाया कि एक व्यक्ति का शव गाँव के तालाब में तैर रहा था, जिसके बाद गाँव वाले एवं सूचनादाता एवं उसके अन्य मित्रगण वहां गये और उनलोगों पाया कि उक्त शव मृतक रंजीत जजा का था। यह आगे कथन किया गया है कि तालाब के पास उन्हें कुछ पद चिन्ह मिले जो यह प्रदर्शित करता है कि घटना संभवत: किसी दूसरे स्थान पर हुई थी और बाद में शव को लाया गया और तालाब में गिरा दिया गया। यह आगे कथन किया जाता है कि पद चिन्हों को देखने के पश्चात्, उन्होंने घटना-स्थल की तलाश करने का प्रयास किया और उसके अनुक्रम में उन्हें पास्कल के खेत के मेड़ पर रक्त के निशान मिले। पूर्वोक्त फर्दबयान के आधार पर, पुलिस ने वर्तमान मामले को दर्ज किया और अन्वेषण का कार्यभार संभाला। अन्वेषण के पश्चात्, पुलिस ने

अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया, उसी के आधार पर विद्वान CJM, गुमला ने अपराध का संज्ञान लिया। बाद में मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया क्योंकि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध सत्र न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से विचारणीय है। सुपुर्दगी के पश्चात् भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302 एवं 201 के अधीन अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप विरचित किये गये एवं इसका उसे स्पष्टीकरण दिया गया जिसका उसने दोषी न होने का अभिवाक् किया एवं विचारण किये जाने की मांग की। तत्पश्चात्, अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में कुल 14 साक्षियों की परीक्षा की। अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में पोस्टमार्टम रिपोर्ट, फर्दबयान, अभिग्रहण-सूची, मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट एवं प्राथमिकी को प्रदर्शित एवं सिद्व किया था। पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश द्वारा यथापूर्वोक्त अपीलार्थी को दोषसिद्ध एवं दण्डित किया जिसके विरूद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

3. अवर न्यायालय के निर्णय की अलोचना करते हुए, अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ के॰ प्रसाद ने निवेदन किया कि घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है और अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने हेतु अवर न्यायालय द्वारा जिन परिस्थितियों पर विचार किया गया, ऐसी नहीं है जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि अपीलार्थी ने वर्तमान अपराध कारित किया है। तद्नुसार, यह निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय एवं दंडादेश इस अपील में कायम नहीं रखा जा सकता है।

4. दूसरी ओर, विद्वान अपर लोक॰ अभि॰ यह तर्क देते हैं कि पुलिस के समक्ष अपीलार्थी की संस्वीकृति है जो अपराध के कारित किये जाने में प्रयुक्त उपकरण की बरामदगी की ओर ले जाता है। यह भी तर्क दिया जाता है कि अभियोजन ने कथित अपराध के लिए हेतुक को साबित कर दिया था एवं अन्य परिस्थितियाँ जिनपर अभियोजन द्वारा विश्वास किया गया यह भी प्रदर्शित करता है कि अपराध अपीलार्थी द्वारा ही कारित किया गया था एवं न कि किसी दूसरे द्वारा। तद्नुसार, वह तर्क देते हैं कि आक्षेपित निर्णय वर्तमान अपील में इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं करता है।

5. पक्षकारों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने के पश्चात, हमने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की जांच की है। स्वीकार्यरूपेण, घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। चिकित्सीय साक्ष्य, पोस्टमार्टम रिपोर्ट एवं मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि मृतक की मृत्यु मानववध से हुई और अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा इसे भी विवादित नहीं बनाया गया है अतएव, तथ्य जो इस अपील में देखे जाने के लिए बना रहता है, वह इस बारे में है कि क्या अभिकथित अपराध इस अपीलार्थी द्वारा कारित किया गया था या नहीं।

6. वर्तमान मामले में, अभियोजन ने निम्नलिखित परिस्थितियों में अपीलार्थी के विरूद्ध लगाये गये आरोपों को साबित करने का प्रयास किया था।

(a) कच्ची तम्बाकू की मांग की बाबत 20.3.1994 की शाम, 7:30 बजे मृतक तथा अपीलार्थी के बीच कहासुनी हुआ है और कहासुनी के पश्चात् अपीलार्थी ने मृतक का वध करने की धमकी दी थी।

(b) अपीलार्थी को अ॰ सा॰ 2 जसफीना मिंज द्वारा ईश्वर इक्का के घर के पीछे रात्रि में देखा गया था।

(c) अपीलार्थी की अ॰ सा॰ 8 तथा 10 द्वारा तालाब की ओर से लगभग 11 बजे रात्रि में भी देखा गया था।

(d) अपीलार्थी को संदेहजनक दशा में रात्रि में लगभग 12 बजे इटवा के घर में अ॰ सा॰ 6 द्वारा देखा गया था।

(e) अपीलार्थी ने अ॰ सा॰ 14 (एक पुलिस अधिकारी) के समक्ष अपने दोष की संस्वीकृति की थी जिससे वर्तमान अपराध के कारित किये जाने में प्रयोग की जाने वाली एक अभिकथित चाकू की बरामदगी हुई है।

7. अब यह सुस्थापित है कि पारिस्थितिक साक्ष्य पर एक व्यक्ति को दोषसिद्ध करने के लिए अपेक्षित सबूत का मानक उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों की एक श्रृंखला द्वारा सुस्थापित किया गया है। मानक के अनुसार, दोषसिद्धि के समर्थन में जिस परिस्थितियों पर विश्वास किया गया, उन्हें पूर्णतया स्थापित किया जाना चाहिए और और उन परिस्थितियों द्वारा प्रस्तुत की गयी साक्ष्य की श्रृंखला को यहाँ तक अवश्य पूरा किया जाना चाहिए जिससे कि अभियुक्त की निर्दोषिता के संगत एक निष्कर्ष के लिए कोई युक्तियुक्त आधार न छूटने पाय और इसको अवश्य ऐसा होना चाहिए कि यह प्रदर्शित हो सके कि सभी मानवीय संभाव्यताओं के अन्दर कार्य अभियुक्त द्वारा किया जाना चाहिए था। अतएव, विधि के पूर्वोक्त स्थापित सिद्धांतो को दृष्टिगत रखते हुए हम इस बारे में विचार करने के लिए कार्यवाही कर रहे है कि क्या अभियोजन सभी युक्तियुक्त संदेहो की छाया से परे ऊपर यथावर्णित परिस्थिति को साबित करने में समर्थ रहा है या नहीं।

8. जहां तक प्रथम परिस्थिति का सम्बन्ध है, यह वर्णन करने योग्य है कि सूचनादाता जो कच्ची तम्बाकू की बाबत मृतक एवं अपीलार्थी के बीच कलह का साक्षी है, को इस मामले में परीक्षित नहीं किया गया। अभिलेख के परिशीलन से, हम पाते हैं कि अन्य व्यक्तियों की अर्थात् विलफ्राड मिंज जो उक्त कलह के समय पर सूचनादाता एवं मृतक के साथ गया था, की भी नहीं परीक्षा की गयी थी। अतएव, हम पाते हैं कि जहां तक कलह के तथ्य का सम्बन्ध है यह किसी प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा अभियोजन द्वारा नहीं साबित किया गया था। इस संदर्भ में, यह कथन किया जाता है कि आक्षेपित निर्णय में विद्वान अवर न्यायालय ने पैरा 16 में पृष्ठ 12 में यह कथन किया था कि अ॰ सा॰ 1, 2, 4, 6, 8 एवं 10 ने फर्दबयान में किये गये कथन की पूर्णतया संपुष्टि की है लेकिन हम पाते हैं कि ये साक्षीगण घटना-स्थल पर मौजूद नहीं हैं जहां पूर्वोक्त कलह हुआ। अतएव, इस संदर्भ में अवर न्यायालय का निष्कर्ष विश्वास करने को प्रेरित नहीं करता है। इस परिस्थिति के अधीन, हमारा यह विचार है कि प्रथम परिस्थिति जिसपर अपीलार्थी के दोष को साबित करने के लिए अभियोजन द्वारा विश्वास किया गया, को स्थापित नहीं किया गया है।

9. अब द्वितीय परिस्थिति पर आते हुए, यह प्रतीत होता है कि अभियोजन ने अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य से उसको साबित करने का प्रयत्न किया था। अ॰ सा॰ 2, जसफिना मिंज ने कथन किया था कि रात्रि में जब वह आराम करने के लिए अपने घर वापस गयी तब उसने यह देखा कि अपीलार्थी एक कम्बल से स्वयं को ढकने के पश्चात् वहां बैठा हुआ था जिसके बाद उसने इस बारे में चुनौती दिया कि कौन वहां बैठा हुआ है और तब उसने कथित व्यक्ति के हाथ को पकड़ लिया। उसने आगे यह कथन किया कि तब कथित व्यक्ति ने मात्र यही कथन किया था कि **''मैं हूँ''**। उसने आगे यह कथन किया है कि तत्पश्चात् पूर्वोक्त व्यक्ति इस साक्षी के हाथ से स्वयं को छुड़ाने के पश्चात् भाग गया। इस प्रकार अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य के पूर्वोक्त भाग के परिशीलन से, इस बारे में स्पष्ट नही होता है कि कैसे उसने अपीलार्थी को पहचान लिया था क्योकि उसने स्वयं स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि उस समय, व्यक्ति स्वयं को एक कम्बल से ढके हुए था और उसके कारण उसने इस बारे में कथन किया कि कौन वहां बैठा हुआ था। साक्षी द्वारा चुनौती दिये जाने पर भी, उक्त व्यक्ति ने अपने नाम को प्रकट नहीं किया, बल्कि उसने मात्र यही कथन किया था कि **''मैं हूँ''** उक्त परिस्थिति के अधीन, अ॰ सा॰ 2 द्वारा शिनाख्त का दावा संदेहजनक होना प्रतीत होता है और मामले की उस दृष्टि में, हमारा यह विचार है कि इस परिस्थिति को भी अभियोजन द्वारा सभी युक्तियुक्त संदेहो से परे पूर्णतया स्थापित नहीं किया गया है।

10. अब तृतीय परिस्थिति पर आते हुए, जिसे अभियोजन द्वारा भरोसा किया गया कि अपीलार्थी को अ॰ सा॰ 8 एवं 10 द्वारा रात्रि में लगभग 11 बजे तालाब की ओर से आते हुए देखा था, हम पाते हैं कि उक्त परिस्थिति को भी सभी युक्तयुक्त संदेहो से परे स्थापित नहीं किया गया है क्योंकि पूर्वोक्त दोनों साक्षियों ने यह कथन किया था कि रात्रि में लगभग 11 बजे जब वे लोग कर्मिला इक्का (अ॰

सा॰ 10) के घर में बैठे हुए थे, तो उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति तालाब की ओर से आ रहा था जो स्वयं को एक कम्बल से ढके हुए था। उन्होंने यह भी कथन किया है कि कुछ दूरी से जब उक्त व्यक्ति ने इन साक्षियों को देखा तब 'U' के आकार में मुड़ने के पश्चात् भाग गया। अतएव, हमारा यह विचार है कि रात्रि में जब एक व्यक्ति स्वयं को एक कम्बल से ढके हुए था तब कुछ दूरी से उसको पहचानना कठिन है।

11. जहां तक चतुर्थ परिस्थिति का सम्बन्ध है तो अ॰ सा॰ 6 ने मात्र यही कथन किया था कि अपीलार्थी रात्रि में लगभग 12 बजे एक विचलित दशा में इटवा के घर आया था। यह आगे कथन किया जाता है कि इटवा अपीलार्थी का मामा है। इस साक्षी ने यह भी कथन किया था कि इटवा और अपीलार्थी ने एक एकांत स्थान में किसी बात पर बातचीत किया था और तत्पश्चात् अपीलार्थी चला गया था। अतएव, इस परिस्थिति को साबित कर दिया जाना मानने पर भी, इसका प्रस्तुत अपराध से कोई सम्बन्ध नहीं है।

12. अब संस्वीकृति पर आते हुए, यह कथन किया जाता है कि उक्त संस्वीकृति पुलिस अर्थात् अ॰ सा॰ 14 के समक्ष की गई है। अ॰ सा॰ 14 ने अपने साक्ष्य में कथन किया था कि उसने अभियुक्त को पुलिस रिमांड पर लिया और तब उसका कथन ग्रहण किया। उसके समक्ष कथन के दौरान अपीलार्थी ने अपने अपराध को स्वीकार किया। अ॰ सा॰ 14 ने आगे यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि कथित कथन के आधार पर तथा अभियुक्त द्वारा उपदर्शित किये जाने पर भी, 7" लम्बी तलवार साक्षियों की उपस्थिति में अपीलार्थी के घर से बरामद की गयी थी। अ॰ सा॰ 4, अर्थात्, याकुब ओरांव ने कथन किया था कि पुलिस ने अपीलार्थी के घर से रक्त रंजित तलवार बरामद किया था जिसको एक चटाई में लपेटा गया था। प्रदर्श 5 (पेश की गयी अभिग्रहण सूची) के परिशीलन से हम पाते हैं कि अन्वेषण पदाधिकारी ने जिसने कथित अभिग्रहण सूची को तैयार किया, इसमें कहीं भी यह नहीं कथन किया था कि जिस तलवार को अपीलार्थी के घर से बरामद किया गया, उसपर कोई रक्त का धब्बा था। अ॰ सा॰ 14 ने भी अपने अभिसाक्ष्य में इस प्रकार नहीं कथन किया था। यहां तक संस्वीकृति का प्रथम भाग कि अपीलार्थी ने अपना दोष स्वीकार किया था, साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है। अतएव, अभियुक्त (अपीलार्थी) की संस्वीकृति संबंधी कथन के उस भाग पर, अपीलार्थी के विरूद्ध लगाये गये आरोपो को साबित करने के लिए विचार नहीं किया जा सकता है। चूंकि इस बारे में अ॰ सा॰ 4 एवं अ॰ सा॰ 14 के कथन में विरोध है कि क्या तलवार पर रक्त का दाग था या नहीं, इसलिए हमारा यह मत है कि क्या उक्त तलवार का प्रयोग अपराध को कारित करने में किया गया है या नहीं, सभी युक्तियुक्त संदेह से परे साबित नहीं किया गया है। इस प्रकार हमारा यह निश्चित विचार है कि यह परिस्थिति भी सभी युक्तयुक्त संदेहो की छाया से परे नहीं साबित की गयी है।

13. ऊपर की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अवर न्यायालय का यह निष्कर्ष कि इस मामले में पेश की गयी पारिस्थितिक साक्ष्य उस एक श्रृंखला को पूरी करती है जो यह बताती है कि एक मात्र अभियुक्त ने कथित अपराध कारित किया है, सही नहीं है, बल्कि हमारा यह निश्चित मत है कि उन परिस्थितियाों को जिनपर अभियोजन द्वारा विश्वास किया गया, सभी युक्तियुक्त संदेहो की छाया से परे इस मामले में साबित नहीं किया गया है। अतएव, हम पाते हैं कि अभियोजन ने सभी युक्तियुक्त संदेहों से परे अपीलार्थी के विरूद्ध लगाये गये आरोपों को साबित नहीं किया था। अतएव; आक्षेपित निर्णय इस अपील में कायम नहीं रखा जा सकता है।

14. परिणामत:, अपील अनुज्ञात की जाती है। दोषसिद्धि का निर्णय एवं दंड का आदेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी को उसके विरूद्ध लगाये गये सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी अभिरक्षा है, इस प्रकार हम निर्देश देते हैं कि उसको अवश्य तुरंत निर्मुक्त कर दिया जाना चाहिए, यदि किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

गौरचन्द्र गोरैन एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

क्रि॰ एम॰ पी॰ सं॰ 129 वर्ष 2005. 9 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 319—सम्मन–राज्य अधिवक्ता ने विचारण का सामना करने हेतु याचीगण को समन करने के लिए एक आवेदन दाखिल किया–लगभग सभी महत्वपूर्ण साक्षियों की पहले से ही परीक्षा की जा चुकी है–याची को इससे जोड़ने का कोई स्पष्ट साक्ष्य पेश नहीं किया गया—मात्र यही तत्व आया है कि एक समय याचियों ने, विशेषकर याची सं॰-4 ने मृतक को भयंकर परिणाम की धमकी दी थी–ऐसे संदेह के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302, 201 एवं 34 के अधीन याचियों की दोषसिद्धि के लिए युक्तियुक्त संभावना उत्पन करने के लिए पर्याप्त सामग्री होना नहीं माना जा सकता है। (पैरा 17 एवं 18)

(ख) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 319—समन का जारी किया जाना—धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए न्यायालय का पहले से विचारण का सामना कर रहे अभियुक्त व्यक्तियों के साथ अपराध के विचारण का सामना करने हेतु समन किये जाने के लिए इप्सित व्यक्ति द्वारा दाण्डिक अपराध के कारित किये जाने को दृढ़ प्रभाव देकर पहले से ही संग्रहीत किये गये और अभिलेख पर उपलब्ध पदार्थों/साक्ष्यों से संतुष्ट होना पड़ता है। (पैरा 18)

निर्णयज विधि.–AIR 2000 SC 1127; 2005(2) East Criminal Cases 443(Jhr.); 2005(2) East Criminal Cases 449 (Jhr.); AIR 1983 SC 67—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Tiwari, For the Petitioner; Mr. A.P.P., For the State; Mr. Shekhar Prasad Sinha, For O.P. No.2.

नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति.–कोई दीनबन्धु गोरई द्वारा यह अभिकथित करते हुए एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी, कि नेमई गोरई जो उसके रिश्तेदार हुआ करते हैं, ने फोन पर उसको यह सूचना दिया कि उसका पुत्र सुमन्तो कोलकाता से आया था और उससे गांव छोटा अम्बोना में अपने ससुराल वालों के घर जाने के लिए साथ देने हेतु उससे निवेदन किया। तत्पश्चात्, वे दोनों वहां मोटर साइकिल से गये और जब वे लौट रहे थे तब सुमन्तो ने पेशाब करने के लिए उसे रूकने के लिए कहा। नेमई ने पंचायत भवन, अम्बोना के पास मोटर साईकिल रोका। सुमन्तो उतरा और गंतव्य का रहस्योद्घाटन किये बिना भाग गया। उस सूचना पर, सूचनादाता अपने पुत्र की तलाश करने गया। अगली सुबह को उसने उसको अपने पुत्र का शव पहचान लिया जो रेलवे पटरी पर पड़ा हुआ था। सुमन्तो का उसी वर्ष विवाह हुआ था लेकिन उसका अपनी पत्नी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध नहीं था। सुमन्तो के साढ़ू ने कुछ समय पहले उसको धमकी दी थी। दीनबन्धु गोरई के कथित कथन के आधार पर धनबाद रेल थाना केस सं॰ 80 वर्ष 2002 अज्ञात व्यक्ति के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302, 201 एवं 34 के अधीन दर्ज किया गया।

2. पुलिस ने मामले का अन्वेषण किया और नेमई गोरई के विरूद्ध आरोप प्रस्तुत किया। 14 साक्षियों को आरोप-पत्र में नामित किया गया था। भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302, 201 एवं 34 के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया गया। नेमई के विरूद्ध विचारण की कार्यवाही हुई और छः अभियोजन साक्षियों की परीक्षा की गयी।

3. उस प्रक्रम पर, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन एक आवेदन आरोपित अभियुक्त के साथ विचारण का सामना करने के लिए याचीगण को सम्मन करने हेतु विचारण न्यायालय से प्रार्थना करते

हुए सहा॰ लोक॰ अभि॰ के माध्यम से अभियोजन की ओर से दाखिल किया गया था। उक्त आवेदन में, यह कथन किया था कि अन्वेषण अधिकारी ने उक्त अपराध को कारित करने में याचीगण की सह-अपराधिकता का सुझाव देने वाली सामग्रियों पर विचार नहीं किया। चिकित्सीय साक्ष्य स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ कि मृत्यु आत्महत्याजन्य या दुर्घटनाजन्य नहीं थी। वह मानववध एवं एक हत्या थी।

4. आगे यह भी कथन किया गया था कि अ॰ सा॰ 2 कैलाश गोरैन, जो मृतक सुमन्तो गोरई का साला है एवं दीनबन्धु गोरई का दामाद को आरोप-पत्र में साक्षी नहीं बनाया गया है। उसने पुलिस के समक्ष कोई कथन नहीं दिया है। अ॰ सा॰ 6 दिवाकर गोरैन ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 167 के अधीन उसके द्वारा दिये गये कथन के विरूद्ध अभिसाक्ष्य दिया है। किन्तु, आ॰ सा॰ 2 एवं 6 ने उसकी पत्नी के साथ सुमन्तो गोरई के तनावपूर्ण सम्बन्ध के बारे में और मृतक की पत्नी के साथ दिलीप गोरैन के अवैध सम्बन्ध के बारे में अभिसाक्ष्य दिया था। गाँव में एक पंचायत आयोजित की गयी थी एवं दिलीप गोरैन ने यह घोषणा किया था कि वह सुमन्तो का वध करने के लिए दो से चार लाख तक खर्च करेगा। अपने अभिसाक्ष्य में उसने मितुल गोरैन, गौर गोरई एवं सत्यनारायण गोरई के विरूद्ध भी सुमन्तो की हत्या में कतिपय भूमिका निभाई जाने पर आशंका की थी। अ॰ सा॰ 6 दिवाकर गोरई ने अपनी मुख्य परीक्षा में स्वर्गीय सुमन्तो की पत्नी के साथ दिलीप गोरैन के अवैध सम्बन्ध के बारे में भी कथन किया था एवं वही सुमन्तो एवं उसकी पत्नी के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध का कारण था। दिलीप गोरैन के साथ मृतक की पत्नी के अवैध सम्बन्ध के बारे में एक पंचायत बुलायी गयी थी। उसी समय दिलीप गोरैन ने मृतक को परिणामों की धमकी दी थी।

5. विद्वान सहा॰ लोक॰ अभि॰ द्वारा दाखिल किये गये उक्त आवेदन पर, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश-X ने दिनांक 6 दिसम्बर, 2004 के आक्षेपित आदेश पारित किया जिसके द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन शक्ति का आलम्ब लेकर याचियों, सुमन्तो गोरई की पत्नी मितुल गोरैन के चाचा गौचरन गोरैन, गौरचन्द्र गोरई के साला राखल गोरैन, मितुल गोरई के साला दिलीप गोरैन के विरूद्ध सम्मनों को जारी करने की इप्सा की गई थी।

6. इस याचिका में, याचीगण ने निम्नलिखित आधारों पर विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश-X द्वारा पारित दिनांक 6 दिसम्बर, 2004 के उक्त आदेश को चुनौती दी है:-

(i) अन्वेषण के अनुक्रम में, याचीगण के विरूद्ध कोई सामग्री नहीं पायी गयी।

(ii) याची सं॰ 1 को आरोप-पत्र के साक्षियों में से एक बनाया गया था। आरोप के विरूद्ध कोई अभ्यापति याचिका दाखिल नहीं हुई थी।

(iii) याचीगण के विरूद्ध अभिकथित अपराधों के लिए उनकी दोषसिद्धि का सुझाव देने वाली कोई पर्याप्त सामग्री नहीं है।

(iv) विचारण बहुत समय पहले प्रारम्भ हुआ और याची सं॰ 1 को सम्मिलित कर छः साक्षियों की परीक्षा की गयी। मात्र औपचारिक साक्षियों की परीक्षा किया जाना शेष रहा। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग करना एवं विचारण के अंतिम छोर पर याचियों को सम्मन करना उचित नहीं है।

(v) अभिलेख पर साक्ष्य, जिसके आधार पर, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन सम्मन जारी किये गये हैं, मात्र संदेह का कुहरा डालते हैं। पारिस्थितिक तौर पर भी समय के किसी बिन्दु पर याची सं॰ 4 द्वारा अभिकथित धमकी के सिवाय, याची की सह-अपराधिकता को प्रदर्शित करने का कोई तर्कपूर्ण आधार नहीं है।

(vi) अ॰ सा॰ 2 एवं 6 का साक्ष्य याची सं॰ 1 से 3 तक किसी की भी सह-अपराधिता का सुझाव नहीं देता है जिन्हें याची सं॰ 4 से मात्र सम्बन्धित होना कहा जाता है जिन्होंने अभिकथित रूप से समय की एक बिन्दु पर धमकी दी थी।

7. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री महेश तिवारी ने यह तर्क दिया कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन शक्ति का आलंब लेने तथा याचियों के विरूद्ध कार्यवाही करने हेतु युक्तियुक्त समाधान हेतु अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है। विद्वान अवर न्यायालय ने अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के साथ विचारण का सामना करने के लिए याचियों को अनुचित तौर पर सम्मन किया है। विद्वान न्यायालय ने इस बात पर भी ध्यान नहीं दिया है कि लगभग सभी महत्वपूर्ण साक्षियों की परीक्षा की जा चुकी है। नये सिर से विचारण हेतु मामले को पुनः खोलना मूल्यवान समय की केवल बर्बादी होगी। मामले को दोषसिद्धि में समाप्त करने के लिए कथित साक्ष्य पर कोई आशा नहीं है। आक्षेपित आदेश किसी विधिक आधार के बगैर है और यह अभिखंडित कर दिये जाने योग्य है।

8. कथित तर्कों के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **माईकल मचादो एवं एक अन्य बनाम सेन्ट्रल ब्यूरो ऑफ इनवेस्टीगेशन एवं एक अन्य [ए॰ आई॰ आर॰ 2000 एस॰ सी॰ 1127]** में सर्वोच्च न्यायालय के विनिश्चय एवं **समीर कुमार सिन्हा बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य [2005(2) ईस्ट क्रिमिनल केसेज 443 (झा॰)** एवं **सहदेव राय बनाम झारखंड राज्य [2005(2) ईस्ट क्रिमिनल केसेज 449 (झा॰)** में इस न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया गया तथा उसपर विश्वास किया।

9. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वान अपर लोक॰ अभि॰ ने भी याचिका का विरोध किया। यह तर्क दिया गया है कि यदि पुलिस अन्वेषण पर साक्ष्य को संग्रहीत करने तथा याचियों के विरूद्ध आरोप प्रस्तुत करने में असफल हो गया तो विद्वान विचारण न्यायालय को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन शक्ति के प्रयोग का आलम्ब लेने से और अभियुक्त न होने वाले किसी व्यक्ति के विरूद्ध अपराध कारित करने का सुझाव देने वाली सामग्री के आधार पर विचारण के अनुक्रम में समन जारी करने से रोका नहीं जाना है। ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग करने में कोई रूकावट नहीं होती है यदि आरोप-पत्र प्रस्तुत किये जाने के विरूद्ध कोई अभ्यापति याचिका नहीं थी। अ॰ सा॰ 2 एवं 6 के साक्ष्यों में पर्याप्त सामग्री हैं जिसके आधार पर याचियों को सह-अपराधिता से युक्तियुक्त रूप से जोड़ा जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया कि आरोप-पत्र में 14 साक्षी हैं और विचारण अभी चल रहा है और यह नहीं कहा जा सकता है कि सम्मन विचारण के अंतिम छोर पर याचियों के विरूद्ध जारी किया गया है।

10. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता एवं साथ ही विद्वान अपर लोक॰ अभि॰ ने निष्पक्ष तौर पर यह स्वीकार किया है कि उनकी दोषसिद्धि का सुझाव देते हुए याचियों के प्रत्यक्ष संलिप्तता को प्रदर्शित करने वाला या तो अ॰ सा॰ 2 एवं 6 के अभिसाक्ष्यों में स्पष्ट साक्ष्य या अभिलेख पर कोई स्पष्ट सामग्री नहीं है लेकिन कतिपय सामग्री हो सकती है जो अपराधों के लिए याचियों को दोषी अभिनिर्धारित करने हेतु मामले में पेश किये जाने वाले किसी अन्य साक्ष्य के साथ नहीं जोड़ा जा सकेगा। इस प्रकार, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश के आक्षेपित आदेश को अनुचित एवं बिना आधार के होना नहीं कहा जा सकता है।

11. मैने पक्षकारों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुना है और उनके तर्कों एवं अभिलेख पर तथ्यों एवं सामग्रियों पर विचार किया था। मैंने विद्वान अवर न्यायालय के आक्षेपित आदेश का परिशीलन भी किया है।

12. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 न्यायालय को अभियुक्त न होने वाले किसी भी व्यक्ति को सम्मन जारी करने की शक्ति प्रदत्त करती है, यदि अभिलेख पर साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि ऐसे व्यक्ति ने कोई अपराध कारित है। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 को इसमें नीचे पुनः पेश किया गया है:-

"319. **अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति.**–(1) जहां किसी अपराध की जांच या विचारण के दौरान साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति का अभियुक्त के साथ विचारण किया जा सकता है, वहां न्यायालय उस व्यक्ति के विरुद्ध उस अपराध के लिए जिसका उसके द्वारा किया जाना प्रतीत होता है, कार्यवाही कर सकता है।

(2) जहां ऐसा व्यक्ति न्यायालय में हाजिर नहीं है वहां पूर्वोक्त प्रयोजन के लिए उसे मामले की परिस्थितियों की अपेक्षानुसार, गिरफ्तार या सम्मन किया जा सकता है।

(3) कोई व्यक्ति जो गिरफ्तार या सम्मन न किए जाने पर भी न्यायालय में हाजिर हैग, ऐसे न्यायालय द्वारा उस अपराध के लिए, जिसका उसके द्वारा किया जाना प्रतीत होता है, जांच या विचारण के प्रयोजन के लिए निरुद्ध किया जा सकता है।

(4) जहां न्यायालय किसी व्यक्ति के विरुद्ध उप-धारा (1) के अधीन कार्यवाही करता है, वहां-

(a) उस व्यक्ति के बारे में कार्यवाही फिर से प्रारम्भ की जाएगी और साक्षियों को फिर से सुना जाएगा;

(b) खण्ड (a) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, मामले में ऐसे कार्यवाही की जा सकती है, मानो वह व्यक्ति उस समय अभियुक्त व्यक्ति था जब न्यायालय ने उस अपराध का संज्ञान किया था जिस पर जांच या विचारण प्रारम्भ किया गया था।

13. उक्त उपबंध को मात्र पढ़ने से, यह सुव्यक्त है कि कथित उपबंध के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए, आधारभूत अपेक्षा यह है कि साक्ष्य को विचारण या जांच के दौरान अभिलेख पर निश्चित रूप से पहले से ही सग्रहित किया जाना चाहिए जिससे यह प्रतीत होना चाहिए कि व्यक्ति जो मामले में एक अभियुक्त नहीं है, ने एक अपराध कारित किया है जिसके लिए उस व्यक्ति का विचारण, विचारण का पहले से ही सामना कर रहे अभियुक्त के साथ किया जा सकता था।

14. माईकल मचादो (ऊपर) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह पर्याप्त नहीं है कि यदि न्यायालय को अपराध में एक दूसरे व्यक्ति के संलिप्त होने के बारे में कुछ संदेह होता है तो न्यायालय को दोनों पहलुओं के बारे में पहले से ही संग्रहीत किये गये साक्ष्य से युक्तियुक्त समाधान अवश्य करना होगा; (i) यह कि दूसरे व्यक्ति ने एक अपराध कारित किया; एवं (ii) यह कि यथा अभिकथित अन्य व्यक्ति का विचारण पहले से ही विचारण का सामना कर रहे अभियुक्त के साथ किया जायेगा। उक्त विनिश्चय के पैरा 14 में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है:-

"14. न्यायालय यह विनिश्चय करते समय कि क्या संहिता की धारा 319 के अधीन शक्ति का अवलम्ब लेने के लिए उप-धारा (4) के प्रथम भाग द्वारा अधिरोपित अन्य बाध्यताओं के बारे में स्वयं को यह सम्बोधित करना चाहिए कि नवीन रूप से जोड़े गये व्यक्तियों की बाबत कार्यवाहियाँ नये सिरे से प्रारम्भ की जायेगी और साक्षियों की पुनः परीक्षा की जाएगी। संपूर्ण कार्यवाहियाँ विचारण के प्रारम्भ होने से पुनः प्रारम्भ अवश्य की जानी चाहिए; एक बार पुनः साक्षियों को समन करे तथा उनकी इस प्रक्रम पर पहुँचने के लिए परीक्षा करे और उनकी प्रति-परीक्षा करे जहां यह पहले पहुँच चुका था। यदि पहले से परीक्षित किये गये साक्षियों की बिल्कुल एक बड़ी संख्या है तो न्यायालय को इस बात पर गंभीरतापूर्वक अवश्य विचार करना चाहिए कि क्या ऐसे प्रयोग द्वारा प्राप्त किये जाने के लिए इप्सित उद्देश्य पहले से ही किए गये संपूर्ण श्रम को विनष्ट करने योग्य है। जबतक न्यायालय इस बात से आश्वत नहीं होता है कि सम्बन्धित अपराध की दोषसिद्धि को समाप्त करने की नवीन तौर पर लाये गये अभियुक्त के विरुद्ध मामले की युक्तियुक्त संभावना है तब तक यह हम कहेंगे कि न्यायालय को कार्यवाही के ऐसे अनुक्रम को अंगीकार करने रोकना चाहिए।''

15. **म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ऑफ देल्ही बनाम रामकिशन रोहतगी (ए॰ आई॰ आर॰ 1983 एस॰ सी॰ 67)** में यह नियम बनाया गया है कि कथित उपबंध के अधीन न्यायालय की शक्ति एक असाधारण शक्ति है और उसका प्रयोग अत्यंत विरल तौर पर किया जाना चाहिए और उस व्यक्ति के विरूद्ध मात्र अप्रतिरोध्य परिस्थितियों में जो एक अभियुक्त है और जिसके विरुद्ध संज्ञान किया जा चुका है।

16. **सहदेव राय के मामले (ऊपर)** में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विचार करने योग्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक यह है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन शक्ति के प्रयोग में मामले के विचारण के अंतिम छोर पर एक व्यक्ति को समन करना इस तथ्य के विचार से न्यायालय की आदेशिका का एक दुरूपयोग है कि साक्षियों को पुनः बुलाया जाना पड़ेगा और पुनः परीक्षित किया जाना पड़ेगा जिसमें लम्बा समय लगेगा। यह आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि जब एक व्यक्ति को केस डायरी पर विचार करने के पश्चात भी विचारण के लिए नहीं छोड़ा गया कोई संज्ञान उसके विरुद्ध नहीं लिया गया और एक या दो साक्षियों की परीक्षा के पश्चात भी याची को समन नहीं किया गया तब विचारण के अंतिम छोर पर एक व्यक्ति को समन करना उचित नहीं है।

17. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के प्रावधान के संदर्भ में वर्तमान मामले के तथ्यों एवं साथ हीं न्यायिक निर्णयों पर विचार करने पर, मैं आक्षेपित आदेश को न्यायोचित ठहराने वाला पर्याप्त/कारण नहीं पाता हूँ। जिस सामग्री के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने याचियों को सम्मन जारी करना चाहा है, वह याचियों में से कतिपय के विरूद्ध मात्र संदेह ही उत्पन करता है, विशेषकर याची सं॰ 4 के विरूद्ध जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उसने मृतक को समय के एक बिन्दु पर भयंकर परिणाम की धमकी दी है। ऐसे संदेह को चाहे वह कितना ही प्रबल हो भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302, 201 एवं 34 के अधीन याचियों की दोषसिद्धि के लिए युक्तियुक्त संभावना प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त सामग्री होना नहीं कहा जा सकता है।

18. विपक्षी पक्षकार की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि साक्ष्य जिन्हें बाद में पेश किया जा सकेगा, याची के विरूद्ध आरोपों को स्थापित करने के लिए पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला को पूरा करने के लिए उचित कड़ियों की पूर्ति कर सकेगा। किन्तु कथित तर्क को नहीं स्वीकृत किया जा सकता है। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए न्यायालय को विचारण का पहले से ही सामना कर रहे अभियुक्त व्यक्ति के साथ अपराध का विचारण करने के लिए समन किये जाने के लिए इप्सित व्यक्ति द्वारा दाण्डिक अपराध को कारित करने को दृढ़ प्रभाव प्रदान करने वाली पहले से ही संग्रहीत की गयी और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों/साक्ष्यों से समाधान किया जाना पड़ता है। सामग्रियां एवं साक्ष्य जिनकी प्रतियां याचिका के साथ संलग्न की गयी है, किसी आक्षेप करने वाली या तर्कपूर्ण साक्ष्य का प्रावधान नहीं करती है जिन्हें पूर्वोक्त अपराधों का विचारण ग्रहण करने के लिए याचियो को याचियो को समन करने के लिए पर्याप्त होना कहा जा सकता है। उसके अभाव में, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन याचियों को समन करने वाला आक्षेपित आदेश न्यायालय की प्रक्रिया का एक सदुपयोग है और उसमें हस्तक्षेप किया जाना पड़ता है और उसको अभिखंडित किया जाना पड़ता है।

19. यह याचिका, तद्नुसार अनुज्ञात की जाती है। दिनांक 6 दिसम्बर, 2004 का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है। विद्वान अवर न्यायालय को शीघ्रता से वर्तमान याची के विरूद्ध विचारण की कार्यवाही करने का निर्देश दिया जाता है।

---

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky ,o Mhñ ,uñ iVy] U;k;efrx.k

किशुन सिंह एवं अन्य (280 में)

गिरजा सिंह (300 में)

बनाम

झारखंड राज्य (दोनों में)

दां॰ अपील (डी॰ बी॰) सं॰ 280, 300 वर्ष 1999. 20 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 167 वर्ष 1989 में विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गिरिडिह द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 4 अगस्त, 1999 एवं 6 अगस्त, 1999 के दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 304, भाग-II—हत्या कारित करने के लिए अपीलार्थी को धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया–संपूर्ण घटना अभियुक्त एवं पीड़ित की भूमि के बीच एक दीवाल के निर्माण के कारण हुई है–दोनों पक्षों के बीच गंभीर कहा-सुनी हुई–पीड़ित पक्ष के व्यक्ति भी आयुध लाये हुए थे–अभियोजन साक्षीगण पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों द्वारा कारित की गयी उपहतियों के बारे में कोई बात नहीं कह रहे–प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण सही तथ्यों का कथन नहीं कर रहे–संपूर्ण घटना किसी पूर्व चिंतन के बिना अकस्मात् झगड़े के कारण हुई–अभियुक्त ने उस मुक्त लड़ाई या आकस्मिक झगड़े का कोई फायदा नहीं लिया और न ही क्रुर एवं असामान्य रीति से कार्य किया–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग-II में परिवर्तित कर दिया गया और दंडादेश को घटाकर 10 वर्ष कर दिया गया। (पैरा 29)

(ख) भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 323—उपहति—दंड की मात्रा–घटना आकस्मिक लड़ाई के दौरान पूर्वचिंतन के बिना तथा किसी आशय के बिना वर्ष 1988 में घटित हुई–दो दशक से अधिक समय व्यतीत हो गया–अभियुक्त/अपीलार्थीगण लगभग एक महीने का दंडादेश पहले से ही भोग चुके थे–छः महीनों के कारावास को पहले से ही भुगती गयी कालावधि तक घटा दिया गया। (पैरा 30)

निर्णयज विधि.–AIR 1968 SC 1281; AIR 1975 SC 1703; (1975)4 SCC 241; AIR 1975 SC 1478 : 1975 Cr.L.J. 1079; AIR 1976 SC 2263; AIR 1977 SC 2252; (2004)7 SCC 408—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s M.S. Chhabra, B.K. Sinha (in both), For the Appellants; Mrs. Mahua Palit (in both), For the State; Mr. Arjun Narain Deo (in both), For the Informant.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–दोनों दाण्डिक अपीलें सत्र विचारण सं॰ 167 वर्ष 1989 में विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गिरीडीह द्वारा पारित किये गये क्रमशः दिनांक 4 एवं 6 अगस्त, 1999 की दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के निर्णय एवं आदेश से उद्भूत हो रही हैं, जिसके द्वारा दां॰ अपील सं॰ 280 वर्ष 1999 के अपीलार्थीगण अर्थात् किशुन सिंह, गोन्दू सिंह एवं इन्दर सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है एवं छः महीनों के कठोर कारावास को भुगतने के लिए दण्डित किया गया जबकि दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 1999 के एकमात्र अपीलार्थी अर्थात् गिरजा सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन एक दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है एवं कठोर आजीवन कारावास को भुगतने तथा 500/- रुपये का जुर्माना का भी संदाय करने के लिए दंडादेश दिया गया है और उसके व्यतिक्रम में तीन महीने का और साधारण कारावास अधिनिर्णीत किया गया है। इन दोषसिद्धियों के विरुद्ध, अभियुक्त ने पूर्वोक्त दाण्डिक अपीलें दायर की है।

2. यदि अभियोजन का मामला प्रकट किया जाता है, मामले के संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित रूप में है:-

अभियोजन का मामला यह है कि 23 फरवरी, 1988 को 6.30 बजे पूर्वान्ह में अभियुक्त ने लालजीत कन्दू (मृतक), लत्ती कन्दू (अ॰ सा॰-6) एवं मुरली कन्दू (अ॰ सा॰-5) पर हमला किया क्योंकि वे एक दीवार का निर्माण कर रहे थे। संपूर्ण विवाद दीवार के निर्माण के कारण उद्भूत हुआ है। पीड़ितों का यह विश्वास था की भूमि उनकी है जहां कि अभियुक्त यह विश्वास कर रहे थे कि भूमि अभियुक्त व्यक्तियों के पक्ष की है। पक्षकारों के बीच गम्भीर विवाद के साथ कलह हुआ और तत्पश्चात्, लालजीत कन्दू को उपहतियाँ आई, जो बाद में मृत घोषित कर दिया गया। अभियुक्त सं॰ 1,

अभियुक्त सं॰ 3, अभियुक्त सं॰ 4 एवं अभियुक्त सं॰ 5 को भी अनेक उपहतियाँ आयी हैं और उन्हें सदर अस्पताल, गिरीडीह भी ले जाया गया था। उसी प्रकार, घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् अ॰ सा॰–5 एवं अ॰ सा॰–6 को भी उसी तिथि को उसी अस्पताल में ले जाया गया था।

डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह (अ॰ सा॰–10), जो सदर अस्पताल, गिरिडीह में डॉक्टर था, अभियोजन साक्षियों एवं लालजीत कन्दू तथा अभियुक्त सं॰ 1, अभियुक्त सं॰ 3 एवं अभियुक्त सं॰ 4 की परीक्षा की एवं तत्पश्चात् लालजीत कन्दू को राजेन्द्र मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल, राँची को निर्दिष्ट किया गया था, जहां उसे 24 फरवरी, 1988 को 11:30 बजे पूर्वान्ह अस्पताल, राँची में मृत घोषित कर दिया गया था। अभियोजन का मामला यह भी है कि अभियुक्त सं॰ 3 गिरजा सिंह ने (दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 1999) धारदार काटने वाला औजार ''फरसा'' लिए हुए था एवं उसने लालजीत कन्दू के सिर पर उपहतियाँ कारित की, जिस कारण वह गिर पड़ा एवं आगे की उपहतियाँ लालजीत कुन्दू के उपर अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा लाठी से कारित की गई। अ॰ सा॰–5 एवं अ॰ सा॰–6 को भी उपहतियाँ आई थी। अ॰ सा॰–2, अ॰ सा॰–3, अ॰ सा॰–4, अ॰ सा॰–5 एवं अ॰ सा॰–6 कथन कर रहे हैं कि गिरजा सिंह तथा लालजीत कुन्दू के परिवार के बीच गम्भीर विवाद हुआ था। पीड़ित पक्ष–लालजीत कन्दू का परिवार भाला, तलवार, लाठी एवं कटार लिए हुए था जबकि अभियुक्त पक्ष अपने हाथों में फरसा एवं लाठी लिए हुए था। इस खुली लड़ाई (free fight) में लालजीत कन्दू की मृत्यु डॉक्टर (अ॰ सा॰–10) के साक्ष्य के अनुसार मुख्य रूप से सिर की चोट के कारण हुई। प्रथम सूचना रिपोर्ट लत्ती कन्दू (अ॰ सा॰–6) द्वारा 23 फरवरी, 1988 को 8:15 बजे पूर्वान्ह सदर अस्पताल में दर्ज की गयी थी, जिसे गिरिडीह (मोफस्सिल) थाना केस सं॰ 32 वर्ष 1988 के तौर पर पंजीकृत की गयी थी। उसका अन्वेषण किया गया और अन्वेषण पूरा हो जाने पर आरोप–पत्र दाखिल किया गया था एवं साक्ष्य अभिलिखित करने पर, गिरजा सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन एक दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था जबकि किशुन सिंह, गोन्दू सिंह एवं इन्दर सिंह को छः महीने के कठोर कारावास के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन एक दण्डनीय अपराध के लिए दण्डित किया गया। इस दोषसिद्धि के विरूद्ध गिरजा सिंह ने दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 1999 दायर की है जबकि शेष अभियुक्तों ने दां॰ अपील सं॰ 280 वर्ष 1999 दायर किया है।

3. आरम्भिक तौर पर सभी अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह–पठित धारा 149 के अधीन एक दंडनीय अपराध के लिए आरोपित किया गया था। अभियुक्त गिरजा सिंह एवं एक अरूण सिंह (जिसे दोषमुक्त कर दिया गया है) को आगे भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन एक अपराध के लिए आरोपित किया गया था। अभियुक्त किशुन सिंह को भी भारतीय दंड संहिता की धारा 325 के अधीन एक अपराध के लिए आरोपित किया गया था। उसी प्रकार, अभियुक्त इन्दर सिंह एवं गोन्दू सिंह को भी आगे भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन एक दण्डनीय अपराध के लिए आरोपित किया गया था। इन आरोपों में, गिरजा सिंह के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन एक दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्धि अभियोजन द्वारा साबित की गयी है जबकि किशुन सिंह, गोन्दू सिंह एवं इन्दर सिंह के लिए अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन अपराध को साबित कर सका। शेष आरोपों के लिए, अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया है जिसके विरूद्ध कोई दोषमुक्ति अपील राज्य द्वारा प्रस्तुत नहीं की गयी है।

4. हमनें उन अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है, जो मुख्य रूप से निवेदन किया है कि अभियोजन अभियुक्त–अपीलार्थियों के विरुद्ध युक्तियुक्त संदेहो से परे अपराध को साबित करने में असफल हो गया है। अभियोजन साक्षियों के बयानों में काफी लोप, संशोधन एवं अन्तर्विरोधी हैं। मामले के इस पहलू का उचित रूप से मूल्यांकन विचारण न्यायालय द्वारा नहीं किया गया है एवं इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दंडादेश के निर्णय एवं

आदेश, अभिखंडित किये जाने तथा अपास्त किये जाने योग्य है। अपीलार्थीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया है कि मृतक की हत्या कारित करने का अपीलार्थीगण का कोई आशय नहीं था और न ही अभियुक्त की ओर से कोई पूर्व चिंतन हुआ था। यह भी अपीलार्थीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया है कि अ॰ सा॰–2, अ॰ सा॰–3, अ॰ सा॰–4, अ॰ सा॰–5 एवं अ॰ सा॰ 6 ने कथन किया है कि अभियुक्त को उपहतियाँ कारित की गयी थी। अभियुक्त पक्ष के व्यक्तियों एवं पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों के बीच गम्भीर विवाद हुआ था। अ॰ सा॰ 5 (मुरली कन्दू) के बयान को देखते हुए, पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों के हाथ में भाला, तलवार, लाठी एवं कटार थी। अ॰ सा॰–10 (डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह) के बयानो को देखते हुए अभियुक्त सं॰ 3 को पांच चोटें आयी है, जिसके अन्तर्गत खोपड़ी तक गहरी उपहति, अभियुक्त सं॰ 4 को चार उपहतियाँ आयी है। [उपहति सं॰ (ii) एक गंभीर उपहति थी], अभियुक्त सं॰ 1 को पांच उपहतियाँ थी [उपहति सं॰ (i) तलवार जैसी तेज धारदार हथियार द्वारा कारित की जा सकती थी] एवं अभियुक्त सं॰ 5 को आठ उपहतियाँ आयी है [उपहति सं॰ (i) (ii), (iv) एवं (v) तलवार के तेज धारदार काटने वाले हथियार से कारित की जा सकती है एवं उपहति सं॰ (v) एक गम्भीर उपहति थी]। अ॰ सा॰ 10 (डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह) के बयान को देखते हुए, अभियुक्त व्यक्तियों को कारित की गयी उपहति उनकी परीक्षण से तीन घण्टों के भीतर की थी। डॉक्टर ने 23 फरवरी, 1988 को 7.45 बजे सुबह अभियुक्त व्यक्तियों की परीक्षण की। अतएव, संपूर्ण घटना आकस्मिक झगड़े के कारण हुई है और अभियुक्त ने कोई अनुचित लाभ नहीं लिया है। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया है कि गिरजा सिंह पहले से ही लगभग साढ़े बारह वर्षों का कारावास भुगत चुका है एवं, अतएव, यदि दोषसिद्धि भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग–II के अधीन परिवर्तित की जाती है, तो अभिलेख पर साक्ष्य को देखते हुए, अपीलार्थी के दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 1999 का कोई आक्षेप नहीं होता है। वास्तव में विचारण न्यायालय को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के बजाय भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग–II के अधीन दंडनीय अपराध के लिए गिरजा सिंह को दंडित करना चाहिए था। अभियुक्त व्यक्तियों के पक्ष को कारित की गयी उपहतियाँ का अभियोजन द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। गंभीर उपहतियों को सम्मिलित करते हुए अनेक संख्या में उपहतियाँ हैं। अभियुक्त की ओर से किया गया कोई पूर्व चिंतन या पूर्व नियोजित, भली भांति रूपांकित कार्यवाही या कोई आशय नहीं था। मात्र आकस्मिक लड़ाई के कारण, संपूर्ण घटना दोनों पक्षों द्वारा दावाकृत भूमि की सीमा के रूप में दीवार का निर्माण करने हेतु एक भूमि की खुदाई करने के कारण हुई है। मामले के इस पहलू का विचारण न्यायालय द्वारा उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है।

5. जहां तक दां॰ अपील सं॰ 280 वर्ष 1999 का सम्बन्ध अपीलार्थीगण से है, तो अपीलार्थीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन यह है कि घटना फरवरी, 1988 में हुई है, ये अभियुक्त जमानत पर हैं और वे पहले से ही लगभग एक महीने का कारावास भुगत चुके हैं और दो से अधिक दशक गुजर गये हैं एवं, इसलिए, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन अपराध के लिए उनके द्वारा पहले से ही भुगते गये दंडादेश से दंडित किया जा सकेगा। उनके द्वारा कोई अपराध कारित नहीं किया गया है। इन अपीलार्थियों का कोई पूर्ववृत्त नहीं है।

6. राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान सहा॰ लोक॰ अभि॰ द्वारा यह निवेदन किया गया है, कि अभियोजन ने युक्तियुक्त संदेह से परे अभियुक्त के विरूद्ध आरोपों को सिद्व किया है और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए गिरजा सिंह (दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 1999 के अपीलार्थी) एवं अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने में तथा छः महीने के कठोर कारावास से भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323 के अधीन एक दंडनीय अपराध के लिए दां॰ अपील सं॰ 280 वर्ष 1999 के अपीलार्थीगण को दंडित करने में विचारण न्यायालय द्वारा कोई गलती नहीं की गयी है। विद्वान सहा॰ लोक॰ अभि॰ द्वारा यह निवेदन किया है कि उपहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण अर्थात्

अ० सा०–5 एवं अ० सा०–6 हैं, जिन्होंने विचारण न्यायालय के समक्ष स्पष्ट बयान दिया है। वे भरोसेमंद एवं विश्वसनीय साक्षीगण हैं। इन साक्षियों द्वारा यह कथन किया गया है कि गिरजा सिंह ने ''फरसा'' जैसे हथियार से हमला किया और लालजीत कुन्दू के सिर पर उपहतियाँ कारित की। अन्य अभियुक्त ने भी अ० सा०–5 एवं अ० सा०–6 को उपहतियाँ कारित की। लालजीत कन्दू को सदर अस्पताल, गिरिडीह ले जाया गया था, जहां उसे डॉक्टर (अ० सा० 10) द्वारा उसे परीक्षण किया गया था, जिसने उसको राजेन्द्र मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल, राँची भेज दिया जहां उसे 24 फरवरी, 1988 को 11:30 बजे सुबह मृत घोषित कर दिया गया था। इस प्रकार, अ० सा०–2, अ० सा०–3, अ० सा०–4, अ० सा० 8 एवं अ० सा०–9 एवं पोस्ट मार्टम रिपोर्ट द्वारा भी एवं डॉ० बी० पी० सिंह (अ० सा०–10) के अभिसाक्ष्य या बयान द्वारा इन दोनो साक्षियों के बयानों का पर्याप्त समर्थन होता है और विद्वान सहा० लोक० अभि० द्वारा यह कथन किया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय अभियुक्त की दोषसिद्धि के एक निष्कर्ष पर सही पहुँचा है और अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग करते समय, यह न्यायालय अभियुक्त को दोषमुक्त या दंड को परिवर्तित नहीं चाहिए।

7. हमने सूचनादाता की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को भी सुना है जिसने विद्वान सहा० लोक० अभि० द्वारा दिये गये तर्कों को भी ग्रहण किया और यह निवेदन किया है कि पहले से ही एक उदारवादी मत विचारण न्यायालय द्वारा ग्रहण किया गया है एवं, इसलिए, दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 से भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II में परिवर्तित नहीं किया जाना चाहिए। अभियोजन युक्तियुक्त संदेह से परे अपराध को साबित कर चुका है। गिरजा सिंह ने लालजीत कन्दू पर ''फरसा'' द्वारा सिर पर चोट कारित किया है एवं पोस्ट मार्टम रिपोर्ट के साथ पढ़े जाने वाले डॉक्टर के साक्ष्य के अनुसार घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अभिसाक्ष्यों की पर्याप्त संपुष्टि होती है।

8. दोनो पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने एवं अभिलेख पर साक्ष्य को देखने से यह प्रतीत है कि संपूर्ण घटना एक दीवाल के निर्माण से सम्बन्धित एक विवाद के कारण गिरिडीह जिले के गांव करहार बारी में 23 फरवरी, 1988 को सुबह लगभग 8.15 बजे सुबह में हुई।

9. बरहन कन्दू (अ० सा०–1) के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, उसने यह कथन किया है कि वह घटना का एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है एवं उसने यह देखा है कि गिरजा सिंह (दां० अपील सं० 300 वर्ष 1999 का अभियुक्त सं० 3 अपीलार्थी) के परिवार एवं लालजीत कन्दू (मृतक) के परिवार के बीच गम्भीर विवाद चल रहा था। वह सूचनादाता का भाई तथा मृतक लालजीत कन्दू भतीजा था। उसने कथन किया है कि गिरजा सिंह लालजीत कन्दू के सिर पर फरसा एवं अन्य अभियुक्त ने लाठी से लालजीत कन्दू एवं लत्ती कन्दू (अ० सा०–6) एवं मुरली कन्दू (अ० सा०–5) पर वार किया। दीवार का निर्माण लालजीत कन्दू एवं उसके पक्ष के अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रारम्भ किया गया था एवं, इसलिए, अभियुक्त दीवार का निर्माण करने से उन्हें रोक रहा था एवं, इसलिए, संपूर्ण विवाद इसी वजह से प्रारम्भ हुआ। लालजी कन्दू एवं लत्ती कन्दू एवं मुरली कन्दू को उपहतियाँ कारित किये जाने के कारण उन्हें शीघ्र सदर अस्पताल, गिरिडीह को भेजा गया जहां उनकी परीक्षा डॉ० बी० पी० सिंह (अ० सा० 10) द्वारा की गयी एवं लालजीत कन्दू की स्थिति देखते हुए उसे राजेन्द्र मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल, रांची भेजा गया, जहाँ उसे 24 फरवरी, 1988 को 11.30 बजे पूर्वान्ह में मृत घोषित कर दिया गया। इस साक्षी ने किशुन सिंह (अभियुक्त सं० 1), गिरजा सिंह (दां० अपील सं० 300 वर्ष 1999 का अभियुक्त सं० 3-अपीलार्थी), इन्दर सिंह (अभियुक्त सं० 4) एवं अरुण सिंह (अभियुक्त सं० 5) को कारित की गयी उपहति के बारे में कोई कथन नहीं किया है। इस साक्षी ने पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों के हाथों में आयुधों के बारे में तथ्यों का वर्णन नहीं किया है। यद्यपि प्रति-परीक्षा में सुझाव दिये गये थे फिर भी इस साक्षी ने पीडित पक्ष के व्यक्तियों द्वारा कारित किये गये किसी हमले या उपहति का प्रत्याख्यान किया है। लेकिन डॉ० बी० पी० सिंह (अ० सा०–10) के साक्ष्य को देखते हुए, अभियुक्त को कारित की गयी

अनेक उपहतियाँ हैं, उनमें से कुछ गंभीर प्रकृति की है और कुछ कटे हुए घाव हैं और तलवार द्वारा कारित किये जा सकते थे। इस अ॰ सा॰–1 अभियुक्त को कारित की गयी उपहतियाँ के बारे में कोई स्पष्टीकरण या कथन नहीं किया है।

10. राम नारायण बनाम स्टेट ऑफ यू॰ पी॰, (1973)3 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 246 में यथा प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण अभियुक्त की शरीर पर उपहतियाँ के बारे में उल्लेख नहीं, वहां पर उनके साक्ष्य पर विश्वास करना पूर्णतया असुरक्षित है, जब तक उसकी संपुष्टि स्वतंत्र साक्षी द्वारा नहीं की जाती है।

11. लखन रवानी (अ॰ सा॰–2) के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, उसने न्यायालय के समक्ष इस तथ्य के बारे में भी कथन किया है कि गिरजा सिंह के परिवार एवं लालजीत कन्दू के परिवार एक दीवाल निर्माण करने के सम्बन्ध में गम्भीर विवाद हो रहे थे एवं तत्पश्चात, गिरजा सिंह लालजीत कन्दू के सिर पर फरसा से प्रहार किया और इस लड़ाई में, लत्ती कन्दू एवं मुरली कन्दू को भी चोटें आयी। इस साक्षी ने यह कथन किया है कि अभियुक्त व्यक्ति भी घायल हो गये थे और उन्हें उसी अस्पताल अर्थात् सदर अस्पताल, गिरिडीह में ही भर्ती करवाया गया, जहां पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों को भी भर्ती कराया गया था। इस साक्षी ने स्वयं को घटना का एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया है। इस साक्षी ने भी यह कथन किया है कि उसने दोनों पक्षकारों के बीच गम्भीर शब्दों के साथ कहा–सुनी हुई एवं लालजीत कन्दू लत्ती कन्दू (अ॰ सा॰–6) एवं मुरली कन्दू (अ॰ सा॰–5) अपने हाथो में गैंता, कुदाल (फावड़ा) के जैसी धारदार काटने वाले हथियार लिये हुए थे। लेकिन इस साक्षी ने अभियुक्त व्यक्तियों को कारित की गयी चोटों के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है।

12. तुलसी राम राय (अ॰ सा॰–3) के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, उसने समरूपी तथ्यों का विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में वर्णन किया है और उसने यह भी कथन किया है कि वहाँ अभियुक्त को उपहतियाँ कारित हुई थी। उसने यह भी कथन किया है कि अभियुक्त पक्ष के व्यक्तियों के पास आयुध थे और पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों ने अपने हाथों में लाठी लिये हुए थे। लेकिन इस बारे में कोई भी बात इस साक्षी द्वारा नहीं कही गयी है कि किसने अभियुक्त को चोटें कारित की। यह साक्षी भी घटना का एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है।

13. वैसा ही बयान दशरथ रवानी (अ॰ सा॰–4) का भी है। उसने न्यायालय के समक्ष यह भी कथन किया है कि पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों एवं अभियुक्त पक्ष के व्यक्तियों के बीच गम्भीर विवाद हुआ था एवं गिरजा सिंह ने लालजीत कन्दू के सिर पर फरसा से चोट कारित किया। उसी प्रकार लत्ती कन्दू तथा मुरली कन्दू जो क्रमशः अ॰ सा॰–6 एवं अ॰ सा॰–5 है, भी घायल हुए थे।

14. इन साक्षियों में से किसी ने भी अभियुक्त को कारित की गयी उपहतियाँ के बारे में न्यायालय के समक्ष सही तथ्य प्रस्तुत नहीं किया है। साक्षीगण कतिपय निर्णायक तथ्यों को छिपा रहे हैं। अतः उन्होंने अत्यंत अनिच्छुक ढंग से प्रति–परीक्षा में पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों के हाथों में आयुधों के बारे में वर्णन किया है।

15. मुरली कन्दू (अ॰ सा॰ 5) के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, जो एक घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, यह प्रतीत होता है कि वह मृतक लालजीत कन्डू का एक अत्यंत निकट सम्बन्धी हैं। यह साक्षी मृतक का छोटा भाई है।

इस साक्षी के बयान को देखते हुए, उसने यह कथन किया है कि उनके खेत में लालजीत तथा अन्य पीड़ित व्यक्तियों द्वारा दीवार का निर्माण हुआ था। अभियुक्त व्यक्तियों ने दीवार का निर्माण करने से उन्हें रोक रहे थे एवं इसलिए वहाँ गम्भीर विवाद एवं कहासुनी हुई थी और तत्पश्चात्, गिरजा सिंह (दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 1999 के अभियुक्त सं॰–3) अपीलार्थी ने लालजीत कन्दू के सिर पर फरसा

से उपहति कारित किया, जो गिर पड़ा एवं, तत्पश्चात्, अन्य अभियुक्तों ने लाठी से लालजी कन्दू के पैरो पर तथा उसपर (मुरली कन्दू अ॰ सा॰–5) एवं लत्ती कन्दू (अ॰ सा॰–6) के उपर उपहति कारित किया। मुरली कन्दू अर्थात् अ॰ सा॰ 5 ने भी चोटे खायी है। उसे मृतक एवं लत्ती कन्दू के साथ सदर अस्पताल, गिरिडीह ले जाया गया था, जहां उसका परीक्षण डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह (अ॰ सा॰–10) द्वारा किया गया था। उसने यह भी कथन किया है कि दोनो पक्षों के बीच गम्भीर विवाद के समय यह साक्षी अपने हाथ में भाला लिए हुए था। पीड़ित पक्ष की ओर से दूसरा व्यक्ति, अर्थात् कैलाश कन्दू (अ॰ सा॰ 8), अपने हाथ में तलवार लिए हुए था। लत्ती कन्दू (अ॰ सा॰ 6 सूचनादाता) अपने हाथ में कटार लिये हुए था और उसने यह भी कथन किया है कि उसके पक्ष के अन्य साथी अपने हाथों में लाठियाँ लिए हुए थे। लेकिन उसने इस बात का प्रत्याख्यान किया है कि उन्होंने अभियुक्त को कोई चोटे कारित की है। इस घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने अपने अभिसाक्ष्य में यह स्पष्ट रूप से कथन किया है कि संपूर्ण घटना एक आकस्मिक लड़ाई के कारण हुई है। दोनों पक्षों ने अपने हाथों में पर्याप्त आयुध लिए हुए थे। यद्यपि वह एक घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है लेकिन वह न्यायालय के समक्ष घटना के बारे में सही एवं स्पष्ट तथ्यों का कथन नहीं कर रहा है और अभियुक्त व्यक्तियों को कारित की गयी गंभीर उपहति छिपा रहा है।

16. लत्ती कन्दू (अ॰ सा॰ 6) के बयान को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि मृतक लालजीत कन्दू इस साक्षी का चाचा था। उसने अभियुक्त की भूमि एवं पीड़ित की भूमि के बीच पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों द्वारा मुख्य रूप से एक दीवार निर्माण के कारण दोनों पक्षकारों के बीच गम्भीर विवाद के बारे में न्यायालय के समक्ष समरूपी तथ्यों का भी वर्णन किया है। यह साक्षी घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी भी है एवं सूचनादाता है, जिसने 23 फरवरी, 1988 को 8.15 बजे सुबह सदर अस्पताल, गिरिडीह में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज किया है। उसने यह कथन किया है कि गिरजा सिंह ने लालजीत कन्दू के सिर पर फरसा से प्रहार किया और अन्य अभियुक्तों ने लालजीत कन्दू साथ हीं उसके उपर (लत्ती कन्दू अ॰ सा॰ 6) एवं मुरली कन्दू (अ॰ सा॰ 5) पर भी लाठियों से उपहति कारित किया। इस साक्षी को भी सदर अस्पताल, गिरिडीह ले जाया गया था एवं उसका परीक्षण डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह (अ॰ सा॰–10) द्वारा किया गया था। प्रति–परीक्षा में इस साक्षी को यह सुझाव दिया गया कि पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों ने तलवार को सम्मिलित कर आयुधों को भी लिए हुए थे लेकिन इसका इस साक्षी द्वारा प्रत्याख्यान किया गया है। अतएव, इस साक्षी ने यद्यपि एक घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, फिर भी संपूर्ण घटना के बारे में न्यायालय के समक्ष स्पष्ट एवं सही तथ्यों का कथन नहीं किया है। अ॰ सा॰ 5 के समान, वह भी एक हितबद्ध प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है। अभियुक्त पक्ष के व्यक्तियों को कारित की गयी चोटों की प्रकृति का वर्णन डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह (अ॰ सा॰–10) द्वारा विस्तार से वर्णन किया गया है, जिनकी चोटें अत्यंत हालफिल थी। डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह ने कुछ घंटो के भीतर घटना के ही दिन सभी अभियुक्तों का परीक्षण किया।

17. हमें डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह (अ॰ सा॰ 10) के अभिसाक्ष्य पर भी ले जाया गया है जो उक्त अस्पताल में सिविल सहायक सर्जन था। वह एक स्वतंत्र साक्षी है उसने लालजीत कन्दू (बाद में मृतक), लत्ती कन्दू (अ॰ सा॰ 6), मुरली कन्दू (अ॰ सा॰ 5), किशुन सिंह (अभियुक्त सं॰ 1), गिरजा सिंह (अभियुक्त सं॰ 3), इन्दर सिंह (अभियुक्त सं॰ 4) एवं अरुण सिंह (अभियुक्त सं॰ 5) का परीक्षण किया है।

18. इस साक्षी के अभिसाक्ष्य के अनुसार लालजीत कन्दू (अन्ततोगत्वा, आर॰ एम॰ सी॰ एच॰, रांची में मृत घोषित किया गया) निम्नलिखित रूप में है:–

> कपाल अस्थियो की वितृत्त अस्थिभंग/रोगी अचेत था इसलिए उसे राजेन्द्र मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल, रांची को रेफर किया था।

19. किशुन सिंह (दां॰ अपील सं॰ 280 वर्ष 1999 का अभियुक्त सं॰ 1 अपीलार्थी) को कारित हुई चोटे निम्नलिखित रूप में है:–

(i) विदीर्ण घाव 1" x ½" x केहूनी की सन्धि के नीचे बाएं अग्रबांह के पीछे अस्थि तक गहरा।

(ii) खोपड़ी की त्वचा पर विदीर्ण घाव 1 x ¾" x ¼", खोपड़ी तक गहरा।

(iii) नाजुक सूजन 2¼" x 2¼" बांये अग्रबाहु के मध्य में।

(iv) नाजुक सूजन 2" x 2" दाहिने पैर पर।

(v) विदीर्ण घाव ½" x 1/5" x बायें हाथ की छोटी अँगुली के पृष्ठ तल पर त्वचा तक गहरा।

यह इस साक्षी द्वारा वर्णन किया गया है कि उपहति सं॰ (i) तलवार जैसी धारदार हथियार द्वारा कारित किया गया था। उसने यह भी कथन किया है कि इन उपहतियों का समय परीक्षा की समय से तीन घण्टे के अन्दर था। डॉक्टर ने अभियुक्त पक्ष के व्यक्तियों का एवं पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों का 23 फरवरी, 1988 को 7.45 बजे पूर्वान्ह से प्रारम्भ कर परीक्षण किया। इस अभियुक्त सं॰ 1 को छिन्न जख्म एवं कपाल तक गहरा एवं कटा हुआ घाव था।

20. उसी प्रकार, अभियुक्त सं॰ 3 अर्थात् गिरजा सिंह को निम्नलिखित उपहतियाँ आयी थी:-

(i) दो विदीर्ण घाव 2" x 1" x कपाल तक गहरा तथा ½" x 1/5" x कपाल पर त्वचा तक गहरा।

(ii) अंगूठे के मेटाकार्पो फेलान्जियल संधि के पास बाये हाथ के निकट पृष्ठतल पर का नाजुक सूजन 1½" x 1¼"।

(iii) दाहिनी कलाई पर छोटी सी खरोंच।

(iv) रगड़ की चोट 2" x ½" दाहिनी जाँघ पर सूजन एवं खरोंच के साथ।

ये उपहतियाँ परीक्षण के समय से तीन घण्टे के भीतर कारित हुई थी और इस अभियुक्त के सिर पर दो उपहतियाँ थी।

21. अभियुक्त सं॰ 4 अर्थात इन्दर सिंह को निम्नलिखित उपहतियाँ थी:-

(i) विदीर्ण घाव 3" x ¼" x कपाल पर कपाल तक गहरा।

(ii) अलना बोन के अस्थिभंग से सम्बद्ध बायें अग्रबाहु पर नाजुक सूजन 2" x 2" का x-ray की सलाह दी गयी।

(iii) नाजुक सूजन 1½" x 1½" वक्षस्थल की बांयी ओर।

(iv) खरोंच 1" x 1/4" पीठ की बायीं ओर।

डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह (अ॰ सा॰-10) के अनुसार उपहति सं॰ (ii) गंभीर प्रकृति की थी। उपहतियाँ, अपने परीक्षण के समय से तीन घंटे के भीतर कारित की गयी थी।

उपहति सं॰ (i) को देखते हुए, यह कपाल तक गहरी होने वाली चोट थी।

22. अभियुक्त सं॰ 5, अर्थात् अरुण सिंह के शरीर पर कारित की गयी निम्नलिखित उपहतियाँ पायी गयी:-

(i) एक कटने की उपहति, 1¼" x ½" कपाल तक गहरी कपाल की बायीं ओर सम एवं साफ कटे हुए किनारे के साथ।

(ii) एक कटने की उपहति 1½" ½" x पृष्ठ भाग पर कपाल की दाहिनी ओर स्पष्ट रूपेण कटे हुए किनारों के साथ कपाल तक गहरी।

(iii) दो विदीर्ण घाव 1¼" x ¼" कपाल तक गहरी तथा ¾" x 1/5" x ऊपर की चोट सं॰ (ii) कपाल के दाहिनी ओर त्वचा तक गहरी।

(iv) छिन्न घाव 2½" x 1/2" x वक्षस्थल की बायीं ओर अस्थि तक गहरी।

(v) छिन्न घाव। 1" x 1/2" x समीपस्थ कैलेक्सकी अस्थि भंग से जुड़ी हुई छोटी अंगुली के मेटाकार्पो फैलैन्जियल के पास दाहिने हाथ के पृष्ठ तल पर अस्थि तक गहरी। एक्स-रे-की सलाह दी गयी।

(vi) बायीं तर्जनी अंगुली के पृष्ठभाग पर खरोंच की उपहति ¼" x ¼".

(vii) दाहिने घुटने पर हल्का सा खरोंच।

विचारण न्यायालय के समक्ष डॉक्टर के कथन के अनुसार, उपहति सं॰ (5) गंभीर प्रकृति की थी। यह डॉक्टर द्वारा कथन किया गया है कि उपहति सं॰ (i), (ii), (iv) एवं (v) तलवार के जैसी धारदार काटने वाले आयुध द्वारा कारित की गयी थी एवं उपहति सं॰ (ii), (vi) तथा (vii) लाठी के जैसी कठोर एवं कुन्द पदार्थ द्वारा कारित की जा सकती थी। उपहतियाँ का समय उनके परीक्षण से तीन घण्टे के भीतर का था। उपहति रिपोर्टों को विचारण न्यायालय के समक्ष भी साबित कर दिया गया था। वे प्रदर्श-A से A/3 हैं।

23. अन्य साक्षीगण, जिनकी परीक्षा अन्वेषण पदाधिकारी (बलराम पाण्डेय अ॰ सा॰-13) के समान अभियोजन द्वारा किया गया है, ने यह कथन किया है की प्रथम सूचना रिपोर्ट को रजिस्ट्रीकृत करने के उपरांत, उसने अन्वेषण किया है एवं अभियोजन साक्षियों के कथन अभिलिखित करने पर एवं साक्ष्य संग्रहीत करने पर अभियुक्त के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था।

24. विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलेख को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰-5 एवं अ॰ सा॰ 6 घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण है। अ॰ सा॰-5 मृतक का भाई है एवं अ॰ सा॰-6 ने यह कथन किया है कि मृतक उसका चाचा था। इन साक्षियों ने अभियुक्त पक्ष के व्यक्तियों को कारित की गयी उपहतियों के बारे में विचारण न्यायालय के समक्ष वर्णन नहीं किया है। अन्य साक्षीगण अर्थात् अ॰ सा॰ 2, अ॰ सा॰ 3, अ॰ सा॰ 4, अ॰ सा॰ 8 एवं अ॰ सा॰ 9 समर्थन करने वाले साक्षीगण हैं। वे अभियुक्त को कारित की गयी उपहतियों के बारे में भी मौन रहे हैं। **मोहन राय बनाम बिहार राज्य, ए॰ आई॰ आर॰ 1968 एस॰ सी॰ पृष्ठ 1281** में यथा प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है, कि अभियुक्त को भी उपहतियाँ आयी हुई थी एवं जब उन्हें पेश किया गया और जब उन्हें शीघ्र अस्पताल ले जाया गया, उपहतियाँ स्वत: कारित की गई नहीं हो सकती थी जब प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण अभियुक्त की शरीर पर उपहतियों के बारे में उल्लेख नहीं करते हैं, तब उनलोगों के साक्ष्य पर पूर्णतया विश्वास करना असुरक्षित है। **ए॰ आई॰ आर॰ 1975 एस॰ सी॰ 1703 : (1975)4 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 241** में यथा प्रकाशित **गजेन्द्र सिंह बनाम स्टेट ऑफ यू॰ पी॰** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 6 में, **ए॰ आई॰ आर॰ 1975 एस॰ सी॰ 1478 = 1975 क्रि॰ लॉ॰ ज॰ 1079** में यथा प्रकाशित **स्टेट ऑफ गुजरात बनाम साई फातिमा** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये एक विनिश्चय को निर्दिष्ट किया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है:-

''इस प्रकार की एक स्थिति में जब अभियोजन ने एक अभियुक्त की शरीर पर उपहतियाँ का स्पष्टीकरण देने में असफल हो जाता है, तब प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करते हुए, तीन परिणामों में से कोई हो सकता है:-

(i) यह कि अभियुक्त ने आत्मरक्षा के अधिकार के प्रयोग में अभियोजन पक्षकार के सदस्यों पर उपहतियाँ कारित की थी।

(ii) यह घटना के अभियोजन वर्णन को संदेहास्पद बना देता है एवं अभियुक्त के विरूद्ध आरोप के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे युक्तियुक्त संदेह से परे साबित कर दिया गया है।

(iii) यह अभियोजन मामले को बिल्कुल प्रभावित नहीं करता है।''

25. ए॰ आई॰ आर॰ 1976 एस॰ सी॰ पृष्ठ 2263, में यथा प्रकाशित **लक्ष्मी सिंह बनाम बिहार राज्य** के मामले में पैरा सं॰ 11 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है:-

''.....हमे यह प्रतीत होता है कि एक हत्या के मामले में, घटना के समय या कलह के अनुक्रम में अभियुक्त द्वारा झेली गयी उपहतियों का गैर-स्पष्टीकरण किया जाना एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिस्थिति है, जिससे न्यायालय निम्नलिखित अनुमान लगा सकता है:-

(i) यह कि अभियोजन ने घटना की उत्पत्ति एवं मूल को छिपाया है एवं, इस प्रकार, सत्य विवरण प्रस्तुत नहीं किया है;

(ii) यह कि साक्षीगण जिन्होंने अभियुक्त के शरीर पर उपहतियों की मौजूदगी का प्रत्याख्यान किया है, एक महत्वपूर्ण बिन्दु पर असत्य कथन कर रहा है एवं, इसलिए, उनका साक्ष्य अविश्वसनीय है;

(iii) यह कि यदि बचाव का कोई कथन है जो अभियुक्त के शरीर पर उपहतियों का स्पष्टीकरण देता है, जो इतना संभाव्य बना दिया जाता है कि अभियोजन पर संदेह किया जा सके।

अभियुक्त व्यक्ति की शरीर पर उपहतियों को स्पष्टीकरण देने में अभियोजन की ओर से लोप को उस समय बहुत अधिक महत्व प्राप्त हो जाता है जब साक्ष्य हितबद्ध या शत्रुतापूर्ण साक्षियों से परिपूर्ण होता है या जहाँ बचाव पक्ष एक विवरण प्रस्तुत करता है जो एक अभियोजन की उस सम्भाव्यता के साथ पूर्ण होता है.....हमें यह शीघ्रतापूर्वक उस कथन को जोड़ने जिसे कि इस न्यायालय द्वारा 19 मार्च, 1975 को निर्णीत (ए॰ आई॰ आर॰ 1975 एस॰ सी॰ 1478) गुजरात राज्य बनाम बाई फातिमा, दॉ॰ अपील सं॰ 67 वर्ष 1971 में अभिनिर्धारित किया गया, ऐसे भी मामले हो सकते हैं जहां अभियुक्त द्वारा झेली गयी उपहतियाँ का गैर-स्पष्टीकरण दिया जाना अभियोजन मामले को प्रभावित नहीं कर सकेगा। यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से उन मामलो पर लागू होगा जहां अभियुक्त द्वारा झेली गयी उपहतियाँ गौण या उपरिष्ठ है या जहां साक्ष्य इतना स्पष्ट एवं तर्कपूर्ण है इतना स्वतंत्र एवं अहितबद्ध, इतना संभाव्य, स्थिर एवं विश्वास करने योग्य है कि.....उपहतियाँ को स्पष्ट करने के लिए अभियोजन की ओर से एक लोप के प्रभाव को बहुत अधिक महत्व प्रदान करता है।'' (पर जोर दिया गया)

26. यह आगे **भाबा नन्दा सर्मा बनाम आसाम राज्य,** यथा प्रकाशित **ए॰ आई॰ आर॰ 1977 एस॰ सी॰ पृष्ठ 2252,** पैरा सं॰ 2 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है:-

''.....इस प्रकृति के मामले में अभियुक्त की शरीर पर उपहतियों का स्पष्टीकरण देने की असफलता या इसके अभिकथन छिपाये जाने के लिए अभियोजन के विरुद्ध एक प्रतिकूल अनुमान किये जाने के पूर्व, यह युक्तियुक्त रूप से अवश्य प्रदर्शित किया जाना चाहिए कि सभी संभाव्यताओं में, उपहतियाँ कतिपय घटना में उसके साथ कारित किया गया या उसी संव्यवहार के एक भाग के रूप में जिसमें अभियोजन की ओर से पीड़ित, घायल थे। अभियोजन को सभी मामलों में एवं सभी परिस्थिति में एक अभियुक्त की शरीर पर उपहतियों को स्पष्ट करने के लिए बाध्य नहीं है। यह विधि नहीं है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि क्या अभियोजन मामला अभियुक्त पर चोटों का स्पष्टीकरण देने में इसकी असफलता के कारण युक्तियुक्त रूप से संदेहास्पद हो जाता है।'' (पर जोर दिया गया)

27. यह **दशरथ सिंह बनाम स्टेट ऑफ यू॰ पी॰ (2004)7 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 408** में रिपोर्ट किए गये पैरा सं॰ 19 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी अभिनिर्धारित किया गया है:-

''.....यदि स्पष्टीकरण देने का एक लोप होता है, तो यह इस अनुमान की ओर ले जाता है कि अभियोजन ने घटना से सम्बन्धित कुछ सुसंगत विवरणों को छिपाया है। (जोर दिया गया)

उक्त मामले में, उसी पैरा में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है:-

''.....अभियोजन मामले में विवरण पक्षपाती या हितबद्ध साक्षी द्वारा साबित किया जाना चाहा जाता है, गंभीर उपहतियों का गैर-स्पष्टीकरण दिया जाना उनके साक्ष्य की विश्वसनीयता पर प्रथम दृष्टया पर एक छेद न कर सकेगा.....दूसरे शब्दो में, अभियुक्त की उपहतियों का गैर-स्पष्टीकरण दिया जाना उन कारको में से एक है जिन्हे अभियोजन साक्ष्य एवं बचाव पक्ष के विवरण की स्वाभाविक योग्यता का मूल्यांकन करने में ध्यान में रखा जा सकता था।''

(जोर दिया गया)

28. वर्तमान मामले के तथ्यों में, अ॰ सा॰ 5 (प्रत्यक्षदर्शी साक्षी) एवं अ॰ सा॰ 6 (प्रत्यक्षदर्शी साक्षी) मृतक के निकटवर्ती नातेदार हैं।

29. अतएव, अभिलेख पर साक्ष्य को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि संपूर्ण घटना आकस्मिक तौर पर एवं किसी पूर्व चिंतन के बिना एवं बगैर किसी आशय के हुई है। पीड़ित पर अभियुक्त द्वारा कोई पूर्व नियोजित भलीभांति परिकल्पित हमला नहीं किया गया है। अभियुक्त एवं पीड़ित की भूमि के बीच एक दीवाल का निर्माण कार्य के चालू रहने के कारण, संपूर्ण घटना हुई है। पीड़ित पक्ष के व्यक्ति भी दीवार का निर्माण कर रहे थे। प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण अर्थात् अ॰ सा॰ 5 एवं अ॰ सा॰ 6 यथा अ॰ सा॰ 2, अ॰ सा॰ 3 एवं अ॰ सा॰ 4 ने भी यह कथन किया है कि गिरजा सिंह (दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 1999 का अभियुक्त सं॰ 3-अपीलार्थी) के परिवारिक सदस्यों एवं लालजी कन्दू (मृतक) के परिवारिक सदस्यों के बीच गम्भीर विवाद हुआ (प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अ॰ सा॰ 3, तुलसी राय, घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अ॰ सा॰ 5, मुरली कन्दू ने अभियुक्त के हाथों में एवं पीड़ित पक्ष के व्यक्तियों के हाथों में आयुधों के बारे में वर्णन किया है। लेकिन उन्होंने अभियुक्त की शरीर पर पीड़ित पक्ष द्वारा कारित की गयी उपहतियों के बारे में कोई बात नहीं कही है। अ॰ सा॰ 5 एवं अ॰ सा॰ 6 हितबद्ध साक्षीगण हैं एवं इसलिए उनके बयानों को इस न्यायालय द्वारा सावधानीपूर्वक संवीक्षा की जानी चाहिए और यह प्रतीत होता है कि ये घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण न्यायालय के समक्ष संपूर्ण विवाद के बारे में सही तथ्यों को प्रस्तुत नहीं किया है। सुसंगत एवं महत्वपूर्ण तथ्यों को बें लोग न्यायालय के समक्ष छिपा रहे हैं। डॉ॰ बी॰ पी॰ सिंह (अ॰ सा॰-10) द्वारा दिये गये बयान को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि उसने 23 फरवरी, 1988 को लगभग 7.45 बजे सुबह लालजी कन्दू (जिसकी अन्ततोगत्वा आर॰ एम॰ सी॰ एच॰, रांची में मृत घोषित किया गया) तथा अन्य अभियुक्त व्यक्तियों का परीक्षण किया था। अभियुक्त सं॰ 1 को पांच उपहतियाँ आई थी, अभियुक्त सं॰ 3 कपाल तक गहरी उपहति को सम्मिलित कर पांच उपहतियाँ आयी थी। अभियुक्त सं॰ 4 को उपहति सं॰ (ii) जो गंभीर प्रकृति की थी, को सम्मिलित कर चार उपहतियाँ आयी थी; अभियुक्त सं॰ 5 को 8 उपहतियाँ आई थी जिनमें से उपहति सं॰ (v) गंभीर प्रकृति की थी जबकि उपहति सं॰ (i), (ii), (iv) तथा (v) तलवार जैसी धारदार काटने वाले हथियार से कारित की गयी थी। इस डॉक्टर ने यह भी कथन किया है कि उपहतियों का समय तीन घंटो के भीतर का था। अतएव, यह प्रतीत होता है कि उपहतियाँ का घटना से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है लेकिन साक्षीगण न्यायालय के समक्ष सत्य एवं सही तथ्य प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। यद्यपि वे इस तथ्य को स्वीकार कर रहे हैं कि पीड़ित पक्ष के व्यक्ति भी अपने हाथो में तलवार, भाला, एवं कटार लिये हुए थे (अ॰ सा॰ 5 के अभिसाक्ष्य के अनुसार) एक दूसरे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने भी यह कथन किया है कि पीड़ित पक्ष के व्यक्ति अपने हाथों में फावड़ा एवं तेज काटने वाले औजार गैंता लिये हुए थे (अ॰ सा॰ 2 लखन रवानी के बयान के पैरा सं॰ 8 के अनुसार), इस साक्षी के अनुसार अ॰ सा॰ 2, लालजीत कन्दू (मृतक) मुरली कन्दू (अ॰ सा॰ 5) एवं लत्ती कन्दू (अ॰ सा॰ 6) अपने हाथों में तेज काटने वाले औजार लिये हुए थे। अतएव, संपूर्ण घटना किसी पूर्वचिंतन के बिना आकस्मिक लड़ाई के कारण हुई है। अभियुक्त ने उनकी खुली लड़ाई या आकस्मिक लड़ाई का कोई लाभ नहीं लिया है। मामले के इस पहलू का उचित रूप से

मूल्यांकन विचारण न्यायालय द्वारा नहीं किया गया है। अभियोजन का सम्पूर्ण मामला हत्या के अपवाद के भीतर आता है। यह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों एवं घायल प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य से प्रतीत होता है कि कार्य किसी पूर्व चिंतन के बिना गिरजा सिंह (दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 199 के अपीलार्थी) द्वारा एवं दां॰ अपील सं॰ 280 वर्ष 1999 के अपीलार्थियों द्वारा कारित की गयी और भूमि की खुदाई करने एवं दीवाल निर्माण के अनुक्रम में आकस्मिक झगड़ा हुआ और क्रोध के आवेश में अपीलार्थियों ने चोटें कारित की। अभिलेख पर साक्ष्य के संचयी प्रभाव को देखते हुए, यह कहा जा सकता है कि दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 1999 का गिरजा सिंह-अपीलार्थी ने अनुचित लाभ प्राप्त नहीं किया है या एक क्रुर एवं अस्वाभाविक रीति से सुनियोजित तौर पर कार्य नहीं किया है। मामले के इस पहलू का विचारण न्यायालय द्वारा उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन दंडनीय, हत्या की कोटि में न आने वाला मानववध का दोषी अभिनिर्धारित किया जाता है और लालजीत कन्दू की हत्या के आरोप से दोषमुक्त कर दिया जाता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए सत्र विचारण सं॰ 167 वर्ष 1989 में विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दंडादेश का निर्णय एवं आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित एवं अपास्त किया जाता है। दां॰ अपील सं॰ 300 वर्ष 1999 के अपीलार्थी अर्थात् गिरजा सिंह को 10 वर्षों तक का कठोर कारावास दिया जाता है।

30. जहां तक दां॰ अपील सं॰ 280 वर्ष 1999 के अपीलार्थियों का सम्बन्ध है तो उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है। अभिलेख पर साक्ष्य को देखते हुए, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए इन अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करने में विचारण न्यायालय द्वारा कोई गलती नहीं की गयी है। मुझे परिवर्तन करने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता है जहां तक विचारण न्यायालय द्वारा इन अपीलार्थियों की दोषसिद्धि का सम्बन्ध है, लेकिन जहां तक दंड की मात्रा का सम्बन्ध है तो यह प्रतीत होता है कि संपूर्ण घटना वर्ष 1988 के प्रारम्भ में, अर्थात् फरवरी, 1988 के महीने में पूर्वचिंतन के बिना तथा किसी आशय के बिना तथा आकस्मिक लड़ाई के दौरान हुई है। इन अभियुक्तों/अपीलार्थियों ने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किये गये तर्कों के अनुसार लगभग एक महीने का दंड पहले से ही भोग लिया है। अतएव, दो से अधिक दशको की कालावधि व्यतीत हो गयी है। विचारण न्यायालय ने छः महीने का कठोर कारावास का दंड दिया है। हम एतद् द्वारा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, विशेष तौर पर इस स्थिति में कम कर देते हैं जब इन अपीलार्थियों की ओर से दुराशय का अभाव था। वे बुरी तरह से घायल थे। (डॉक्टर अ॰ सा॰ 10 के अभिसाक्ष्य के अनुसार) घटना आकस्मिक तौर पर हुई है और पूर्व नियोजित नहीं थी और न ही यह पूर्व विमर्शित थी और दो से अधिक दशक घटना की तारीख से अर्थात् 23 फरवरी, 1988 से बीत गये हैं, उस कालावधि तक भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन अपराध के लिए दंडादेश दां॰ अपील सं॰ 280 वर्ष 1999 के अपीलार्थियों को दिया गया है जिसको वे पहले से भुगत चुके है। अतएव, दोषसिद्धि एवं दंडादेश का निर्णय एवं आदेश पूर्वोक्त विस्तार तक उपांतरित कर दिया जाता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दोषसिद्धि की संपुष्टि की जाती है लेकिन दंडादेश की मात्र उस कालावधि तक घटा दी जाती है जिसको वे भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन अपराध के लिए कारावास पहले से ही भोग चुके हैं। दोनों दां॰ अपीले अंशतः अनुज्ञात की जाती है।

एम॰ वाई॰ ईकबाल.—मैं सहमत हूँ।

ekuuh; vej'oj lgk; ,o Jh vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efrx.k

शम्भू चरण बोबोंगा एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य

दाण्डिक अपील सं॰ 223 वर्ष 1991 (R), 9 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 307 वर्ष 1988 में सत्र न्यायाधीश, पश्चिम सिंहभूम, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 20.8.1991 के दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

(क) भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 34—सामान्य आशय–यह अर्थान्वित करता है की सम्मिलित रूप से कार्य को पूर्व नियोजित योजना के अस्तित्व को–यह या तो आचरण, या परिस्थितियों या फिर किसी अन्य अपराध में लिप्त किए जाने वाले तथ्य से सिद्ध की जानी है। (पैरा 13)

(ख) दाण्डिक विचारण–भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 302/34 के अधीन हत्या कारित करने के लिए चार व्यक्ति को दोषसिद्ध किया गया–अभिनिर्धारित, अपीलार्थीगण में से दो एक ही आशय शेयर नहीं कर रहे थे एवं यह भी अभिकथित किया गया कि उनके द्वारा कारित प्रत्यक्ष कृत्य, डाक्टर द्वारा पाई गई संगत उपहतियों द्वारा समर्थित नहीं था–इन दोनों के दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को अपास्त एवं दोषमुक्त किया गया है, जबकि अन्य दोनों के दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को मान्य ठहराया गया है। (पैराएँ 13 से 15)

अधिवक्तागण.–Mr. R.P. Gupta, For the Appellants; Mrs. Anita Sinha, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 302/34 के अधीन, सभी चारों अपीलार्थीगण सहित अन्य नामजद, आशा बोबोंगा एवं टूनी माई बोबोंगा को उनके सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किसी बुध राम बोबोंगा की हत्या कारित करने के आरोपों का सामना करने के लिए विचारण पर रखा गया था। विचारण न्यायालय ने दोनों व्यक्तियों, अर्थात् आशा बोबोंगा एवं टूनी माई बोबोंगा को दोषमुक्त करते समय इन चारों अपीलार्थीगण को अपराध के लिए दोषी पाया और इसलिए इन्हें आजीवन कारावास भुगतने का दण्ड दिया।

2. अभियोजन का मामला यह है कि 28.4.1998 को बुद्ध राम बोबोंगा (मृतक) लगभग 5 बजे सुबह में अपने गाँव के मानकी, निरंजन बोबोंगा (अ॰ सा॰ 1) से मिलकर उसे यह बताने के लिए घर से निकला कि उसके पक्ष में एक मामले का डिक्री कर दिया गया है ताकि वह पूरे गाँव वालों को सूचित कर सके। अ॰ सा॰ 1 के घर जाने के पश्चात् जब वह घर लौट रहा था और लगभग 7 बजे सुबह वह अपने घर के समीप पहुँचा, तब वह अभियुक्तों में से एक अर्थात्, रोया बोबोंगा, (अब मृत) द्वारा अपने हाथ में चाकू पकड़कर छेड़ा गया और इस प्रकार, बुध राम बोबोंगा ने अपनी पुत्री मीना कुमारी (अ॰ सा॰ 5) को बाहर आने के लिए पुकारा, जिसपर वह घर से बाहर आई, और अपीलार्थी रबी बोबांगा को अपने पिता की ओर धनुष-बाण के साथ-साथ लोहे का सरिया लेकर दौड़ते हुए देखा। उसी समय, विभीषण बोबोंगा अपने हाथ में फरसा लेकर दौड़ते हुए आया। ये सभी तीनों व्यक्ति, बुध राम बोबोंगा को घसीटते हुए उसे एक मैदान में ले आए। उसी समय, अन्य अपीलार्थीगण, नन्दलाल बोबोंगा चाकू लेकर एवं साथ में शम्भूचरण बोबोंगा आशा बोबोंगा और टूनी माई बोबोंगा भी वहाँ पर पहुँचे और उन सबों ने बुध राम बोबोंगा पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। इस बीच अपीलार्थी शम्भू चरण बोबोंगा ने विभीषण बोबोंगा से फरसा लेकर मृतक के गर्दन पर प्रहार कर दिया। तत्पश्चात विभीषण बोबोंगा ने शम्भू चरण से फरसा लिया और मृतक के गर्दन एवं सिर पर तीन प्रहार कर दिए। रबी बोबोंगा ने मृतक पर लोहे की सरिया से आक्रमण किया जबकि अन्य अपीलार्थीगण, अर्थात् आशा बोबोंगा, टूनी

माई बोबोंगा एवं रोया बोबोंगा ने मृतक पर घूँसों और थप्पड़ों और पत्थर से भी प्रहार किया जिसके कारण मृतक की मृत्यु हो गई एवं तत्पश्चात विभीषण बोबोंगा ने घोषित किया कि बुध राम बोबोंगा की हत्या कारित करके उसने अपना वचन निभाया है। तत्पश्चात् अपीलार्थीगण फरार हो गए।

3. आगे मामला यह है कि जब मृतक पर अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा आक्रमण किया जा रहा था, तब मृतक की पत्नी, शान्ति पूर्ती, (अ॰ सा॰ 4) उसी समय खेत से आई और घटना देखा, और तब भयभीत होकर, वह निरंजन बोबोंगा, (अ॰ सा॰ 1) के घर उसे घटना के बारे में सूचित करने आई। बाद में मीना कुमारी (अ॰ सा॰ 5) मृतक की पुत्री भी निरंजन बोबोंगा (अ॰ सा॰ 1) के घर आई और उसे घटना के बारे में बताया जो कि, तब नोआमुण्डी पुलिस थाने आया और यह सूचना दी कि रेगारबेरा गाँव में एक हत्या हुई है। जिस पर स्टेशन डायरी में एक प्रविष्टि की गई एवं नोआमुण्डी पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी घटनास्थल पर सुबह 11 बजे आए एवं मीना कुमारी (अ॰ सा॰ 5) का फर्दबयान (प्रदर्श-2) अभिलिखित किया, जिसने कि घटना के बारे में कथन किया है, जैसा कि उपर कथित है एवं यह भी कथन किया कि उसके पिता की मृत्यु लम्बे समय से चल रहे भूमि विवाद के कारण कर दी गई थी, परन्तु मामले को उसके पिता के पक्ष में डिक्रीत कर दिया गया था। थाना प्रभारी, मो॰ असगर हुसैन (अ॰ सा॰ 6) ने अन्वेषण किया और मृतक के शव का मृत्यु समीक्षा किया एवं मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श 4) तैयार किया। अन्वेषण अधिकारी ने जब घटनास्थल पर खून पाया तब उसने अभिग्रहण सूची (प्रदर्श-6) के अधीन रक्त रंजित भूमि को अभिग्रहित किया। आगे, अभियुक्त विभीषण बोबोंगा द्वारा किए गए स्वीकारोक्ति पर, फरसा के साथ लोहे की सरिया भी विभीषण बोबोंगा के घर से बरामद किया गया जो कि अभिग्रहण सूची प्रदर्श 8 के अधीन जब्त की गई थी। तत्पश्चात शव को पोस्टमार्टम परीक्षण के लिए भेजा गया था जो कि डॉ॰ रणवीर सिंह (अ॰ सा॰ 7) द्वारा किया गया था एवं निम्नांकित उपहतियाँ पाई गई:-

(i) गर्दन के बाएँ ओर एक तीक्ष्ण कटने का जख्म, जो गर्दन के पीछे से तिरछा शुरू होता हुआ बायें गाल के पार्श्विक पहलू के ऊपर की ओर एवं आगे की ओर 8" x 2" x 2½" का था रीढ़ की हड्डी के सर्वीकल वर्टीब्रा एवं सर्वीकल भाग कटे हुए थें। बायाँ टेमपोरल हड्डी टूटा हुआ था।

(ii) पश्च पहलू पर बाएँ कोहनी के जोड़ के ठीक नीचे बाएँ हाथ पर ओर 4" x 1½" x ½" का तीक्ष्ण कटने का जख्म था।

(iii) घुटने के जोड़ के नीचे दाहिने पैर के बीच के भाग पर ½" x ½" x 1" का एक तीक्ष्ण कटने का जख्म था।

(iv) गर्दन के दाहिने भाग के पश्च पहलू पर ½" x ½" x 1" का एक तीक्ष्ण कटने का जख्म था।

(v) दाहिने कन्धे को जोड़ पर 1" x 1/2" x 1/2" का एक तीक्ष्ण कटने का जख्म था।

तद्नुसार, डॉक्टर ने पोस्ट-मार्टम परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श 5) जारी किया, इसमें यह राय देते हुए कि मृतक की मृत्यु धारदार हथियार जैसे की फरसा द्वारा कारित उपरोक्त उपहतियों के कारण सदमें एवं रक्त स्राव से हो गई।

4. अन्वेषण के पूर्ण होने के पश्चात्, जब पुलिस ने इन अपीलार्थीगण के साथ-साथ आशा बोबोंगा एवं टूनी माई बोबोंगा जो कि विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए गए थे, के विरूद्ध आरोप-पत्र पेश किया एवं रोया बोबोंगा (विचारण के अनुक्रम में अब मृत) के विरूद्ध भी अपराध का संज्ञान लिया एवं सम्यक् अनुक्रम के दौरान, जब मामला सत्र न्यायालय में पेश हुआ, तो आरोपों की विरचना की गई थी जिसका अपीलार्थीगण ने दोषी न होने का अभिवाक् किया एवं विचारण किए जाने के लिए दावा किया था।

5. विचारण के अनुक्रम में आरोपों को सिद्ध करने के क्रम में अभियोजन ने सात साक्षियों का परीक्षण किया। उनमें से, निरंजन बोबोंगा (अ॰ सा॰ 1) गाँव का मानकी प्रमाणित करता है कि मृतक की पत्नी एवं पुत्री द्वारा घटना की सूचना प्राप्त करने पर वह घटनास्थल पर आया और तब पुलिस थाने में सूचना दी। मीना कुमारी मृतक की पुत्री एवं शान्ति पूर्ति, मृतक की पत्नी, ने अपने आप को प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया है, अ॰ सा॰ 4 एवं 5 के रूप में उनका परीक्षण किया गया है।

6. अभियोजन के मामले के समापन के पश्चात् अपीलार्थीगण से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उनके विरूद्ध प्रतीत हो रहे दोषारोपण के परिस्थितियों के बारे में प्रश्न किया गया था जिससे उन्होंने इनकार किया था।

7. विचारण न्यायालय ने दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्यों पर अंतर्निहित विश्वास रखते हुए इन अपीलार्थीगण को दोषी पाया और इस प्रकार जैसा कि पूर्व कथित है इन्हें दोषसिद्ध एवं दण्डित किया गया था। हलाँकि, उसी समय उपरोक्त नामजद दो व्यक्तियों को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किया गया था।

8. अपीलार्थीगण ने इस अपील को दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश से व्यथित होकर दाखिल किया है।

9. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि सभी अपीलार्थीगण, यद्यपि मृतक से संबंधित थे तथापि इस मामले में पारिवारिक दुश्मनी के कारण गलत रूप से आलिप्त किए गए हैं एवं घटना घटित होने की रीति से संबंधित, अ॰ सा॰ 5 का परिसाक्ष्य, चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि नहीं पाता है और इस प्रकार उसका साक्ष्य भरोसा करने के लिए आत्मविश्वास उत्पन्न नहीं करता, फिर भी उसका साक्ष्य विश्वासजनक माना गया था और इस प्रकार विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण के विरूद्ध दोषसिद्धि का आदेश एवं दण्डादेश अभिलिखित करने में त्रुटि की है।

10. आगे यह भी निवेदन किया गया था कि यद्यपि रबी बोबोंगा, अपीलार्थी सं॰ 3, मृतक पर लोहे की सरिया से आक्रमण करने के लिए अभिकथित है, तथापि डॉक्टर द्वारा ऐसी कोई संगत उपहति नहीं पाई गई है और इसलिए, यह आसानी से माना जा सकता है कि उसने मृतक पर कभी आक्रमण नहीं किया और इसलिए रबी बोबोंगा एवं नन्दलाल बोबोंगा, जो कि मृतक पर विनिर्दिष्ट रूप से आक्रमण करने के लिए अभिकथित नहीं किए गए हैं, एक ही आशय शेयर करने वाले नहीं कहे जा सकते हैं और मामले के उस दृष्टि में, वे दोषमुक्ति के हकदार हैं।

11. उसके विरूद्ध, राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण के परिसाक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय ने रवि बोबोंगा एवं नन्दलाल बोबोंगा सहित सभी अपीलार्थियों को जो कि इन तथ्यों एवं परिस्थितियों में आसानी से एक ही आशय शेयर करते हुए कहे जा सकते हैं, सही रूप से दोषसिद्ध किया है।

12. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने एवं अभिलेख का परिशीलन करने पर, हम यह नहीं पाते हैं कि मृतक की पुत्री मीना कुमारी (अ॰ सा॰ 5) एवं मृतक की पत्नी शान्ति पूर्ति (अ॰ सा॰ 4), प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं। अ॰ सा॰ 5, स्वाभाविक साक्षी प्रतीत होती है, क्योंकि उसके साक्ष्य के अनुसार, मृतक द्वारा बाहर आने के लिए बुलाए जाने पर, बाहर आई और रोया बोबोंगा को मृतक को आगे बढ़ने से राकेते देखा एवं तब रवि बोबोंगा तीर-धनुष एवं साथ ही लोहे की सरिया लेकर आया जबकि विभीषण बोबोंगा अपने हाथ में फरसा लेकर दौड़ते हुए आया। तत्पश्चात नंदलाल बोबोंगा एवं शम्भु चरण बोबोंगा एवं साथ ही आशा बोबोंगा एवं टुनी भाई बोबोंगा भी वहाँ पर आए और मृतक पर आक्रमण शुरू कर दिया और तब वे उसे जमीन पर गिरने के लिए विवश कर दिया। तदुपरि शम्भू चरण बोबोंगा ने विभीषण बोबोंगा से फरसा लेकर गर्दन पर प्रहार किया और तत्पश्चात् विभीषण बोबोंगा भी

मृतक पर फरसा से गर्दन और सिर पर तीन प्रहार किया। उसके अनुसार रबी बोबोंगा ने लोहे की सरिया से प्रहार किया जबकि अन्य व्यक्तियों ने मुक्के और थप्पड़ एवं पत्थर के टुकड़ों से हमला किया। अ॰ सा॰ 5 के परिसाक्ष्य उसके फर्दबयान में की गई अभिकथन से संपुष्टि पाते हैं और उसी समय, अ॰ सा॰ 4, शान्ति पूर्ति के साक्ष्य से भी यह सम्पोषण पाता है जो, हलाँकि दोषमुक्ति के तर्क पर इतना विशिष्ट नहीं है, परन्तु यह प्रमाणित किया है कि सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके पति पर आक्रमण किया था। आगे हम अ॰ सा॰ 5 के चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि नहीं पाते हैं, जहाँ तक कि शम्भू चरण बोबोंगा एवं विभीषण बोबोंगा के विरूद्ध अभियोग का सम्बन्ध है क्योंकि डॉक्टर ने तीक्ष्ण कटने की उपहतियाँ पाई है, जो संभवत: मृतक पर उन व्यक्तियों द्वारा फरसा से कारित की गई है। इसके अतिरिक्त घटनास्थल पर खून से सनी मिट्टी का पाया जाना भी अ॰ सा॰ 4 एवं 5 के परिसाक्ष्यों का समर्थन करता है। इन परिस्थितियों के अधीन, विचारण न्यायालय ने सही रूप से अपीलार्थीगण शम्भु चरण बोबोंगा एवं विभीषण बोबोंगा की उचित रूप से ही दोषसिद्ध किया है।

13. जहाँ तक कि अन्य अपीलार्थीगण, अर्थात् रबी बोबोंगा एवं नन्दलाल बोबोंगा का सम्बन्ध है, ये कभी भी मृतक पर कोई उपहति कारित कर चुके प्रतीत नहीं होते हैं। हलाँकि अ॰ सा॰ 5 द्वारा यह अभिकथन किया गया है कि रबी बोबोंगा ने मृतक पर लोहे की सरिया के पिछले हिस्से से प्रहार किया और यह भी अभिकथन किया गया है कि अपीलार्थी, नन्दलाल बोबोंगा ने अन्य अभियुक्तों के साथ मृतक पर मुक्के, थप्पड़ एवं पत्थर के एक टुकड़े से प्रहार किया। परन्तु डॉक्टर द्वारा इस प्रकार की कोई संगत उपहति नहीं पाई गई है और इसलिए आसानी से यह माना जा सकता है कि इन्होंने कोई प्रत्यक्ष कृत्य कारित नहीं किया है, परन्तु फिर भी अन्य अभियुक्तों की मण्डली में होने के तर्क से वे लोग दोषी अभिनिर्धारित किए जा सकते हैं यदि ये अन्य अभियुक्तों के साथ मृतक की हत्या कारित करने के लिए एक ही आशय शेयर करते हुए पाए जाते हैं। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 34 के अधीन यथा स्थापित किया गया सामान्य आशय, दाण्डिक कार्य को कारित करने में संयुक्त दायित्व के सिद्धांत का समावेश करता है एवं उस दायित्व का सार सामान्य आशय का अस्तित्व है। अन्य शब्दों में, सामान्य आशय पूर्व नियोजित योजना का अस्तित्व मिलकर कार्य करने में लागू होता है एवं यह या तो आचरण या परिस्थितियों या फिर किसी अन्य अपराध में लिप्त किए जाने वाले तथ्य से सिद्ध की जानी है। इसलिए, हमें इसपर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या मामले में उपस्थित परिस्थितियाँ अन्य व्यक्तियों के साथ इन दो अपीलार्थीगण के सामान्य उद्देश्य शेयर करने के लिए संकेत करने का सुझाव देते हैं। अ॰ सा॰ 5 के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि जब मृतक को अन्य अभियुक्त द्वारा छेड़ा गया था, तब अपीलार्थी रबी बोबोंगा धनुष-बाण के साथ तथा लोहे की सरिया के साथ भी आया एवं इसी प्रकार, अपीलार्थी नन्दलाल बोबोंगा अपने हाथ में चाकू लिए दौड़ता हुआ आया, परन्तु वे मृतक पर उन हथियारों से जो वे लिए हुए थे, उपहति कारित करते हुए कभी भी प्रतीत नहीं होते है, बल्कि मामले में उत्पन्न परिस्थितियाँ यह इंगित करती है कि विभीषण बोबोंगा एवं शम्भू चरण बोबोंगा सामान्य आशय शेयर कर रहे थे क्योंकि अभियोजन मामले के अनुसार, विभीषण बोबोंगा अपने हाथ में फरसा लिए हुए आया परन्तु शम्भूचरण बोबोंगा ने विभीषण बोबोंगा के हाथों से फरसा ले लिया और एक प्रहार किया, तदुपरि विभीषण बोबोंगा ने उसके हाथ से फरसा वापस लिया और तब मृतक के गर्दन एवं सिर पर तीन प्रहार किए। तत्पश्चात जब मृतक की मृत्यु हो गई, तब विभीषण बोबोंगा ने यह घोषणा की कि उसने अपना वादा निभाया है। इसलिए, परिस्थितियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि केवल वही दो व्यक्ति सामान्य आशय शेयर कर रहे थे और इन परिस्थितियों में अपीलार्थीगण, अर्थात रबी बोबोंगा एवं नन्दलाल बोबोंगा निश्चित ही रूप से संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं।

14. तद्नुसार, अपीलार्थीगण शम्भू चरण बोबोंगा एवं विभीषण बोबोंगा के विरूद्ध पारित दोषसिद्धि का आदेश एवं दण्डादेश एतद् द्वारा संपुष्ट किया जाता है जबकि अपीलार्थीगण रवि बोबोंगा

एवं नन्दलाल बोबोंगा के विरूद्ध पारित दोषसिद्धि का आदेश एवं दण्ड एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। तद्नुसार, उनलोगों को उनके विरूद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है एवं जमानत बंध पत्रों के दायित्व से मुक्त किए जाते हैं।

15. परिणामतः, यह अपील अंशतः अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; Mhñ thñ vkjñ iVuk;d] U;k;efr

संजय सिन्हा एवं अन्य (2007 में)

प्रवीण कुमार एवं एक अन्य (10350 में)

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य (दोनों में)

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2007 वर्ष 1994 (P) साथ में 10350 वर्ष 1996 (P).
20 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

(क) सेवा विधि–वेतनमान–यह शिकायत कि याचीगण वरीय कार्यपालक संवर्ग के समान वेतनमान एवं प्रास्थिति के हकदार हैं–अभिनिर्धारित, किसी व्यक्ति को अगले उच्चतर ग्रेड में लाये जाने से पहले, उसे नियमावली के अनुसार अपेक्षित वर्षों की संख्या के लिए ठीक निम्नतर पद पर रहना होता है–याचीगण की नियुक्ति L-VI के उच्चतर ग्रेड में की गयी थी जिसे उनलोगों ने अपने नियोजन की संविदा के निबन्धनों में स्वीकार किया था–याचीगण वरीय कार्यपालक संवर्ग के सदृश वेतनमान के हकदार नहीं हैं। (पैरा 11, 13 एवं 14)

(ख) बिहार फैक्ट्री नियमावली, 1950—नियम 62B(1)—सुरक्षा अधिकारी–याचीगण नियम 62(B) (1) के निबंधनों में कार्यपालक संवर्ग के अधिकारियों के समान प्रास्थिति का दावा कर रहे हैं–अभिनिर्धारित, यह प्रास्थिति याचीगण को फैक्ट्री अधिनियम के अनुरूप प्रदान किया गया था एवं नियमावली के प्रयोजनार्थ वे लोग सामान्य अधिक्रम में कार्यपालक संवर्ग में रखे जाने का दावा नहीं कर सकते हैं और न ही वे कार्यपालक संवर्ग के समान वेतन एवं भत्तों का हकदार होने का दावा कर सकते हैं। (पैरा 11, 12 एवं 24)

निर्णयज विधि.–AIR 1978 SC 17; 1997(7) SCC 24; (1998) 5 SCC 87; (2006)6 SCC 654; (1999)6 SCC 439

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Mehta, Krishna Shankar, For the Petitioner; JC to G.P.-II, For the Respondent Nos. 1 to 3; Mr. Ananda Sen, For the Respondent Nos. 4 & 5.

डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति.–इन सभी रिट आवेदनों में जैसा कि याचीगण द्वारा किया गया है, प्रत्यर्थी बोकारो स्टील प्लाँट, बोकारो स्टील सिटी, बोकारो (BSL) के अधीन सुरक्षा निरीक्षकों/सुरक्षा अधिकारियों के पद पर याचीगण को नियुक्त किये जाने की तिथि से याचीगण को अधिकारियों के E-II संवर्ग में 3100-5150/- रु॰ का वेतनमान मंजूर करने का निर्देश प्रत्यर्थी सेल को देने की प्रार्थना की गयी है।

2. याचीगण के मामले के तथ्य संक्षेप में ये हैं कि राज्य सरकार ने दिनांक 13.2.1989 की अधिसूचना (परिशिष्ट-5) द्वारा प्रत्यर्थी बोकारो स्टील प्लाँट (BSL) में सुरक्षा अधिकारियों के 26 पदों को अधिसूचित किया था। राज्य सरकार का विनिश्चिय मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक द्वारा बोकारो स्टील प्लाँट (BSL) के प्रबन्धन को संप्रेषित किया गया था। ऐसा करते समय, मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक ने बिहार फैक्ट्री नियमावली, 1950 के नियम 62B(2) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करके यह भी सूचित किया

था कि अपेक्षित अनुभव की अर्हता में शिथिलीकरण उन योग्य अभ्यर्थियों को भी प्रदान किया जायेगा जो वृत्तिक रूप से सक्षम पाये गये थे। मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक द्वारा बोकारो स्टील प्लाँट (BSL) के प्रबंधन से छूट के प्रदाय हेतु आवेदन पेश करने एवं साथ ही सुरक्षा अधिकारियों की नियुक्ति करने से पूर्व छूट अभिप्राप्त करने के लिए भी एक निर्देश निर्गत किया गया था।

उत्तर में, प्रत्यर्थी BSL ने रोजगार कार्यालय से पात्र अभ्यर्थियों का नाम आमंत्रित किया। सुरक्षा अधिकारियों की नियुक्ति हेतु चयन प्रक्रिया अपनाया एवं पूरा किया गया था एवं बिहार फैक्ट्री नियमावली के नियम 62B(2) के उपबन्धों के निबन्धनों में मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक द्वारा नामों के अनुमोदन के उपरांत वर्तमान याचियों में से चार की नियुक्ति BSL के अधीन की गयी थी। बाद में, उसी प्रक्रिया को अपनाकर पाँच अन्य याचियों को भी सुरक्षा अधिकारियों के पद पर नियुक्त किया गया था।

3. उनकी नियुक्ति के उपरांत एक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या BSL के अधीन नियुक्त सुरक्षा अधिकारी अपेक्षित योग्यता धारण करते थे। मामले को पटना उच्च न्यायालय, राँची पीठ के समक्ष सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 152 वर्ष 1994 (R) के माध्यम से एक रिट आवेदन में उठाया गया था। न्यायालय ने इस मुद्दे पर मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक की एक जाँच रिपोर्ट अभिप्राप्त किया। मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक द्वारा पेश रिपोर्ट ने यह अभिपुष्टि किया कि याचीगण अर्हित सुरक्षा अधिकारी हैं। रिपोर्ट के क्रम सं॰ 29 से 39 पर नामजद याचीगण के सम्बन्ध में, यह अभिकथित किया गया था कि उनलोगों ने औद्योगिक सुरक्षा में जो राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है, डिप्लोमा उत्तीर्ण किया है।

4. याचीगण की शिकायत यह है कि उन्हें मात्र फैक्ट्री निरीक्षक के तौर पर पदाभिहित करके प्रत्यर्थी BSL का प्रबन्धन उन्हें सुरक्षा अधिकारियों के वेतनमान से इनकार कर रहे हैं। प्रारम्भ से ही उनके बारम्बार माँगों के बावजूद एवं फैक्ट्री निरीक्षक/उप मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक द्वारा निर्गत अनुशंसा पत्र के बावजूद, BSL का प्रत्यर्थी प्रबन्धन वेतन असंगतता को दूर करने में असफल हुआ था एवं वे तत्सम्बन्धी पद के अधिकारियों के वेतनमान के समतुल्य वेतनमान का भुगतान नहीं कर रहे हैं।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ मेहता ने निवेदन किया कि याचीगण के दर्जे के समतुल्य पद धारण करने वाले अधिकारियों के वेतनमान के समान वेतनमान याचीगण को भुगतान करने से इनकार करना अविधिमान्य, मनमाना एवं विभेदकारी है। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि बिहार फैक्ट्री नियमावली, 1950 का नियम 62B(1) ''सुरक्षा अधिकारी'' को परिभाषित करता है एवं इससे अभिप्रेत है ऐसा कोई भी अधिकारी चाहे जिस किसी पदनाम से वह जाना जाता हो, जो नियमावली में विहित योग्यता धारण करता हो। सुरक्षा अधिकारियों की ऐसी योग्यता को नियम 62B(2) में विहित किया गया है एवं यह नियम उपबंध करता है कि मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक उप-नियम (2) की अपेक्षाओं में छूट प्रदान कर सकता है यदि आवश्यक योग्यता एवं अनुभव रखने वाले उपयुक्त व्यक्ति नियुक्ति हेतु उपलब्ध नहीं हों। नियम 62(B) का उप-नियम (3) सुरक्षा अधिकारियों की शर्त्तों को अधिकथित करता है एवं नियम 62B के उप-नियम (3) का खण्ड (b) प्रावधान करता है कि सुरक्षा अधिकारियों को अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन प्रभावकारी रूप से करने में सक्षम बनाने के लिए समुचित प्रास्थिति दिया जाय। नियम 62B(3) का खण्ड (C) यह प्रावधान करता है कि मुख्य सुरक्षा अधिकारियों सहित सुरक्षा अधिकारियों को मंजूर किये जाने वाले वेतनमान एवं भत्ते फैक्ट्री में तत्सम प्रास्थिति के अन्य अधिकारियों के वेतनमान एवं भत्ते के तुल्य होने चाहिए।

विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि दिनांक 6.3.1987 के आदेश द्वारा, प्रत्यर्थी BSL ने BSL में कार्यरत अधिकारियों को तीन समूहों अर्थात् समूह A, B एवं C के संवर्ग का वर्णन किया

है। दिनांक 12.10.1990 के कार्यालय आदेश (उपाबन्ध-11) द्वारा सेल ने कार्यपालकों का वेतनमान संशोधित किया था। वेतन पुनरीक्षण के अनुसार, E-II ग्रेड कार्यपालकों का पूर्ववर्ती वेतनमान 1500-2340/- रु॰ से 3100-5150/- रु॰ संशोधित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि चूँकि याचीगण को BSL में कार्यरत सुरक्षा अधिकारी होने की अभिस्वीकृति दी गयी थी, इसलिए वे लोग उसी वेतनमान को प्राप्त करने के अधिकारी हैं क्योंकि यह समान प्रास्थिति के अधिकारियों अर्थात् E-II ग्रेड कार्यपालक को भुगतान किया जा रहा है।

विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि 'BSL' भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन एक 'राज्य' है एवं इस प्रकार सरकार के अधीन नियोजन प्रास्थिति का मामला है न कि संविदा का। चूँकि बिहार फैक्ट्री नियमावली के नियम 62B(3)(b) के सांविधिक प्रावधान के अधीन मुख्य सुरक्षा अधिकारी एवं सुरक्षा अधिकारियों की प्रास्थिति को परिभाषित किया गया है, इसलिए इस प्रावधान के सिद्धांत पूर्ण रूप से याची पर लागू होते हैं एवं इस प्रकार प्रत्यर्थीगण, याचीगण को यह प्रास्थिति प्रदान करने एवं नियम 68 के उप-नियम 3(c) के निबन्धनों में अधिकारियों से संबद्ध तत्सम वेतनमान प्रदान करने को कर्त्तव्यबद्ध हैं। अपने तर्क को सुदृढ़ करने के लिए, विद्वान अधिवक्ता इस परिप्रेक्ष्य में **दिनेश चन्द्र संगमा बनाम आसाम राज्य के AIR 1978 SC 17** में प्रकाशित मामले में एवं **आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सईद यूसूद्दीन अहमद के 1997 (7) SCC 24** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय निर्दिष्ट करते हैं।

मोहिन्दर सिंह बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, AIR 1989 SC 1367 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि सर्वोच्च न्यायालय ने शब्द अधिकारी को परिभाषित किया है एवं अभिनिर्धारित किया है कि अधिकारी कर्मचारी के दर्जे से उच्चतर होता है। विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि उपरोक्त निर्णय के आलोक में याचीगण की प्रास्थिति गैर-कार्यकारी ग्रेड (कर्मकार) की नहीं हो सकती है। उनलोगों को वेतनमान एवं प्रास्थिति के प्रयोजनार्थ मात्र नियम 62B(3)(b) एवं (c) के उपबन्धों के अनुरूप ही नियंत्रित किया जाना है। यह भी तर्क किया गया कि विधिक अधिकार या तो आचरण या सम्मति द्वारा अधित्यजित नहीं किया जा सकता है जैसा कि **(1998)5 SCC 87** में प्रकाशित **सचिव सह-मुख्य अभियंता बनाम हरि ओम शर्मा एवं अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है। विद्वान अधिवक्ता यह भी स्पष्ट करते हैं कि वर्तमान मामले में, याचीगण उचित वेतन निर्धारण एवं वेतन असंगतता को दूर करने का दावा करते हुए अपनी व्यथा निरन्तर उठाता रहा है एवं प्रत्यर्थी BSL प्रबन्धन अधित्यजन, उपमति एवं विबंध के अभिवाक् पर भी याची के अधिकार का प्रत्याख्यान नहीं कर सकता है।

6. BSL के प्रत्यर्थी प्रबन्धन की ओर से एक प्रति शपथ-पत्र दाखिल किया गया है, जिसमें याचीगण के सम्पूर्ण दावे का प्रत्याख्यान एवं इसपर विवाद किया गया है। प्रत्यर्थी BSL के विद्वान अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन ने यह दिया है जैसा कि रिट याचिका से प्रतीत होगा, कि याचीगण E-II संवर्ग के कार्यपालक वेतनमान का दावा करते रहे हैं जो कि उनलोगों के अनुसार E-II ग्रेड के कार्यपालकों की प्रास्थिति के समतुल्य प्रास्थिति का है।

विद्वान अधिवक्ता यह स्पष्ट करते हैं कि यह विवादित नहीं है कि याचीगण को 1550-53-1921-60-2341/- रु॰ के वेतनमान में वर्ष 1990 में सुरक्षा निरीक्षक के तौर पर नियुक्त किया गया था। उनलोगों के अपने-अपने नियुक्ति पत्रों में यथा इंगित वेतनमान नियत करते समय, कहीं पर भी यह घोषित अथवा अभिकथित नहीं किया गया था कि याचीगण किसी कार्यपालक ग्रेड अथवा E-II ग्रेड में नियुक्त हैं। वेतनमान जो याचीगण को उनकी नियुक्ति के समय पर उसको प्रयोज्य बनाया एवं भुगतान किया गया था, L-VI ग्रेड का था। 1.1.1992 से पूर्व, L-VI का वेतनमान 1550-53-1921-60-2341/- रु॰ था। 1.1.1992 के प्रभाव से वेतनमान संशोधित होने पर, पुनरीक्षित वेतनमान 2390-81-2957-90-2587/- हो गया।

जब ऐसा था, तो वर्ष 1991 में E-II ग्रेड कार्यपालक का वेतनमान 3700 से 5990/- रु॰ था। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि उक्त तथ्य पर्याप्त रूप से प्रदर्शित करता है कि उनकी नियुक्ति के समय E-II ग्रेड के अधिकारियों के वेतनमान एवं L-VI ग्रेड के अधीन अधिकारियों का वेतनमान पूर्णतया भिन्न था एवं समान नहीं था एवं इस प्रकार, याचीगण यह दावा नहीं कर सकते कि उनकी आरम्भिक नियुक्ति E-II ग्रेड कार्यपालक में हुई थी।

विद्वान अधिवक्ता यह भी तर्क करते हैं कि याचीगण की सेवा के निबंधन एवं शर्त्त नियोजन की संविदा द्वारा शासित होंगे। कंपनी की सेवा नियमावली के अधीन किसी व्यक्ति को उस पद से तुरन्त नीचे का पद अवश्य ही धारण करना चाहिये जिसके लिये उच्चतर ग्रेड में प्रोन्नति के लिए ईप्सा की जा रही है। याचीगण की प्रारंभिक नियुक्ति L-VI ग्रेड में हुई थी। E-II ग्रेड का दावा करने से पहले उस व्यक्ति को प्रत्यर्थी कंपनी के नियमावली में यथा विहित अनुबद्ध समयावधि के लिए उक्त E-II ग्रेड में अवश्य ही सेवा करना चाहिए। सामान्य अनुक्रम में, याचीगण को जब एवं जैसे ही वे पात्र हो जायें, कार्यपालक ग्रेड में प्रोन्नत किया जा सकता है। याचीगण के कार्यपालक संवर्ग के यहाँ तक कि निम्नतम प्रवर्ग में भी प्रवेश नहीं कर चुकने के कारण, वे लोग E-II ग्रेड अधिकारियों के वेतनमान में समानता का दावा नहीं कर सकते हैं।

विद्वान अधिवक्ता यह भी स्पष्ट करते हैं कि फैक्ट्री नियमावली के नियम 62B (3) के अनुरूप प्रदान की जाने वाली प्रास्थिति एवं इसमें प्रतीत होने वाला पद ''तत्सम प्रास्थिति'' से अभिप्रेत है अन्य विभागों के L-VI ग्रेड में व्यक्तियों के तत्सम प्रास्थिति। इस प्रकार, नियमावली के प्रयोजनार्थ प्रास्थिति प्रदान करने से याचीगण कंपनी के सामान्य अधिक्रम में कार्यपालक संवर्ग में स्वत: नहीं आ जाते हैं। अपने तर्क को सुदृढ़ करने के लिए, विद्वान अधिवक्ता **भेल एवं एक अन्य बनाम बी॰ के॰ विजय एवं अन्य, 2006 (2) SCC, 654** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट एवं इसपर विश्वास व्यक्त किया है।

7. परस्पर विरोधी तर्कों से, स्वीकृत तथ्य जो प्रतीत होता है, निम्नलिखित है :–

(i) याचीगण को रोजगार कार्यालय से उनके नाम आमंत्रित करने के उपरांत प्रत्यर्थी BSL के अधीन वर्ष 1990 में किसी समय नियुक्त किया गया था। ऐसी नियुक्ति बिहार फैक्ट्री नियमावली के नियम 62B के उपबन्धों के अधीन मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक द्वारा प्रदत्त छूट के अधीन, अनुभव से सम्बन्धित योग्यता को शिथिलीकृत करके की गयी थी।

(ii) उनकी नियुक्ति के समय, याचीगण को फैक्ट्री निरीक्षक के तौर पर पदाभिहित किया गया था एवं उनका वेतनमान 1550-53-1921-60-2341/- रु॰ नियत किया गया था जिसे याचीगण ने स्वीकार किया था एवं 1.1.1992 के प्रभाव से इसे संशोधित करके, 2390-81-2957-90-2587/- रु॰ नियत किया गया था।

(iii) प्रत्यर्थी BSL के अधीन कार्यपालकों के वेतन संरचना के सम्बन्ध में इसके द्वारा पेश किए गए चार्ट (उपाबंध–3) के अनुसार, 1.1.1991 से पूर्व E-II ग्रेड के कार्यपालकों का वेतनमान 3100-130-3750-140-5150/- रु॰ था एवं 1.1.1991 के प्रभाव से पुनरीक्षित करके, यह 3700-140-4400-150-5990/- रु॰ नियत पर किया गया था।

उक्त तथ्य अविवादित हैं। याचीगण का यह तर्क कि उनलोगों के आरंभिक नियुक्ति के समय, उनका वेतनमान E-II ग्रेड के कार्यपालकों के समतुल्य था, सत्य होना प्रतीत नहीं होता है।

8. याचीगण कार्यपालक संवर्ग के अधिकारियों के अनुरूप और वह भी E-II ग्रेड के अधिकारियों के साथ समतुल्य प्रास्थिति का दावा करते हुए फैक्ट्री नियमावली के नियम 62B(2)(b) के उपबन्धों पर अधिक बल दे चुके प्रतीत होते हैं।

9. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों से एवं साथ ही बिहार फैक्ट्री नियमावली के अधीन प्रावधानों से, सुरक्षा अधिकारी को मात्र फैक्ट्री अधिनियम के प्रयोजनार्थ नियुक्त किया जाता है एवं फैक्ट्री नियमावली के नियम 62(B) के उपबन्धों के अधीन, उसे फैक्ट्री में वरीय कार्यपालक, विभागीय प्रमुख की प्रास्थिति दी जानी है। जैसा कि इसी नियमावली में स्पष्ट किया गया है, ऐसी प्रास्थिति, इसलिए प्रदान की गयी है क्योंकि वह फैक्ट्री के मुख्य कार्यपालक के अधीन पदस्थापित होगा एवं सुरक्षा पहलुओं से सम्बन्धित मामलों में मात्र उसे ही रिपोर्ट करेगा, अन्य अधिकारी उसके निर्देशों से आबद्ध होंगे।

प्रश्न यह है कि क्या एक व्यक्ति जो फैक्ट्री अधिनियम के प्रयोजनार्थ एक विशिष्ट प्रास्थिति का हकदार हो सकता है, अपने नियोजन की संविदा के निबंधनों पर विचार किए बिना अन्य अधिकारियों की प्रास्थिति के साथ समानता का दावा कर सकता है। एक सदृश प्रश्न उद्‌भूत होगा कि क्या याचीगण फैक्ट्री अधिनियम के अधीन प्रास्थिति द्वारा अथवा अपने नियोजन की संविदा के अधीन शासित होगा।

BHEL बनाम बी॰ के॰ विजय (ऊपर) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक सदृश विवाद्यक विचारणार्थ आया। अभिव्यक्ति ''प्रास्थिति'' के लेक्सिकॉन अर्थ के संदर्भ में परिभाषित करके एवं **इंडियन पेट्रोकेमिकल्स कार्रपोरशन लि॰ बनाम श्रमिक सेना (1999)6 SCC 439** के मामले में अपने पूर्ववर्ती निर्णय को निर्दिष्ट करके सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित रूप से अभिनिर्धारित किया है:–

> ''मात्र इस कारण से एक व्यक्ति को एक विशिष्ट प्रास्थिति दी गयी है, इसका अर्थ यह नहीं होगा कि उसकी सेवा के अन्य निबंधन एवं शर्तें उस क्षेत्र में प्रवृत्त अन्य परिनियम (मों) या नियोजन की संविदा द्वारा शासित नहीं होंगे।''

10. वर्तमान मामले में, याचीगण की प्रारंभिक नियुक्ति के समय उन्हें फैक्ट्री निरीक्षक के तौर पर पदाभिहित किया गया था, जो कि उनलोगों द्वारा की गयी सेवा की प्रकृति के आलोक में एवं मुख्य फैक्ट्री निरीक्षक द्वारा उनलोगो की अर्हता से सम्बन्धित छूट के आलोक में सुरक्षा अधिकारियों की प्रास्थिति का होगा। याचीगण ने सभी व्यवहारिक प्रयोजनों के लिए अभिस्वीकृति दी थी कि वे लोग प्रात्यर्थी BSL के अधीन नियोजन की संविदा द्वारा शासित होंगे। उनलोगों ने उस वेतनमान को जो उनके लिए नियत किया गया था एवं उनलोगों को यथा प्रदत्त L-VI का ग्रेड एवं वेतनमान भी स्वीकार किया था। जैसा कि प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रदर्शित किया गया है, याचीगण को संदत्त आरंभिक वेतन कार्यपालक अधिकारियों के E-II ग्रेड का वेतन नहीं था। बल्कि, यह एक निम्नतर वेतनमान पर नियत किया गया था।

11. जैसा कि **BHEL बनाम बी॰ के॰ विजय (ऊपर)** के मामले में सम्प्रेक्षित किया गया है, यह कहना एक बात है कि फैक्ट्री अधिनियम के अधीन इसके प्रयोजनों के लिए एक प्रास्थिति प्रदान की गयी है परन्तु यह कहना एक अन्य बात होगा कि इस क्षेत्र में प्रवृत्त परिनियम अथवा नियोजन की संविदा के निबंधनों में वेतन, भत्ते एवं अन्य प्रसुविधाओं का भुगतान नहीं किया जाना है। इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी BSL के मानक कार्यपालक पदनाम के चार्ट के अनुसार, E-II ग्रेड वरीय कार्यपालकों के लिए एक ग्रेड है। यह इसे भी इंगित करता है कि किसी व्यक्ति को अगले उच्चतर ग्रेड में लाये जाने के पूर्व, उसे नियमावली के अनुसार वर्णित वर्षों की संख्या तक ठीक उससे निम्नतर ग्रेड में रहना पड़ता है। यदि फैक्ट्री अधिनियम के अनुसार यह प्रास्थिति प्रदान भी किया गया था तो भी इसके अधीन नियमावली के प्रयोजनार्थ, याचीगण प्रत्यर्थी कंपनी के सामान्य अधिक्रम में कार्यपालक संवर्ग में लाये

जाने का दावा नहीं कर सकता है और न ही वे कार्यपालक संवर्ग के समान वेतन एवं भत्तों के हकदार होने का दावा कर सकते हैं। याची के प्रास्थिति की प्रकृति एवं तत्सम वेतनमान की गणना मात्र उसी संवर्ग में की जानी है जिसमें उनलोगों को सेवा में नियुक्ति किया गया था।

12. याची के विद्वान अधिवक्ता मामले के तथ्यों के आधार पर **BHEL (ऊपर)** के मामले में निर्णय में भेद करना चाहते हैं। क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय का उपरोक्त निर्णय उसमें के याची के वरीय कार्यपालक की प्रास्थिति पर उसकी प्रोन्नति के दावे से सम्बन्धित है।

13. संक्षेप में, **BHEL (ऊपर)** के मामले में यथा अधिकथित निर्णयाधार शब्द ''प्रास्थिति'' के विवक्षा के सम्बन्ध में है जिसे एक सुरक्षा अधिकारी के तौर पर कार्यरत व्यक्ति को फैक्ट्री अधिनियम के प्रयोजनार्थ दिया जा सकता है। यह इस परिप्रेक्ष्य में है कि इसमें के रिट याची द्वारा उठाया गया विवाद की उसे अपने नियोजन के निबन्धनों एवं शर्तों द्वारा शासित नहीं किया जा सकता है एवं उसे उस परिनियम द्वारा शासित किया जायेगा जो प्रास्थिति प्रदान किये जाने का प्रावधान करता है एवं नियोजक के अधीन अन्य अधिकारियों की प्रास्थिति के तत्सम वेतनमान पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह घोषणा करते हुए विवेचित एवं निस्तारित किया गया है कि किसी विशिष्ट अधिनियम के प्रयोजनार्थ किसी विशिष्ट प्रास्थिति के प्रदाय का अभिप्राय यह नहीं है कि नियुक्ति को उसके नियोजन की संविदा के निबन्धनों एवं शर्तों द्वारा शासित नहीं किया जायेगा। इसलिए, यह निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों में अत्यधिक संगत एवं प्रयोज्य भी है।

14. दिनेश चन्द्र संगमा (ऊपर) एवं **आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य (ऊपर)** के मामले में निर्णय मात्र इसी बात पर जोर देता है कि नियम 62B (3)(b) के अधीन, जो कि मुख्य सुरक्षा अधिकारी एवं सुरक्षा अधिकारियों की प्रास्थिति को परिभाषित करता है, एक बार यदि किसी व्यक्ति को कार्यालयी पद पर नियुक्त कर दिया जाता है, तो सरकारी सेवक कानून या कानूनी नियमावली द्वारा शासित एवं जिसके निबन्धनों में ऐसे व्यक्ति की प्रास्थिति एवं वेतनमान को उपरोक्त नियमावली में अंतर्विष्ट कानूनी प्रावधानों द्वारा शासित किया जाना है, प्रास्थिति एवं अधिकार अर्जित कर लेता है। ये सभी निर्णय इसके अतिरिक्त यह घोषित नहीं करते हैं कि ऐसे व्यक्तियों को नियोजक के अधीन कार्यरत कर्मचारियों के किसी विशिष्ट संवर्ग के साथ समानता दिया जाना है। दूसरी ओर, **BHEL (ऊपर)** के मामले में विनिश्चय के निबंधनों में, याचीगण को उनके नियोजन की संविदा के निबन्धनों के अनुरूप मार्गदर्शित किया जाना है एवं सामान्य अधिक्रम में, कार्यपालक ग्रेड के लिए उनके दावे को मात्र नियोजक द्वारा तय नियमावली के अनुरूप ही मार्गदर्शित किया जाना है।

स्वीकार्यत:, याचीगण की आरम्भिक नियुक्ति के समय, उनलोगों को L-VI के सर्वोच्च ग्रेड में रखा गया था, जिसे उनलोगों ने नियोजन की अपनी संविदा के निबंधनों में स्वीकार किया था। कार्यपालक संवर्ग में प्रोन्नति का अवसर उनलोगों के लिए समाप्त नहीं हुआ है यद्यपि ऐसी प्रोन्नति सेवा एवं अनुभव की निश्चित अवधि के आधार पर एवं नियोजक द्वारा विहित नियमावली के अनुरूप अर्जित की जा सकती है। पुनरावृत्ति के लिए, फैक्ट्री अधिनियम के अधीन नियमावली के प्रयोजनार्थ प्रास्थिति प्रत्यर्थी कंपनी के सामान्य अधिक्रम में वरीय कार्यपालक संवर्ग में याचीगण को स्वत: नहीं लाता है और न ही यह वरीय कार्यपालक संवर्ग में वेतन एवं भत्तों इत्यादि का दावा करने का हकदार याचीगण को बनाता है।

15. उपरोक्त विवेचनों के आलोक में, मैं इन सभी रिट आवेदनों में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ एवं इसे खारिज किया जाता है।

ekuuh; Mhñ thñ vkjñ iVuk;d] U;k;efr

मेसर्स जय महावीर आटा मिल, जिला राँची

बनाम

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड, राँची एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6186 वर्ष 2008. 19 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

भारतीय विद्युत अधिनियम, 2003—धाराएँ 126, 135 एवं (विद्युत आपूर्त्ति संहिता) विनियमन, 2005—खण्ड 13.4.3.—मीटर की सीलों के साथ छेड़छाड़ करके विद्युत की चोरी–यह तथ्य स्पष्टतः स्थापित कि यह मीटर में छेड़छाड़ करने और मीटर पठनों में उलट फेर का मामला था और यह दोषपूर्ण मीटर का या त्रुटिपूर्ण पठन देने वाले दोषपूर्ण मीटर का मामला नहीं था–विनियमों के खण्ड 13.4.3 की कोई प्रयोज्यता नहीं है एवं मीटर को तीसरे अभिकरण द्वारा परीक्षित किए जाने की आवश्यकता है–याची के परिसर को विद्युत आपूर्त्ति का असंयोजन प्राधिकार के अंतर्गत है–तथापि, क्षति के परिकलन के संबंध में याची को अभ्यापति दाखिल करने की स्वतंत्रता दी गई। (पैरा 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. M.S. Mittal, For the Petitioner; Mr. Rajesh Shankar, For the Respondents.

आदेश

याची का एक आटा मिल है। फैक्टरी याची संख्या 2 की जमीन पर स्थापित की गई थी, जिसे याची संख्या 1 को पट्टे पर दिया गया था। समझौते के निबंधनों के अनुसार, फैक्टरी का विद्युत संयोजन भू-स्वामी, अर्थात्, याची संख्या 2 के नाम से लिया गया था, यद्यपि विद्युत के उपभोग के लिए मालिक अर्थात् विपत्रों का भुगतान याची संख्या 1 द्वारा किया जाना है।

विद्युत उपभोग की यूनिटों को अभिलिखित करने के प्रयोजनों के लिए विद्युत मीटरों को याची संख्या 1 के परिसरों में प्रत्यर्थी-जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ द्वारा संस्थापित किया गया था।

18.10.2008 को प्रत्यर्थी-विद्युत बोर्ड के अधिकारियों ने याची संख्या 1 के फैक्टरी परिसर का जाँच किया और इसलिए, सब-स्टेशन पर संस्थापित मीटर में एक सिम कार्ड और मोडम संस्थापित किया गया था और इस प्रभाव की एक रिपोर्ट बोर्ड के पदाधिकारियों द्वारा तैयार की गई थी, जिसपर उपभोक्ता का हस्ताक्षर भी प्राप्त किया गया था। एक महीने उपरांत 20.11.2008 को प्रत्यर्थी-बोर्ड के अधिकारियों के एक दल ने याची संख्या 1 के फैक्टरी परिसर का दौरा किया और फैक्टरी परिसर में संस्थापित मीटर का निरीक्षण किया। निरीक्षण पर, अधिकारीगण ने यह पाने का दावा किया कि मीटर के बॉडी सीलों के साथ छेड़-छाड़ की गई थी और मीटर-बॉडी में एक इलेक्ट्रॉनिक सर्किट भी प्रच्छन्न रूप से लगाया गया पाया था। इस अभिकथन पर कि उपभोक्ता ने वास्तविक यूनिट उपयोग को छिपाने के लिए मीटर बॉडी सीलों के साथ छेड़छाड़ करके बेईमानी से इलेक्ट्रॉनिक्स परिपथ को संस्थापित किया था और इस प्रकार विद्युत की चोरी कारित की थी और इस आधार पर कि विद्युत की तात्पर्यित चोरी के कारण बोर्ड को 15,39,000/- रुपए तक की हानि कारित की थी, जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के अधिकारीगण द्वारा एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। याची संख्या 1 के फैक्टरी परिसर में 20.11.2008 को तत्परता से विद्युत संयोजन असंयोजित कर दिया गया।

2. प्रथम सूचना रिपोर्ट में यथा निहित अभिकथनों को चुनौती देते हुए और विद्युत आपूर्त्ति के असंयोजन करके अवैधानिक मनमाना और झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड द्वारा निर्गत नियमों एवं विनियमों

के प्रावधानों के विरूद्ध बताते हुए याची वर्तमान रिट आवेदन दाखिल किया है। इस प्रार्थना के साथ कि प्रत्यर्थी-बोर्ड को याची को विद्युत संयोजन तुरन्त बहाल करने के लिए एक निर्देश दिया जाए और (विद्युत आपूर्त्ति संहिता) विनियमनों 2005 के अधीन झारखण्ड राज्य विद्युत विनियामक आयोग द्वारा निर्गत विनियमनों के खण्ड 13.4 में अभिकल्पित अपेक्षित मानदंड को पुरा करने के उपरांत ही विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 126 के प्रावधानों के निबंधनों में तात्पर्यित क्षति औपबंधिक आकलन करने के लिए भी निर्देश देने की प्रार्थना की गई है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री एम॰ एस॰ मित्तल निवेदन करेंगे कि विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 50 के साथ पठित धारा 181 की उप-धारा 2 के खण्ड (x) द्वारा शक्तियों का प्रयोग करते हुए झारखण्ड राज्य विद्युत नियामक आयोग, राँची ने दिनांक 27.7.2005 की अधिसूचना निर्गत की थी जिसे दिनांक 28.7.2005 के झारखण्ड राजपत्र असाधारण में प्रकाशित किया गया था, जिसमें (विद्युत आपूर्त्ति संहिता) विनियमन, 2005 के तौर पर ज्ञात इसके विनियम निहित थे। विनियम, अन्य के साथ-साथ मीटरों के परीक्षण एवं अनुरक्षण के लिए प्रक्रियाओं का प्रावधान करते हैं। विनियमनों का खण्ड 13.4 मीटरों के परीक्षण एवं अनुरक्षण हेतु विशेष रूप से प्रावधान करता है विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि जब वितरण लाईसेंसधारक उपभोक्ता के आग्रह पर या अन्यथा विद्युत मीटरों का निरीक्षण करने का आशय करता है। इन आधारों पर कि मीटर दोषपूर्ण है और पठन को सही-सही दर्ज नहीं कर रहा है, तब मीटरों का परीक्षण एक तीसरे अभिकरण द्वारा कराना होगा, जो आयोग द्वारा अनुमोदित होगा। मीटरों का ऐसा परीक्षण करने से पहले उपभोक्ता के अधिकृत प्रतिनिधि को परीक्षण के लिए उपस्थित होने में सक्षम बनाने के लिए उसे मीटर के परीक्षण की तिथि, समय एवं स्थान की सूचना देते हुए सात दिनों की पूर्व नोटिस देनी होती है।

विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि विद्युत अधिनियम की धारा 126 के प्रावधानों, जो हानि के आकलन से संबंधित है, केवल तभी लागू किए जा सकते हैं जब मीटर का नियम 13.4.3 के निबंधनों में विधिवत रूप से परीक्षण हुआ हो। दोषपूर्ण मीटर के परीक्षण रिपोर्ट को पहले प्राप्त किए बगैर अधिनियम की धारा 126 के प्रावधानों के अधीन तात्पर्यित रूप से किया गया कोई भी आकलन पूर्ण रूप से गलत और अवैधानिक है। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी-बोर्ड के अधिकारीगण द्वारा विनियम 13.4.3 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह स्पष्ट किया कि सही बिल प्राप्त करने के प्रयोजनों के लिए उपभोक्ता की ईकाई को विद्युत की आपूर्त्ति करने के लिए J.S.E.B. के उस सब-स्टेशन पर एक मोडेम और सिम कार्ड संस्थापित किया गया था जहाँ से उपभोक्ता को ऊर्जा की आपूर्त्ति की जाती थी और उपभोग की गई यूनिटों को दर्ज करने के लिए उपभोक्ता के परिसर में ऊर्जा मीटर भी संस्थापित किया गया था। बिल बनाने का कार्य सदा सब-स्टेशन पर किए गए मीटर पठन के आधार पर होता है और उपभोक्ता के परिसर में संस्थापित ऊर्जा मीटर में अभिलिखित मीटर पठन के आधार पर नहीं। इसको लेकर अभिनिश्चित करने के लिए कि दोनों पठनों में कोई भिन्नता है या नहीं, दोनों मीटरों के पठन को नोट किया जाता है और किसी भिन्नता के पाए जाने की स्थिति में ही दोनों स्थानों के मीटरों को जाँचा जाता है। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थी-बोर्ड जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के सब-स्टेशन पर संस्थापित मीटरों के पठनों के विवरणों के साथ सामने नहीं आया है, जिससे अन्यथा रूप से स्थापित कर दिया होता कि याची के विरूद्ध प्रत्यर्थी-बोर्ड के निरीक्षक दल के अधिकारियों द्वारा निकाले गए प्रतिकूल निष्कर्ष पूर्णरूपेण दोषपूर्ण और भ्रामक हैं।

विद्युत अधिनियम, 2003 के संशोधित प्रावधानों को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अधिनियम की धारा 126 के प्रावधान उन परिस्थितियों से संबंधित है जहाँ उपभोक्ता पर

विद्युत की चोरी कारित करने का आरोप लगाया जाता है। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम की धारा 126 के प्रावधानों के अधीन, अगर एक आकलन पदाधिकारी इस निष्कर्ष पर आते हैं कि किसी व्यक्ति ने बिजली का अनधिकृत इस्तेमाल किया है, जो वह उपभोक्ता द्वारा देय विद्युत प्रभारो का एक औपबंधिक आकलन करेगा। औपबंधिक आकलन के आदेश उपभोक्ता पर तामीला कराई जाएगी, जो आकलन पदाधिकारी के समक्ष एक अभ्यापति दाखिल करने का अधिकारी होगा, जो उपभोक्ता की सुनवाई का एक उपयुक्त अवसर उपलब्ध कराने के उपरांत, उपभोक्ता द्वारा देय विद्युत प्रभारों के आकलन का एक अन्तिम आदेश पारित करेगा। विद्वान अधिवक्ता यह भी स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम की धारा 126 के प्रावधानों को पठित करने पर, यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट होगा कि अधिनियम की धारा 126 की विभिन्न उप-धाराएं क्षति के औपबंधिक आकलन से प्रारम्भ करते हुए चरणबद्ध प्रक्रिया को अधिकथित करती है, औपबंधिक रूप से आकलित बिल का तामीला उपभोक्ता को प्रस्तुत करना, अपनी अभ्यापतियों का सुपुर्दगी, अगर कोई हो, उसकी अभ्यापतियाँ, याची को सुनवाई का एक उपर्युक्त अवसर देय है और तत्पश्चात् प्रभारों की राशि का अन्तिम आकलन होगा, जिसके उपरांत भुगतान की नोटिस होगी। भुगतान की नोटिस की प्राप्ति उपरांत, प्रभारों का भुगतान न किये जाने की स्थिति में ही बोर्ड को उपभोक्ता की विद्युत आपूर्त्ति वियोजन करने का प्राधिकार हो सकता है।

सील तोड़ने के लिए दण्ड के प्रावधानों को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता भारतीय विद्युत नियमावली, 1956 के नियम 138 को निर्दिष्ट करते हैं और निवेदन करते हैं कि नियम प्रावधान करता है कि विद्युत मीटर पर लगी सील को तोड़ने वाला व्यक्ति जुर्माना से दण्डनीय होगा, जिसे बढ़ाकर 200/- रुपए तक किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता यह भी जोड़ते हैं कि अधिनियम की धारा 135 के प्रावधान, जो अपराधों एवं शास्तियों से संबंधित है, केवल तभी लागू हो सकते हैं। जब उपभोक्ता के विरूद्ध चोरी के आरोप सिद्ध हो जाएं।

विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि याचीगण ने विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 135 के अधीन कोई अपराध कारित नहीं किया है, जो कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में गलत रूप से अभिकथित किया गया है।

विद्वान अधिवक्ता फिर से विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 56 के प्रावधानों को निर्दिष्ट करते हैं, जो झारखण्ड (विद्युत) आपूर्त्ति संहिता, 2005 के खण्ड 11.10.1 के समविषयक में है, और निवेदन करते हैं कि संहिता का खण्ड 11.10.1 विवादित विपत्रों से संबंधित है और एक प्रक्रिया अधिकथित करता है जिसके अनुसार वितरण लाईसेंसी उपभोक्ता को विवादित बिल के भुगतान की मांग के विरूद्ध अपनी अभ्यापति दर्ज करने में सक्षम बनाने के लिए उसे एक पूर्व-नोटिस का तामीला कराने के लिए बाध्य है और बिल की मांगी गई राशि का भुगतान न होने की स्थिति में ही आपूर्त्तिकर्ता विद्युत आपूर्त्ति का वियोजन कर सकता है।

विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि बिद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 126(3) के सांविधिक प्रावधानों के अनुपालन में याची को किसी औपबंधिक आकलन/सुनवाई के नोटिस की तामीला नहीं कराया गया है। विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि अन्यथा भी मोडेम/सिम के संस्थापन की तिथि से याची के फैक्टरी परिसर में किए गए निरीक्षण की तिथि तक कुल अवधि केवल 33 दिन थी और कल्पना के कोई भी विस्तार से यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि 33 दिनों की अवधि के दौरान याची की निम्न टेंशन वाली यूनिट प्रत्यर्थी बोर्ड को लगभग 15.39 लाख रुपए की क्षति कारित कर देगी। विद्वान अधिवक्ता यह भी स्पष्ट करते हैं कि याची का औसत मासिक बिल लगभग 50,000/- रुपए आता है और औसत मासिक बिल के आधार पर भी प्रत्यर्थी-बोर्ड को ऐसी कोई हानि कारित नहीं हो सकती थी जैसा कि प्रत्यर्थी-बोर्ड द्वारा दावा किया गया है।

4. इस रिट आवेदन के लम्बित रहने के दौरान दाखिल अपने संपूरक शपथपत्र के माध्यम से, याची ने सूचित किया है कि वर्तमान रिट आवेदन के दाखिल होने और याची के इस आख्यान के उपरांत कि निरीक्षणों की तिथि को प्रत्यर्थी–बोर्ड द्वारा याची पर औपबंधिक बिल का तामीला नहीं कराया गया था, प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 19.12.2008 के पत्र द्वारा स्पीड–पोस्ट से याची को औपबंधिक बिल भेजा था। औपबंधिक बिल इंगित करता है कि परिकलन 12 महीनों के लिए किया गया है, अर्थात नवम्बर 2007 से अक्टूबर, 2008 तक के लिए, यद्यपि, स्वीकार्यत: मीटर में 18.10.2008 को पहली बार एक सिम कार्ड और मोडेम संस्थापित किया गया था और इस प्रकार केवल एक महीने का प्रभार उद्गृहित किया जा सकता था।

श्री एम॰ एस॰ मित्तल स्पष्ट करते हैं कि याची के पिछले 6 महीनों के औसत यूनिट उपयोग और मासिक परिकलन पर भी मासिक उपयोग को लेकर प्रभार 69,000/- रुपये से अधिक नहीं हो सकते।

5. प्रत्यर्थी–बोर्ड की ओर से प्रति–शपथपत्र दाखिल किया गया है।

प्रत्यर्थी–बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश शंकर ने याची के समूचे दावे को इन्कार करते हुए और उसके प्रश्नाधीन करते हुए निवेदन किया कि याची द्वारा यथा रखे गए आधार पूर्ण रूप से भ्रामक है और वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में गुणों से रहित है। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि याची द्वारा प्रथम दृष्टया बिजली की चोरी करते पाए जाने के उपरांत ही उचित रूप से विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 135 (1-A) के प्रावधानो के अधीन याची की विद्युत आपूर्त्ति असंयोजित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं, कि बोर्ड ने स्थानीय पदाधिकारीगण के साथ बोर्ड मुख्यालय की विद्युत चोरी विरोधी दल (ATP) ने 20.11.2008 को याची के परिसर का दौरा किया और निरीक्षण करने पर पाया कि याची के फैक्टरी परिसर में संस्थापित ऊर्जा मीटर में एक इलेक्ट्रॉनिक यूनिट लगाकर विद्युत ऊर्जा की चोरी कर रहा था। याची के ऊर्जा उपभोग को बाधित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक मीटर में इलेक्ट्रॉनिक यूनिट अंतस्थापित पाया गया। विद्युत की चोरी का पता लगने पर, बोर्ड को कारित क्षति औपबंधिक रूप से 15,39,000/- रुपए आकलित की गई और, विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 135(1-A) का संशोधित प्रावधानों के अधीन याची के विरूद्ध एक प्रथम सूचना रिपोर्ट संस्थित की गई और याची का विद्युत आपूर्त्ति असंयोजित की गई। विद्वान अधिवक्ता यह भी स्पष्ट करते हैं कि आपूर्ति संहिता विनियम के खण्ड 13.4 के प्रावधानों को निर्दिष्ट करना पूर्णरूपेण भ्रामक और असंगत है, क्योंकि वे केवल दोषपूर्ण मीटरों के मामले में लागू होते हैं और उस स्थिति में नहीं जब विद्युत ऊर्जा उपयोग के सटीक पठन को कम करने के लिए एक अनधिकृत रूप से अन्य तत्वों/उपकरण को अंतस्थापित करके चालू मीटरों के साथ छेड़–छाड़ की जाती है। यह भी निवेदन किया गया है कि परिकलनों के विवरणों के साथ याची पर औपबंधिक आकलन बिल का तामीला कर दिया गया है और इसलिए याची औपबंधिक बिल की राशि का भुगतान करने के लिए बाध्य है या विद्युत अधिनियम की धारा 126 के प्रावधानों के अधीन आकलन पदाधिकारी के समक्ष इसके विरूद्ध अपनी अभ्यापतियाँ दाखिल कर सकता है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिद्वंदी निवेदनों से उद्भूत होने वाले तथ्य इंगित करते हैं, कि निरीक्षण की तिथि से बोर्ड के पदाधिकारियों के एक पक्ष ने 20.11.2001 को याची की फैक्टरी के परिसर में विद्युत मीटर इकाई का एक निरीक्षण किया था। दल द्वारा यथा अभिलिखित निरीक्षण रिपोर्ट अभिकथित करती है कि उन्होंने मीटर की सीलो को टूटा हुआ पाया था, और मीटर की जाँच करने पर, उन्होंने पाया कि एक विजातीय पदार्थ, अर्थात एक इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, मीटर निकाय के भीतर प्रच्छन्न रूप से अंतस्थापित था। प्रत्यर्थीगण के आख्यापन के अनुसार, ऐसी विजातीय युक्ति को लगाने

का प्रभाव ऊर्जा उपभोग के सटीक पठनो में गड़बड़ी करके ऊर्जा उपभोग के वास्तविक उपभोग को छिपाने का था। इसलिए, निरीक्षण-दल द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि उपभोक्ता, अर्थात याची कपटपूर्ण साधनों से विद्युत की चोरी में लिप्त था और अनधिकृत रूप से विद्युत ऊर्जा का इस्तेमाल कर रहा था और इस प्रकार प्रत्यर्थी-बोर्ड को हानि कारित कर रहा था। J.S.E.B. के सब-स्टेशन, जहाँ से याची को विद्युत ऊर्जा की आपूर्त्ति की जाती थी, पर तत्सम मीटर में मोडेम एवं सिम कार्ड का संस्थापन प्रकटत: उपभोक्ता, अर्थात याची के वास्तविक ऊर्जा उपभोग का प्रेक्षण करने के प्रयोजनो के लिए था। J.S.E.B. सब-स्टेशन जहाँ से याची को विद्युत की आपूर्त्ति की जाती थी, पर मोडेम एवं सिम कार्ड के संस्थापन के लगभग 13 दिनों के उपरांत याची के परिसर में निरीक्षण किया गया था। प्रत्यर्थीगण का यह तर्क है कि सिम कार्ड और मोडेम के संस्थापन और सब-स्टेशन पर ऊर्जा उपभोग की अभिलिखित ईकाइयों में विसंगतियों पाने पर ही एक युक्तिसंगत संदेह उत्पन्न हुआ जिसमें परिणामत: याची के परिसर में संस्थापित मीटर का निरीक्षण संचालित किया गया। ये तथ्य प्रथम दृष्टया स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि यह मीटर में छेड़छाड़ और विद्युत-ऊर्जा मीटर पठनो में उलट-फेर करने का मामला था और याची के विद्वान अधिवक्ता चाहे कितना भी यह विश्वास दिलाने का प्रयास करें, इससे यह इंगित नहीं होता कि यह एक दोषपूर्ण मीटर का मामला है, जो इसके स्वत: रूप से गैर-सुचारू रूप से कार्य नहीं करने के कारण सटीक पठन प्रतिविम्बित नहीं करता था। याची ने विद्युत मीटर के निकाय में अन्य विजातीय तत्व, अर्थात् इलेक्ट्रॉनिक युक्ति की उपस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं दिया है, जो उसको परिसर में संस्थापित था। इसलिए, विनियमनों के खण्ड 13.4.3 की वर्तमान मामले में कोई प्रयोज्यता नहीं है। इसके विपरीत, इस तथ्य पर विचार करके उपभोक्ता द्वारा विद्युत की चोरी का पता लगने का एक प्रथम दृष्टया मामला था, विद्युत अधिनियम की धारा 135 के प्रावधान निश्चित आकर्षित होंगे और ऐसी परिस्थितियों के अधीन याची के परिसर में विद्युत आपूर्त्ति का असंयोजन प्रत्यर्थी-बोर्ड के प्राधिकार और शक्ति के भीतर था।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यथा उठाया गया अगला प्रश्न तात्पर्यित क्षति को लेकर प्रभारों का औपबंधिक आकलन की अत्यधिक उच्च राशि के संबंध में है। विद्वान अधिवक्ता श्री एम॰ एस॰ मित्तल स्पष्ट करना चाहेंगे कि यद्यपि सिम कार्ड और मोडेम निरीक्षण की तिथि के एक महीना पहले संस्थापित किया गया था परन्तु उससे पहले और याची के परिसर में विद्युत संयोजन देने की तिथि से ही याची के विरूद्ध किसी भी प्रकार से विद्युत मीटरों के साथ छेड़छाड़ करने या बिजली के अनधिकृत इस्तेमाल की कोई शिकायत नहीं थी, यद्यपि विद्युत मीटरों का प्रत्येक महीने उस समय निरीक्षण किया जाता था जब बोर्ड के सम्बद्ध पदाधिकारी मीटरो में पठनों को अभिलिखित करने के लिए दौरा करते थे। इस प्रकार अगर निरीक्षण की तिथि से मीटर की कोई अभिकथित छेड़छाड़ का पता भी चला था तो भी निरीक्षण की तिथि से पहले अर्थात्, उस तिथि से जब J.S.E.B. के सब-स्टेशन पर मीटर में सिम कार्ड और मोडेम संस्थापित किया गया था, पहले केवल 33 दिनों की अवधि के लिए ही तात्पर्यित क्षति का आकलन किया जा सकता था।

औपबंधिक आकलन के परिकलनों से यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण ने निरीक्षण की तिथि से पहले विगत एक वर्ष के दौरान की हानि के आधार पर परिकलन किया है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्टीकरण दिया कि सिम कार्ड और मोडेम को संस्थापित करने के उपरांत ही एक संदेह उत्पन हुआ और इसके आधार पर निरीक्षण किया गया और चोरी का पता चला। इलेक्ट्रॉनिक मीटर में इलेक्ट्रॉनिक युक्ति के अंत:स्थापन के माध्यम से चोरी के द्वारा विद्युत ऊर्जा का अनधिकृत इस्तेमाल

प्रकटत: पिछले कई महीनों से चल रहा था और यह संभवत: ऐसे ही बिना पता लगते चलता रहता अगर J.S.E.B. के उस विद्युत सब-स्टेशन, जहाँ से याची की ईकाई को विद्युत की आपूर्त्ति की जाती थी, पर इलेक्ट्रॉनिक मीटर में सिम कार्ड और मार्डम अंत:स्थापित नहीं किया जाता। ऐसी परिस्थितियों के अधीन, क्षति का आकलन करने के लिए निरीक्षण की तिथि से पिछले 12 महीनों की अवधि ली गई है और L x F x D x H तरीके के आधार पर यूनिट क्षति का आकलन किया गया था और 15,39,000/- रुपया की सीमा तक औपबंधिक आकलन किया गया था।

8. याची ने इस आधार पर परिकलन को चुनौती दी है कि यह मनमाना है और परिकलन का तरीका त्रुटिपूर्ण है एवं विहित नियमों के अनुरूप नहीं है। यह न्यायालय इस विवाद में जाने का इच्छुक नहीं है। चूँकि ऐसे विवाद पर विद्युत अधिनियम, 2000 की धारा 126 के प्रावधानों के अनुसार केवल आकलन पदाधिकारी द्वारा ही ध्यान दिया जा सकता है।

9. चूँकि औपबंधिक बिल की पहले ही तामीला की जा चुकी है, अत: याची आकलन पदाधिकारी के समक्ष अपनी अभ्यापतियाँ दाखिल कर सकता है और अन्तिम आकलन की प्रतीक्षा कर सकता है। अगर याची आकलन पदाधिकारी द्वारा किए गए अन्तिम आकलन से व्यथित अनुभव करता है तो वह यथोचित फोरम के विरूद्ध अपील के वैकल्पिक उपचार का उपयोग कर सकता है।

10. उपरोक्त परिचर्चा किए गए और कथित कारणों में से इस रिट आवेदन में कोई दम नहीं पाता हूँ, जो तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

गौरी शंकर @ गौरी शंकर यादव एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

क्रि॰ एम॰ पी॰ संख्या 179 वर्ष 2005. 9 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—संज्ञान–भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध के लिए संज्ञान लिया गया–यह अभिवाक् कि याचीगण के विरूद्ध कोई प्रत्यक्ष कृत्य या विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं किया गया है–अभिनिर्धारित, यद्यपि याचीगण में से कुछ के विरूद्ध परिवाद याचिका में किया गया कुछ अभिकथन पाया गया, परन्तु वे सुनिश्चित और विश्वासोत्पादक नहीं है–परिवादिनी ने अपने सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान में याचीगण के विरूद्ध एक भी शब्द कथन नहीं किया है–परिवादिनी द्वारा अपराध गठित करने वाला कोई पर्याप्त सामग्री प्रकट नहीं किया गया है–संज्ञान अनुचित है क्योंकि दण्डाधिकारी ने दायित्वहीन रूप से संज्ञान लिया और सम्मन जारी किया है। **(पैरा 6)**

अधिवक्तागण.–M/s R.K. Tiwary, S.K. Agarwal, For the Petitioners; APP, For the State; Mr. M.S. Chhabra, For the O.P. No. 2.

आदेश

याचीगण ने यह याचिका विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दण्डाधिकारी, बोकारो द्वारा दिनांक 15.6.2004 के पारित आदेश को चुनौती देते हुए दर्ज किया है, जिसके द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498A के अधीन, अपराध का संज्ञान, याचीगण एवं कोई मुकेश शास्त्री के विरूद्ध लिया गया है।

2. इस याचिका में याची सं॰ 1, 5, 7 एवं 11 परिवादिनी के पति के सब सगे भाई हैं, याची सं॰ 2, 6, 8 एवं 12 क्रमशः उनकी पत्नियाँ और परिवादिनी की देवरानियाँ हैं; याची सं॰ 9 सास है; याची सं॰ 10 श्वसुर है; याची सं॰ 13, याची सं॰ 11 की पुत्री है। उक्त याचीगण को परिवादिनी द्वारा किसी दाण्डिक मामले में आलिप्त किए जाने के लिए इस आधार पर इप्सित किया है कि याचीगण सहित उसके पति, मुकेश शास्त्री ने उसे दहेज लाने के लिए उत्पीड़ित किया था। विद्वान अवर न्यायालय ने परिवाद, सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान एवं साक्षियों के अभिकथन के आधार पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498A के अधीन उक्त अपराध का संज्ञान सभी याचीगण और परिवादिनी के प्रति मुकेश शास्त्री के विरूद्ध लिया है।

3. याचीगण ने संज्ञान लेते हुए उक्त आदेश की आलोचना की है कि उनके विरूद्ध किए गए अभिकथन बहुप्रयोजनीय और संदिग्ध है। प्रत्यक्ष कृत्य का कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है। सभी पारिवारिक सदस्यों की परिवादिनी द्वारा परतर उद्देश्य के लिए गलत रूप से दाण्डिक मामले में आलिप्त किया गया है।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवादिनी के सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान का परिशीलन करने पर जो कि संज्ञान लेने का एक आधार कथित किया गया है, यह सुव्यक्त होगा कि परिवादिनी ने इन याचीगण के विरूद्ध उक्त अपराध को गठित करने वाला एक शब्द भी नहीं कहा है। उसका सम्पूर्ण अभिकथन उसके पति मुकेश शास्त्री के चारों ओर केन्द्रित है। इस याचिका में मुकेश शास्त्री एक पक्षकार नहीं है। उन्होंने आगे यह भी निवेदन किया कि सामान्य और अविनिर्दिष्ट अभिकथन के आधार पर और बिना किसी पर्याप्त सामग्री के इन याचीगण के विरूद्ध कथित अपराध के लिए संज्ञान लेने का कोई आधार ही नहीं है। विद्वान अवर न्यायालय ने सामान्यतः अभिलेख सामग्री पर गंभीरतापूर्वक विचार किए बिना सभी याचीगण के विरूद्ध आक्षेपित दायित्वहीन आदेश द्वारा संज्ञान लिया है, जिसका कोई विधिसम्मत आधार नहीं है एवं विधि में पोषणीय नहीं है।

5. विद्वान अपर लो॰ अभि॰ एवं परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰-2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री एम॰ एस॰ छाबड़ा ने भी याचीगण के परिवाद का विरोध किया है। यह भी अनुरोध किया गया है कि, हालाँकि प्रत्येक याचीगण के विरूद्ध कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है, फिर भी अभिलेख पर लाए गए तथ्यों के सम्पूर्ण पठन एवं निर्धारण करने पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन अपराध का गठन हुआ है। परिवाद याचिका के अभिकथन कम से कम कुछ याचीगण के विरूद्ध पर्याप्त सामग्री प्रकट करते हैं। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में इस न्यायालय का हस्तक्षेप अनिवार्य बनाने वाला आधारयुक्त कहा नहीं जा सकता है।

6. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना, अभिलेख के सामग्रियों एवं तथ्यों का परिशीलन एवं विचारण किया है। हालाँकि परिवाद के परिशीलन पर मैंने पाया कि कुछ याचीगण के विरूद्ध कुछ अभिकथन है, परन्तु वे सुनिश्चित एवं विश्वासोत्पादक नहीं है। परिवादिनी ने अपने सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान में इन याचीगण के विरूद्ध एक शब्द भी नहीं कहा है। परिवाद याचिका सह-पठित परिवादिनी का सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498A के अधीन, इन याचीगण के विरूद्ध गठित करने वाला पर्याप्त सामग्री प्रकट नहीं करता। इसलिए मैं, इन याचीगण के विरूद्ध उक्त धारा के अधीन संज्ञान लेने का कोई पर्याप्त तर्क नहीं पाता हूँ। मैं याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदनों में बल पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने अपराध का गठन करने वाली किसी पर्याप्त सामग्री के बिना सम्मन निर्गत किया एवं दायित्वहीन रूप से संज्ञान लिया। इसलिए, यह न्यायालय आक्षेपित निर्णय को मान्य ठहराने में असमर्थ है जहाँ तक कि यह इस मामले में याचीगण से सम्बन्धित है। इसलिए याचीगण के विरूद्ध सम्मनों का जारी होना एवं संज्ञान लेने वाला न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग है एवं यह इस न्यायालय द्वारा अभिखंडित किए जाने का भागी है।

7. तद्नुसार यह Cr.M.P. अनुज्ञात किया जाता है। दिनांक 15.6.2004 का संज्ञान लेने का आदेश एवं याचीगण के विरूद्ध पूरी दाण्डिक कार्यवाही को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

---

ekuuh; vej'oj lgk; ,o vkjñ vkjñ çlkn U;k;efrx.k

श्यामल कुमार दत्ता

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

दाण्डिक अपील (डी॰ बी॰) सं॰ 217 वर्ष 1991 (R) 19, मार्च, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 83 वर्ष 1987 में छठें अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 16.9.1991 एवं 17.9.1991 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 164—संस्वीकारात्मक अभिकथन–अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302/34/201 सह-पठित 120B के अधीन अपने संस्वीकारात्मक अभिकथन के आधार पर दोषसिद्ध किया गया था–संस्वीकारात्मक अभिकथन का अभिलेखन करते समय संबंधित दण्डाधिकारी द्वारा सांविधिक प्रावधानों का पालन नहीं किया गया था–अभिनिर्धारित, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इस संस्वीकृति पर विश्वास करके अविधिमान्यता कारित किया है जब उसे आरोपित करते हुए अन्य सामग्रियाँ अनुपस्थित थीं–तथ्यों एवं परिस्थितियों के साथ-साथ उसके अभिकथनों से यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी यह भी नहीं जान रहा था कि किसपर प्रहार किया जाना था एवं इसलिए हत्या कारित करने में सामान्य आशय शेयर करना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता–दोषसिद्धि एवं दण्डादेश अपास्त किए गए परिणामतः दोषमुक्ति हुई। (पैराएँ 11, 12, 14 एवं 15)

अधिवक्तागण.–M/s Jay Prakash Jha, S.P. Jha, For the Appellant; Mr. Binod Singh, For the State.

न्यायालय द्वारा.–अपीलार्थी को 9 अभियुक्त व्यक्तियों के साथ किसी उमेश शरण, मिनाली भारत इंडस्ट्रिज, कुमारदूबी के मुख्य कार्यपालक-सह-कार्मिक एवं प्रशासनिक अधिकारी की हत्या षड्यंत्र करके अपने सामान्य आशय के अग्रसारण में कारित करने एवं हत्या के साक्ष्य का लोप विधि संबंधी दण्ड से अपने आप को बचाने हेतु कारित करने के लिए विचारण पर लाया गया था।

2. विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 302/34/201 के अधीन एवं धारा 120 (B) के अधीन भी अपराध के लिए दोषी पाए जाने पर उसे भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 302/34 एवं 120(B) के अधीन प्रत्येक अपराध के लिए आजीवन कारावास भुगतने एवं इसके अतिरिक्त भारतीय दण्ड संहिता की धारा 201 के अधीन 5 वर्षों की अवधि तक का कठोर कारावास भुगतने का दण्डादेश दिया। दोनों दण्डादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश दिया गया था।

3. अभियोजन का मामला यह है कि 23.3.1986 को लगभग 7.30 बजे सुबह मृतक उमेश शरण, मिनाली भारत इण्डस्ट्रीज, कुमारदूबी का मुख्य कार्यपालक-सह-कार्मिक एवं प्रशासनिक अधिकारी, रेखरई ऑटोमोबाइल सर्विस स्टेशन पर अपनी गाड़ी की मरम्मत करवाने आया था। जब गाड़ी को मरम्मत के लिए ले जाया गया, तब उमेश शरण कथित सर्विस स्टेशन के कार्यालय में बैठा था। उसी समय, निर्मल सिंह (अ॰ सा॰ 2) पेट्रोल पम्प के मालिक का पुत्र एवं सर्विस स्टेशन के अन्य कर्मचारी जब ग्राहकों को ईंधन उपलब्ध करने में व्यस्त थे, तभी उन्होंने गोली छूटने के चार धमाके सुने, जिसपर कि निर्मल सिंह ने पेट्रोल पम्प के कार्यालय से 3-4 व्यक्तियों को बाहर आते हुए देखा। उनमें से सभी भाग

गाए। तदुपरि, निर्मल सिंह ने उमेश शरण को खून से लथपथ देखा एवं, इसलिए, वह उमेश शरण को एक गाड़ी से दास नर्सिंग होम ले गया। इसी बीच, गदाधर ताँती (अ॰ सा॰ 22) चिरकुण्डा पुलिस स्टेशन का तत्कालीन प्रभारी इस सूचना प्राप्ति पर कि किसी ने उमेश शरण को पेट्रोल पम्प पर गोली मार दी है, उसने स्टेशन डायरी में एक दाखिला किया एवं पेट्रोल पम्प की ओर भागा परन्तु वहाँ वह यह जान सका कि उमेश शरण को शिओलीबारी, चिरकुण्डा में दास नर्सिंग होम में स्थानान्तरित कर दिया गया है एवं इसलिए, वह वहाँ आया और घायल को प्राथमिक चिकित्सा मुहैया कराए जाते हुए पाया। परन्तु, जब उसकी हालत खराब हो गई, तो वह अनुमंडलीय अस्पताल, आसनसोल भेजा गया एवं एक ए॰ एस॰ आई॰, रामदेव गिरी को उसके साथ जाने के लिए कहा गया था। ऐसा निर्देश ए॰ एस॰ आई॰, रामदेव गिरी को देने के पश्चात्, गदाधर ताँती सर्विस स्टेशन, वापस आया एवं निर्मल सिंह (अ॰ सा॰ 2) का फर्दबयान (प्रदर्श 3) को अभिलिखित किया, जिसपर औपचारिक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श 8) पंजीकृत हुआ था। उक्त गदाधर ताँती (अ॰ सा॰ 22) ने स्वयं मामले का अन्वेषण किया। अन्वेषण के दौरान, उसने जब्ती सूची (प्रदर्श 4) के अधीन टूटा हुआ चश्मा एवं दागा गया कारतूस भी जब्त किया था। बाद में, उसने अनुमंडलीय अस्पताल, आसनसोल से मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श 5) शव चालान (प्रदर्श 6) एवं पोस्ट मार्टम रिपोर्ट (प्रदर्श 7) की एक छाया प्रति भी प्राप्त की। डॉ॰ आर॰ आर॰ मुखर्जी (अ॰ सा॰ 23) द्वारा संचालित पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, सीने, पेट एवं जाँघ के ऊपर आग्नेयायुद्ध उपहतियाँ पायी गई थीं। कुछ उपहतियाँ झुलसी हुई पाई गई एवं डॉक्टर ने उपरोक्त उपहतियों से कारतूस बरामद किए हैं।

4. अन्वेषण के दौरान, अन्वेषण अधिकारी ने 29.3.1986 को अपीलार्थी को गिरफ्तार किया, जिसने कि उसके समक्ष अपना दोष स्वीकार किया। इसलिए, अपीलार्थी को 30.3.1986 को दण्डाधिकारी के समक्ष उसकी स्वीकारोक्ति के अभिलेखन के लिए प्रस्तुत किया गया था। तद्नुसार, श्री आर॰ आर॰ पी॰ देव (अ॰ सा॰ 1), तत्कालीन न्यायिक दण्डाधिकारी, धनबाद ने उसकी संस्वीकृति (प्रदर्श-1) 31.3.1986 को, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किया।

5. अन्वेषण के पूर्ण होने पर, पुलिस ने अपीलार्थी एवं अन्यों के विरूद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया, जिसपर अपराध का संज्ञान लिया गया था एवं सम्यक् अनुक्रम में जब सत्र न्यायालय में मामला सुपुर्द किया गया था, तो आरोपों की विरचना की गई थी जिसका अपीलार्थी ने दोषी न होने का अभिवाक् किया एवं विचारित किए जाने का दावा किया था।

6. अभियोजन ने आरोपों को सिद्ध करने की कोशिश में कुल 24 साक्षियों का परीक्षण किया, परन्तु अधिकतर साक्षियों को या तो पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया या टेंड़र कर दिए गए।

7. विचारण न्यायालय ने प्रमाणित किए जाने वाले मामले को मानव वध का मामला पाकर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन इस अपीलार्थी द्वारा की गई एकमात्र संस्वीकृति के आधार पर दोषी अभिनिर्धारित किया जबकि अन्य सभी अभियुक्त व्यक्तियों को दोषमुक्त किया गया था।

8. दोषसिद्धि के आदेश एवं दण्डादेश से व्यथित होकर, यह अपील दायर की गई है।

9. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अभिकथित अपराध में अपीलार्थी की संलिप्तता दर्शाने के लिए किसी तरह का पूर्णतः ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है सिवाय संस्वीकृति के जो कि वापस ले ली गई है एवं वह भी, यह निरपराध घोषित करने की प्रकृति का है, तब भी विचारण न्यायालय ने दोषसिद्धि का आदेश अभिलिखित किया, यद्यपि, ऐसी कोई संस्वीकृति कभी अभिलिखित नहीं की गई थी, जो कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164(4) के अधीन यथा-स्थापित सांविधिक आवश्यकता है, अर्थात् यह कहना कि, बिना इस बात से संतुष्ट हुए कि अपीलार्थी ने इच्छापूर्वक बिना किसी भय के अभिकथन किया था। इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित दोषसिद्धि का आदेश एवं दण्डादेश अपास्त होने के योग्य है।

10. मामले में आगे की कार्यवाही करने से पूर्व, यह उपयुक्त होगा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन इस अपीलार्थी द्वारा किए गए अभिकथन (प्रदर्श 1) पर ध्यान दिया जाए जिसमें यह कथन किया गया है जबकि वह 22.3.1986 की रात को अन्य के साथ सो रहा था, तो वह किसी अजय द्वारा यह कहकर उठाया गया कि कोई परमानन्द सिंह उसे बुला रहा है, परन्तु वह परमानन्द सिंह के पास नहीं गया। अगले दिन, अर्थात् 23.3.1986 की सुबह में, परमानन्द सिंह आया और उसे अपने साथ आने के लिए कहा क्योंकि उन्हें एक व्यक्ति को घूँसे एवं थप्पड़ से पीटना था, परन्तु उसने उसका साथ देने से मना कर दिया, तब परमानन्द सिंह ने कहा कि यह सुरेश झा के इशारे पर कारित होना है। तत्पश्चात् परमानन्द सिंह उसे दूरभाष कार्यालय के समीप लाया और पेट्रोल पम्प पर जाने को कहा जहाँ वह पातो राय को पाएगा और जब वह पेट्रोल पम्प के समीप आया तब उसने 4 व्यक्तियों को पेट्रोल पम्प के केबिन में घुसते हुए देखा। इसी बीच, उसे भी शामिल होने के लिए कहा गया था, और जब वह कमरे के भीतर आया, उसने अचानक नोटिस किया कि सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने अपने रिवॉल्वर को निकाला एवं एक व्यक्ति पर गोलियाँ दागी जिसको वह नहीं जानता था एवं इस प्रकार, वह व्यग्र हो गया क्योंकि वह नहीं जान रहा था कि वे लोग एक व्यक्ति की हत्या करेंगे। इसलिए, वह अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के साथ फरार हो गया। तत्पश्चात वह एक मंदिर के समीप आया जहाँ उसने सभी अभियुक्त व्यक्तियों को अपने हथियार किसी मनोज मिश्रा को देते हुए देखा, जिसके साथ उसने उस दिन एक सिनेमा देखा था और तब वह मनोज मिश्रा को अपने साईकिल पर किसी डी॰ एन॰ ओझा के आवास पर ले गया जिसको कि मनोज मिश्रा ने रिवॉल्वर एवं कारतूसो को रखने के लिए दिया। इसके पश्चात्, पूछे जाने पर, मनोज मिश्रा ने उसे बताया कि वह सुरेश झा था, जिसने कि उमेश शरण की हत्या करवाई।

11. स्वीकार्यत: संस्वीकारात्मक अभिकथन (प्रदर्श-1) में अभिकथन के नीचे ज्ञापन नहीं था जो कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164(4) की शर्तों में आवश्यक है, इस प्रकार प्रदर्श 1 कभी भी प्रत्यक्ष नहीं करता कि संस्वीकृति के अभिलेखन से पूर्व, दण्डाधिकारी ने कभी भी उसे स्पष्ट किया था कि वह संस्वीकृति करने को बाध्य नहीं है और, यदि वह ऐसा करता है, तो यह उसके विरूद्ध एक साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जाएगा। इससे भी बढ़कर, ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता जो यह दर्शाए कि दण्डाधिकारी संस्वीकृति के अभिलेखन करने से पूर्व उससे यह प्रश्न करके संतुष्ट हुए थे कि ऐसी संस्वीकृति स्वेच्छापूर्वक की जा रही है। सांविधिक आवश्यकता का संप्रेक्षण न किए जाने के बावजूद, विचारण न्यायालय ने भरोसा रखते हुए अपीलार्थी को दोषी पाया, यह अभिनिर्धारण करते हुए कि अभिकथन अभिलिखित किए जाने से पूर्व अपीलार्थी को चेतावनी दिए जाने के ज्ञापन के अभिलेखन की अनुपस्थिति मात्र एक अनियमितता है और एक अविधिमान्यता नहीं जो कि उपचार योग्य है बशर्ते कि संबंधित दण्डाधिकारी संतोषप्रद रूप से स्पष्ट कर सके कि ऐसी चेतावनी वास्तव में दी जा चुकी थी। चूँकि दण्डाधिकारी (अ॰ सा॰ 1) अपने साक्ष्य में प्रमाणित कर चुके हैं कि अभिकथन के अभिलेखन से पूर्व, चेतावनी दी गई थी, इसलिए विचारण न्यायालय संस्वीकारात्मक अभिकथन (प्रदर्श-1) को किसी भी अविधिमान्यता से दूषित हुआ नहीं पाया था। हम अपने आप को विश्वास दिलाने में असमर्थ हैं कि किन परिस्थितियों के अधीन यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रमाणपत्र की अनुपस्थिति जो कि आवश्यक है अ॰ सा॰ 1 द्वारा संतोषप्रद रूप से स्पष्ट किया गया है जब कि ऐसी चेतावनी कभी भी, कहीं भी अभिलिखित नहीं की गई थी, न ही यह प्रदर्श-1 में है, जैसा कि ऊपर कथित है, न ही यह उस दिन के आदेश-पत्र में अभिलिखित किया गया है जब संस्वीकारात्मक अभिकथन अभिलिखित की जा रही थी, जो अ॰ सा॰ 1 स्वयं अपने साक्ष्य में स्वीकार करता है। हम आगे यह भी पाते हैं कि अभिकथन 31.3.1986 को अभिलिखित किया गया था जबकि, अ॰ सा॰ 1 दिसम्बर, 1987 को परीक्षित हुआ था। इसलिए, यह विश्वास करना कठिन है कि विद्वान दण्डाधिकारी संस्वीकारात्मक के अभिलेखन से संबंधित उन सभी कृत्यों को याद करने में समर्थ होंगे जो कि डेढ़ वर्षों से अधिक पूर्व घटित हुई थी। इसलिए, अ॰ सा॰ 1 का वर्णन कि अपीलार्थी के संस्वीकृति के अभिलेखन से पूर्व चेतावनी, जो कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के शर्तों में अनुबंधित है, अपीलार्थी को दी गई थी एवं यह कि दण्डाधिकारी ने संस्वीकृति के अभिलेखन से पूर्व स्वयं को संतुष्ट

किया था कि अपीलार्थी स्वेच्छापूर्वक अपना दोष स्वीकार करने के लिए तैयार है, विश्वासोत्पादक प्रतीत नहीं होता है।

12. यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि, संविधिक प्रावधान, जो महानगर दण्डाधिकारी/न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा संस्वीकृति एवं अभिकथनों के अभिलेखन में संव्यवहृत संस्वीकृति के अभिलेखन के निश्चित मार्ग-दर्शन का प्रावधान करने वाले दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 में सम्मिलित है। जब तक कि न्यायालय संतुष्ट नहीं हो जाता कि संस्वीकृति स्वैच्छिक प्रकृति का है, इसपर कार्रवाई नहीं किया जा सकता है एवं इसके बारे में आगे कोई पूछ-ताछ नहीं की जा सकती है कि क्या यह सत्य है या विश्वसनीय बनाये जाने की आवश्यकता है।

13. इस संबंध में हम **शिवप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (AIR 1995 SC 980)** के मामले में एक विनिश्चय को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिसमें नीचे यह अभिनिर्धारित किया गया है:-

> ''दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के सरल भाषा एवं उच्च न्यायालय द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन एक अभियुक्त के संस्वीकारात्मक अभिकथन के अभिलेखन से संबंधित विरचित नियमों एवं मार्ग-निर्देशों से यह स्पष्ट है कि उक्त प्रावधान, दण्डाधिकारी द्वारा एक जाँच के संस्वीकृति के स्वेच्छापूर्ण प्रकृति को अभिनिश्चित करने पर जोर देता है। यह जाँच अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है एवं दण्डाधिकारी का दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन एक अभियुक्त के संस्वीकृति अभिकथन के अभिलेखन के कर्त्तव्य का एक महत्वपूर्ण भाग प्रतीत होता है। ऐसे प्रश्न करने की दण्डाधिकारी की त्रुटि जिससे वह संस्वीकृति की स्वैच्छिक प्रकृति का अभिनिश्चय कर सकता था उस अभियुक्त के स्वैच्छिक संस्वीकृति के साक्ष्यिक मूल्य को ऐसी विपरीत रूप से प्रभावित करता है कि इसपर कार्रवाई करना सुरक्षित नहीं होगा। पूर्ण एवं पर्याप्त अनुपालन न केवल संगठित परंतु दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के प्रावधानों से मर्म में एवं उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियम अनिवार्य है एवं इसका गैर-अनुपालन दण्डाधिकारी की संस्वीकृति अभिलिखित करने की अधिकारिता की तह तक जाता है एवं संस्वीकृति को विश्वास अयोग्य धारित करता है।''

14. तथ्यों एवं परिस्थितियों की दृष्टि में जो कि ऊपर चर्चित हैं, तत्कालीन संस्वीकृति बल्कि वापस ली गयी संस्वीकृति से जो इस बात से संतुष्ट हुए बिना कि वह स्वेच्छापूर्वक दिया गया था, यह निश्चित रूप से विश्वास के अयोग्य है। इसलिए, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उक्त संस्वीकृति पर अपना विश्वास रखने में अविधिमान्यता कारित किया है, यद्यपि उक्त संस्वीकृति जो हमने पहले ही अभिनिर्धारित किया है, कदापि कार्रवाई किए जाने के योग्य नहीं है, फिर भी हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि अपीलार्थी कभी भी घटनास्थल पर मृतक की हत्या कारित करने के सामान्य आशय के अग्रसारण में नहीं आया बल्कि अपीलार्थी द्वारा दिए गए संस्वीकृति के अनुसार, वह एक स्थान पर एक व्यक्ति को केवल पीटने के लिए उसे आने को कहा गया था। इसके अलावे, उसके संस्वीकृति से यह प्रतीत होता है कि वह यह भी नहीं जान रहा था कि किसको पीटना था, परन्तु जब वह घटना स्थल पर आया, वह आश्चर्यचकित हो गया कि अन्य अभियुक्त व्यक्तियों ने हत्या कारित की थी, एवं इसलिए इन परिस्थितियों में अपीलार्थी अन्य के साथ मृतक की हत्या कारित करने में सामान्य आशय शेयर करने के लिए षडयंत्र कर चुका नहीं कहा जा सकता है एवं यह कि उसने ऐसा कुछ भी किया है जो हत्या कारित करने के किसी साक्ष्य का लोप कर देने का है।

15. मामले के इस दृष्टिकोण से, यह विचारण न्यायालय की ओर से अपीलार्थी को दोषसिद्ध करना पूर्णत: अनावश्यक था, एवं इसलिए अपीलार्थी के विरूद्ध अभिलिखित दोषसिद्धि के आदेश एवं दण्डादेश को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामत: अपीलार्थी को उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है एवं जमानत बंध-पत्रों के दायित्व से मुक्त किया जाता है।

16. परिणामत: यह अपील अनुज्ञात की जाती है।

ekuuh;k t;k jk;] U;k;efr

शोभन राम

बनाम

सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से झारखण्ड राज्य

दाण्डिक पुनरीक्षण सं॰ 545 वर्ष 2006. 16 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 120B—अभिकथन, कि अपीलार्थी ने अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के साथ झूठे एवं जालसाजी नियुक्ति पत्रों के आधार पर भूगर्भ लोडर के तौर पर अपनी नियुक्ति का चतुराई से प्रबंध किया–अपीलार्थी के विरूद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन कि वह 'बी' फॉर्म रजिस्टर एवं बोनस रजिस्टर का संरक्षक था एवं इसलिए वह छलसाधन का दायी था–अभिनिर्धारित, वे रजिस्टर अपीलार्थी के व्यक्तिगत संरक्षण के अधीन नहीं था एवं अन्य अधिकारियों सहित अनेक व्यक्तिगण उसका इस्तेमाल किया करते थे–न्यायालय ने अपीलार्थी के छल साधन एवं सह-अपराधिता होने पर संदेह जताया–अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया गया–दोषसिद्धि एवं दण्डादेश अपास्त किया गया। (पैरा 8 से 12)

अधिवक्तागण.–M/s Mahesh Tiwary, M.B. Lal, For the Petitioner; M/s Rajesh Kumar, M.K. Sinha, For the C.B.I.

आदेश

याची ने प्रस्तुत पुनरीक्षण, दाण्डिक अपील सं॰ 7 वर्ष 1999 में, श्री प्रदीप कुमार कुमार चौबे, त्वरित न्यायालय सं॰ IV, धनबाद, के अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा दिनांक 17.6.2006 को पारित निर्णय के विरूद्ध दाखिल किया है, जिसके द्वारा भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन याची की दोषसिद्धि एवं विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दण्डादेश मान्य ठहराया गया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि 30.1.1984 को उप-पुलिस अधीक्षक SPE/CBI, धनबाद ने आठ अभियुक्त व्यक्तियों, अर्थात श्री इन्द्रजीत सिंह, श्री के॰ के॰ दास, श्री हनुमान सिंह, श्री बी॰ एन॰ सिंह, मो॰ मोतीमा, श्री रामजीत श्रीवास्तव (सभी भूगर्भ लोडर हैं), श्री एस॰ पाण्डेय, परियोजना अधिकारी एवं श्री आर॰ के॰ अरोड़ा के विरुद्ध एक प्राथमिकी दर्ज उस अभिकथन के साथ किया जो कि उसने एक विश्वसनीय सूचना से प्राप्त की कि अभियुक्त सं॰ 1 से 6, अभियुक्त सं॰ 7 एवं 8 के साथ झूठे एवं जालसाजी नियुक्ति पत्रों पर चतुराई से अपनी नियुक्ति भूगर्भ लोडर के रूप में करने के दाण्डिक षडयंत्र में शामिल हो रहे हैं एवं अपने कुकर्मों को छिपाने के क्रम में उनलोगों ने अवैध दस्तावेजों को अपनी नियुक्ति वास्तविक करते हुए होने को दर्शाने के क्रम में चिपकाया है। आगे अभियोजन का मामला यह था कि एक झूठा नियुक्ति पत्र सं॰ GM/AR-II/ नियुक्ति/81/6472 दिनांकित 17.1.81 जो कि किसी श्री एस॰ के॰ सिन्हा, तत्कालीन जेनरल मैनेजर, क्षेत्र-II द्वारा हस्ताक्षरित किए जाने का अभिप्राय का है, अभिलेख पर फेरबदल किया गया है। इसके अतिरिक्त, अभियोजन का मामला यह था कि अपने कुकर्मों को छुपाने के क्रम में अभियुक्त व्यक्तियों ने अभियुक्त सं॰ 1 से 6 को प्रारंम्भिक नियुक्ति स्थान अर्थात् भूरूंगिया योजना से स्थानान्तरित करने के लिए फिर से हेराफेरी किया था, उन्होंने दिनांक मई, 1981 को अभियुक्त सं॰ 1 से 6 की ओर से कुछ अभ्यावेदन में छल साधन किया था, अर्थात् अभिकथित झूठे नियुक्ति पत्रों से अत्यन्त पूर्व। उनलोगों ने दिनांक 25.5.81 के हस्ताक्षराधीन अपनी अनुशंशा के साथ अभियुक्त सं॰ 7 द्वारा अग्रसारित अपनी अभ्यावेदन याचिका पर कुटरचित पत्र पेश किया जिसने श्री॰ एस॰ के॰ बनर्जी व्यैक्तिक प्रबंधक, कार्मिक भवन, BCCL, धनबाद द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित दिनांक 26/27.11.81के कार्यालय आदेश सं॰ BCCL-P.A.I/00/01/8431742 के माध्यम से स्थानान्तरण के निर्गतीकरण का आधार सृजित किया।

आगे, अभियोजन का मामला यह था कि उक्त षड्यंत्र में, अभियुक्त सं॰ 8, श्री आर॰ के॰ अरोड़ा का संलिप्तता इस तथ्य से अत्यधिक स्पष्ट है कि हलाँकि क्षेत्र-II के॰ G.M. द्वारा विधिवत नियुक्ति पत्र नहीं भेजा गया, जो कभी भुरूंगिया योजना में प्राप्त हुआ था, तब भी उक्त श्री अरोड़ा ने न केवल अभियुक्त सं॰ 1 से 6 को पदग्रहण करने के लिए अनुमति दिया, बल्कि अभियुक्त सं॰ 1 से 6 के पक्ष में भार मुक्ति आदेश को भी जारी किया। उपरोक्त के आधार पर उपरोक्त आठ व्यक्तियों के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B सह-पठित धाराएँ, 420, 467, 468, 471 के अधीन प्रं॰ सू॰ रि॰ पंजीकृत हुआ था, देखें R.C. केस सं॰-03 वर्ष 1984।

3. भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B सह-पठित धाराएँ 420, 467, 468 एवं 471 के अधीन, श्री रमाकान्त दूबे, हैदर अली, श्री मदन लाल शर्मा, श्री भूषण सिंह (सभी भूगर्भ लोडर हैं) श्री एस॰ पाण्डेय, परियोजना अधिकारी, श्री आर॰ के॰ अरोड़ा के विरूद्ध दिनांक 9.5.84 को एक अन्य प्र॰ सू॰ रि॰ जिसका आर॰ सी॰ केस सं॰ 09/84 को श्री ए॰ के॰ अस्थाना, सी॰ बी॰ आई॰ निरीक्षक, धनबाद, द्वारा फिर से दर्ज किया गया है, एवं उक्त प्र॰ सू॰ रि॰ में यह कहा गया था कि अभियुक्त सं॰ 1 से 4, अभियुक्त सं॰ 5 एवं 6 के साथ दाण्डिक षड्यंत्र में शामिल थे, तद्द्वारा काल्पनिक एवं झूठे नियुक्ति पत्रों के आधार पर एस॰ के॰ सिंह, तत्कालीन BCCL क्षेत्र-II के प्रमुख प्रबंधक के हस्ताक्षराधीन जारी होने के अभिप्राय से रोजगार सुनिश्चित किया एवं 18.11.81 को भूरूंगिया योजना में अपने कार्य में शामिल हुए। यह आगे कहा गया था कि अपने कार्यों पर योगदान से बहुत पहले अभियुक्त सं॰ 1 से 4 ने एक अभ्यावेदन जमा किया था, अर्थात् 15.5.81 को भुरूंगिया योजना से श्रेत्र-IV के किसी अन्य कोयले की खान में उनलोगों का स्थानान्तरण एवं कथित अभ्यावेदन, अभियुक्त सं॰ 5 एवं 6 द्वारा पूर्ण जानकारी रखते हुए किया गया था कि मई, 1981 में, अभियुक्त व्यक्तिगण BCCL के कर्मचारी नहीं थे, परन्तु अभियुक्त सं॰ 5 एवं 6 ने अभियुक्त सं॰ 1 से 4 के पक्ष में भार-मुक्ति का आदेश निर्गत किया था।

4. दोनों प्र॰ सू॰ रि॰ को समामेलित कर दिया गया है एवं अन्वेषण के पश्चात् भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B सह-पठित धाराएँ 467, 468, 471, 420 के अधीन, याची सहित सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध श्री अस्थाना ने आरोप-पत्र प्रस्तुत किया है।

5. अभियोजन ने 18 साक्षियों का परीक्षण किया है एवं कई दस्तावेज प्रस्तुत किए जिसे प्रदर्श सं॰ 1 से 38 के तौर पर चिन्हित किया गया है। सभी मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात्, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B सह-पठित धाराएँ 468, 471, 420 के अधीन याची शोभन राम को दोषसिद्ध करने के लिए साक्ष्य प्रर्याप्त है एवं इस प्रकार याची को दोषसिद्ध किया गया है एवं भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास भुगतने का निर्देश दिया गया है।

6. उपरोक्त दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के विरूद्ध, याची ने एक अपील अर्थात् दां॰ अपील सं॰ 07 वर्ष 1999 दायर किया है। पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, श्री प्रदीप कुमार चौबे, अपर सत्र न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय सं॰ IV, धनबाद द्वारा उक्त अपील खारिज किया गया था।

7. अपीलीय न्यायालय के अनुसार अभियोजन ने निम्नलिखित तथ्यों को स्थापित किया है:-

(i) अभियोजन ने स्थापित किया है कि अपीलार्थी, भुरूंगिया योजना में कार्मिक अधिकारी था।

(ii) साक्षियों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि रजिस्टर B फार्म एवं बोनस रजिस्टर हमेशा इस अपीलार्थी के संरक्षण में रहा।

(iii) तब फॉर्म B रजिस्टर में, 13 व्यक्तियों का नाम सम्मिलित नहीं पाया गया था जब उक्त रजिस्टर की जाँच 7.3.82 को अ॰ सा॰ 4 द्वारा किया गया है।

(iv) तत्पश्चात् नियुक्त किए गए 13 व्यक्तियों (जाली) के नाम उक्त 'B' फॉर्म रजिस्ट्रर में समाविष्ट पाए गए हैं।

(v) बोनस रजिस्टर जो कि इस अपीलार्थी के संरक्षण में ही आश्रित है एवं उक्त रजिस्टर में कथित 13 व्यक्तियों की प्रविष्टि भी पाए गए थे।

8. याची के अधिवक्ता, श्री महेश तिवारी निवेदन करते हैं कि मात्र याची के विरूद्ध अभिकथन कि वह B फार्म रजिस्टर एवं बोनस रजिस्टर का संरक्षक था एवं इसलिए वह छल साधन के लिए दायी है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि अ॰ सा॰ 2 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि बोनस कलर्क बोनस रजिस्टर में लिखा करता था। इसलिए, बोनस रजिस्टर में पाई गई किसी प्रविष्टि से यह नहीं कहा जा सकता कि यह याची द्वारा ही की गई है। उन्होंने आगे मेरा ध्यान अ॰ सा॰ 5 के साक्ष्य पर केन्द्रित किया है, जिसने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह रजिस्टर को रैक पर रखा करता था क्योंकि रजिस्टर को रखने के लिए कोई अलमारी नहीं था एवं काफी संख्या में कर्मचारी उक्त रजिस्टर का अपनी आवश्यकतानुसार उपयोग एवं व्यवहार किया करते थे। इसलिए, अवर दोनों न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की है कि ऊपर कथित दोनों रजिस्टरों को याची के अनन्य अधिकारिता एवं संरक्षण में रखा जाता था।

9. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि याची का कार्मिक अधिकारी होने के कारण वह अपने व्यक्तिगत संरक्षण में या हर समय ताले एवं चाभी में फॉर्म B रजिस्टर को नहीं रखा सकता है, क्योंकि उक्त रजिस्टर खान अधिकारी को उपलब्ध होनी चाहिए जो बहुधा खान का निरीक्षण करता है। इसके अतिरिक्त, यह निवेदन किया गया है कि याची के विरूद्ध थोड़ा भी षड्यंत्र के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है। इसलिए, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन वह दोषसिद्धि नहीं किया जा सकता है।

10. सी॰ बी॰ आई॰ के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार निवेदन करते हैं कि यह पूर्ण रूप से स्थापित सिद्धांत है कि एक षड्यंत्र में हमेशा गोपनीयता होता है एवं इसके लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करना असंभव होता है। स्वीकार्यत: बोनस रजिस्टर एवं B फॉर्म रजिस्टर हमेशा याची के संरक्षण में रहता था क्योंकि वह कार्मिक अधिकारी था।

11. ऊपर कथित अ॰ सा॰ 2 एवं अ॰ सा॰ 5 के साक्ष्य पर विचार करने पर मैं पाती हूँ कि यद्यपि बोनस रजिस्टर एवं 'B' फॉर्म रजिस्टर हमेशा याची के पास रहा था परन्तु, उसी समय उन रजिस्टरों को एक खुले रैक पर रखा जाता था न कि व्यक्तिगत संरक्षण या याची के अधीन ताले एवं चाभी में क्योंकि कई लिपिक उक्त रजिस्टर का इस्तेमाल किया करते थे। इसके अलावे, खान निरीक्षक भी उन रजिस्टरों का व्यवहार किया करते थे। इन सभी तथ्यों एवं परिस्थितियों के दृष्टिकोण में, यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त रजिस्टर हर समय याची के एकमात्र अधिकारिता एवं संरक्षण में थी। इसलिए, कुछ संदेह है कि क्या याची के पास इस छल साधन के संबंध में कोई जानकारी है या वह ऊपर कथित दोनो रजिस्टरों अर्थात् B फॉर्म रजिस्टर एवं बोनस रजिस्टर में चतुराई से हेराफेरी के षड्यंत्र में था।

12. यह पूर्णरूप से स्थापित विधि का सिद्धांत है कि यदि कोई संदेह है, तो अभियुक्त व्यक्ति को संदेह का लाभ जाना चाहिए। इस मामले में यह प्रतीत होता है कि, अभियोजन भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन याची के विरूद्ध आरोप को पर्याप्त एवं संभाव्य संदेहों से परे सिद्ध एवं स्थापित करने में असमर्थ है। इसलिए, उपरोक्त मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में मेरे विचार में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन याची को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता। तद्नुसार, यह पुनरीक्षण अनुज्ञात की जाती है। याची के विरूद्ध, न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश अपास्त किए जाते हैं एवं वह बंध-पत्र के दायित्वों से मुक्त किया जाता है।

ekuuh; vej'oj lgk; ,o vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efrix.k

पाँचू ओरांव एवं एक अन्य

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

दाण्डिक अपील सं० 23 वर्ष 1992 (R). 20 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं० 222 वर्ष 1991 में सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 7.3.1992 के दोषसिद्धि एवं दण्ड के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

(क) भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 302/34—हत्या–चिकित्सीय साक्ष्य–आँखों देखी एवं चिकित्सीय साक्ष्य के बीच असंगतता–मृतक के शरीर पर तेज धारदार हथियार से कटने का तीन चिन्ह पाया गया था–प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने कहा कि दोनों ही अपीलार्थी लाठी लिए हुए थे–प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य विश्वसनीय अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। (पैरा 15)

(ख) दाण्डिक विचारण–साक्ष्य–यदि अभियोजन मामला गम्भीर अशक्तताओं एवं दुर्बल साक्ष्य से ग्रसित है तो दोषसिद्धि कायम नहीं रखा जा सकता है। (पैरा 16 एवं 17)

अधिवक्तागण.–Mr. Mohd. Zaid Ahmad, For the Appellant; Ms. Lily Sahay, For the State.

न्यायालय द्वारा.–दोनो अपीलार्थीगण पाँचू ओरांव एवं मोहन ओरांव जो कि सगे भाई हैं, ने सत्र विचारण सं० 222 वर्ष 1991 में, सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 7.3.1992 के उस निर्णय के विरूद्ध यह अपील दाखिल की है जिसके द्वारा, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने यह पाकर दोनों को दोषी अभिनिर्धारित किया कि अपने सामान्य आशय के अग्रसारण में, उनलोगों ने मृतक अर्थात् बुधराम ओरांव पर उसकी मृत्यु कारित करने के आशय से लाठी से प्रहार किया था एवं तद्द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दण्डनीय हत्या की कोटि का मानव वध कारित किया था एवं तद्द्वारा उनलोगों को आजीवन कठोर कारावास से दण्डित किया।

2. संक्षेप में तथ्य ये हैं कि सोमरा ओरांव (अ० सा० 4) ने प्राथमिकी (प्रदर्श–3) दर्ज कराया उसमें यह अभिकथित करते हुए कि 10.7.1991 को लगभग 4.30 बजे शाम में जब बुधराम ओरांव 'मादा मदनिया डॉन' में अपने पशुओं को चरा रहा था, तभी अपीलार्थीगण वहाँ आए एवं लाठी से उसपर प्रहार किया एवं कारित उपहतियों के कारण, मृतक की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गयी। साक्षियों द्वारा 'हल्ला' किए जाने पर, अभियुक्त व्यक्ति भाग गये। घटना के पीछे यथा अभिकथित हेतु यह था कि मृतक द्वारा किए गए जादूटोना के फलस्वरूप, अपीलार्थीगण के पुत्रों की मृत्यु हो गयी थी। प्राथमिकी में विनिर्दिष्ट रूप से कथन किया गया है कि थेम्बु ओरांव ने उसे सूचित किया कि उसके चाचा बुधराम ओरांव की हत्या इन दोनों अपीलार्थियों द्वारा लाठी से पीट–पीटकर कर दी गयी थी।

3. पुलिस ने मामले में आरोप–पत्र पेश किया एवं तत्पश्चात्, अपीलार्थियों को विचाराधीन रखा गया, जहाँ उनलोगों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया।

4. आरोपों को प्रमाणित करने के क्रम में कुल दस अभियोजन साक्षियों की परीक्षा की गयी थी जिसमें से, अ० सा० 1, 3, 7 एवं 8 ने घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया है। अ० सा०–5 वह डॉक्टर है जिसने शव परीक्षण किया जबकि, अ० सा०–10 अन्वेषण अधिकारी हैं, अ० सा० 9 थेम्बु ओरांव है जिसे प्राथमिकी में एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के तौर पर नामजद किया गया है एवं वह वही व्यक्ति जिससे सूचनादाता घटना के बारे में जान पाया जिसमें से थेम्बु ओरांव को पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

5. डॉक्टर के साक्ष्य के अनुसार, जिसने मृत्योपरांत परीक्षा किया, मृतक के शरीर पर निम्नलिखित उपहतियाँ पायी गयी:–

होमोथोरेक्स के दायें भाग पर दायें उपरी बाह्य भाग पर 1" x 1/2" x 1" का छिन्न जख्म।

दायें आँख के पार्श्विक कैंथस पर 0" x 1/2" x 1/2" का छिन्न जख्म।

एस्सिपिटल क्षेत्र पर 2" x 1/2" x 1/2" की छिन्न उपहति।

बायें अग्रबाहु का अस्थिभंग।

डॉक्टर ने उपहति सं॰ 1, 2 एवं 3 को तीक्ष्ण धारदार हथियार द्वारा कारित छिन्न जख्म होना पाया, जबकि उपहति सं॰ 4, जो मृतक के बायें हाथ का अस्थिभंग था, कठोर एवं भोथरे पदार्थ द्वारा कारित पाया गया था। दोनों छिन्न उपहतियाँ अर्थात् 2 एवं 3 को सामान्य प्रकृति का होना पाया गया था। मृत्यु का कारण, डॉक्टर के अनुसार, उपहति सं॰ 1 था।

6. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन की ओर से पेश किए गए साक्ष्य एवं अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर, अपीलार्थियों को दोषसिद्ध किया जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है।

7. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री जैद अहमद ने जोरदार निवेदन किया कि यह एक साक्ष्य रहित मामला है एवं विद्वान विचारण न्यायालय ने गलत एवं अविधिमान्य रूप से अभियोजन की ओर से अभिलेख पर लाये गए साक्ष्यों के आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया जो बिल्कुल ही विश्वसनीय एवं विश्वासोत्पादक नहीं हैं।

दूसरी ओर, विद्वान अपर लोक अभियोजक, श्रीमती लिली सहाय ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन करते हुए निवेदन किया कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के विनिर्दिष्ट साक्ष्य की दृष्टि में, अभियोजन अपीलार्थीगण के विरूद्ध आरोपों को सभी युक्तियुक्त संदेह से परे प्रमाणित करने में सफल रहा है एवं, इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने उचित रूप से ही बुधराम ओंराव की हत्या कारित करने के लिए दोनों को दोषसिद्ध एवं दण्डित किया है।

8. पक्षकारों के परस्पर विरोधी निवेदनों की परीक्षा करने के क्रम में, हमने साक्षियों के साक्ष्य एवं अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों पर सूक्ष्मता से विचार किया है।

9. अ॰ सा॰–1 सैरनी ओरांव ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि घटना की तिथि को 4.30 बजे शाम में वह सुरसा बाजार जा रही थी एवं जब वह 'महडोनिया डॉन' के निकट पहुँची, तो उसने अपीलार्थी को मृतक बुधराम ओरांव पर लाठी से प्रहार करते हुए देखा। वह तत्पश्चात्, गाँव के बाजार की ओर दौड़ी एवं कृष्णा को वृत्तांत सुनाई। उसने अपने मुख्य परीक्षा में यह भी कही है कि अपीलार्थीगण ने मृतक पर प्रहार किया क्योंकि वह जादूटोना किया करता था। प्रहार के कारण मृतक की मृत्यु हो गयी।

प्रति–परीक्षा में, उसने घटना देखने के पश्चात कथन कि है कि उसने यह भी कथन किया कि उसने न तो शोर मचाई और न ही वह बुधराम ओरांव के पास गयी। प्रति परीक्षण में उसने यह भी कथन किया कि जब वह बाजार से गाँव वापस आयी, तो उसने घटना के बारे में किसी से भी यह तथ्य प्रकट नहीं की। उसने चौकीदार को भी सूचित नहीं किया।

10. अ॰ सा॰ 2 कृष्णा ओरांव एक अनुश्रुत साक्षी है एवं उसने कहा है कि उसे गाँव के बाजार में घटना के बारे में अ॰ सा॰ 1 द्वारा सूचित किया गया था।

11. अ॰ सा॰ 3 झाबु ओरांव घटना के एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के तौर पर उपस्थित हुआ है एवं कथन किया है कि घटना की तिथि एवं समय पर, वह घटनास्थल अर्थात्, 'महडोनिया डॉन' के निकट अपने पशु चरा रहा था जहाँ मृतक बुधराम ओरांव भी अपना पशु चरा रहा था। उसी समय, दोनों

अपीलार्थीगण वहाँ पहुँचे एवं बुधराम ओरांव से लाठी छीन ली एवं उसी से प्रहार करना प्रारम्भ किया। अपीलार्थी पाँचू मृतक को पकड़े हुए था जबकि अपीलार्थी मोहन ओरांव लाठी से उसपर प्रहार कर रहा था। उक्त प्रहार के कारण बुधराम ओरांव की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गयी।

प्रति-परीक्षण में, इस साक्षी ने कहा है कि अपीलार्थीगण के भाग जाने के उपरांत, वह घटनास्थल पर गया एवं जब वह घटनास्थल पर पहुँचा, तो मृतक की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। उसने गाँव में घटना के बारे में किसी से नहीं बताया। उसने घटना के समय पर शोर भी नहीं मचाया।

12. अ॰ सा॰-7 मदन पहान ने भी स्वयं को एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया है एवं उसने अपने साक्ष्य में कहा है कि मृतक पर उन दोनों अपीलार्थियों द्वारा लाठी से प्रहार किया गया था जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गयी। उसने यह भी कथन किया कि जब मृतक पर प्रहार किया जा रहा था, तो उसने शोर मचाया एवं इस शोर पर, झाबु ओरांव (अ॰ सा॰-3) एवं लोधु ओरांव (अ॰ सा॰-8) वहाँ आया परन्तु प्रहार के उपरांत अपीलार्थीगण वहाँ से भाग गये।

प्रति-परीक्षण में, इस साक्षी ने कथन किया है कि मृतक-बुधराम ओरांव अपने पशु 'मदानिया डॉन' के निकट चरा रहा था। उसने यह भी बताया कि बुधराम ओरांव (मृतक) की मृत्यु साक्षियों सरानी ओरांव (अ॰ सा॰ 1), झाबु ओरांव (अ॰ सा॰ 3) एवं लोधु ओरांव (अ॰ सा॰-8) के घटनास्थल पर पहुँचने से पहले ही हो गयी थी। उसने स्वीकार किया कि उसे अपीलार्थीगण के साथ शत्रुता थी।

13. अ॰ सा॰-8 लोधु ओरांव ने स्वयं को एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने की परीक्षा दी है एवं उसने कहा है कि जब वह गाँव के बाजार में जा रहा था, तो उसने अपीलार्थीगण को मृतक पर प्रहार करते हुए देखा एवं तत्पश्चात्, वह बाजार गया। उसने अपने प्रति-परीक्षण में विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि उसने घटनास्थल पर मात्र अपीलार्थीगण एवं मृतक को ही देखा एवं किसी अन्य को नहीं।

14. अ॰ सा॰ 9 थेम्बु ओरांव को पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उसने अभियोजन वृत्तांत का समर्थन नहीं किया।

15. सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य जो अभियोजन के विरूद्ध जाता है यह है कि मृत्योपरांत परीक्षण के अनुसार, मृतक के शरीर पर चार उपहतियाँ थी जिसमें से तीन तेज धारदार हथियार से कारित छिन्न जख्म थे जबकि, चौथा कठोर एवं भोथरे पदार्थ द्वारा कारित उपहति था जो उसके अग्रबाहु पर था। सम्पूर्ण अभियोजन मामला यह है कि अपीलार्थीगण ने मृतक पर लाठी से प्रहार किया। अभियोजन साक्षियों में से किसी ने भी कहीं भी यह नहीं कहा है कि अपीलार्थीगण तेज धारदार हथियार लिए हुए थे अथवा उनलोगों ने मृतक पर तेज धारदार वाले हथियार से प्रहार किया। इसलिए, अभियोजन इस बात को स्पष्ट करने में पूर्णतया असफल हैं कि किस प्रकार एवं कहाँ से एवं किसके द्वारा मृतक को छिन्न जख्म की उपहतियाँ कारित हुई थी। डॉक्टर के अनुसार, उपहति सं॰ 1 छिन्न जख्म था एवं वह मृत्यु का कारण था। आँखों देखी एवं चिकित्सीय साक्ष्य के बीच महत्वपूर्ण असंगतता अभियोजन वृत्तांत पर घोर संदेह उत्पन्न करता है।

अभियोजन वृत्तांत इस आधार पर भी संदेहास्पद हो जाता है कि प्राथमिकी में, मात्र थेम्बु ओरांव (अ॰ सा॰-9) को ही एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के तौर पर नामजद किया गया था परन्तु इस अ॰ सा॰-9 ने अभियोजन वृत्तांत का समर्थन नहीं किया एवं वह पक्षद्रोही घोषित किया गया था। अ॰ सा॰ 1, 3, 7 एवं 8 को जिन्होंने स्वयं को घटना का प्रत्यक्षदर्शी होने के लिए परीक्षा करायी है, प्राथमिकी में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के तौर पर नामजद नहीं किया गया था। लेकिन, उनलोगों ने अपने साक्ष्य में यह

स्वीकार किया है कि इन अपीलार्थियों द्वारा मृतक पर प्रहार की घटना देखने के उपरांत, उनलोगों ने कोई शोर नहीं मचाया न ही उनलोगों ने घटना का तथ्य गाँव में किसी को बताया। यह, हमारी राय में, स्वभाविक मानवीय आचरण के विरूद्ध है एवं इसलिए, तथाकथित प्रत्यक्षदर्शीयों का साक्ष्य-विश्वसनीय नहीं होना पाया गया है।

16. तथाकथित प्रत्यक्षदर्शीयों अर्थात् अ॰ सा॰ 1, 3, 7 एवं 8 असंगत हैं एवं एक दूसरे के विपरीत भी हैं। प्रत्यक्षदर्शी अ॰ सा॰ 8 ने कहा कि घटना के समय, उसने मात्र मृतक एवं इन दोनों अपीलार्थीगण को ही देखा था। यदि ऐसे अभिकथन पर विश्वास किया जाता है, तब घटनास्थल पर अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों की उपस्थिति संदेहास्पद हो जाती है।

अ॰ सा॰ 7, प्रत्यक्षदर्शी ने अपने साक्ष्य में कहा है कि साक्षीगण झाबु ओरांव, सैरनी ओरांव एवं लोधु ओरांव अर्थात् अ॰ सा॰ 3, 1 एवं 8 के पहुँचने के पहले ही मृतक की मृत्यु हो चुकी थी। यदि इस अभिकथन को स्वीकार किया जाता है, तब अ॰ सा॰ 3, 1 एवं 8 वास्तविक प्रहार के साक्षी नहीं हो सकते थे।

17. ऐसी स्थिति में, हम पाते हैं कि अभियोजन मामला गम्भीर अशक्तताओं से ग्रस्त है एवं अभियोजन द्वारा पेश किए गए ऐसे दुर्बल प्रकृति के साक्ष्य पर बुधराम ओरांव की हत्या कारित करने के लिए अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं है। हमारी दृष्टि में, विद्वान विचारण न्यायालय ने उपरोक्त आरोप के लिए अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने में विधि एवं तथ्यों पर दोनों की ही त्रुटि कारित की है।

18. उपरोक्त विवेचनों एवं निष्कर्षों की दृष्टि में, यह अपील अनुज्ञात किया जाता है। विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण के विरूद्ध पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को जो जमानत पर हैं अपने-अपने जमानत बंध-पत्रों के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; vftr d|ekj flUgk] U;k;e|fr

अखिलेश्वर प्रसाद गुप्ता

बनाम

झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

W.P. (S) No. 361 वर्ष 2004. 19 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि-अनुशासनिक कार्यवाही-यह आरोप कि याची अपनी कार्यालय से अनुपस्थित था एवं अपनी ड्यूटी की उपेक्षा की थी-अभिनिर्धारित, अनुशासनिक प्राधिकारी ने जाँच अधिकारी द्वारा याची को सभी आरोपों से मुक्त करते हुए दी गयी विस्तृत एवं युक्तिसंगत जाँच रिपोर्ट से भिन्नता रखने का कारण एवं आधार समनुदेशित नहीं किया है-दण्ड का आदेश अपास्त किया गया। (पैरा 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.-Mr. R.S. Mazumdar, For the Petitioner; M/s R. Krishna, Amit Sinha, For J.S.E.B.; Mr. Manoj Tandon, For B.S.E.B.

आदेश

वर्तमान रिट आवेदन निम्नलिखित अनुतोषों के लिए दाखिल की गयी है:-

(1) इस रिट आवेदन के उपाबंध-10 में यथा अंतर्विष्ट, प्रत्यर्थी सं॰ 5, संयुक्त सचिव, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड, पटना के हस्ताक्षराधीन निर्गत दिनांक 2.11.1999 के संकल्प सं॰ 2790 को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति के एक यथोचित रिट के निर्गतीकरण के लिए, जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन, प्रत्यर्थी सं॰ 5 निम्नलिखित प्रकार से दण्ड अधिनिर्णित करके प्रसन्न थे:-

(a) याची ''परिनिंदित'' है, जो 1998-99 के लिए उसके वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में दर्ज किया जाएगा,

(b) याची को आपूर्त्ति उप-खंड/आपूर्त्ति खंड में दो वर्षों तक पदस्थापित नहीं किया जाएगा,

(c) याची निलम्बन अवधि के दौरान निर्वाह भत्ता के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं करेगा। इस अवधि की गणना सेवानिवृत्ति उपरांत प्रसुविधाओं के लिए ड्यूटी पर होने के तौर पर की जायेगी।

उपरोक्त दण्ड इस रिट आवेदन के उपाबंध-9 में यथा-अंतर्विष्ट दिनांक 20.8.1999 के संकल्प सं॰ 2233 के आलोक में अधिनिर्णित किया गया है।

(2) इस रिट आवेदन के उपाबंध-14 में यथा अंतर्विष्ट संयुक्त सचिव, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड, पटना, प्रत्यर्थी सं॰ 5 के हस्ताक्षराधीन निर्गत दिनांक 11.7.2002 के पत्र सं॰ 111/CAS-DP-3010/99 को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक यथोचित रिट के निर्गतीकरण के लिए, जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन, प्रत्यर्थी सं॰ 5 निलंबन की अवधि के दौरान वेतन के भुगतान के लिए याची द्वारा दाखिल किए गए अभ्यावेदन को अस्वीकृत करके प्रसन्न थे,

(3) निलंबन की अवधि अर्थात् 15.7.1998 से 5.8.1999 तक का वेतन भुगतान करने के लिए प्रत्यर्थियों को निर्देश एवं समादेश देने वाले परमादेश की प्रकृति में एक यथोचित रिट के निर्गतीकरण के लिए,

(4) दिनांक 24.10.2000 के अधिसूचना सं॰ 275/276 के अनुसार 1.1.1996 के प्रभाव से वेतन नियतीकरण के उपरांत 11,850/- रु॰ के स्थान पर 12,150/- रु॰ की दर से वेतन का भुगतान करने के लिए सम्बन्धित प्रत्यर्थीगण को निर्देश एवं समादेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में एक यथोचित रिट के निर्गतीकरण के लिए,

(5) वर्ष 1999 की वार्षिक वेतन वृद्धि देने एवं द्वितीय कालबद्ध प्रोन्नति देने एवं जनवरी, 2000 से इसके पारिणामिक प्रसुविधाओं को देने के लिए जिसके लिए याची विधिसम्मत रूप से हकदार है, प्रत्यर्थीगण को निर्देश एवं समादेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में एक यथोचित रिट के निर्गतीकरण के लिए,

(6) संशोधित वेतनमान पर पेंशन एवं उपदान नियत करने एवं इसके अतिरिक्त पेंशन एवं उपदान के अधिशेषों को भिन्नता करने के लिए, जिसके लिए याची विधिसम्मत रूप से हकदार है प्रत्यर्थीगण को निर्देश एवं समादेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में एक यथोचित रिट के निर्गतीकरण के लिए।

2. संक्षेप में तथ्य निम्नवत उपवर्णित हैं:-

याची को 22.6.1964 को कनीय विद्युत अभियंता के तौर पर नियुक्त किया गया था एवं बाद में वर्ष 1989 में सहायक विद्युत अभियंता के पद पर प्रोन्नत किया गया था एवं उसे वर्ष 1992 में उक्त पद पर संपुष्ट किया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, उसने अवकाश के लिए आवेदन दिया था जो 4.7.1998 को 5.7.1998 से 11.7.1998 तक के बीच की अवधि के लिए मंजूर किया गया था क्योंकि याची अस्वस्थ था एवं उसे चिकित्सीय जाँच के लिए जाना था जिसके लिए उसने सम्यक् रूप से एक आवेदन दाखिल किया था एवं इससे पहले उसने किसी शहरी क्षेत्र में स्थानान्तरित करने के लिए 26.6.1998 को एक अभ्यावेदन भी दाखिल किया था जहाँ वह उसके एक गंभीर मधुमेह रोगी होने एवं दमा से भी ग्रस्त होने की दृष्टि में नियमित रूप से चिकित्सीय सुविधायें प्राप्त कर सके। याची ने 15.7.1998 को संयुक्त सचिव द्वारा निर्गत ज्ञाप सं॰ 3038 प्राप्त किया जिसके माध्यम से उसे डयूटी का जानबूझकर उल्लंघन एवं उपेक्षा के लिए निलंबनाधीन रखा गया था एवं याची को निलंबन की अवधि के दौरान निर्वाह भत्ता की निकासी करने की अनुज्ञा दी गयी थी।

याची दिनांक 15.7.1998 के ज्ञापन सं॰ 3038 के कार्यालय आदेश के अनुसार 18.7.1998 को अपना पदग्रहण करने चाईबासा गया। लेकिन, निलम्बन का आदेश प्राप्त करके उसने निलंबन का इस आधार पर प्रतिसंहरण करने के लिए सचिव, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड के पास 28.7.1998 को एक अभ्यावेदन दायर किया कि उसका अवकाश सम्बन्धित प्राधिकारी द्वारा सम्यक् रूप से मंजूर किया गया था। लेकिन, डयूटी की घोर उपेक्षा एवं बोर्ड के आदेश की अवज्ञा के लिए 12.8.1998 को एक आरोप-पत्र निर्गत किया गया था एवं याची को अपना लिखित अभिकथन सम्बन्धित जाँच अधिकारी के पास जमा करने को कहा गया था क्योंकि एक विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ की गयी थी। याची ने जाँच अधिकारी के समक्ष अपना लिखित अभिकथन यह कहते हुए दिया कि अवकाश सम्यक् रूप से मंजूर किया गया था एवं चिकित्सा प्रमाण पत्रों को भी उपलब्ध कराया गया था। दोनों पक्षों के साक्षियों की परीक्षा एवं प्रति-परीक्षा के अनुशरण में एवं लिखित तर्कों पर भी विचार करके, जाँच अधिकारी ने याची को सभी आरोपों से मुक्त करते हुए 20.5.1999 को जाँच रिपोर्ट पेश की। अनुशासनिक प्राधिकारी ने निलंबन को प्रतिसंहरित किया एवं पैराग्राफ-1 में यथा इंगित दण्ड, अर्थात परिनिंदा एवं निलम्बन की अवधि के दौरान निर्वाह भत्ता के अतिरिक्त किसी भी राशि का भुगतान न किए जाने का दण्ड अधिनिर्णीत करने का प्रस्ताव किया।

याची को द्वितीय कारण बताओ नोटिस की तामीला करायी गयी थी जिसका उत्तर 30.8.1999 को दाखिल किया गया था एवं दिनांक 20.8.99 के संकल्प सं॰ 2233 के माध्यम से दण्ड सं॰ 2 में कतिपय उपान्तरणों के साथ दिनांक 2.11.1999 के संकल्प सं॰ 2080 के माध्यम से इस दण्ड को संपुष्ट किया गया था।

याची ने तत्पश्चात अधिरोपित दण्ड को चुनौती देते हुए अध्यक्ष के समक्ष एक अभ्यावेदन दाखिल किया। इसी बीच याची 31.1.2002 को सेवा से निवृत्त हो गया एवं उसने उन लाभों को छोड़कर जिसका दावा वर्तमान रिट याचिका में किया गया है। सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं को प्राप्त किया। याची द्वारा दाखिल किए गए अभ्यावेदन को भी दिनांक 11.7.2002 के आदेश के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया था एवं तद्नुसार वर्तमान रिट याचिका दाखिल किया गया है जब याची द्वारा दाखिल कई अभ्यावेदनों का कोई उत्तर नहीं दिया गया था।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य दावा यह है कि क्या सम्बन्धित प्रत्यर्थी को वेतन के अधिशेषों एवं निलंबन की अवधि के दौरान राशि के अंतर का भुगतान करने से इनकार करने एवं/या इस तथ्य की दृष्टि में दण्ड का आदेश पारित करने की शक्ति या अधिकारिता थी कि याची स्वीकार्यत: सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूर किए गए स्वीकृत अवकाश पर था।

यह भी दावा किया गया है कि द्वितीय कालबद्ध प्रोन्नति दिए जाने से इन्कार एवं संशोधित वेतनमान के अनुसार वेतनवृद्धि को भी नहीं दिया जाना जिसका याची विधिसम्मत रूप से हकदार था, मनमाना एवं अविधिमान्य है।

4. प्रति शपथपत्र में प्रत्यर्थीगण ने निवेदन किया है कि यद्यपि जाँच अधिकारी द्वारा याची को सभी आरोपों से मुक्त किया गया था, तथापि, उसे अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा दोषी पाया गया था जिसके लिए द्वितीय कारण-पृच्छा नोटिस दिया गया था एवं इस प्रकार दिनांक 2.11.1999 का निलंबन का आदेश अभिखंडित करने के लिए की गई प्रार्थना पोषणीय नहीं था एवं अस्वीकार किए जाने योग्य था।

प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में विनिर्दिष्ट रूप से कथन किया है कि याची ने श्री सुरेन्द्र प्रसाद, ए॰ ई॰ ई॰, मोहनिया से द्वितीय आकस्मिक अवकाश आवेदन उपाप्त किया जो नियंत्री प्राधिकारी थे एवं उनलोगों ने स्वीकार किया कि श्री कपिलेश प्रसाद द्वारा 20.5.99 को पेश की गयी जाँच रिपोर्ट में उन आरोपों को जो याची के विरूद्ध लगाये गए थे, प्रमाणित नहीं किया जा सका एवं जाँच अधिकारी ने याची को सभी आरोपों से मुक्त किया।

1999 के प्रभाव से वेतनवृद्धि के दावे के सम्बन्ध में प्रत्यर्थी ने कथन किया है कि चूँकि वह 15.7.1998 से 5.8.1999 तक निलंबित था इसलिए नियम के अनुसार उसके वेतन वृद्धि की अगली तिथि 23.1.2000 होगी जो उसे अनुज्ञात कर दिया गया है। लेकिन, वह निलम्बन के दौरान वेतनवृद्धि को अर्हित नहीं करता है।

5. मैंने दोनों पक्षों के अभिवचनों सहित तर्कों एवं निवेदन पर विचार किया है। वर्तमान मामले में याची को जाँच रिपोर्ट में सभी आरोपों से मुक्त किया गया था परन्तु अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा इसे उलटा गया था एवं निम्नलिखित दण्ड का प्रस्ताव किया गया था।

(i) उसे ''परिनिंदित'' होना चाहिए'',

(ii) उसे दो वर्षों तक आपूर्त्ति उप-खंड में पदस्थापित नहीं किया जायेगा,

(iii) वह निलंबन की अवधि के दौरान निर्वाह भत्ता के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं करेगा। यद्यपि, इस अवधि की गणना सेवानिवृत्ति उपरांत प्रसुविधाओं के लिए डयूटी पर होने के तौर पर होगी।

6. वर्तमान मामले में यह सुव्यक्त होगा कि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित दण्ड भी आधार रहित असमानुपातिक है एवं मात्र इस कारण से कि विवेक का बिल्कुल भी प्रयोग नहीं किया गया है कि याची आरम्भ में 5.7.98 से 11.7.98 तक स्वीकृत अवकाश पर था एवं तत्पश्चात् उसने इसे अगले चार दिनों तक विस्तारित कराया जिसके लिए उसने चिकित्सीय प्रमाण-पत्र भी पेश किए थे। अनुशासनिक प्राधिकारी ने जाँच अधिकारी द्वारा याची को सभी आरोपों से मुक्त करते हुए दी गयी विस्तृत एवं युक्तिसंगत जाँच रिपोर्ट से मत भिन्नता रखने का कारण एवं आधार भी समनुदेशित नहीं किया है।

7. मामले के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है एवं दिनांक 2.11.1999 के आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है एवं याची को सभी पारिणामिक प्रसुविधायें देने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाता है।

---

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky] U;k;efr

मोस्मात माधुरी देवी

बनाम

पारस नाथ केसरी एवं अन्य

प्रथम अपील सं॰ 85 वर्ष 2007. 1 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

सिविल न्यायालय कर्मचारी (वर्ग III एवं वर्ग IV) नियमावली, 1992/1998—नियम 61 से 68—प्रोन्नति–उच्च न्यायालय के स्टांप रिपोर्टर, अनुभाग अधिकारी एवं प्रशासनिक अधिकारी को प्रोन्नत करने के लिए नियमावली में योग्यता, अनुभव के सम्बन्ध में कोई मानदण्ड नहीं है, न ही सहायकों को अनुभाग अधिकारी, स्टांप रिपोर्टर एवं प्रशासनिक अधिकारी के पद पर प्रोन्नत करने के लिए उनकी मेधा का निर्धारण करने के प्रयोजन से कोई सीमित परीक्षा ही ली जाती है–अभिनिर्धारित, प्रशासनिक कार्य के अतिरिक्त न्यायिक कार्य भी प्रभावित हो रहा है एवं इन प्रोन्नत सहायकों द्वारा दी गयी गलत स्टांप रिपोर्टिंग एवं कार्यलयी टिप्पण की कमी के कारण मामलों के निस्तारण में अनावश्यक विलम्ब कारित हो रहा है–मामले को उच्च न्यायालय नियमावली में आवश्यक संशोधन करने के लिए माननीय मुख्य न्यायाधीश एवं स्टैंडिग कमिटी द्वारा विचार किए जाने की जरूरत है। (पैरा 8, 9 एवं 11)

अधिवक्तागण.–Mr. O.P. Tiwari, For the Appellant.

आदेश

उत्तरदायी एवं समय पर न्याय के साथ मामलों के शीघ्र निस्तारण समय की मांग है एवं इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, इन समस्याओं के कारण, इससे छुटकारा पाने के मार्ग एवं साधन का पता करने के क्रम में राष्ट्रीय स्तर एवं राज्य स्तर दोनों पर ही पूरे देश में सेमिनार, कार्यशाला, वाद-विवाद एवं परिचर्चायें आयोजित की जा रही हैं।

2. जहाँ तक कि उच्च न्यायालयों विशेषकर इस न्यायालय में मामलों के लम्बित रहने का सम्बन्ध है, मेरे अनुसार, इन कारणों में से एक अनुभाग अधिकारी, प्रशासनिक अधिकारी एवं स्टांप रिपोर्टर के पद पर गैर-अनुभवी एवं अप्रशिक्षित अधिकारियों के पद स्थापन में है जो ''न्याय के प्रशासन'' के भाग हैं। प्रशासनिक अधिकारियों अनुभाग अधिकारियों एवं स्टांप रिपोर्टरों के तौर पर पदस्थापित वे सभी वर्ग II के वरीय अधिकारी, आवेदनों, अपीलों, पुनर्विलोकन याचिकाओं, इत्यादि की त्रुटियों को इंगित करने के उपरांत एवं ऐसी याचिकाओं/आवेदनों के लिए भुगतेय न्यायालय शुल्क स्टांप एवं अन्य प्रभारों के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने के उपरांत मामलों को तैयार रखने के लिए उत्तरदायी हैं। त्रुटियों को दूर किए जाने के तत्काल बाद, उन मामलों को स्वीकृति हेतु इस पीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जाता है।

3. उदाहरण के लिए, वर्तमान अपील विभाजन वाद सं॰ 25 वर्ष 1988 में अधीनस्थ न्यायाधीश, गढ़वा द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध 11.6.2007 को दाखिल किया गया था। अपील का ज्ञापन अपीलाधीन निर्णय एवं डिक्री की प्रमाणित प्रतियों के साथ दिया गया था। स्टांप रिपोर्टर ने दिनांक 20.6.2007 के कार्यालय टिप्पण के माध्यम से छह त्रुटियाँ इंगित की एवं सभी त्रुटियों को 17.7.2007 को अधिवक्ता द्वारा दूर कर दिया गया था। स्टांप रिपोर्टर ने पुनः अपने कार्यालयी टिप्पण में वर्णन किया कि न्यायालय शुल्क के सम्बन्ध में नवीन रिपोर्ट अवर न्यायालय के अभिलेख की जाँच करने के उपरांत की जायेगी। तद्नुसार, अपील को खंड पीठ के समक्ष 10.1.2008 को सूचीबद्ध किया गया था। दिनांक 10.1.2008 के आदेश के माध्यम से, अपील को नये कार्यालयी टिप्पण के साथ दो सप्ताह के बाद सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया था। पुनः स्टांप रिपोर्ट के आधार पर 18.3.2009 को इस प्रभाव का एक नवीन कार्यालयी टिप्पण दिया गया था कि न्यायालय शुल्क से सम्बन्धित रिपोर्ट को अवर न्यायालय से अभिलेख के मांगे जाने के उपरांत ही की जायेगी। अभिलेख की मांग करने के लिए आदेश पारित करने के प्रयोजन से अपील को आज मेरे समक्ष सूचीबद्ध किया गया था। इस प्रकार, 11.6.2007 से 1.4.2009 तक अर्थात् लगभग दो वर्षों तक, वर्तमान अपील को स्टांप रिपोर्टर द्वारा दिए गए रिपोर्ट के कारण स्वीकृति हेतु सूचीबद्ध नहीं किया जा सका था। यह न केवल एकमात्र ऐसा मामला है अपितु कार्यालय द्वारा त्रुटियों को इंगित किए जाने के उपरांत लावाजिमा पीठ के समक्ष कई सौ मामले लंबित हैं।

4. अब प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या स्टांप रिपोर्टर ने उचित रूप से भुगतेय न्यायालय शुल्क के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने के लिए अभिलेख की मांग करने का टिप्पण दिया है? जैसा कि ऊपर में उल्लेख किया गया है, अपील का ज्ञापन निर्णय एवं डिक्री की प्रमाणित प्रतियों के साथ दाखिल किया गया था। डिक्री में, वाद का मूल्यांकन पाँच लाख रुपये के तौर पर वर्णित है एवं चूँकि यह एक विभाजन वाद था, इसलिए डिक्री में यह भी वर्णित किया गया है कि 706/- रु॰ की एक धनराशि का भुगतान न्यायालय शुल्क के तौर पर किया गया था। डिक्री में वर्णित भुगतेय न्यायालय शुल्क एवं वाद के मूल्यांकन के बावजूद, स्टांप रिपोर्टर ने एक टिप्पण दी कि न्यायालय शुल्क से सम्बन्धित रिपोर्ट अवर न्यायालय से अभिलेख की मांग किए जाने के उपरांत ही की जायेगी। यह दर्शाता है कि सहायक को, जो कि एक स्टांप रिपोर्टर के तौर पर प्रोन्नति के उपरान्त पदस्थापित हैं, इसके बारे में कोई प्रारम्भिक ज्ञान नहीं है कि किस प्रकार से स्टांप रिपोर्ट बनाया जाता है एवं न्यायालय शुल्क की राशि न्यायालय शुल्क अधिनियम एवं वाद मूल्यांकन अधिनियम के अधीन, अपील में न्यायालय शुल्क किस प्रकार से भुगतेय होता है। ऐसे पद पर वर्ग III कर्मचारी की प्रोन्नति पर पदस्थापन का कारण मात्र वरीयता के आधार पर एवं बिना किसी परीक्षा के एवं ऐसे व्यक्ति की मेधा का निर्धारण किए बिना या तो स्टांप रिपोर्टर, अनुभाग अधिकारी या प्रशासनिक अधिकारी के पद पर प्रोन्नत किया जाना है। झारखंड उच्च न्यायालय नियमावली का अनुसूची C वर्ग II राजपत्रित अधिकारी की नियुक्ति के तरीकों को अधिकथित करता है। बेहतर मूल्यांकन के लिए, अनुसूची C को यहाँ पर नीचे उद्धृत किया जाता है:-

''अनुसूची-C

वर्ग II (राजपत्रित)

क्र सं॰	संवर्ग/वर्ग पदनाम	नियुक्ति का माध्यम	फीडर पद पर अर्जित किया गया अपेक्षित न्यूनतम अनुभव, यदि कोई हो	विद्यमान वेतनमान
1	2	3	4	5
1.	प्रशासनिक अधिकारी	विद्यमान वेतनमान में मेधा-सह-सेवा विस्तार के आधार पर सेक्शन अधिकारियों/स्टांप रिपोर्टर/ओथ आयुक्त/उप निदेशक (अनुवाद)/अनुवाद अधिकारी से प्रोन्नति द्वारा	तीन वर्ष	6,500-200-10,500/- रु॰
2.	ओथ आयुक्त	विद्यमान वेतनमान में मेधा-सह-सेवा विस्तार के आधार पर सहायकों/अनुवादकों से प्रोन्नति द्वारा।	पाँच वर्ष	6,500-200-10,500/- रु॰
3.	स्टांप रिपोर्टर	विद्यमान वेतनमान में मेधा-सह-सेवा विस्तार के आधार पर सहायकों/अनुवादकों से प्रोन्नति द्वारा।	पाँच वर्ष	6,500-200-10,500/- रु॰
4.	उप-निदेशक (अनुवाद)			6,500-200-10,500/- रु॰
5.	अनुभाग अधिकारी	विद्यमान ग्रेड में मेधा-सह-वरीयता/सेवा विस्तार के आधार पर उसी वेतनमान के किसी पद से या सहायकों या अनुवादकों से प्रोन्नति द्वारा।	पाँच वर्ष	6,500-200-10,500/- रु॰
6.	वरीय व्यक्तिगत सहायक	व्यक्तिगत सहायकों में से प्रोन्नति द्वारा जो विहित परीक्षा, यदि कोई हो, उत्तीर्ण करने के अध्यधीन है।	पाँच वर्ष	6,500-200-10,500/- रु॰
7.	अनुवाद अधिकारी	मेधा-सह-वरीयता के आधार पर अनुवादकों से प्रोन्नति द्वारा।	पाँच वर्ष	6,500-200-10,500/- रु॰

8.	एकाउंटस-कम-कैश अधिकारी	कैशियर से प्रोन्नति द्वारा।	तीन वर्ष	

5. अनुसूची के अनावृत्त परिशीलन से, यह स्पष्ट है कि ओथ आयुक्त या स्टांप रिपोर्टर मेधा-सह-सेवा विस्तार के आधार पर सहायक/अनुवादक से प्रोन्नत किए जाते हैं। उम्मीदवार की मेधा का निर्धारण करने के लिए, कोई परीक्षा आयोजित नहीं किया जाता है एवं सामान्यतया यह औपचारिक साक्षात्कार के साथ सेवा की अवधि के आधार पर किया जाता है।

6. इसके विपरीत, सिविल न्यायालयों में वर्ग III कर्मचारियों को शेरिस्तादार के जो स्टांप रिपोर्टर का भी कार्य करता है, पद पर प्रोन्नत किए जाने से पहले, उसे अनिवार्य परीक्षा उत्तीर्ण करना होता है। बेहतर मूल्यांकन के लिए, सिविल न्यायालय कर्मचारी (वर्ग III एवं वर्ग IV) नियमावली के नियम 61 से 68 को यहाँ पर नीचे उत्कथित किया गया है:-

"61. किसी आशुलिपिक को अवर चयन ग्रेड में प्रोन्नत किए जाने से पूर्व, उसे अंग्रेजी में 100 शब्द प्रति मिनट एवं हिन्दी में 80 शब्द प्रति मिनट की दर से आशुलिपि की परीक्षा उत्तीर्ण करना होगा एवं मात्र 5% त्रुटि की ही अनुज्ञा प्रदान की जायेगी।

किसी आशुलिपिक को सुपर टाईम स्केल में प्रोन्नत किए जाने से पहले, उसे पद्धति एवं प्रक्रिया एवं ऐसे अन्य पेपरों की परीक्षा उत्तीर्ण करना होगा जो उच्च न्यायालय द्वारा समय-समय पर विनिर्दिष्ट किया जा सकता है।

62. किसी लिपिक को अवर चयन ग्रेड में प्रोन्नत किए जाने से पूर्व उसे एक परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी–

(a) उच्च न्यायालय द्वारा विरचित सिविल न्यायालय एवं दाण्डिक न्यायालय नियमावली की;

(b) लेखांकन;

(c) पत्राचार एवं आदेश पत्रों के प्रारूपण का ज्ञान; एवं

(d) पद्धति एवं प्रक्रिया

63. किसी लिपिक को सुपरटाईम स्केल पर प्रोन्नत किए जाने से पूर्व (सिविल एवं दाण्डिक) प्रक्रिया, स्टांप अधिनियम, न्यायालय-शुल्क अधिनियम, वाद मूल्यांकन अधिनियम, पत्राचार एवं टिप्पण एवं प्रारूपण की परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी। अवर चयन ग्रेड टंकक/आशुलिपिक को लिपिकों के पद स्थानान्तरित किया जा सकता है यदि वे एतस्मिनपूर्व यथा वर्णित आवश्यक परीक्षाओं को उत्तीर्ण करें।

64. यदि लिपिक के सुपरटाईम स्केल पर प्रोन्नति के लिए उपयुक्त व्यक्ति उपलब्ध नहीं हो, तो नियोक्ता प्राधिकारी के लिए यह खुला होगा कि वे प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा उक्त पदों को भरें, जो कि उच्च न्यायालय की पूर्व सहमति के अध्यधीन है। सुपरटाईम स्केल के पदों पर प्रत्यक्ष भर्ती के लिए योग्यता बी॰ ए॰, बी॰ एस॰ सी॰ एवं बी॰ कॉम॰ या मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से समतुल्य डिग्री एवं साथ ही विधि में स्नातक की डिग्री होगा।

विशेष योग्यता

65. कोई भी व्यक्ति यहाँ पर नीचे विनिर्दिष्ट पदों पर प्रोन्नति के लिए पात्र नहीं होगा जबतक कि वह यहाँ पर नीचे विहित योग्यता नहीं रखता हो:-

(i) जिला न्यायालय के शेरिस्तादार को उच्च न्यायालय द्वारा यथा विहित शेरिस्तादारों की परीक्षा उत्तीर्ण होना चाहिए;

(ii) जिला न्यायालय के मुख्य लिपिक को उच्च न्यायालय द्वारा यथा विहित शेरिस्तादारों की परीक्षा अवश्य उत्तीर्ण होना चाहिए;

(iii) किसी अन्य न्यायालय के शेरिस्तादार एवं लेखाकार को उच्च न्यायालय द्वारा इसके लिए विहित परीक्षा अवश्य ही उत्तीर्ण होना चाहिए।

''66. जिला न्यायालय के शेरिस्तादार या मुख्य लिपिक के तौर पर लिपिक के सुपर टाईम स्केल के पद पर प्रत्यक्ष नियुक्ति के लिए किसी अभ्यर्थी को ऐसी परीक्षा(एँ) उत्तीर्ण करनी होंगी जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित किया जा सकेगा एवं ऐसी नियुक्ति ऐसी अन्य नियमावली के अध्यधीन होगा जैसा कि यहाँ पर नीचे उपलब्ध कराया गया है।

प्रोन्नति के आदेशों का पुनरीक्षण

67. जिला न्यायाधीश द्वारा किया गया प्रोन्नति का कोई भी आदेश उच्च न्यायालय द्वारा संशोधित किया जा सकेगा। उक्त पुनरीक्षण या तो स्वप्रेरणा से एवं/या उक्त आदेश के पारित किए जाने की तिथि से छः सप्ताह के भीतर व्यथित सदस्य द्वारा पेश की गयी याचिका पर किया जा सकेगा:

परन्तु यह कि छः सप्ताह की उक्त अवधि को उच्च न्यायालय द्वारा विस्तारित किया जा सकेगा यदि याचिका के पेश किए जाने में विलम्ब के लिए पर्याप्त कारण दर्शाया जाता है।

68. लिपिक, टंकक एवं आशुलिपिक के संवर्गों पर नियुक्त किसी भी व्यक्ति को परीवीक्षा की अवधि के दौरान सिविल एवं दण्ड न्यायालय नियमावली एवं हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूपण की एक परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी यदि उसने उक्त परीक्षाओं को पहले ही उत्तीर्ण न कर लिया हो।''

7. उपरोक्त नियमावली के अनावृत पठन से, यह सुव्यक्त रूप से स्पष्ट है कि लिपिक को अवर चयन ग्रेड में प्रोन्नत किए जाने से पूर्व, उसे सिविल न्यायालय एवं दण्ड न्यायालय नियमावली, लेखांकन, प्रारूपण एवं पत्राचार एवं आदेशपत्रों एवं पद्धति तथा प्रक्रिया के ज्ञान में परीक्षा उत्तीर्ण करना होगा। इसी प्रकार, लिपिक को सुपरटाईम स्केल में अपनी प्रोन्नति के पूर्व प्रक्रियाओं, स्टांप अधिनियम, न्यायालय शुल्क अधिनियम, वाद मूल्यांकन अधिनियम, पत्राचार एवं टिप्पण तथा प्रारूपण में परीक्षा उत्तीर्ण करना होगा। नियम 64 यह भी प्रावधान करता है कि यदि लिपिक के सुपरटाईम स्केल पर प्रोन्नति के लिए उपयुक्त व्यक्ति उपलब्ध नहीं हो, तो नियोक्ता प्राधिकारी के लिए प्रत्यक्ष भर्त्ती द्वारा उक्त पद को भरने का विकल्प खुला होगा। ऐसी दशा में, सुपरटाईम स्केल के पद पर प्रत्यक्ष भर्त्ती के लिए योग्यता किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से बी॰ ए॰, बी॰ एस॰ सी॰ एवं बी॰ कॉम या इसके समतुल्य डिग्री एवं साथ ही विधि में स्नातक की डिग्री होगी। जिला न्यायाधीश के शेरिस्तादार, जिला न्यायाधीश के मुख्य लिपिक एवं किसी अन्य न्यायालय के शेरिस्तादार एवं लेखाकार के पद पर प्रोन्नति के प्रयोजन से, उन्हें अपेक्षित योग्यता धारण करना होगा।

8. शेरिस्तादार (स्टांप रिपोर्टर), अनुभाग अधिकारी (चयन ग्रेड), प्रशासनिक अधिकारी (सुपर सेलेक्शन ग्रेड) के पद पर प्रोन्नति के लिए प्रक्रिया की तुलना करके, योग्यता, अनुभव के सम्बन्ध में कोई मानदंड विहित नहीं किया गया है, न ही सहायक को अनुभाग अधिकारी, स्टांप रिपोर्टर एवं प्रशासनिक अधिकारी के पद पर प्रोन्नत किए जाने से पहले उसकी मेधा का निर्धारण करने के प्रयोजन के लिए कोई सीमित परीक्षा लिया गया है। उनलोगों को मात्र सेवा विस्तार के आधार पर प्रोन्नत किया गया है। इसलिए, मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि सहायक को अनुभाग अधिकारी, स्टांप रिपोर्टर एवं प्रशासनिक अधिकारी के ऐसे महत्वपूर्ण पद पर प्रोन्नति की प्रक्रिया में त्रुटि के कारण, प्रशासनिक कार्य के अतिरिक्त न्यायिक कार्य प्रभावित हो रहा है एवं इन प्रोन्नत सहायकों द्वारा दी गयी गलत स्टांप रिपोर्टिंग एवं सही कार्यालयी टिप्पण की कमी के कारण मामलों का निस्तारण अत्यधिक विलंबित होता है।

9. न्यायपालिका एवं शीघ्र न्याय में जनता का विश्वास न केवल अधिवक्ता संघ एवं खण्ड पीठ के बीच अच्छे सम्बन्ध पर निर्भर करता है अपितु जब उचित अनुभव रखने वाले एवं अनुभवी अधिकारियों को विभिन्न पदों पर तैनात किया जाता है जो न्याय करने में प्रत्यक्ष रूप से संलिप्त हैं।

इसलिए, मेरी दृष्टि में, मात्र उन्हीं वर्ग III सहायकों को जो अपेक्षित योग्यता धारण करते हैं एवं विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं जैसे कि सिविल न्यायालयों की विभागीय परीक्षा, अनुभाग अधिकारी, प्रशासनिक अधिकारी एवं स्टांप रिपोर्टर के तौर पर पदस्थापित किया जाना चाहिए न कि मात्र सेवा विस्तार के आधार पर, जब तक कि वे सभी सहायक अपेक्षित परीक्षा जैसे कि सिविल न्यायालयों की सहायकों की परीक्षा, उत्तीर्ण नहीं करते हैं, तबतक उन्हें सराहनीय उम्मीदवार नहीं माना जा सकता है। उन सहायकों से भी स्टेट जुडिसियल एकेडमी में प्रशिक्षण प्राप्त करने की अपेक्षा की जाती है। चूँकि विभिन्न पदों पर पदस्थापित अधिकारियों को इसपर विचार करने का भी समान रूप से नैतिक कर्त्तव्य है कि सभी अनुसचिवीय कार्यों का शीघ्र निस्तारण होना चाहिए ताकि मामलों को बिना किसी विलंब के खण्ड पीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जा सके।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस अपील में भुगतेय न्यायालय शुल्क वाद में संदत्त न्यायालय शुल्क अर्थात् 706/- रु॰ है। अपीलार्थी को आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर न्यायालय शुल्क का निक्षेप करने का निर्देश दिया जाता है जिसमें असफल रहने पर अपील का यह ज्ञाप खण्ड पीठ को बिना अतिरिक्त संदर्भ के अस्वीकृत हो जायेगा।

एतस्मिनपूर्व किए गये विवेचनों के आलोक में, मेरी दृष्टि में, मामले पर उच्च न्यायालय नियमावली में आवश्यक संशोधन करने के लिए माननीय मुख्य न्यायाधीश एवं स्टैंडिंग कमिटी द्वारा विचार किए जाने की जरूरत है, यदि वे इसे आवश्यक समझें।

---

ekuuh; Mhñ dñ flUgk] U;k;efr

मेजर (रिटायर्ड) बदरी साहनी

बनाम

सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से झारखण्ड राज्य

ए॰ बी॰ ए॰ संख्या 1557 वर्ष 2008. 23 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 438—अग्रिम जमानत–अभिकथन की याची ने भूतपूर्व सैनिक श्रेणी के 90% संतरियों की नियुक्ति करने में औपचारिक समझौते के नियमों का उल्लंघन किया है–यद्यपि सी॰ सी॰ एल॰ द्वितीय पक्ष ने पूर्व सैन्यकर्मी के लिए विहित मजदूरी प्रदान न करने के कारण सुरक्षाकर्मी के तौर पर पूर्व-सैन्यकर्मी की 90% से कम तैनाती उपमत की थी–अग्रिम जमानत स्वीकृत की गई। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–M/s Yugal Kishore Prasad Shekhar Prasad Sinha, B.L. Srivastava, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar, For the State.

आदेश

याची 13.3.2008 को संस्थित भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 120B/420/468/471 एवं आर॰ सी॰ सं॰ 3(A)/2008-D से उद्भुत भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) r/w 13(1)(d) के अधीन अभिकथित दण्डनीय अपराधों के लिए अपनी गिरफ्तारी का आशंका करता है।

2. यह अभिकथित किया गया था कि याची, मेसर्स परोपकार सुरक्षा सेवा, राँची का स्वत्वाधारी ने मेजर (रिटायर्ड) बदरी साहनी, सहायक मुख्य सुरक्षा अधिकारी, सी॰ सी॰ एल॰, एन॰ के॰ क्षेत्र, दकरा, राँची के साथ मिलकर दाण्डिक षड्यंत्र में शामिल हुआ एवं इस प्रकार के षड्यंत्र का अनुसरण करने के क्रम में उसने 90% से भी कम पूर्व सैन्यकर्मी सुरक्षा संतरियों को मार्च, 2006 से दिसम्बर, 2007 तक प्रभावी सी॰ सी॰ एल॰ के अधीन एन॰ के॰ दकरा क्षेत्र में समझौते के निबन्धनों का उल्लंघन करते हुए नियुक्त किया था। निबन्धनों के अनुसार, याची द्वारा महानिदेशक, पुनर्वास, रक्षा मंत्रालय, भारत

सरकार, नई दिल्ली के मानकों के अनुसार, पूर्व सैन्यकर्मी संवर्ग के कुल संख्या 90% से कम सुरक्षा संतरियों को नियुक्त नहीं किया जाना था। मेसर्स परोपकार सुरक्षा सेवा का मालिक होने के कारण याची ने मासिक वेतन विपत्र, गलत रूप से दर्शाते हुए जमा किया कि 90% पूर्व सैन्यकर्मी एवं 10% सिविलियन्स, कथित परियोजना में संतरी के तौर पर नियुक्त किए गए थें जो कि गलत पाया गया एवं विपत्रों की संपुष्टि, सहायक मुख्य सुरक्षा अधिकारी, मनोज कुमार सिंह द्वारा की गई थी एवं तद्द्वारा इस संबंध में परवर्ती ने याची को सी॰ सी॰ एल॰ को गलत ढंग से किए गए घाटे के लिए 52,92,629/- रुपए की धनराशि के मासिक वेतन के भुगतान का निर्गत करने के लिए सुविधा प्रदान किया।

3. आरंभ में ही याची के विद्वान अधिवक्ता ने सी॰ सी॰ एल॰ एवं याची द्वारा स्वीकृत मेसर्स परोपकार सुरक्षा सेवा के बीच संतरियों की नियुक्ति के लिए समझौते में किए गए नियमों एवं शर्त्तों को स्वीकार किया है। यद्यपि महानिदेशक पुनर्वास, रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के अनुसार याची ने 90% पूर्व सैन्यकर्मी एवं 10% सिविलियन्स को गार्ड के रूप में नियुक्त किया था, जो कि समय-समय पर कैप्टन मनोज कुमार सिंह, जो कि सहायक मुख्य सुरक्षा अधिकारी CCL था, के द्वारा समय-समय पर निरीक्षण किया जाता था एवं मात्र उसी के प्रति-हस्ताक्षर पर ही दोनों श्रेणीयों के सुरक्षा संतरियों के वेतन का भुगतान किया जाता था। समझौते में यह निर्धारित किया गया था कि यदि किसी भी दिन नियुक्त किए गए सुरक्षा कर्मीयों की संख्या, निर्धारण से कम हुई, तो ऐसे मामले में याची द्वारा प्रस्तुत मासिक विपत्रों से उस विशेष महीने में जहाँ तक कम व्यक्तियों की नियुक्ति होगी, समानुपाती कटौती की जाएगी। वास्तव में, समझौते का विलेख 50 सुरक्षा कार्मिक के नियुक्ति के लिए निष्पादित की गई थी, जिसमें से पूर्व-सैन्यकर्मी श्रेणी से एवं 10% सिविलियन्स से नियुक्त किए जाने थे, परन्तु समय के किसी भी बिंदु पर समझौते के दूसरे पक्ष अर्थात् सी॰ सी॰ एल॰ ने कोई आक्षेप नहीं किया। याची ने जी॰ एम॰, एन॰ के॰ श्रेत्र, दकरा, सी॰ सी॰ एल॰ के कार्यालय से वेतन विपत्रों के रूप में कुल योग 49,42,000/- रुपए की धनराशि का भुगतान प्राप्त किया। याची ने 8.10.2007 को सुरक्षा प्रमुख, सी॰ सी॰ एल॰ प्रधानकार्यालय, दरभंगा हाऊस, राँची को अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथन करते हुए निवेदन किया था कि संतरियों को, विशिष्ट रूप से पूर्व-सैन्यकर्मी को दिए जाने वाले वेतन संरचना, संतोषजनक नहीं था एवं इस कारण से वे लोग सुरक्षा संतरी की नियुक्ति के लिए आगे नहीं आ रहे थे एवं इसलिए, याची द्वारा प्राधिकारीयों को निर्धारित दर के अनुसार जो डी॰ जी॰ आर॰ (सम्पूरक प्रति-शपथपत्र के परिशिष्ट-2), द्वारा अनुशंसित है, उनके वेतन उपलब्ध कराने के लिए निवेदन किया गया था। यदि फिर भी तर्क के अभिप्राय में यह स्वीकृत किया जाय कि भूतपूर्व सैनिक की आवश्यक, प्रतिशत याची द्वारा नियुक्त नहीं की गई थी, यह सी॰ सी॰ एल॰ प्राधिकारीयों की पूर्ण जानकारी में बिना आक्षेप के या किये गए भुगतान में कटौती के रूप में था। वास्तव में, सी॰ सी॰ एल॰ द्वारा पूर्व सैन्यकर्मी को प्रदान किया गया वेतन, महाप्रबंधक पुनर्वास, वेतनबोर्ड, रक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा निर्धारित वेतन से काफी कम था एवं कथित तथ्य समझौते के दूसरे पक्ष, सी॰ सी॰ एल॰ प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत था।

4. सी॰ बी॰ आई॰ के विद्वान वरीय स्थायी अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार ने तर्क का विरोध किया एवं निवेदन किया कि कैप्टन मनोज कुमार सिंह, सी॰ सी॰ एल॰ के, सहायक मुख्य सुरक्षा अधिकारी के साथ दाण्डिक षडयंत्र के अग्रसारण में याची ने सी॰ सी॰ एल॰ को गलत रूप से घाटा एवं अपने आप को गलतरूप से फायदा पहुँचाते हुए अत्यधिक राशि प्राप्त किया है। याची ने, महाप्रबंधक, पुनर्वास, रक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार के नियमों का अनुसरण नहीं किया जिसने कि सी॰ सी॰ एल॰ को मेसर्स परोपकार सुरक्षा सेवा, याची द्वारा स्वीकृत, एन॰ के॰ एवं दकरा श्रेत्र में सी॰ सी॰ एल॰ परियोजना के सुरक्षा नियंत्रण को उपलब्ध करने के लिए सेवा लेने को उपयुक्त बताया था। प्रारंभिक अन्वेषण के दौरान यह अनुसंधान किया गया कि पूर्व-सैन्यकर्मी श्रेणी से 90% सुरक्षा संतरी, समझौते के समय कभी भी

नियुक्त नहीं किए गए थें और वहाँ ऐसी श्रेणी के संतरियों की 60.8% कमी थी, फिर भी याची ने अनुपात में पूर्व-सैन्यकर्मी की श्रेणी को भुगतान किए जाने वाले वेतन की प्राप्ति की है और इस प्रकार से याची ने धोखा दिया है एवं सहायक मुख्य सुरक्षा अधिकारी के साथ मिलकर सी॰ सी॰ एल॰ को वित्त सम्बंधी घाटा पहुँचाया है।

5. तथ्यों एवं परिस्थितियों में एवं इस मामले के गुणागुण पर पक्षपात के बिना, मैं पहली दृष्टि में, पक्षकारों के बीच समझौते का उल्लंघन पाता हूँ एवं दूसरा पक्ष सी॰ सी॰ एल॰ ने, सुरक्षा संतरी के रूप में काम कर रहे भूतपूर्व सैनिक को निर्धारित वेतन उपलब्ध नहीं कराने के कारण रोहिणी दकरा परियोजना में नियुक्त किए गए संतरी के रूप में पूर्व-सैन्यकर्मी को 90% से भी कम तैनान किया है।

6. उपरोक्त कथन किए गए कारणों से, इस आदेश के पन्द्रह दिनों के भीतर उसकी गिरफ्तारी/आत्मसमर्पण की दशा में याची RC No. 3(A)/2008-D में एन अली, विशेष न्यायाधीश की संतुष्टि के लिए 20,000/- रूपये के जमानत बंधपत्र के साथ समान राशि के दो प्रतिभू निष्पादित किए जाने पर याची मेजर (रिटायर्ड) बदरी साहनी को निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 438(2) के अधीन यथा अधिकथित शर्त्तों के अध्यधीन है। जमानतदारगण, याची के करीबी रिश्तेदार होंगे एवं वह न्यायालय में निरन्तर रूप से उपस्थित रहेगा।

---

ekuuh; çnhi dekj] U;k;efr

सुनील तिवारी

बनाम

झारखण्ड राज्य

दाण्डिक अपील (एस॰ जे॰) सं॰ 1420 वर्ष 2007. 26 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 428 वर्ष 2005 में, श्री सत्य प्रकाश, जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गिरिडीह द्वारा पारित दिनांक 8.10.2007 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दिनांक 10.10.2007 के दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 304(B)/ 34 एवं 498A/34—दहेज मृत्यु–चिकित्सीय साक्ष्य ने दर्शाया कि पीड़िता को निर्दयता से प्रहुत एवं हत्या की गई थी–निरंतर साक्ष्य कि दहेज में एक मोटरसाईकिल की माँग थी जिसके कारण पीड़िता अपने मृत्यु तक लगातार प्रताड़ित की गई थी–घटना की रात्रि में पीड़िता बिल्कुल अकेली थी अन्य सभी विवाह में सम्मिलित होने गए थे–अभिनिर्धारित, मात्र अभियुक्त को छोड़कर किसी के पास मोटरसाईकिल नहीं लाने से या इस संदेह पर पीड़ित लड़की की हत्या करने का मौका नहीं था कि उसका किसी और के साथ कोई अवैध संबंध था–अपील खारिज, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दण्डादेश एवं दोषसिद्धि को मान्य ठहराया गया। (पैरा 22 से 24)

अधिवक्तागण.–Mr. Arjun Narayan Deo, For the Appellant; Mr. Tapas Roy, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 428 वर्ष 2005 में, श्री सत्य प्रकाश, जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गिरिडीह द्वारा पारित दिनांक 8.10.2007 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दिनांक 10.10.2007 के दण्डादेश के विरूद्ध निर्दिष्ट है, जिस निर्णय द्वारा, उन्होंने भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 304 (B)/34 एवं 498A/34 के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त को दोषी पाया था। उन्होंने अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 304(B)/34 के अधीन अपराध के लिए सात वर्षों के कठोर कारावास एवं भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 498A/34 के अधीन अपराध के लिए तीन वर्षों

के कठोर कारावास से दोषसिद्ध किया था, उन्होंने दोनों ही दण्डादेशों को संयुक्त रूप से चलने का निर्देश दिया था।

2. अभियोजन मामला 8.5.2005 को सूचनादाता अनिल तिवारी (अ॰ सा॰ 2) द्वारा पुलिस अधीक्षक, गिरिडीह को दिए गए लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्रारम्भ किया गया था जिसमें यह कथन करते हुए कि वह ग्राम–दंगराडिह, थाना–चतरा, जिला–चतरा का एक निवासी है एवं उसकी लगभग बीस वर्षीय बहन आरती देवी का विवाह 13.3.2004 को अभियुक्त, सुनील तिवारी के साथ ग्राम मालदा, थाना–गवान, जिला–गिरिडीह में हुआ था। विवाह के समय 31,000/- रुपए की नकद राशि के साथ सोने के आभूषण एवं अन्य वस्तुएँ भी दी गई थी। उसने कथन किया कि विवाह के समय, उसके बहनाई एवं उसके बहन के ससुराल वालों ने एक मोटरसाईकिल की माँग की थी, जो अपनी गरीबीवश उसे नहीं दे सका। विवाह के शीघ्र पश्चात्, उसकी बहन ससुराल चली गई, परन्तु उसके ससुरालवाले उसे अपने साथ मोटरसाईकिल नहीं लाने के कारण उसे उत्पीड़ित किया करते थे। 2005 के फाल्गुन में, जब वह अपनी बहन के ससुराल गया था, तो वह उसके साथ उसके घर आई एवं उसने कहा कि चूँकि वे लोग मोटरसाईकिल देने में असमर्थ हुए है, इसलिए वह दहेज के लिए उत्पीड़ित की जा रही है। उसने यह भी कहा है कि यदि मोटरसाईकिल नहीं दी गई, तो उसकी हत्या कर दी जाएगी।

3. इसके अतिरिक्त वह कहता है कि होली के समय, उसका भाई सुनील तिवारी आया एवं उनके साथ उसका मोटरसाईकिल नहीं देने के लिए एक झगड़ा हुआ था। जब उसके पिता ने अभिकथन किया कि वह अपनी जमीन बेचेगा एवं एक साल के भीतर उसे मोटरसाईकिल दे देगा, क्योंकि उस समय तक भी जमीन नहीं बिका था, तब उसका बहनोई मृतक आरती देवी के साथ घटना के चार दिन पूर्व मालदा चला गया। उसका पिता, जितेन्द्र तिवारी एवं शिवदेव तिवारी के साथ मालदा गाँव गया था, जहाँ मृतक, आरती देवी ने अपने ऊपर मोटरसाईकिल नहीं देने के कारण हो रहे प्रताड़ना का वर्णन की थी। उसकी बहन के ससुरालवालों ने उसके पिता को बताया कि यदि मोटरसाईकिल नहीं दी गई, तब 15 दिनों के भीतर वह परिणाम देखें। अचानक 5.5.2005 को, गवन पुलिस ने सूचना दिया कि शिवदेव तिवारी की बड़ी पुत्री फाँसी लगाकर मर गई है। इस सूचना पर, वे लोग 6.5.2005 को मालदा गाँव गए एवं जान पाए कि 4.5.2005 को सुनील तिवारी, नकुल तिवारी एवं उसकी पत्नी एवं चचेरे श्वसुर, त्रिभुवन तिवारी, जानकी तिवारी एवं सुकित तिवारी ने उसकी बहन की हत्या कारित कर दी थी। उसे यह भी पता चला कि पुलिस को झूठी सूचना देकर उन्होंने शव को भी जला दिया है। उसने यह भी कहा कि घटनास्थल जहाँ उसकी बहन ने खुद को फाँसी लगाई उसकी छत इतनी नीची है कि यदि कोई व्यक्ति खड़ा होता है, तब उसका सिर छत को स्पर्श करेगा एवं कोई व्यक्ति वहाँ पर फाँसी लगाकर आत्महत्या कारित नहीं कर सकता। उसे यह भी पता चला कि शव के गर्दन में एवं कान के पर्दे पर प्रहार का एक चिन्ह था एवं हाथ भी सुजे हुए थे एवं इस प्रकार उसने पूर्ण दावा किया कि उसकी बहन मृत्यु तक प्रताड़ित की गई थी एवं फाँसी लगाने का झूठा मामला दर्ज किया गया है।

4. उक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस अधीक्षक, गिरिडीह ने गबन पुलिस थाने में मामले को लिखा जहाँ भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 498A/34 सह–पठित भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 304B/34 के अधीन अपराध के लिए एक मामला पंजीकृत किया गया था एवं अन्वेषण के पश्चात् पुलिस ने अभियुक्त सुनील तिवारी के विरूद्ध एक आरोप–पत्र दाखिल किया एवं अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के अन्वेषण को लंबित रखा।

5. चूँकि, मामला अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए विद्वान दण्डाधिकारी ने संज्ञान लेने के पश्चात्, मामले को विचारण के लिए सत्र न्यायालय को सौंप दिया एवं अंत में मामले पर सत्र न्यायाधीश, गिरिडीह द्वारा विचार किया गया था एवं अपीलार्थी दोषी पाया गया था एवं जैसा कि पूर्वकथित है दोषसिद्ध एवं दण्डादेश दिया गया।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि हालाँकि अभियोजन ने छः साक्षियों का परीक्षण किया है, परन्तु साक्षीगण यह सिद्ध करने में असमर्थ रहे हैं कि पीड़ित महिला को

उसकी हत्या के तुरंत पूर्व ही दहेज के लिए प्रताड़ित किया गया था एवं इस प्रकार, साक्ष्य अधिनियम की धारा 113(A)(B) के अनुसार, ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि उनलोगों की प्रताड़ना के कारण उसने आत्महत्या कारित किया एवं इसलिए अपीलार्थी का दोषसिद्धि गलत है एवं अपास्त करने योग्य है। प्रथम सूचना रिपोर्ट को दाखिल करने में विलम्ब हुआ है। इससे बढ़कर, यह कहा गया है कि इससे पूर्व दहेज के माँग के लिए कोई रिपोर्ट दाखिल नहीं की गई थी।

7. इसके अतिरिक्त, यह भी निवेदन किया गया है कि अ॰ सा॰ 6, अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य से यह प्रतीत होगा कि उसने एक यू॰ डी॰ केस पंजीकृत करने के पश्चात् अन्वेषण किया एवं उसने साक्षियों का अभिकथन अभिलिखित किया, परन्तु वह ऐसे अभिकथन को या तो केस डायरी में या न्यायालय में प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा। उसने आगे यह भी निवेदन किया कि अन्वेषण अधिकारी, घटनास्थल का नक्शा बनाकर एवं घटनास्थल की छायाचित्र लेकर अन्वेषण करने में असमर्थ रहे हैं एवं इस प्रकार अभियोजन आरोपों को सिद्ध करने में असमर्थ हुआ है एवं अपीलार्थी मात्र दोषमुक्त किए जाने योग्य है।

8. दूसरी ओर, राज्य के वरीय अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है एवं निवेदन किया है कि अ॰ सा॰ 2, 3 एवं 4 के साक्ष्यों से यह तर्कसंगत संदेह से परे सिद्ध हो चुका है कि पीड़ित महिला मोटरसाईकिल नहीं लाने के लिए प्रताड़ित और प्रदत्त की जाती थी एवं डॉक्टर, अ॰ सा॰ 3 का साक्ष्य, इस तथ्य को प्रमाणित करता था कि यह एक आत्महत्या संबंधी मृत्यु का मामला नहीं है, बल्कि यह एक मानव वध का मामला है। पीड़ित महिला की हत्या अपीलार्थी सहित अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा की गई थी एवं तत्पश्चात् उन्होंने फाँसी लगाकर आत्महत्या का एक मामला बनाने की कोशिश की थी। इसलिए, अपीलार्थी, जो कि पति है एवं जो कि पीड़ित लड़की के साथ घटना स्थल पर था, सही रूप से दोषी पाया गया है एवं दोषसिद्ध किया गया है।

9. दोनों पक्षकारों के सुनने एवं अभिलेख पर साक्ष्यों का अवलोकन करने के पश्चात्, मैं पाता हूँ कि अभियोजन ने छः साक्षियों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 अर्जुन तिवारी, अपीलार्थी, सुनील तिवारी का सह-गाँव वाला है। अ॰ सा॰ 2 अनिल तिवारी, इस मामले का सूचनादाता हैं अ॰ सा॰ 3 डॉ॰ बी॰ एन॰ दास है, जिन्होंने मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया था। अ॰ सा॰ 4, राजदेव तिवारी है, जो कि मृतक का चाचा है। अ॰ सा॰ 5 रामाशीष तिवारी है जो भी मृतक का चाचा है एवं अ॰ सा॰ 6 योगेन्द्र पासवान है, जो कि अन्वेषण अधिकारी है।

10. यद्यपि, अ॰ सा॰ 1, अर्जुन तिवारी पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उसने अपने मुख्य परीक्षण के पैरा-2 में अभिकथन किया है कि आरती कुमारी की मृत्यु स्वयं को फाँसी लगाने से हुई है इसके सिवाय उसने कुछ नहीं सुना। प्रति-परीक्षण के दौरान, पैरा-15 में, उसने अभिकथन किया है कि मृतका का किसी जितेन्द्र तिवारी के साथ कुछ अवैध संबंध था, जिसके कारण उसके ससुरालवाले उसके विरूद्ध थे। उसने पैरा 18 में यह भी स्वीकार किया है कि घटना की रात्रि में, आरती कुमारी अभियुक्त, सुनील तिवारी के साथ एक ही घर में अकेली थी एवं अन्य घर वाले किसी विवाह में सम्मिलित होने गए थे। पैरा 19 से, वह कथन करता है कि मृतक के चरित्र पर संदेह होने के कारण उसके पति सुनील तिवारी एवं उसके देवर जानकी तिवारी ने पीड़ित लड़की की हत्या कारित की।

11. जहाँ तक अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य का संबंध है, वह सूचनादाता है एवं उसने पूर्ण रूप से अभियोजन मामले को समर्थन किया एवं उसने कथन किया है कि उसने पुलिस अधीक्षक, गिरिडीह को लिखित रिपोर्ट दिया था। उसने स्वयं द्वारा लिखित एवं प्रदर्श 2 के तौर पर हस्ताक्षरित उक्त रिपोर्ट को सिद्ध किया है। उसने आगे यह भी कहा है कि उसकी बहन का विवाह 13.3.2004 को अभियुक्त, सुनील तिवारी के साथ हुआ था एवं ठीक विवाह के समय से ही अभियुक्त, सुनील तिवारी एवं उसके परिवार वालों के द्वारा मोटरसाईकिल की एक माँग थी एवं विवाह के बाद वे लोग उसकी बहन को मोटरसाईकिल नहीं लाने के लिए प्रताड़ित किया करते थे। उसने कहा कि वह जब भी अपनी बहन के ससुराल जाता था, तो अपीलार्थी एवं उसके माता-पिता उससे मोटरसाईकिल नहीं देने के लिए झगड़ा किया करते थे। उसने कहा कि उसकी बहन के मृत्यु से 15 दिनों पूर्व, उसने उसे बताया था कि यदि,

मोटरसाईकिल नहीं दी गई तो उसकी हत्या कर दी जाएगी, चूँकि उसके ससुराल वाले उसे हमेशा पीटा करते थे। उसने यह भी कहा कि उसी वर्ष के होली के दौरान, जब उसकी बहन उसके घर आई, तो वहाँ भी उसने शिकायत की कि वह अपने ससुराल वालों द्वारा मोटरसाईकिल नहीं लाने के लिए नियमित रूप से प्रताड़ित की जा रही है एवं जब उसका बहनोई, अभियुक्त, सुनील तिवारी आया, तो उनके साथ भी उसका झगड़ा हुआ था, एवं अंततः उनके आश्वासन पर, वह 4.5.2005 को मृतक के साथ घर से चला गया। उसने सुना कि उसकी बहन मर गई है और वह अपनी बहन के ससुराल गया, परन्तु उसका शव वहाँ पर नहीं था। तब, वे लोग पुलिस थाने पहुँचे। वहाँ उसे सूचना दी गई कि शव को जला दिया गया है, तब गाँव वालों से पूछताछ करने पर, उसे पता चला कि उसकी बहन मृत्यु तक पीटी गई थी। तब, वह फिर से पुलिस थाने आया, परन्तु पुलिस ने मामला दर्ज करने से इन्कार कर दिया, तब वह पुलिस अधीक्षक, गिरिडीह के पास गया एवं एक लिखित रिपोर्ट दिया। उसने न्यायालय में अभियुक्त की पहचान की। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 3 में उसने कहा है कि 5.5.2005 को वह पुलिस थाने गया था और प्र॰ सू॰ रि॰ दाखिल करवाना चाहता था, परन्तु दारोगा ने इसे स्वीकार नहीं किया। तब, वह 8.5.2005 को पुलिस अधीक्षक, गिरिडीह के पास गया और प्र॰ सू॰ रि॰ दाखिल किया। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कहा है कि उसने अपना इन्टर परीक्षा 1994 में पास किया है एवं यह भी कहा है कि उसकी बहन का विवाह चतरा के समीप भद्र काली मंदिर में हुआ था और विवाह पंडित प्रदीप पाण्डेय द्वारा कराई गई थी।

12. अ॰ सा॰ 3, डॉ॰ बी॰ एन॰ दास है, जिसने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श 3 के तौर पर प्रमाणित किया है। उसने कथन किया कि 5.5.2005 को उसने मृतक आरती देवी, अपीलार्थी सुनील तिवारी की पत्नी के शव का पोस्टमार्टम परीक्षण किया था। शव, चौकीदार लतीफ मियाँ एवं हनीफ रजवार द्वारा लाया और पहचाना गया था, दोनों ही पुलिस थाने के चौकीदार हैं। उसने निम्नलिखित उपहतियाँ पाई हैं:–

(i) कपाल के पिछले भाग पर 4" x 1" का सूजन।

(ii) पूरे गर्दन एवं पिछले भाग पर कई छिलने के छोटे निशान।

(iii) बाएँ कूल्हे पर 5" x 1/2" का खरोंच।

(iv) छाती के दाहिने ओर पिछले भाग पर 6" x 1/2" का खरोंच।

(v) दांई जाँघ पर 5" x 1/2" का खरोंच।

(vi) बाँएं पैर पर 4" x 1/2" का खरोंच।

(vii) गर्दन पर पूर्ण रूप से स्पष्ट दबा हुआ गर्दन के नीचे की ओर हाईऑयेड उपास्थि से नीचे रस्सी का निशान-पुरी तरह से एवं क्षैतिज रूप से गर्दन को घेरे हुए रस्सी के निशान का आधार हल्का लाल एवं रक्तजमाव युक्त किनारा था।

(viii) रस्सी के निशान के साथ सटे हुए त्वचा पर भी घसीटने के वाह्य रक्त जमाव के निशान मौजूद थें।

डॉक्टर ने राय दिया कि उपरोक्त सभी उपहतियाँ चरित्र में मृत्युपूर्व थीं।

शव विच्छेदन पर डॉक्टर ने निम्नलिखित उपहतियाँ पाई है:–

(i) कपाल अक्षत, दिमाग जमाव युक्त।

(ii) पार्श्ववर्ती मांसपेशियों विदीर्ण थी, एवं रस्सी के निशान के नीचे रक्त बहाव एवं नरम उत्तक मौजूद था।

(iii) थाईराइड हड्डी, थाईराइड उपास्थि, स्वरग्रंथी, स्वासनली फटी हुई, झाग युक्त श्लेषा से भरा हुआ।

(iv) सीने की दायीं ओर की चौथी, पाँचवीं अस्थि टूटी हुई।

(v) हृदय खाली, फेफड़ा जमाव युक्त, मूत्र थैली खाली, गर्भाशय खाली।

13. डॉक्टर के विचार में, मृत्यु का कारण दम घुटने के परिणामस्वरूप दम घुटना था। बीता हुआ समय मृत्युपरान्त परीक्षण 24 घण्टों के भीतर हुई थी।

14. अ॰ सा॰ 3, डॉ॰ बी॰ एन॰ दास ने प्रति-परीक्षण में कथन किया कि मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि शव के साथ भेजी गई थी, जो कि कॉलम-5 में लिखा था कि ''गर्दन में आगे की ओर छिलाया हुआ दाग जैसा अन्य कोई वाह्य जख्म नहीं पाया गया'', परन्तु उसके पास रिपोर्ट था और इसे पोस्टमार्टम रिपोर्ट में जो कि उसने शव पर वाह्य उपहति पाया था, उल्लेख किया।

15. अ॰ सा॰ 4 एवं अ॰ सा॰ 5 मृतक के चाचा हैं और दोनों ने ही अ॰ सा॰ 2 की संपुष्टि की एवं निवेदन किया कि मोटरसाईकिल की माँग थी एवं पीड़ित लड़की, अपीलार्थी सुनील तिवारी द्वारा प्रताड़ित की जाती थी एवं उसके लिए परिवार वाले दबाव डाल रहे थे। उन लोगों ने अपने प्रति-परीक्षण में यह भी कहा है कि अपनी भतीजी के मरने की खबर सुनने के पश्चात् वे लोग मालदा गए और वे पुलिस थाने भी गए एवं अपना बयान पुलिस को दिया, परन्तु उन्होंने पुलिस थाने में शव प्रस्तुत नहीं किया।

16. अ॰ सा॰ 6, योगेन्द्र पासवान, मामले का अन्वेषण अधिकारी है। उसने 10.5.2005 को कहा है कि उसने पुलिस अधीक्षक, गिरिडीह के कार्यालय से लिखित रिपोर्ट प्राप्त की, जो कि अनिल तिवारी, सुखदेव तिवारी के पुत्र, ग्राम-दागराडिह, पु॰ था॰ चतरा, जिला-चतरा द्वारा लिखित थी। उक्त रिपोर्ट के आधार पर प्रभारी अधिकारी, गणेश कुमार सिंह ने गामा पु॰ था॰ केस सं॰ 29 वर्ष 2005 को पंजीकृत किया एवं उसे अन्वेषण के लिए दे दिया। साक्ष्य के पैरा 2 में, उसने कहा है कि इससे पूर्व उसने 5.5.2005 को यू॰ डी॰ केस सं॰ 03 वर्ष 2005 पंजीकृत किया था और उसने पीड़ित लड़की का मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट एक कार्बन प्रतिलिपि के साथ तैयार किया जिसे उसने प्रदर्श 4 के रूप में प्रमाणित किया है। उसने औपचारिक प्र॰ सू॰ रि॰ को भी प्रदर्श-5 के रूप में प्रमाणित किया है। उसने कहा कि उसने सूचनादाता, अनिल तिवारी के साक्ष्य को तत्पश्चात् दर्ज किया था। उसने राजदेव तिवारी, रामाशीष तिवारी एवं जितेन्द्र तिवारी का अभिकथन भी दर्ज किया था। उसने घटनास्थल का निरीक्षण भी किया जो कि उसने पहले भी किया था। तब, उसने एक यू॰ डी॰ केस सं॰ 3 वर्ष 2005 को पंजीकृत किया था। उसने पीड़िता का शव बरामद किया था जो कि अभियुक्त सुनील तिवारी के घर के आँगन में एक खटिया पर रखी हुई थी।

17. तत्पश्चात्, उसने पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्राप्त किया और वरीय प्राधिकारी के पर्यवेक्षण के पश्चात्, उसने अभियुक्त, सुनील तिवारी के विरूद्ध एक आरोप-पत्र दाखिल किया एवं अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध अन्वेषण को लंबित रखा। प्रति-परीक्षण में, उसने कहा है कि उसने यू॰ डी॰ केस सं॰ 3 वर्ष 2005 के अधीन मामले को दर्ज नहीं किया था, यद्यपि, उसने यू॰ डी॰ मामले के कुछ साक्षियों का साक्ष्य लिया था। पैरा 9 एवं 10 में, उसने कहा है कि साक्षीगण अ॰ सा॰ 5 एवं अ॰ सा॰ 4 ने न तो यह कहा है कि अपीलार्थी पीड़ित लड़की को मोटरसाईकिल नहीं लाने के लिए प्रताड़ित किया करता था न ही उन्होंने यह कहा है कि जब कभी सुनील तिवारी सूचनादाता के घर आता था और मोटरसाईकिल की माँग किया करते थे।

18. इस प्रकार, सम्पूर्ण अभियोजन साक्ष्यों पर पूर्ण रूप से विचार करने पर, यह स्पष्ट है कि सूचनादाता, अ॰ सा॰ 2 के साथ-साथ अ॰ सा॰ 4 एवं अ॰ सा॰ 5 ने अभिकथित किया है कि अभियुक्त, सुनील तिवारी द्वारा मोटरसाईकिल की एक माँग थी और उसके परिवार वालों ने भी इसमें उसका समर्थन किया था। उन्होंने कहा है कि विवाह के समय से ही, अभियुक्त सुनील तिवारी और उसके परिवार वालों उसकी मोटरसाईकिल नहीं लाने के लिए उसे प्रताड़ित किया करते थे और जब भी वे मृतक

लड़की के घर जाया करते थे, वह शिकायत किया करती थी कि चूँकि वे लोग मोटरसाईकिल नहीं दे रहे हैं वह प्रताड़ित की जा रही है। अ॰ सा॰ 2 ने आगे कहा है कि उसके मृत्यु से ठीक 15 दिनों के पूर्व वह अपनी बहन से मिलने गया था, जब उसने शिकायत की कि यदि मोटरसाईकिल नहीं दी गई तो वो मार दी जाएगी। पीड़ित लड़की ने शिकायत की कि वे लोग उसे मोटरसाईकिल के लिए नियमित रूप से पीट रहे हैं। अ॰ सा॰ 2 ने अपने लिखित रिपोर्ट में भी कहा है कि घटना के दस दिनों के पूर्व, उसका पिता सुखदेव तिवारी भी उसकी बहन के ससुराल गया था और उसकी बहन ने उसके सामने कहा था कि यदि मोटरसाईकिल नहीं दी गई, तो उसे मार दी जाएगी। उसके ससुराल वालों ने उसे यह भी बताया कि यदि मोटरसाईकिल 15 दिनों के भीतर नहीं दी गई तो वह 15 दिनों के भीतर परिणाम पाऐंगे और तब 15 दिनों के भीतर वे (अ॰ सा॰ 2,परिवादी, अ॰ सा॰ 4 एवं अ॰ सा॰ 5 उसके पिता एवं चाचा) 5.5.2005 को यह समाचार पाते हैं कि पीड़ित लड़की की मृत्यु हो चुकी है।

19. दोनों ही बचाव पक्ष ने यह कहने का प्रयास किया है कि पीड़ित लड़की की मृत्यु फाँसी लगाने से हुई, परन्तु, अभियोजन मामले में वचाव द्वारा विचारण में कोई साक्ष्य नहीं दिया गया था। ऐसा कोई एक साक्षी भी प्रस्तुत नहीं किया गया जो ये सिद्ध करता कि पीड़ित लड़की ने आत्महत्या कारित की थी या प्राकृतिक मृत्यु से मरी थी। यह भी स्पष्ट है कि पीड़ित लड़की 13.3.2004 को विवाहित हुई थी और मात्र एक साल के बाद, दहेज के निरंतर मांग और इसे नहीं लाने के लिए वहाँ प्रताड़ना की एक शिकायत थी, जो की मृत्यु के कुछ दिनों पश्चात और दस दिनों के पूर्व लगातार प्रताड़ना कारित की गई थी।

20. जहाँ तक कि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि प्र॰ सू॰ रि॰ दर्ज करने में हुई विलंब से संबंधित है, यह उपरोक्त विचार किए गए साक्ष्य से पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि सूचनादाता, अ॰ सा॰ 2 और साक्षीगण अ॰ सा॰ 4 एवं अ॰ सा॰ 5 पुलिस थाने में प्र॰ सू॰ रि॰ दर्ज करवाने गए थे, परन्तु अन्वेषण अधिकारी, जिसने कि पहले से अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा पंजीकृत एक यू॰ डी॰ केस अभिलिखित किया था, द्वारा प्र॰ सू॰ रि॰ दाखिल नहीं की गई और प्र॰ सू॰ रि॰ जो कि उसी दिन लिखी गई थी इसके पश्चात् पुलीस अधीक्षक, गिरिडीह के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, जिसने कि वही मामले का पंजीकरण करने के लिए पुलिस थाना वापस भेज दिया और तब जाकर मामला पंजीकृत हुआ और अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। प्र॰ सू॰ रि॰ दर्ज करने में कोई विलंब नहीं हुई है क्योंकि कि अन्वेषण अधिकारी अभियुक्त, सुनील तिवारी को बचाना चाहता था, इसलिए विलंब हुआ था। इस प्रकार, मैं अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का इस तर्क में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ।

21. जहाँ तक कि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि पूर्व में दहेज की माँग के सम्बन्ध में कोई रिपोर्ट नहीं है, भारत में यह आम तौर पर स्वाभाविक है कि प्रत्येक घर में अभिभावक अपनी पुत्री का विवाह सुरक्षित करना चाहते हैं और इस मामले में भी यदि पहले कोई शिकायत दर्ज नहीं थी, तो यह इस देश के आचरण के अनुसार से स्वाभाविक नहीं था जहाँ प्रत्येक पिता एवं भाई अपनी पुत्री/बहन का विवाह सुरक्षित करना चाहता है और वे अपनी जमीन तक बेचने की कोशिश कर सकता है और अपनी पुत्री/बहन की जान और उसका विवाह भी बचाने के लिए मोटरसाईकिल दे सकता है। इसलिए, मैं, इस मामले में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में कोई गुण नहीं पाता हूँ।

22. अ॰ सा॰ 3, डॉ॰ बी॰ एन॰ दास का साक्ष्य, जिसने घटना के उसी दिन, अर्थात् 5.5.2005 को मृतक के शव का पोस्टमार्टम परीक्षण किया था, जिससे प्रकट हुआ कि मृतक महिला बुरी तरह से पीटी गई थी, यहाँ तक कि उसके सीने की दांई ओर की चौथी; पाँचवी एवं छठी पसलियाँ भी टूटी हुई थीं। उसके नाक पर उपहतियाँ थी, उसके कपाल पर उपहतियाँ थी, उसके फेफड़ो में उपहतियाँ थीं, और गर्दन घोट कर मार डालने के पूर्व वह बुरी तरह से पीटी गई थी। अ॰ सा॰ 1, अर्जुन तिवारी, मालदा गाँव का निवासी, जो पक्षद्रोही घोषित हुआ, ने भी अभिसाक्ष्य के पैरा 18 में स्वीकार किया है कि घटना की रात्रि में, पीड़ित लड़की अभियुक्त, सुनील तिवारी के साथ अकेली थी और अन्य साक्षीगण किसी विवाह में सम्मिलित होने गए थे। इसलिए, मात्र अभियुक्त, सुनील तिवारी को छोड़कर किसी के पास

पीड़ित लड़की की हत्या करने का मौका नहीं था या तो दहेज में मोटरसाईकिल नहीं लाने से या फिर इस संदेह पर कि उसका किसी और के साथ (जैसा कि पैरा 10 में अ॰ सा॰ 1, अर्जुन तिवारी द्वारा साक्ष्य दिया गया है) कोई अवैध संबंध है। यह उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर एक मानव वध था और चूँकि यहाँ एक निरन्तर साक्ष्य है कि वहाँ पर दहेज में एक मोटरसाईकिल की माँग थी, जिसके लिए वह अपनी मृत्यु तक लगातार प्रताड़ित की जाती रही।

23. मामले के इस दृष्टिकोण में, मेरे विचार में भी, विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त, सुनील तिवारी को भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 304B/34 के अधीन एवं धाराएँ 498A/34 के अधीन भी उचित रूप से अपराध के लिए दोषी पाया है।

24. मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ, तद्नुसार इस अपील को खारिज किया जाता है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को मान्य ठहराया जाता है। अपीलार्थी पहले ही 27.7.2005 से हिरासत में है, क्योंकि इस न्यायालय द्वारा उसकी जमानत रद्द कर दी गई थी।

---

ekuuh; Jh vkjñ dñ ejkfB;k] U;k;efr

रवि कान्त नेवटिया

बनाम

श्रीमती गायत्री देवी एवं एक अन्य

सिविल पुनरीक्षण सं॰ 3 वर्ष 2009. 8 अप्रील, 2009 को विनिश्चित।

बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धारा 14(8)—व्यक्तिगत आवश्यकता एवं इसके अधीन बेदखली—मकान-मालिक एवं किरायेदार का सम्बन्ध स्वीकृत—वादी को विवाह के पश्चात् स्वयं को स्वतंत्र रूप से स्थापित करने के लिए वाद परिसर की आवश्यकता थी—चूँकि दूकान के कमरे का सम्मुख हिस्सा छोटा था इसलिए आंशिक बेदखली आवश्यकता को पूरा नहीं करेगा—अपर न्यायालय के बेदखली की डिक्री करने वाले आदेश को मान्य ठहराया गया। (पैरा 9 से 11)

अधिवक्तागण.—Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioner; Mr. M.K. Dey, For the Opp. Parties.

आदेश

पक्षकारों को अंतिम रूप से सुना।

2. इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन को बिहार भवन (पट्टा किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम की धारा 14(8) के अधीन बेदखली वाद सं॰ 10 वर्ष 2006 में चाईबासा, सिंहभूम के विद्वान मुंसिफ द्वारा दिनांक 16.1.2009 को पारित निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध दाखिल किया गया है जिसमें वादीगण-विपक्षी पक्षकारों की ओर से प्रतिवादी-याची को व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर बेदखली के लिए दाखिल किया गया वाद, डिक्री किया गया है।

3. श्री सिन्हा ने, निवेदन किया कि वादीगण अपने वास्तविक व्यक्तिगत आवश्यकता के मामले को सिद्ध नहीं कर सके क्योंकि वे लोग बालासोर रह रहे थे, जहाँ आनन्द शर्मा, जिसके लिए वाद परिसर, अभिकथित रूप से आवश्यक था, कारोबार में व्यस्त था।

4. दूसरी ओर, श्री डे ने विचारण न्यायालय के निर्णय का समर्थन किया एवं निवेदन किया कि आनन्द शर्मा के लिए, अपनी आवश्यकता के मामले को सिद्ध करने के लिए चाईबासा में, निष्क्रिय बैठना आवश्यक नहीं था।

5. संक्षेप में वादीगण का मामला यह है कि वाद परिसर खासमहल पट्टा भूमि पर स्थित है, जिसके लिए एक नवीकरण आवेदन लंबित था। पारिवारिक व्यवस्था के आधार पर, वाद सम्पतियाँ दो भागों में विभाजित की गई थी। होल्डिंग का पश्चिमी हिस्सा बिश्वनाथ शर्मा (विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 का पति) के हिस्से में पड़ा। याची विपक्षी पक्षकारों द्वारा 1,000/- रुपए प्रतिमाह के किराए पर किराएदार के रूप में स्थापित था। याची किराए का भुगतान किया करता था। विपक्षी पक्षकारों को वाद परिसर उनके व्यक्तिगत इस्तेमाल एवं आनन्द शर्मा के उपजीविका के लिए आवश्यक था, जो कि फरवरी, 2006 के महीने में विवाहित हुआ था एवं जो कि शिक्षा के अभाव में स्वयं को स्वतंत्रतापूर्वक स्थापित करने में कठिनाईयों का सामना कर रहा था, क्योंकि वह केवल मैट्रिक तक ही शिक्षित था। इसलिए, आनन्द शर्मा को स्थापित करने के क्रम में, वादीगण को वाद परिसर की आवश्यकता थी, जो कि इस उद्देश्य के लिए सबसे उपयुक्त स्थान था।

6. संक्षेप में प्रतिवादी का मामला यह है कि खासमहल पट्टा वादीगणों के पक्ष में नवीकृत नहीं किया गया है, इसलिए वे लोग वाद परिसर के मालिक नहीं रह सकते हैं। वादीगण, बालासोर (उड़ीसा) में रह रहे हैं एवं उन्हें आनन्द शर्मा के लिए वाद परिसर की आवश्यकता नहीं है। वह कारोबार में व्यस्त था। वह बालासोर में अपने चाचा को, कारोबार में सहायता कर रहा था। वादीगण वाद परिसर को प्रतिवादी से बेचने के लिए सहमत हो गए परन्तु उन्होंने दूसरे व्यक्ति के साथ सौदा कर लिया। वादीगण को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य उपयुक्त एवं रिक्त आवासन मिल गया।

7. विचारण न्यायालय ने अनेक विवाद्यकों की विरचना की। पक्षकारों ने मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य दिए। विवाद्यक सं॰ V के संबंध में, यह सही रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि पक्षकारों के बीच मकानमालिक एवं किरायेदार का संबंध था। यह पाया गया कि प्रतिवादी-वादीगण को किराए का भुगतान किया था, एवं वह उनके अभिधान को चुनौती नहीं दे सकता, एवं यह कि खासमहल पट्टा के नवीकरण के आवेदन के लंबित होने के दौरान भी, वे प्रतिवादी के मकानमालिक है; एवं यह कि वास्तव में, प्रतिवादी एवं उसके पिता द्वारा स्पष्टत: स्वीकार किया गया था कि वादीगण उनके मकानमालिक हैं एवं उनके बीच मकानमालिक एवं किरायेदार का रिश्ता है।

8. विवाद्यक सं॰ VII के संबंध में, कि क्या, वाद परिसर वादीगण के व्यक्तिगत एवं वास्तविक जरूरतों के लिए आवश्यक था, पक्षकारों के परस्पर मामलों एवं अभिलिखित साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, विद्वान अवर न्यायालय ने सही रूप से अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि आनन्द शर्मा बालासोर में रह रहा था, जहाँ वह अपने चाचा के कारोबार में सहायता किया करता था, परन्तु उसे वाद परिसर की आवश्यकता स्वयं को स्वतंत्रतापूर्वक स्थापित करने के लिए थी। अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित रूप से अभिनिर्धारित किया गया है:-

> ''उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में, माननीय न्यायालय के विनिर्दिष्ट आदेश के दृष्टिकोण में, पेश किए गए साक्ष्य एवं उपर किए गए चर्चा की संवीक्षा करके, यह कहा जा सकता है कि आनन्द शर्मा को व्यक्तिगत जरूरतों का दावा करने के लिए निष्क्रिय बैठने या कब्जा पाने के लिए भुखमरी के स्तर तक पहुँचने की आवश्यकता नहीं था। यह प्रत्यक्ष है कि वादीगण के साथ-साथ पारस शर्मा एवं आनन्द शर्मा बालासोर में रह रहे हैं, उसी समय जैसा कि मैं पहले ही अभिनिर्धारित कर चुका हूँ कि प्रतिवादी अन्य तत्व जैसे कि पवन कुमार अग्रवाल एवं मनोज कुमार अग्रवाल से बेचने की बातचीत को सिद्ध करने में असफल हुआ है। प्रतिवादी यह भी सिद्ध करने में असफल हुआ है कि वादी को कोई अन्य वैकल्पिक गृहवास मिल गया है। वादीगण, आनन्द शर्मा के साथ बालासोर में रह रहे हैं इसका यह अर्थ नहीं है कि आनन्द शर्मा खुशी से रह रहा है या वह चाईबासा में अपना स्वयं कारोबार शुरू नहीं कर सकता है। यह प्रतीत होता है कि यह केवल एक अभिलाषा नहीं है, बल्कि आनन्द शर्मा की आवश्यकता है जो कि उसके विवाह के पश्चात् उद्भूत हुई है। केवल उसी के लिए उसे चाईबासा में काम करना पड़ा, इसके पश्चात् वह रायपुर चला गया है और अभी बालासोर में काम कर रहा है, अर्थात् चाचा के कारोबार में सहायता कर रहा है, इसलिए मैं पाता और अभिनिर्धारित करता हूँ कि वादीगण के अपने बेटे आनन्द कुमार शर्मा के व्यवस्थापन के लिए वाद परिसर की व्यक्तिगत एवं यथार्थ आवश्यकता है। इसलिए, यह विवाद्यक वादी के पक्ष में विनिश्चित किया जाता है।''

9. आंशिक बेदखली के प्रश्न पर, विचारण न्यायालय ने सही रूप से पाया कि दुकान के कमरे का सम्मुख 8'-7" होने के कारण आंशिक बेदखली वादीगण या प्रतिवादी की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करेगा।

10. मकानमालिक एवं किराएदार के रिश्ते को स्वीकार किया गया। प्रतिवादी-वादी के अभिधान पर विवाद एवं इससे इनकार नहीं कर सकता है। साक्ष्य में यह आया है कि आनन्द शर्मा, बालासोर में अपने चाचा के कारोबार में सहायता कर रहा है, परन्तु वादीगण उसे, उसके विवाह के पश्चात् स्वतंत्र रूप से स्थापित कराना चाहते थे। प्रतिवादी यह सिद्ध नहीं कर पाया कि उक्त आधार गलत था। आनन्द शर्मा के लिए, अपनी आवश्यकताओं का दावा करने एवं सिद्ध करने के लिए, चाईबासा में निष्क्रिय बैठने की जरूरत नहीं थी।

11. पक्षकारों को सुनने, अभिलेख के परिशीलन एवं मामले पर गहराई से विचार करने के पश्चात् मेरे विचार में, वादीगण-विपक्षी पक्षकारों ने वास्तविक व्यक्तिगत आवश्यकता के अपने मामले को सिद्ध किया है एवं तद्नुसार वे बेदखली के डिक्री के हकदार हैं।

मैं इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन में, कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ जो कि तद्नुसार खारिज किया जाता है। फिर भी, कोई व्यय नहीं।

---

ekuuh; çnhi d|ekj] U;k;efr

लक्ष्मण महतो

बनाम

झारखण्ड राज्य

दाण्डिक अपील सं॰ 344 वर्ष 2001. 19 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

श्री सरजू प्रसाद, सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा सत्र विचारण सं॰ 45 वर्ष 2000 में पारित दिनांक 31.7.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दिनांक 6.8.2001 के दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 376—बलात्संग-पीड़ित लड़की का अभिकथन अत्यधिक विरोधात्मक है-पीड़ित लड़की द्वारा अभियोजन वृत्तांत न्यायालय में समुन्नत किया गया है-डॉक्टर एवं अन्वेषण अधिकारी का साक्ष्य उस अभियोजन वृत्तांत का सम्पोषण नहीं करता था, जैसा कि विचारण के दौरान पीड़िता द्वारा कहा गया है-अभिनिर्धारित, अभियोजन वृत्तांत का समुन्नयन, जो डॉक्टर, अन्वेषण अधिकारी द्वारा समर्थित नहीं है-पीड़िता के पिता एवं अन्य साक्षियों का अभिकथन सम्पूर्ण अभियोजन मामले को संदेहास्पद बनाता है-अपीलार्थी दोषमुक्त। (पैरा 8 एवं 9)

अधिवक्तागण.-M/s Kailash Prasad Deo, Nehal Ishrat, For the Appellant; Mr. P.K. Sahai, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.-यह अपील श्री सरजू प्रसाद, सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा अपीलार्थी, लक्ष्मण महतो के विरूद्ध सत्र विचारण सं॰ 45 वर्ष 2000 में पारित दिनांक 31.7.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दिनांक 6.8.2008 के दण्डादेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को सूचनादाता, पीड़िता, सुनीता कुमारी पर बलात्संग कारित करने का दोषी पाया गया है एवं भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है एवं सात वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दण्ड दिया गया है।

2. अभियोजन मामला पीड़ित लड़की, सुनीता कुमारी, अ॰ सा॰ 4 द्वारा दिये गये फर्दबयान के आधार पर प्रारम्भ किया गया था। फर्दबयान अन्वेषण अधिकारी, अ॰ सा॰ 9 रणधीर सिंह द्वारा लक्ष्मण सिंह के गैरेज के निकट 16.2.1999 को लगभग 6.30 बजे शाम में दर्ज किया गया था। पीड़ित लड़की ने कथन किया है कि 16.12.1999 को 5.30 बजे शाम में वह पेंसिल खरीदने के लिए प्रह्लाद साह

की दुकान पैदल जा रही थी। जब वह अशोक इलेक्ट्रिकल शॉप के निकट पहुँची तब राम स्वरूप महतो के 20 वर्षीय पुत्र अभियुक्त लक्ष्मण महतो ने उसे सामने से रोका एवं उसका मुँह बन्द करने के उपरांत उसे अपने गैरेज में ले गया एवं दरवाजा अंदर से बन्द कर लिया। जब उसका मुँह बन्द था, तो वह उसे चौकी पर बैठाया एवं उसकी पैंटी हटाने के उपरांत, उसने उसपर बलपूर्वक बलात्संग कारित किया। तत्पश्चात्, वह गैरेज से बाहर चला गया। उसने गैरेज के भीतर से रोना प्रारम्भ कर दिया तब लोग वहाँ पर एकत्रित हुए, जिसपर लक्ष्मण महतो भाग गया। इसी बीच पुलिस भी आई एवं उसका कथन अभिलिखित किया गया है।

3. उसके उक्त फर्दबयान के आधार पर पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन एक केस दर्ज किया एवं अन्वेषण के उपरांत अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध आरोप-पत्र पेश किया। चूँकि यह केस अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए, विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपराध का संज्ञान लिया एवं मामले को सत्र न्यायालय में सुपुर्द किया जहाँ विचारण कराया गया था।

4. यह प्रतीत होता है कि विचारण के अनुक्रम में, अभियोजन ने कुल नौ साक्षियों की परीक्षा की है। अ॰ सा॰ 1 प्रमोद कुमार मंडल है, अ॰ सा॰ 2 सूचनादाता का भाई बिरेन्द्र महतो है, अ॰ सा॰ 3 सूचनादाता का पिता नकुल महतो है, अ॰ सा॰ 4, सुनिता कुमारी स्वयं सूचनादाता है, अ॰ सा॰ 5 अहिल्या देवी है, अ॰ सा॰ 6 बिंदिया देवी है, अ॰ सा॰ 7 पक्षद्रोही घोषित, प्रदीप यादव है, अ॰ सा॰ 8 डॉ॰ लिली सिंह है जिसने पीड़िता की परीक्षा की थी एवं अ॰ सा॰ 9 मामले का अन्वेषण अधिकारी, रणधीर सिंह है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य एवं सामग्रियों पर विचार करके अपीलार्थी लक्ष्मण महतो को दोषी पाया एवं यथा उपरोक्त दोषसिद्ध तथा दंडित किया।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि पीड़ित लड़की, सुनीता कुमारी (अ॰ सा॰ 4) ने न्यायालय के समक्ष अपने अभिकथन में पूर्णत: भिन्न कथन दिया है एवं इस प्रकार फर्दबयान में उसके द्वारा दिया गया अभिकथन या तो सत्य नहीं है या तो वह अभिकथन जिसपर अन्वेषण अधिकारी के समक्ष उसने हस्ताक्षर किया था उसे न्यायालय की नोटिस में नहीं लाया गया है। एवं इस प्रकार दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन फर्दबयान एवं अभिकथन एक दूसरे का खंडन करते हैं। उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि किसी स्वतंत्र साक्षी का परीक्षा न किया जाना, जो घटना स्थल के पास देखे गए थे या जो घटना के पश्चात् तत्काल आए जैसा कि अभियोजन साक्षियों द्वारा स्वीकृत है, भी अभियोजन मामले में संदेह उत्पन्न करता है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया है कि डॉक्टर एवं अन्वेषण अधिकारी का साक्ष्य भी अभियोक्त्रि के साक्ष्य को संपुष्ट नहीं करता है। ऐसी एक स्थिति में विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने में विधि की एक त्रुटि कारित की है एवं यह एक उचित मामला है जिसमें संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जाना चाहिए।

6. दूसरी ओर राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अभियोक्त्रि के अभिकथन में कोई भिन्नता नहीं है जैसा कि फर्दबयान में दिया गया है एवं जैसा कि उसने न्यायालय के समक्ष अपने अभिकथन में दिया है जब उसे अ॰ सा॰ 4 के तौर पर परीक्षा की गयी थी। अभियुक्त के विरूद्ध बलात्संग का प्रत्यक्ष अभिकथन है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने निवेदन किया है कि प्रतिपक्ष द्वारा इसका कोई कारण नहीं दिया गया है कि वह अभियुक्त को मिथ्यापूर्वक क्यों आलिप्त करेगी।

7. दोनों पक्षों को सुनने एवं साक्ष्यों का अवलोकन करने के उपरांत, मैं पाता हूँ कि अ॰ सा॰ 4, पीड़ित लड़की, सुनीता कुमारी ने कथन किया है कि 16.12.1999 को वह प्रहलाद साह की दुकान से एक पेंसिल खरीदने के लिए अपने घर से बाहर गयी थी एवं जब वह विद्युत उपकरणों के दुकान के निकट पहुँची तो अभियुक्त लक्ष्मण महतो पीछे से आया एवं उसका मुँह बन्द कर दिया एवं तत्पश्चात् उसने उसे जबरदस्ती एक मोटरसाइकिल पर बैठाकर अपने गैरेज में ले गया। तत्पश्चात् गैरेज के कमरे में उसने उसे एक चौकी पर धकेला एवं उसपर बलात्संग कारित किया। उसने कथन किया है कि

बलात्संग कारित करने के उपरांत उसने कमरे का दरवाजा ताला लगाकर बाहर से बन्द कर दिया तब उसने हल्ला करना शुरू कर दिया जिसपर लोग इकट्ठा हुए एवं पुलिस भी आई। जब पुलिस आई तो उसने पुलिस को अभिकथन दिया जहाँ उसने उसपर हस्ताक्षर भी किया। उसने फर्दबयान में अपना हस्ताक्षर प्रदर्श 1/A के तौर पर प्रमाणित किया। उसने कथन किया है कि उसने पुलिस को अपना पैंटी दिया जिसने एक अभिग्रहण सूची तैयार किया जिसपर उसके द्वारा हस्ताक्षर किया गया था एवं उसकी चाची, बिंदिया देवी ने अपने बायें अंगूठे का निशान लगाया। अभिग्रहण सूची में उसके हस्ताक्षर को प्रदर्श 1/B के तौर पर चिन्हित किया गया था। उसे सदर अस्पताल भेजा गया था जहाँ उसकी परीक्षा की गयी थी एवं उसने अभियुक्त को न्यायालय में पहचाना था। अपने प्रति-परीक्षा में उसने कथन किया है कि उसे चिकित्सीय परीक्षण के लिए उसी दिन भेजा गया था एवं उसे 15 वर्ष उम्र का पाया गया था। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया है कि वह अभियुक्त को पहले से नहीं जानती है एवं वह मात्र इसलिए जान पायी क्योंकि वह उसे सड़क से जाते हुए देखा करती थी। प्रति-परीक्षण के पैरा 15 में घटना की रीति के सम्बन्ध में उसने कथन किया है कि अभियुक्त लक्ष्मण महतो ने एक अन्य व्यक्ति जो मोटर साइकिल चला रहा था, के साथ उसे गैरेज में लाया एवं लक्ष्मण महतो एवं उस व्यक्ति ने उसका हाथ एवं पैर पकड़कर जबरदस्ती कमरे के अंदर लाया। जब वे उसे जबरदस्ती अंदर लाए तो उसने हल्ला किया था, परन्तु कोई भी व्यक्ति नहीं आया। पैरा 17 में उसने कथन किया है कि जब अभियुक्त लक्ष्मण महतो उसका पैंटी खोल रहा था तब अन्य व्यक्ति उसका पैर पकड़े हुए था। उसने यह भी कथन किया है कि बलात्संग के दौरान दूसरा व्यक्ति भी कमरे के अन्दर खड़ा था। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 22 में उसने कथन किया है कि बलात्संग कारित करने के उपरांत दोनों अभियुक्त व्यक्तियों ने कमरे में बाहर से ताला लगाकार भाग गये। पैरा 22 में उसने कथन किया है कि जब अन्वेषण अधिकारी आये, तो उन्होंने ताला तोड़कर दरवाजा खोला। उसने कथन किया है कि उस समय वह अचेत थी एवं जब उसे थाने ले जाया गया, तब उसने पुन: अपनी चेतना प्राप्त किया एवं तत्पश्चात् उसने पुलिस थाने में अपना अभिकथन दिया। अभियोक्त्रि का यह अभिकथन अन्वेषण अधिकारी द्वारा सम्पुष्ट नहीं किया गया है जिसे अ॰ सा॰ 9 के तौर पर परीक्षा की गयी है। अ॰ सा॰ 9, अन्वेषण अधिकारी ने न्यायालय में कथन किया है कि 16.12.1999 को वह गोड्डा पुलिस थाना में पदस्थापित था एवं लगभग 6.00 बजे शाम में उसने सूचना प्राप्त किया कि बठडीहा में चक्रधर यादव के घर के निकट लड़के एवं लड़की के बीच कुछ झगड़ा हुआ था। जब वे वहाँ पहुँचे तब गैरेज के सामने पीड़िता सुनीता कुमारी ने अपना फर्दबयान दिया। पैरा 10 में उसने काफी स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने घटनास्थल पर कमरे का 'किवाड़' बन्द या कोई टूटा हुआ ताला नहीं पाया। पैरा 14 में उन्होंने कहा है कि उन्होंने किवाड़ की 'जंजीर' को टूटा हुआ नहीं पाया। पैरा 16 में उन्होंने कथन किया कि साक्षियों में से किसी ने भी उनके समक्ष यह कथन नहीं किया कि उनलोगों ने अभियुक्त लक्ष्मण महतो को घटनास्थल से भागते हुए देखा था। उन्होंने कथन किया है कि घटनास्थल एक व्यस्त स्थान है एवं इसके पास दुकानें एवं लोग रहते हैं। अभियोक्त्री के पिता की भी न्यायालय में अ॰ सा॰ 3 के तौर परीक्षा की गयी थी। उसने कथन किया है कि 16.12.1999 को लगभग 5.00 बजे शाम में जब वह अपना दुकान पहुँचा तब एक लड़का मोटरसाइकिल पर आया एवं उसे अपने घर जाने को कहा एवं रास्ते में उसने कहा कि सुनीता कुमारी का बलात्संग किया गया है। वह वहाँ आया एवं पाया कि उसकी पुत्री सुनीता कुमारी को लक्ष्मण महतो द्वारा गैरेज में बन्द कर दिया है। उसने (लड़की ने) घटना के बारे में उसे बताया। वह यह कहकर भी पीड़ित लड़की को सम्पोषित करना चाहता था कि पुलिस घटनास्थल पर पहुँची तब ताला तोड़ा गया एवं सुनीता को कमरे से बाहर लाया गया। परंतु जैसा कि ऊपर कहा गया है, अन्वेषण अधिकारी ने यह नहीं कहा कि उन्होंने कमरे का ताला तोड़ा। एक अन्य महत्वपूर्ण साक्षी वह डॉक्टर, अ॰ सा॰ 8 है, जिसने 17.12.1999 को 10.45 बजे सुबह में सुनीता की परीक्षा की है। अ॰ सा॰ 8, डॉ॰ ने उसका उम्र 15 वर्ष के लगभग पाया है, परंतु इसे एक्स-रे परीक्षा में सम्पुष्ट नहीं किया गया था। डॉक्टर ने पीड़ित लड़की के शरीर पर कोई बाध्य या भीतरी उपहति नहीं पायी और न ही उसके शरीर या कपड़े पर वीर्य का कोई चिन्ह ही पाया है। डॉक्टर की राय यह थी कि मैथुन के सम्बन्ध में कोई निश्चित राय नहीं दी जा सकती है।

8. इस प्रकार पीड़ित लड़की एवं उसके पिता, अन्वेषण अधिकारी एवं डॉक्टर के साक्ष्य का अवलोकन करने पर, यह प्रतीत होता है कि बिजली की दूकान से गैरेज के बीच की दूरी तय करने के लिए, पीड़ित लड़की ने अपने अभिकथन में कहा कि उसे अभियुक्त लक्ष्मण महतो द्वारा उसका मुँह ढ़ककर ले जाया गया था एवं मोटरसाईकिल अन्य व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था। प्रति-परीक्षा के पैरा 15 में, वह फर्दबयान में दिए गए वृत्तांत से भिन्न वृत्तांत देना चाहती थी। उसने कथन किया कि उसे अभियुक्त द्वारा मोटरसाईकिल से ले जाया गया एवं यह कि एक अन्य व्यक्ति उसका हाथ एवं पैर पकड़े था एवं यह कि एक अन्य व्यक्ति भी वहाँ उपस्थित था एवं उसका पैंटी खोलने में अभियुक्त *(sic)* को पकड़े हुए था। न्यायालय में उसके द्वारा दिया गया सम्पूर्ण अभिकथन पूरे अभियोजन मामले को संदेहास्पद बनाता है। एक साक्षी ने भी, चाहे अ॰ सा॰ 3 के तौर पर परीक्षित उसका पिता या स्वतंत्र साक्षी, अ॰ सा॰ 1 एवं अ॰ सा॰ 2 ने न्यायालय में यह कथन किया कि लक्ष्मण महतो की सहायता एक अन्य व्यक्ति द्वारा की गयी थी एवं यह कि उसे एक मोटरसाईकिल पर जबरदस्ती ले जाया गया था। अभियोजन मामला जो कि डॉक्टर अ॰ सा॰ 8 या अ॰ सा॰ 9 द्वारा समर्थित नहीं है, समुन्नयन संपूर्ण अभियोजन मामले को संदेहास्पद बनाता है।

9. तद्नुसार, अभियुक्त संदेह का लाभ पाने का हकदार है जो कि उसे दिया जाता है। अभियुक्त लक्ष्मण महतो को संदेह का लाभ देते हुए उसके विरूद्ध लगाये गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। श्री सरजू प्रसाद, सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 31.7.01 की दोषसिद्धि एवं दिनांक 6.8.01 के दण्डादेश को अपास्त किया जाता है। चूँकि अभियुक्त जेल में है, इसलिए उसे जमानत बंध-पत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; ,eñ okbñ bdcky ,o Mhñ ,uñ iVy] U;k;efrx.k

संत बहादुर (269 में)

छैलु कच्छप (339 में)

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखण्ड) (दोनों में)

दां॰ अपील (डी॰बी॰) सं॰ 269 वर्ष 2001; 339 वर्ष 2000. 20 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 197 वर्ष 1997/विचारण सं॰ 4 वर्ष 2000 में विद्वान षष्ठ अपर न्यायिक आयुक्त, राँची द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 10 एवं 11 जुलाई, 2000 के दोषसिद्धि एवं दंडादेश के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 164—मजिस्ट्रेट द्वारा कथन अभिलिखित किया गया लेकिन उसके द्वारा साबित नहीं किया गया क्योंकि वह उसे साबित करने के लिए उपस्थित नहीं हुआ था–हेतुक साबित नहीं हुआ–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त कर दिया गया।
(पैरा 18)

(ख) भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302/34—एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी–मात्र सूचनादाता ने ही घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया है–शेष साक्षीगण न तो प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण है और न ही उन्होंने सूचनादाता के परिसाक्ष्य को सम्पुष्ट किया है–अभिनिर्धारित, अभियोजन युक्तियुक्त संदेह से परे अपराध को साबित करने में असफल हो गया है। **(पैरा 19 एवं 20)**

निर्णयज विधि.–AIR 1993 SC 1462; AIR 1983 SC 810—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Vijyant Verma (in both), For the Appellants; Mr. P.K. Sahay (in both), For the State.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–दोनों दांडिक अपीलें जी॰ आर॰ सं॰ 2935 वर्ष 1996 के तत्सम कोतवाली (सुखदेव नगर) पी॰ एस॰ केस सं॰ 480 वर्ष 1996 से उद्भूत होने वाले, सत्र विचारण सं॰ 197 वर्ष 1997/टी॰ आर॰ सं॰ 4 वर्ष 2000 में विद्वान षष्ठ, अपर न्यायिक आयुक्त, रांची द्वारा पारित

क्रमश: दिनांक 10 एवं 11 जुलाई, 2000 के दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के निर्णय एवं आदेश से उद्‌भूत हो रही है, जिसके द्वारा अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह-पठित धारा 34 के अधीन दण्डनीय अपराध के लिए दिनांकित 10 जुलाई, 2000 के आदेश के माध्यम से दोषसिद्ध किया गया है एवं आजीवन कठोर कारावास भुगतने के लिए दण्डित किया गया है और उन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 201 सह-पठित धारा 34 के अधीन अपराध के लिए भी दोषसिद्ध किया गया है एवं सात वर्षों के कठोर कारावास भुगतने के लिए दंडित किया गया है। दोनों दण्डादेश को साथ-साथ चलने का आदेश किया गया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यथा निम्नलिखित रूप में है:-

शिव केमिकल फैक्टरी में घटना की तिथि 14 अक्टूबर, 1996 है। चन्द्र बहादुर उर्फ बुर्हा बहादुर (मृतक) के साथ-साथ अ॰ सा॰ 1 (जगरनाथ मुंडा) एवं अ॰ सा॰ 2 (कुनूल तोपनो) शिव केमिकल फैक्टरी में ड्यूटी पर थे। लगभग 7.00 बजे अपरान्ह में दोनों अभियुक्त-अपीलार्थीगण आये एवं कारखाने के दरवाज खटखटाए और, तत्पश्चात्, चन्द्र बहादुर उर्फ बुर्हा बहादुर (मृतक) ने जो कारखाने के नाइट गार्ड के तौर पर सेवा कर रहा था, छोटा दरवाजा खोला। अभियुक्त अन्दर आए। सूचनादाता भी कारखाने में ही था। दोनों अभियुक्त ने मात्र सूचनादाता-जगरनाथ मुंडा (अ॰ सा॰ 1) को यह धमकी दिया कि वे चन्द्र बहादुर उर्फ बुर्हा बहादुर को एक सबक सिखाना चाहते हैं। तत्पश्चात्, दोनों अभियुक्त कॉलोनी की ओर गये और 15 मिनटों के अन्दर वापस आ गये। उन्होंने चन्द्र बहादुर उर्फ बुर्हा बहादुर (मृतक) पर मूक्कों, घूंसों से एवं चाकुओं से प्रहार किया। मृतक कारखाना परिसर के कार्यालय के सामने गिरा पड़ा था और तत्पश्चात् उसको भट्‌टी में फेंक दिया गया। सूचनादाता कारखाने की भट्‌टी को कोयले की पूर्त्ति कर रहा था। तत्पश्चात्, दोनों अभियुक्त अ॰ सा॰ 2 (कुनूल तोपनो) के घर गए थे जहाँ उन्होंने अ॰ सा॰ 2 (कुनूल तोपनो) एवं अपनी पत्नी अ॰ सा॰ 4 (असरानी तोपनो) से कहा कि उन्होंने चन्द्र बहादुर उर्फ बुर्हा बहादुर (मृतक) की हत्या कर दी है एवं उन्होंने यह धमकी दिया कि उन्हें इस तथ्य को किसी से नहीं कहना चाहिए।

3. घटना की तारीख पर कारखाने में अन्य कर्मकार भी थे। अ॰ सा॰ 1 (जगरनाथ मुन्डा), अ॰ सा॰ 2 (कुनूल तोपनो) एवं अ॰ सा॰ 5 (रामदास चौधरी) के सिवाय कोई अन्य कर्मकार की साक्षी के तौर पर परीक्षा नहीं की गयी है, जो अ॰ सा॰ 1 (जगरनाथ मुंडा) द्वारा दर्ज की गयी प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार 14 अक्टूबर, 1996 की रात्रि में कारखाने में रूके हुए थे, और न ही भट्‌ठी की आग सूचनादाता (अ॰ सा॰ 1) द्वारा जो भट्‌ठी को कोयला दे रहा था, बुझायी गयी थी, ताकि एक आदमी का जीवन बचाया जा सके या कम से कम मानव के अवशेष को अन्वेषणाधिकारी द्वारा पता लगाया जा सके। यद्यपि अ॰ सा॰ 2 (कुनूल तोपनो), अ॰ सा॰ 3 (कृष्ण कुमार शर्मा-कारखाने का स्वामी) एवं अ॰ सा॰ 4 (असरानी तोपनो) को घटना के ठीक बाद अ॰ सा॰ 1 (सूचनादाता) द्वारा सूचित किया गया था, तथापि 14, 15, 16 एवं 17 अक्टूबर, 1996 को उन्होंने घटना के बारे में किसी से भी कमाबेश पुलिस से रहस्योद्‌घाटन नहीं किया। यद्यपि, प्रथम सूचना रिपोर्ट मात्र 18 अक्टूबर, 1996 को अ॰ सा॰ 1 (सूचनादाता) द्वारा दर्ज की गयी थी। न तो शव बरामद किया गया और न ही अपराध का दृश्य, पंचनामा बनाया गया और न ही कोई रक्त का नमूना वहां बरामद किया गया जहां मृतक पर आरम्भिक तौर पर चाकू से हमला किया गया था और न ही कोई पोस्टमार्टम रिपोर्ट है और न ही अन्वेषण पदाधिकारी की परीक्षा की गयी है और न ही अन्य साक्षियों की, जो कारखाने के परिसर में मौजूद थे, परीक्षा की गयी है। आरोप पत्र दाखिल किया गया एवं एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (अ॰ सा॰ 1) के साक्ष्य पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह-पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आजीवन कारावास के लिए एवं भारतीय दंड संहिता की धारा 201 सह-पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए सात वर्षों तक का कठोर कारावास के लिए इन अपीलार्थियों के विरूद्ध दोषसिद्वि की गयी है और अतएव वर्तमान अपीलें दायर की गयी है।

4. हमने अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने मुख्य रूप से यह तर्क दिया है कि अभियोजन युक्तियुक्त संदेह से परे अपराधों को साबित करने में असफल हो गया है। अभियोजन साक्षियों के अभिसाक्ष्यों में अनेक लोप, विरोधाभाष एवं सुधार हैं। मामले के इस पहलू का विचारण न्यायालय द्वारा समुचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है एवं, अतएव, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दंड के निर्णय एवं आदेश अभिखंडित एवं अपास्त किये जाने योग्य है। अपीलार्थीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि कारखाने में अन्य साक्षीगण भी थे जो कारखाने में कार्य कर रहे थे, की परीक्षा नहीं की गयी है। अभियोजन का संपूर्ण मामला एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी जगरनाथ मुंडा (अ॰ सा॰ 1), जो सूचनादाता भी है पर आधारित है। इस साक्षी के साक्ष्य का दूसरे साक्षियों द्वारा समर्थित नहीं है। अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि यद्यपि घटना की तारीख 14 अक्टूबर, 1996 है, फिर भी बिना किसी कारण के यह एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी और समर्थन करने वाले दो अन्य साक्षीगण अर्थात् अ॰ सा॰ 2 एवं अ॰ सा॰ 4, 14, 15, 16 तथा 17 अक्टूबर, 1996 तक मौन रहे हैं और एक बहुत विलम्बित प्रक्रम पर अर्थात् 18 अक्टूबर, 1996 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दायर की गयी है। यह अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि अ॰ सा॰ 1, अपने साक्ष्य के पैरा सं॰ 13 के अनुसार, पुलिस के समक्ष एक से अधिक कथन प्रस्तुत किया है। जो अन्य दो कथनों में कथन किया गया है, उसे अन्वेषण अधिकारी के अभिसाक्ष्य द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर नहीं आया है। इस मामले में अन्वेषण अधिकारी की अभियोजन साक्षी के रूप में बिल्कुल परीक्षा नहीं की गयी है। उसी प्रकार अ॰ सा॰ 1 (जगरनाथ मुंडा) के अभिसाक्ष्य का कोई संपोषक साक्ष्य नहीं है। अ॰ सा॰ 1 के अभिसाक्ष्य के अनुसार मृतक पर कुछ समय तक घूंसों मूक्कों के वार तथा चाकू द्वारा आरम्भिक तौर पर हमला किया गया था। अतएव, घटना-स्थल पर रक्त अवश्य होना चाहिए था न तो कोई आयुध अभियुक्त में से किसी से बरामद किया गया है और नहीं रक्त का नमूना संग्रहीत किया गया है। अतएव, अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य का कोई समर्थन नहीं होता है और अपीलार्थियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क किया गया है कि हत्या कारित करने के पश्चात् अभियुक्त अपीलार्थियों के लिए यह उद्घोषणा करने या घोषणा करने के लिए अ॰ सा॰ 2 एवं अ॰ सा॰ 4 के घर पर जाने का कोई कारण नहीं था कि उन्होंने मृतक की हत्या कारित कर दी है। ये दोनों साक्षीगण अर्थात अ॰ सा॰ 2 एवं अ॰ सा॰ 4 पति एवं पत्नी है। वे बनायें हुए साक्षी हैं। अ॰ सा॰ 2 ने अपनी प्रति-परीक्षा में यह कथन किया है कि वह यह नहीं जानते हैं कि किसने मृतक की हत्या की है। इन दोनों साक्षियों के अभिसाक्ष्य विश्वसनीय नहीं है। वास्तव में, अभियुक्त निर्दोष है और कोई अपराध कामोवेश मृतक की हत्या कारित नहीं किया है। अभियोजन हेतुक भी साबित करने में असफल हो गया है। उन्हें शीघ्र गिरफ्तार किया गया। अभियुक्त सं॰ 2, जो क्रि॰ अपील सं॰ 339 वर्ष 2001में अपीलार्थी है, को विचारण के दौरान जमानत मंजूर की गयी और अभियुक्त सं॰ 1 जो क्रि॰ अपील सं॰ 269 वर्ष 2000 में अपीलार्थी संख्या 1 है साढ़े बारह वर्ष का कारावास भुगत चुका है। वास्तव में, एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी भी विश्वसनीय नहीं है क्योंकि अकारण वह चार दिनों से मौन रहा और मात्र 18 अक्टूबर, 1996 को प्रथम सूचना रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत करवायी गयी और चूंकि इस साक्षी (अ॰ सा॰ 1) के अभिसाक्ष्य का कोई समर्थन नहीं हुआ है इसलिए वह एक विश्वसनीय साक्षी नहीं है और इसलिए एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के अभिसाक्ष्य पर आधारित दोषसिद्धि अभिखंडित एवं अपास्त किये जाने योग्य है।

5. हमने राज्य की ओर उपस्थित होने वाले अपर लोक अभियोजक को भी सुना है, जिन्होंने यह तर्क दिया है कि अभियोजन ने युक्तियुक्त संदेह से परे अपराध साबित कर दिया है। अ॰ सा॰ 1 संपूर्ण घटना का एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है और अ॰ सा॰ 1 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, उसने विस्तार से संपूर्ण घटना का वर्णन किया है। यह अ॰ सा॰ 1 द्वारा यह कथन किया गया है कि अभियुक्त अपीलार्थी कारखाने के दरवाजे पर दस्तक करके कारखाने के परिसर में आया जिसको मृतक द्वारा खोला गया और तत्पश्चात् अभियुक्त ने अ॰ सा॰ 1 को धमकी दिया एवं तत्पश्चात्, वे पुनः चाकू के साथ आये और

कुछ समय तक चाकू से मृतक पर हमला किये और अंततोगत्वा शव को अभियुक्त द्वारा घसीटा गया उन्होंने शव को भट्ठी में फेंक दिया है। तत्पश्चात् दोनों अभियुक्त अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 के घर पर गए एवं उन्हें यह सूचित किया कि उन्होंने मृतक की हत्या कारित की है। अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 के अभिसाक्ष्य को देखकर उन्होंने अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य का पर्याप्त समर्थन किया एवं, इसलिए, उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा सही दंडित किया गया है और दोषसिद्धि एवं दण्ड का निर्णय एवं आदेश अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग करते समय इस न्यायालय द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

6. दोनों पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करके यह प्रतीत होता है कि घटना 14 अक्टूबर, 1996 को रात्रि के समय हुई है। मृतक चन्द्र बहादुर उर्फ बुर्हा बहादुर शिव केमिकल कारखाने में एक नाईट-गार्ड था जबकि अ० सा० 1 सूचनादाता भी रात्रि ड्यूटी पर था। 14 अक्टूबर, 1996 को अ० सा० 1 कारखाने के परिसर में था और कारखाने की भट्ठी को कोयले की पूर्त्ति कर रहा था। अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य को देखकर जो स्वयं को एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा कर रहा था, उसके अभिसाक्ष्य में उसके द्वारा यह कथन किया गया है कि दोनों अभियुक्त 14 अक्टूबर, 1996 को लगभग 7.00 बजे अपरान्ह में आये और कारखाने का दरवाजे खटखटाया। मृतक, जो एक नाईट-गार्ड था, कारखाना परिसर के एक छोटे दरवाजे को खोला। दोनों अभियुक्त कारखाने के अन्दर आये और उन्होंने अ० सा० 1 को यह धमकी दिया कि वे रात्रि रक्षक को एक सबक सिखाने जा रहे हैं। तत्पश्चात् वे बाहर चले गये और 15-20 मिनटों के पश्चात् वे वापस आये। यह भी उसके अभिसाक्ष्य में अ० सा० 1 द्वारा कथन किया गया है कि (उन्होंने अभियुक्तों) ने कारखाना परिसर के कार्यालय के सामने मृतक को पकड़ लिया। दोनों अभियुक्त ने कुछ समय तक घूंसों-मूक्कों के वार से तथा चाकू के वार से मृतक पर हमला किया। मृतक गिर पड़ा था तथा तत्पश्चात् उसको इन दोनों अभियुक्तों द्वारा भट्ठी तक घसीटा गया और अभियुक्तों ने मृतक के शव को भट्ठी में फेंक दिया था और भट्ठी के दरवाजे को बन्द कर दिया था। यह अ० सा० 1 द्वारा कथन किया गया है कि तत्पश्चात् ये सभी अभियुक्त ने अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 के निवास स्थान पर गए थे। अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 पति एवं पत्नी हैं। दोनों अभियुक्तों ने उन्हें सूचित किया कि उन्होंने चन्दर बहादुर उर्फ बुर्हा बहादुर की हत्या कारित किया है और उन्हें यह धमकी दिया कि वे किसी भी व्यक्ति को सूचना नहीं देंगे अन्यथा उनका भी वध कर दिया जायेगा। इस साक्षी ने अपनी प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी कथन किया है कि एक मुंशीजी कारखाने के परिसर में उपस्थित था। अ० सा० 1 ने संपूर्ण घटना के बारे में इस मुंशीजी को भी सूचित किया। अ० सा० 1 ने कारखाने के परिसर में 14 अक्टूबर, 1996 की रात्रि के दौरान ठहरने के लिए मुंशी जी से आग्रह किया एवं वास्तव में मुंशीजी कारखाने के परिसर में 14 अक्टूबर, 1996 की संपूर्ण रात्रि तक रूके थे। इस साक्षी (अ० सा० 1) के अभिसाक्ष्य को देखकर, यद्यपि कारखाने के परिसर में अन्य कर्मकार भी थे फिर भी उनमें से किसी की भी जो कारखाने के परिसर में कार्य कर रहे थे, अभियोजन साक्षी के रूप में परीक्षा नहीं की गयी है। अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य को देखकर, वह विचित्र बात है कि दोनों अभियुक्त यह उद्घोषणा या घोषणा करने के लिए अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 के घर पर गए थे कि उनलोगों ने मृतक की हत्या कर दी है। अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 के घर पर जाने के लिए अभियुक्त के पास कोई ठोस कारण नहीं था। अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 के घर को चुनने का कोई भी कारण नहीं था। अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य के अनुसार, दोनों अभियुक्तों ने आरम्भिक तौर पर चाकू से मृतक पर हमला किया था। तत्पश्चात, मृतक गिर पड़ा जिसको भट्ठी तक घसीटा गया और भट्टी में फेंक दिया गया। यह भी अभियोजन का मामला था कि अ० सा० 1 कारखाने की भट्ठी को कोयले की पूर्त्ति कर रहा था। लेकिन इस अ० सा० 1 ने तत्पश्चात् भट्ठी में आग को नहीं बुझाया था। अ० सा० 1 को घटना के पश्चात् भट्ठी की आग बुझवाने का पूरा अवसर था। अभियुक्त, अ० सा० 1 के अनुसार हत्या कारित करने के पश्चात् चले गये थे। यह अ० सा० 1 का सामान्य व्यवहार होना चाहिए, क्योंकि वह भट्ठी को कोयला की पूर्तिकर रहा था और न ही इस साक्षी ने 14, 15, 16 तथा 17 अक्टूबर, 1996 को संपूर्ण घटना के बारे में किसी के भी समक्ष कथन

किया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट 18 अक्टूबर 1996 को मात्र इस साक्षी (अ॰ सा॰ 1) द्वारा दायर की गयी। रक्त के कोई दाग अपराध स्थल पर अभियोजन द्वारा नहीं पाया गया है। किसी आयुध की बरामदगी अभियुक्तों में से किसी से नहीं की गयी है। अपराध के स्थल या भट्ठी का कोई पंचनामा नहीं किया गया है। परिस्थितियों के इस समुच्चय के अधीन, अ॰ सा॰ 1 के अभिसाक्ष्य पर विश्वास करना अत्यंत असुरक्षित है। हत्या के अपराध को युक्तियुक्त संदेह से परे अभियोजन द्वारा साबित किया जाना चाहिए। अ॰ सा॰ 1 का यह व्यवहार आश्चर्यजनक है जिसने भट्ठी की आग को नहीं बुझाया है और न ही वह चिल्लाया है और यह भी तथ्य कि वह 14, 15, 16 तथा 17 अक्टूबर को मौन रहा और प्रथम सूचना रिपोर्ट 18 अक्टूबर, 1996 को मात्र उसके द्वारा दाखिल किया गया। मात्र अ॰ सा॰ 2 तथा अ॰ सा॰ 4 के घर को चुनने एवं वहां जाने तथा उनके समक्ष यह घोषणा करने या रहस्योद्घाटन करने का कोई कारण नहीं है कि उन्होंने चन्द्र बहादुर उर्फ बुर्हा बहादुर (मृतक) की हत्या कारित किया था। इन तथ्यों एवं परिस्थितियों में इस एक मात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के अभिसाक्ष्य का समर्थन की पूर्त्ति अन्य साक्ष्य द्वारा अवश्य किया जाना चाहिए लेकिन अ॰ सा॰ 2 तथा अ॰ सा॰ 4 को छोड़कर और उनके सिवाय अ॰ सा॰ 1 के अभिसाक्ष्य का समर्थन करने के लिए कोई अन्य साक्षी नहीं है जो पति एवं पत्नी हैं एवं, इसलिए, अ॰ सा॰ 1 का अभिसाक्ष्य पूर्णतया विश्वसनीय नहीं है और संपोषण के बिना एकमात्र अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य पर अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करना अत्यधिक असुरक्षित है।

7. अ॰ सा॰ 2 एवं अ॰ सा॰ 4 के अभिसाक्ष्यों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 2 भी कारखाने के परिसर में निवास कर रहा था। इस साक्षी (अ॰ सा॰ 2) के अभिसाक्ष्यों के अनुसार 14 अक्टूबर, 1996 की रात्रि में दोनों अभियुक्त उसके घर आये और यह सूचना दी कि उन्होंने मृतक की हत्या कर दी है। उस समय, अ॰ सा॰ 4 भी घर में मौजूद था। तत्पश्चात् अभियुक्तगण चले गये। यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 2 एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। जैसा कि इसमें ऊपर कथन किया गया है, उनके द्वारा कारित की गयी हत्या के तथ्य की घोषणा या रहस्योद्घाटन करने के लिए अ॰ सा॰ 2 तथा अ॰ सा॰ 4 के घर को चुनने का अभियुक्त के लिए कोई भी कारण नहीं था। साधारणतया, हत्या कारित करने के पश्चात् अभियुक्त कोई भी उद्घोषणा नहीं करेगा और वह भी किसी व्यक्ति के घर जाकर। वहाँ अनेक अन्य कर्मकारों के भी घर होंगे। अ॰ सा॰ 2 एवं अ॰ सा॰ 4 के अभिसाक्ष्य को देखकर यह प्रतीत होता है कि वे शिक्षित किये गये साक्षी थे। अ॰ सा॰ 4 ने यह कथन किया है कि तत्पश्चात् अ॰ सा॰ 1 उनके घर आया और 14 अक्टूबर, 1996 को पूरी रात्रि तक रूका था। अ॰ सा॰ 4 को अ॰ सा॰ 1 द्वारा यह भी सूचित किया गया कि दोनों अभियुक्त ने मृतक की हत्या कर दी है। इस प्रकार अ॰ सा॰ 4 भी एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। वह अनुश्रुत साक्ष्य दे रही है। जो कुछ भी अ॰ सा॰ 4 के समक्ष अ॰ सा॰ 1 द्वारा कथन किया गया है वह अ॰ सा॰ 4 का अभिसाक्ष्य है। इस प्रकार उसका साक्ष्य एक अनुश्रुत साक्ष्य है। इन दोनों साक्षियो में किसी ने भी 14, 15, 16 या 17 अक्टूबर, 1996 को कारखाने के परिसर में किसी भी व्यक्ति को सूचित नहीं किया है।

8. अ॰ सा॰ 3 (कृष्ण कुमार शर्मा) के अभिसाक्ष्य को देखकर, जो घटना का एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, उसने यह कथन किया है कि मृतक कारखाने के एक रक्षक के रूप में अपने कारखाने में कार्य कर रहा था और यह उसको सूचित किया गया कि मृतक की हत्या की गयी है। यद्यपि उसको अगले दिन शीघ्र सूचना दी गयी फिर भी यह प्रतीत होता है कि वह 15 अक्टूबर, 1996 से आगे भी बिल्कुल अकारण मौन रहा है। प्रथम सूचना रिपोर्ट 18 अक्टूबर, 1996 को अ॰ सा॰ 1 द्वारा दाखिल की गयी थी।

9. अ॰ सा॰ 5 (रामदास चौधरी) के अभिसाक्ष्य को देखकर जो एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, उसने यह कथन किया है कि अ॰ सा॰ 1 ने उसको यह सूचित किया कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मृतक की हत्या कर दी है। इस साक्षी ने कथन किया कि वह 15 अक्टूबर, 1996 को कारखाने के परिसर गया था। जहां उसको अ॰ सा॰ 1 द्वारा घटना के बारे में सूचित किया गया जब कि सूचनादाता (अ॰ सा॰ 1) के अनुसार अ॰ सा॰ 5, 14 अक्टूबर, 1996 को कारखाने के परिसर में ही था एवं अ॰ सा॰ 5 को 14 अक्टूबर, 1996 को स्वयं कारखाना परिसर में रूकने के लिए अ॰ सा॰ 1 द्वारा निवेदन किया गया था। यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 1 के अनुसार यह साक्षी यद्यपि 14 अक्टूबर, 1996 को कारखाना

परिसर में मौजूद था, फिर भी न्यायालय के समक्ष सही तथ्यों को प्रस्तुत नहीं कर रहा है एवं संपूर्ण घटना के महत्वपूर्ण साक्ष्य को छिपा रहा है, जो 14 अक्टूबर, 1996 की रात्रि के दौरान हुई है।

10. इस साक्षी, अ० सा० 5 के अभिसाक्ष्य के पैरा सं० 10 को देखकर वह 14 अक्टूबर, 1996 को कारखाना परिसर में नहीं था, जब कि अ० सा० 1 ने, जिसने प्रथम सूचना रिपोर्ट दाखिल किया है यह कथन किया है कि वह (अ० सा० 5) 14 अक्टूबर, 1996 को कारखाना परिसर में मौजूद था और वह संपूर्ण रात्रि तक कारखाना परिसर में रूका था। इस साक्षी (अ० सा० 5) को उसके अभिसाक्ष्य के अनुसार संपूर्ण घटना की प्रत्यक्ष जानकारी नहीं हैं। वह हत्या की जानकारी के बावजूद कई दिनों तक मौन भी रह है।

11. अ० सा० 6 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, जो कारखाना निरीक्षक और एक तकनीकी साक्षी है, वह भी मृतक की हत्या का एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है।

12. इस प्रकार, अभियोजन साक्षियों के सभी साक्ष्य को देखकर यह प्रतीत होता है कि अ० सा० 1 एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है। उसके अभिसाक्ष्य को देखकर, यद्यपि घटना 14 अक्टूबर, 1996 को हुई है फिर भी वह 14, 15, 16 तथा 17 अक्टूबर, 1996 तक मौन रहा। उसने 18 अक्टूबर, 1996 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी है। इसी प्रकार, इस साक्षी (अ० सा० 1) के अनुसार कारखाना परिसर में अन्य कर्मकार भी थे लेकिन उनकी परीक्षा अभियोजन साक्षियों के रूप में नहीं की गयी है। यद्यपि अ० सा० 5, अ० सा० 1 द्वारा दाखिल की गयी प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार कारखाना परिसर में मौजूद था लेकिन अ० सा० 5 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, उसने यह कथन किया है कि वह 14 अक्टूबर, 1996 को कारखाना परिसर में मौजूद नहीं था। उसी प्रकार अभियुक्तों के लिए उनके द्वारा कारित की गयी हत्या की घोषणा करने के लिए अ० सा० 2 तथा अ० सा० 4 के घर को चुनने के लिए कोई कारण नहीं था। अ० सा० 2 तथा अ० सा० 4 का अभिसाक्ष्य यह है कि अभियुक्त उनके घर आये और अ० सा० 2 तथा अ० सा० 4 को यह सूचना दिये कि उन्होंने मृतक की हत्या कारित कर दी है। मात्र यही अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य का अ० सा० 2 तथा अ० सा० 4 के अभिसाक्ष्य के द्वारा संपुष्टि होती है।

13. विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर साक्ष्य से यह भी प्रतीत होता है कि अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य को अपराध के स्थल के पंचनामा से कोई सम्पुष्टि नहीं प्राप्त हो रही है। पुलिस ने अपराध के स्थल का पंचनामा बिल्कुल नहीं लिखा है। अ० सा० 1 ने अपने अभिसाक्ष्य में कथन किया है कि अभियुक्त ने चाकू से मृतक पर हमला किया। तत्पश्चात् मृतक गिर पड़ा। घटना स्थल पर रक्त अवश्य होना चाहिए। तत्पश्चात् मृतक को भट्टी तक घसीटा गया। कोई रक्त रंजित मिट्टी पुलिस द्वारा घटना स्थल से संग्रहीत नहीं की गयी है और न ही कोई आयुध पुलिस द्वारा बरामद किया गया है। अतएव अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य की कोई संपुष्टि नहीं होती है।

14. अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य को देखकर वह भट्टी को कोयला दे रहा था। उसके अभिसाक्ष्य के अनुसार, मृतक का शव अभियुक्त द्वारा भट्टी में फेंक दिया गया। तत्पश्चात अभियुक्त घोषणा करने के लिए या अ० सा० 2 तथा अ० सा० 4 को सूचना देने के लिए अ० सा० 2 के घर पर गये थे। भट्टी की आग अ० सा० 1 द्वारा बुझायी जा सकती थी क्योंकि वह भट्ठी में कोयले की पूर्ति कर रहा था। न तो कोई शव पुलिस द्वारा बरामद किया गया और न ही मानव शरीर के कोई अवशेष भट्टी से बरामद किये गये हैं। इस प्रकार अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य की कोई संपुष्टि नहीं होती है।

15. अ० सा० 1 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए यह पूर्णतया एक विचित्र बात है कि अभियुक्तों ने अभियुक्त द्वारा कारित की गयी हत्या के बारे में उन्हें सूचना देने हेतु अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 के घर को चुना। कोई साक्ष्य अभिलेख पर इस बारे में नहीं लाया गया है कि अभियुक्त एवं अ० सा० 2 मित्र या नातेदार थे या क्यों उन्होंने घोषणा करने के लिए अ० सा० 2 के घर को चुना। इनमें से दोनों पति एवं पत्नी जो अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 हैं, ने भी 14, 15, 16 तथा 17 अक्टूबर, 1996 को मृतक

की मृत्यु के बारे में पुलिस को सूचित नहीं किया है वे संपूर्ण घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। कारखाना परिसर में अन्य कर्मकार भी थे जिनकी अभियोजन साक्षियों के रूप में परीक्षा नहीं की गयी है।

16. हमारी राय में, अ॰ सा॰ 2 एवं अ॰ सा॰ 4 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए वे अ॰ सा॰ 1 के अभिसाक्ष्य की कोई संपुष्टि नहीं कर रहे है ताकि अपराध युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किया जा सके।

17. अतएव, संपूर्ण मामला एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (अ॰ सा॰ 1) के साक्ष्य पर आधारित है। अभिलेख पर साक्ष्य को देखकर अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य की कोई संपुष्टि नहीं होती है। अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा नहीं की गयी है। अ॰ सा॰ 1 के अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ 13 को देखते हुए उसने पुलिस के समक्ष एक से अधिक कथन किये है। अतएव, जो इस साक्षी ने अपने अन्य अभिकथनों में कथन किया है, उसको अन्वेषण अधिकारी द्वारा अभिलेख पर लाया जाना चाहिए था लेकिन उसकी अभियोजन द्वारा परीक्षा नहीं की गयी है। अतएव, अन्वेषण अधिकारी की न परीक्षा किया जाना अभियोजन के मामले को प्रभावित करता है। जो अ॰ सा॰ 1 का प्रथम कथन है, उसको अभिलेख पर नहीं लाया गया है। यह अ॰ सा॰ 1 द्वारा कथन किया गया है कि आरम्भिक रूप से उसका कथन कारखाने में अभिलिखित किया गया। तत्पश्चात् एक दूसरे कथन को थाने में अभिलिखित किया गया।

18. जब एक से अधिक कथनों को अन्वेषणाधिकारी द्वारा अभिलिखित किया जाता है तब समय की दृष्टि से सर्वप्रथम अभिलिखित किया गया अभिकथन न्यायालय के समक्ष लाया जाना चाहिए था। अतएव, अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा न किया जाना इस मुद्दे में एक महत्वपूर्ण पहलू है। आयुध की कोई बरामदगी या खोज नहीं दर्ज की गयी है और न ही अपराध के स्थल से किसी रक्त के नमूने का संग्रहण किया गया है। न तो शव बरामद किया गया है और न ही शव के अवशेष भट्टी से पाये गये और न ही न किसी अन्य साक्षी की जो कारखाने में मौजूद था, एक अभियोजन साक्षी के रूप में परीक्षा की गयी है। प्रथम सूचना रिपोर्ट बड़ी विलम्ब से दर्ज की गयी है। यद्यपि स्वामी (अ॰ सा॰ 5) को हत्या के बारे में सूचित किया गया था फिर भी उसने मृतक की हत्या के बारे में 15 अक्टूबर, 1996 से 18 अक्टूबर, 1996 तक किसी को भी सूचित नहीं किया। मजिस्ट्रेट का जिसके समक्ष दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन कथन अभिलिखित किया गया, एक अभियोजन साक्षी के रूप में परीक्षा नहीं की गयी है। अभियोजन ने हत्या का हेतु भी प्रमाणित नहीं किया है। अतएव, अ॰ सा॰ 1 के अभिसाक्ष्य की कोई संपुष्टि नहीं होती है। यह उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में, विशेषकर **अनिल फूकन बनाम स्टेट ऑफ आसाम, ए॰ आई॰ आर॰ 1993 एस॰ सी॰ 1462** में यथा प्रकाशित मामले के पैरा सं॰ 3 में, अभिनिर्धारित किया गया है:-

> ''.....जब तक एकल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी एक पूर्णतया विश्वसनीय साक्षी है तब तक न्यायालयों को एकमात्र उसके परिसाक्ष्य पर दोषसिद्धि आधारित करने में कोई परेशानी नहीं होती है तथापि, जहां एकल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी को एक पूर्णतया विश्वसनीय साक्षी होना नहीं पाया जाता है वहां इस भाव में कि कतिपय परिस्थितियां है जो यह प्रदर्शित करती है कि उसका अभियोजन में एक हित हो सकता था, तब न्यायालय दोषसिद्धि अभिलिखित करने के पूर्व महत्वपूर्ण विशिष्टियों में, उसके परिसाक्ष्य के स्वतंत्र संपुष्टि पर साधारण तौर पर जोर डालता है.....''
>
> (जोर दिया गया)

ए॰ आई॰ आर॰ 1983 एस॰ सी॰ 810 में यथा प्रकाशित **रामजी सूरज्या बनाम महाराष्ट्र राज्य** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा सं॰ 8 में अभिनिर्धारित किया है कि:-

> ''इसमें कोई संदेह नहीं है कि वहाँ भी जहां अपराध का मात्र एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हो वहां सम्बन्धित अभियुक्त के विरूद्ध दोषसिद्धि अभिलिखित की जा सकेगी वशर्ते न्यायालय जिसने ऐसे साक्षी को सुना, उसको ईमानदार एवं सच्चा मानता है। लेकिन प्रज्ञा यह अपेक्षा करती है कि एक मात्र साक्षी के परिसाक्ष्य के समर्थन में किसी दूसरे अभियोजन साक्ष्य से कुछ संपुष्टि चाही जानी चाहिए, विशेषकर वहां जहां ऐसा साक्षी मृतक का निकटवर्ती नातेदार भी होता है और

अभियुक्त वे होते है जिनके विरूद्ध किसी हेतुक या दुर्भावना का सुझाव दिया जाता है। अब वर्तमान मामले में पुलिस को प्रथम सूचना देने में अन्तर्ग्रस्त अत्यधिक विलम्ब तथा एकमात्र साक्षी अर्थात् सूरजबाई (अ॰ सा॰ 2) के साक्ष्य में अन्य अन्तर्निहित असंगतियों से सम्बन्धित साक्ष्य के सतर्कतापूर्ण विश्लेषण प्रदर्शित करता है कि उसके साक्ष्य को अभियुक्त को दोषी बनाने के लिए यथा पर्याप्त नहीं माना जा सकता है.....। (जोर दिया गया)

19. अभिलेख पर साक्ष्य को देखते हुए, अ॰ सा॰ 1-सूचनादाता के साक्ष्य पर विश्वास करना अत्यधिक असुरक्षित है, प्रथम सूचना रिपोर्ट पर भी प्रदर्श संख्या नहीं डाली गयी है। मामले के इस पहलू का विचारण न्यायालय द्वारा उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 2 एवं अ॰ सा॰ 4 अनुश्रुत साक्षी है। शेष साक्षीगण घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं हैं। अतएव, अभियोजन संदेह से परे अपराध को साबित करने में असफल हो गया है।

20. पूर्वोक्त साक्ष्य, कारणों एवं न्यायिक उद्घोषणाओं के संचयी प्रभाव के रूप में हम सत्र विचारण सं॰ 197 वर्ष 1997/ वि॰ सं॰ 4 वर्ष 2000 में विद्वान षष्ठ अपर न्यायिक आयुक्त, रांची द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 10 एवं 11 जुलाई, 2000 की दोषसिद्धि एवं दंडादेश के निर्णय एवं आदेश को एतद्द्वारा अभिखंडित एवं अपास्त कर देते हैं क्योंकि अभियोजन मृतक की हत्या के अपीलार्थियों द्वारा कारित किये गये अपराध को संदेह से परे साबित करने में असफल हो गया है। यदि संत बहादुर (क्रि॰ अपील सं॰ 269 वर्ष 2001 का अपीलार्थी) को किसी अन्य अपराध के लिए कारागार में निरूद्ध किये जाने की अपेक्षा नहीं की गयी है तो यह निर्देश दिया जाता है कि उसको परिरोध से शीघ्र निर्मोचित कर दिया जायेगा। यह दोनों अधिवक्ताओं द्वारा कथन किया गया है कि अपीलार्थी-अभियुक्त, अर्थात् छैल्लू कच्छप, जो दांडिक अपील सं॰ 339 वर्ष 2000 में अपीलार्थी है, विचारण के दौरान जमानत पर था लेकिन उसके जमानत आवेदन पत्र को दोषसिद्धि के पश्चात् नामंजूर कर दिया उल्लिखित आदेश दिनांकित 12 सितम्बर, 2000। इस प्रकार, यदि वह किसी अन्य अपराध के लिए कारागार में निरुद्ध किये जाने के लिए अपेक्षित नहीं हो तो उसको इस अपराध के सम्बन्ध में अभिरक्षा से तुरंत निर्मोचित कर दिये जाने का भी आदेश दिया जाता है। दोनों दांडिक अपीलें इस प्रकार अनुज्ञात की जाती हैं।

एम॰ वाई॰ ईकबाल, न्यायमूर्ति.—मै सहमत हूँ।

---

ekuuh; çnhi d[ekj] U;k;efr

बिहार राज्य

बनाम

शिव चरण तूरी एवं एक अन्य

सरकारी अपील सं॰ 32 वर्ष 1994 (P). 10 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 378(1) सह-पठित भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376—प्रत्यर्थियों को बलात्संग करने के आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया–दोषमुक्ति के विरूद्ध अपील दाखिल की गयी–यह विधि का एक स्थापित सिद्धान्त है कि दोषमुक्ति के विरूद्ध एक अपील में जब दो दृष्टिकोण सम्भव हो और विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया हो तब उच्च न्यायालय दोषमुक्ति के ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना है–वर्तमान मामले में अभियोजन मामला जो मात्र पीड़ित बालिका के अभिकथनों पर आधारित है, संदेहपूर्ण है–किसी स्वतंत्र साक्षी ने व्यपहरण की कहानी का समर्थन नहीं किया–बलात्संग का कोई निशान नहीं पाया गया–पीड़ित लड़की अभियुक्त के साथ विवाह करना चाहती थी

और सहमति से उन्होंने गांव छोड़ दिया था–अतएव, विचारण न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण एकमात्र संभव दृष्टिकोण है–दोषमुक्ति संपुष्टि की जाती है। (पैरा 21 एवं 22)

निर्णयज विधि.–2008(1) JLJR 244, JT 2007(3) S.C. 316—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Shekhar Sinha, For the Appellant; M/s A. Banerjee, D.C. Mishra, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री शेखर सिन्हा एवं प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ बनर्जी को सुना।

2. सत्र केस सं॰ 43 वर्ष 1993 में श्री सीता राम पाण्डेय, तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, संथाल परगना, दुमका द्वारा पारित दिनांक 27.8.1993 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरूद्ध बिहार राज्य द्वारा अपील दाखिल की गयी है।

3. दोनों प्रत्यर्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 363 के अधीन एवं धारा 366 के अधीन आरोपित किया गया था, एवं प्रत्यर्थी सं॰ 1 को पीड़ित लड़की, अर्थात् कुलवती देवी के साथ बलात्संग करने के लिए भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन आरोपित किया गया था।

4. विद्वान विचारण न्यायालय ने पेश किये गये साक्ष्य से प्रत्यर्थियों को दोषसिद्ध करने का मूल्यांकन नहीं किया है, एवं तद्नुसार, उन्हें दोषमुक्त कर दिया।

5. अभियोजन मामला 28.8.1992 को 15.00 बजे सूचनादाता, अ॰ सा॰ 12, मधूसूदन राय, पीड़ित लड़की के पिता द्वारा दिये गये फर्दबयान के आधार पर उसमें यह कथन करते हुए प्रारम्भ किया गया कि उसकी पुत्री कुलवंती देवी, उम्र लगभग 15 वर्ष, अपने भाई सनीचर राय, उम्र लगभग 5 वर्ष के साथ 13.8.1992 को 5:00 बजे सुबह घर छोड़ी और उसके पश्चात् उसको उनलोगों के बारे में कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई है। उसने अपने नातेदारों के घर लड़की एवं लड़का की तलाश की। उसने यह कथन किया कि उसकी पुत्री का अभियुक्त शिव चरण तूरी के साथ अवैध सम्बन्ध हो गया है, जो आर॰ तूरी (जो उसका मौसा है) के गाँव के घर में रहता है। उसने यह कथन किया है कि शिव चरण तूरी का मित्र, अर्थात् नकुल राय भी उसके साथ गया है। फर्दबयान में, उसने यह कथन किया कि उसकी पुत्री विवाहिता थी और विवाह के पश्चात् गत् पांच महीने से वह गाँव में रह रही है। सूचनादाता ने यह कथन किया कि शिव चरण तुरी एवं नकुल राय दोनों ठीक उसी दिन से अपने घरों से अनुपस्थित हैं जिस दिन से उसकी बेटी ने घर छोड़ा था। उसने यह कथन किया है कि शिव चरन तूरी ने उससे विवाह करने के प्रयोजनार्थ उसकी पुत्री का व्यपहरण कर लिया है और उसको एक गोपनीय स्थान में रखा है। उसने घटना के बारे में गांववालों अर्थात् श्रवण राय, ललित राय, मनेश्वर राय, सहदेव राय, बूधन राय से कथन किया है। कथित फर्दबयान के आधार पर, पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 363 एवं 366 के अधीन एक मामला दर्ज किया एवं पश्चातवर्ती तौर पर जब बालिका को बरामद किया गया एवं उसे दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन परीक्षा की गयी, तब भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 को भी जोड़ा गया, एवं अन्वेषण के पश्चात्, पुलिस ने पूर्वोक्त धाराओं के अधीन आरोप-पत्र प्रस्तुत किया। संज्ञान के पश्चात् मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया, क्योंकि मामला अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था।

6. यह प्रतीत होता है कि विचारण के अनुक्रम में, अभियोजन ने 13 अ॰ सा॰ की परीक्षा की है।

7. अ॰ सा॰ 1, डॉक्टर पुष्पलता टूडू है, जिसने 29.8.1992 को पीड़ित लड़की का परीक्षण किया और एक्स-रे एवं अन्य परीक्षण के पश्चात्, उसने 16-17 वर्षों के बीच पीड़ित लड़की की आयु का अभिनिश्चय किया। उसने पीड़ित लड़की के शरीर पर चोट का कोई निशान नहीं पाया। उसकी योनिच्छद पहले से ही फटी हुई थी एवं वह मैथुन किया करती थी। उसकी योनि-स्राव में कोई शुक्राणु नहीं पाया गया था और डॉक्टर ने यह राय दिया कि बलात्संग के बारे में कोई राय नहीं दी जा सकती।

8. अ॰ सा॰ 2, पीड़ित लड़की, कुलवती देवी है। उसने यह कथन किया है कि घटना की तारीख पर, अर्थात् वृहस्पतिवार को 10:00 बजे पूर्वान्ह, जब वह अपने भाई सनीचर राय के साथ खड़ी थी तभी, शिव चरन तुरी बलपुर्वक उसको गुहियाजोरी ले गया। वह वहां जाने को तैयार नहीं थी। कटार की नोंक पर उसने उसको धमकाया। उसने यह कथन किया है कि उसके भाई की आयु लगभग 7

वर्ष है। गुहियाजोरी से वह उसको कथीकुन्ड साइकिल पर ले गया और उसको मांझी बाबू के घर में रखा, जहां वह पांच दिनों तक रूकी, एवं सभी पांचो दिन उसने मांझी बाबू के घर में उसके साथ बलात्संग किया। उसने यह कथन किया कि नकुल भी वहां गया था, लेकिन उसने उसके साथ कभी भी बलात्संग नहीं किया। काथीकुन्ड में 5 दिनों तक उसको रखने के पश्चात् शिव चरन उसको जमुनी गाँव ले गया और उसको 5 दिन तक जंगल में रखा, वहां भी उसने उसके साथ बलात्संग किया। जमुनी से उसको जंगल में आमतल्ला ले जाया गया, वहां भी उसके साथ 5 दिनों तक अभियुक्त शिव चरन द्वारा बलात्संग किया गया। तत्पश्चात् वह उसको माकरो में उसके मामा के घर ले आया। उसने अपने बड़े भाई और भाभी को घटना के बारे में बताया। बाद में उसके माता एवं पिता उसकी तलाश में माकरो आये तो वह उनके साथ थाने गयी जहां से उसको दुमका में डॉक्टर को भेजा गया। उसने न्यायालय में दोनों अभियुक्तों को पहचान लिया। उसकी विस्तार से प्रति-परीक्षा की गयी और उसने अपनी प्रति-परीक्षा में पैरा 2 में यह कथन किया कि वह अभियुक्त शिव चरन को पहले से नहीं जानती थी क्योंकि वह उसके गांव का निवासी नहीं था, लेकिन वर्त्तमान में वह अपने मौसा के घर में रह रहा था लेकिन वह उसके मौसा एवं मौसी के नाम को नहीं जानती है। उसके गाँव में 25 घर थे एवं शिव चरन के मौसा का घर उसके घर से दो घर के बाद है। अपनी प्रति-परीक्षण में, पैरा 3 में उसने यह कथन किया है कि जब शिव चरन उसको बलात ले गया तब वह बस अड्डे पर खड़ी थी एवं उसने यह भी कथन किया कि काथीकुन्ड बस अड्डे के पूरब एक हटिया है और संपूर्ण काथीकुन्ड गांव हटिया के चारों ओर है। उसने अपनी प्रति-परीक्षा में यह भी कथन किया कि जमुनी में 5 दिन तक, जंगल में उसको अभियुक्त द्वारा कोई भोजन नहीं दिया गया और आमतल्ला में, जहां उसको 5 दिनों तक रखा गया वहां भी उसको कोई भोजन नहीं दिया गया। तत्पश्चात् उसको माकरो में उसके मामा के घर भेजा गया और अभियुक्त ने छोड़ दिया। इन दिनों तक, उसने यह कथन किया है कि वह एक ही कपड़ा पहनी हुई थी और उसने मामले को थाने में दर्ज किये जाने के पश्चात् कपड़ा बदला। उसने भारसाधक अधिकारी को कपड़े दिखाया, लेकिन इसको उसके द्वारा अभिगृहीत नहीं किया गया।

9. अ॰ सा॰ 3 बीबिया देवी, पीड़ित लड़की की माता है। उसने यह कथन किया है कि घटना की तारीख को जो पिछले सावन के महीने में बृहस्पतिवार को था, उसकी पुत्री कुलवती देवी एवं उसके पुत्र सनिचर को माकरो में उसके अपने घर भेजा गया था। 3 दिन पश्चात् वह माकरो गयी लेकिन उसकी पुत्री वहाँ मौजूद नहीं थी, तब उसने अपनी पुत्री की तलाश की, और 9 दिनों पश्चात् उसने अपनी पुत्री को माकरो में पाया और उसने उससे यह कहा कि उसका शिव चरन द्वारा व्यपहरण किया गया था, और अभियुक्त शिव चरन ने उसके साथ बलात्संग किया। उसने बालिका को थाना लाया जहां मामले को दर्ज किया गया और उसकी एक डॉक्टर द्वारा परीक्षा की गयी। उसने न्यायालय में दोनों अभियुक्तों को पहचान लिया। अपनी प्रति-परीक्षा में, उसने यह कथन किया कि वह अपनी पुत्री एवं पुत्र के साथ बस अड्डे नहीं गयी है।

10. अ॰ सा॰ 4 मनेश्वर राय, वह एक स्वतंत्र साक्षी है उसको प्रति-परीक्षा के लिए प्रस्तुत किया गया और उसने कोई कथन नहीं दिया है। लेकिन, अपनी प्रति-परीक्षा में, उसने यह कथन किया है कि काथीकुंड बस अड्डे के पीछे दुकानें हैं और दुकान के पीछे थाना भी है।

11. अ॰ सा॰ 5 ललित राय को भी प्रति-परीक्षा के लिए टेंडर किया गया और अपनी प्रति-परीक्षा में, उसने यह कथन किया है कि वह कुलवती देवी का चाचा है।

12. अ॰ सा॰ 6, सनीचर राय, भाई है जो हमेशा पीड़ित लड़की के साथ रहा को भी टेंडर किया गया है। और उससे कुछ भी नहीं पूछा गया है।

13. अ॰ सा॰ 7 श्रवण राय, सह-ग्रामवासी है और उसने मात्र यह कथन किया है कि उसने पिछले वर्ष सावन में यह सुना है कि शिव चरन कुलवती देवी के साथ भाग गया था और 15 दिनों के पश्चात् गॉव वापस लौटा था। उसे कुलवती देवी से कोई बात नहीं हुयी थी।

14. अ॰ सा॰ 8 बुधन राय भी एक सह-ग्रामवासी है और उसने यह कथन किया है कि शिव चरन कुलवती के साथ चुपके से भाग गया और वह 15 दिनों पश्चात् लौटी। उसने यह भी सुना है कि शिव चरन ने 15 दिनों तक उसके साथ बलात्संग किया।

15. अ॰ सा॰ 9 सहदेव राय है, को भी टेंडर किया गया।

16. अ॰ सा॰ 10 रेबनी देवी है, उसने यह कथन किया कि वह पीड़ित बालिका के मामा के घर में रूकी थी और उसने यह कथन किया कि पिछले वर्ष सावन में कुलवती के माता-पिता कुलवती की तलाश में आये लेकिन वह घर में मौजूद नहीं थी तब उसके माता-पिता चले गये और कुछ समय पश्चात् कुलवती देवी और उसके छोटे भाई उसके घर आये लेकिन कुलवती देवी ने उससे कुछ नहीं कहा, तत्पश्चात् उसके माता-पिता आये और वह उनके साथ चली गयी।

17. अ॰ सा॰ 11 आनन्द राय है। उसको प्रति-परीक्षा के लिए टेंडर किया गया था और उसने कुछ भी कथन नहीं किया है।

18. अ॰ सा॰ 12, पीड़ित लड़की का पिता सूचनादाता, उसने यह कथन किया है कि पिछले सावन में बृहस्पतिवार को, उसकी पुत्री कुलवती देवी अपने भाई सनीचर के साथ अपने मामा के घर जा रही थी। वह अपने मामा के घर में कर्मा त्योहार मनाने जा रही थी। ठीक अगले दिन, वह उसे लाने के लिए उसके मामा के घर गया लेकिन वह वहां मौजूद नहीं थी। तब वह अपने गाँव वापस चला आया और उसकी तलाश करने लगा एवं तब वह पुलिस थाने गया। पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी ने उसकी पुत्री का तलाश करने के लिए उससे कहा। उसने उसकी तलाश की लेकिन उसके बारे में उसको कोई सुराग नहीं मिला, तब उसका कथन पुलिस थाने पर अभिलिखित किया गया। उसने फर्दबयान में अपने कथन की पहचान की। उसने यह कथन किया है कि 8-10 दिनों बाद, उसकी पुत्री ने उससे यह कहा कि शिव चरन ने उसकी पुत्री का व्यपहरण किया और उसके साथ बलात्संग किया। उसने न्यायालय में अभियुक्त की शिनाख्त की। अपनी प्रति-परीक्षा में, उसने यह कथन किया है कि उसने अन्वेषण अधिकारी के समक्ष यह कथन नहीं किया है कि शिव चरन तूरी का उसकी पुत्री के साथ अवैध सम्बन्ध हो गया है।

19. अ॰ सा॰ 13, अन्वेषण अधिकारी, महेन्द्र प्रसाद गुप्ता है, उसने फर्दबयान एवं औपचारिक प्र॰ सू॰ रि॰ को भी साबित किया है। उसने इस तथ्य को भी साबित किया है कि लड़की को चिकित्सीय परीक्षण हेतु डॉक्टर को भेजा गया और चिकित्सीय रिपोर्ट और उच्चतर प्राधिकारी से पर्यवेक्षण प्राप्त करने के पश्चात, उसने आरोप-पत्र प्रस्तुत किया। अपनी प्रति-परीक्षा में, उसने यह कथन किया है कि उसने या तो गाँव जमुनी या गाँव आमतल्ला के साक्षियों में से किसी की परीक्षा नहीं की और न हीं उसने गाँव माकरो में पीड़िता के मामा के घर से किसी व्यक्ति की परीक्षा की।

20. अतएव, अभियोजन द्वारा यथा पेश किये गये संपूर्ण साक्ष्य की जांच करने के पश्चात्, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि आरोपों को साबित करने के लिए, अभियोजन ने मुख्य रूप से अ॰ सा॰ 2, पीड़ित लड़की, कुलवती देवी, अ॰ सा॰ 3 बीबिया देवी, पीड़ित लड़की की माता, अ॰ सा॰-10, उसके मामा के घर से रेबनी देवी तथा उसके पिता सूचनादाता, अ॰ सा॰-12 की परीक्षा किया। सभी अन्य साक्षीगण, जैसे ऊपर चर्चा की गयी है, या तो टेंडर किए गए हैं या अनुश्रुत साक्षी हैं और वे अभियोजन के मामले को साबित करने के लिए सुसंगत नहीं है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गयी है, मै इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि सूचनादाता, अ॰ सा॰ 12, जिसने अन्वेषण अधिकारी के समक्ष फर्दबयान में कहा है कि अभियुक्त शिव चरन तूरी का उसकी पुत्री कुलवती देवी के साथ अवैध सम्बन्ध था एवं उन्हें यह आशंका है कि वह अपने मित्र के साथ विवाह करने के प्रयोजनार्थ उसकी पुत्री को भगा ले गया है। जब उसकी अ॰ सा॰ 12 के तौर पर न्यायालय में परीक्षा की गयी तब उसने स्पष्टरूप से इस बात का प्रत्याख्यान किया कि उसने दरोगा के समक्ष यह कथन किया कि शिव चरन का उसकी पुत्री के साथ अवैध सम्बन्ध था। उसने यह भी स्वीकार किया कि प्र॰ सू॰ रि॰ में उसने यह कभी भी नहीं कथन किया कि उनकी पुत्री अपने भाई सनीचर के साथ अपने घर से अपने मामा के घर गयी थी। उसके अनुसार, उसके अपनी पुत्री के व्यपहरण या बलात्संग के बारे में जानकारी कुलवती देवी से हुई, कुलवती देवी अ॰ सा॰ 2 ने न्यायालय में अपनी परीक्षा में यह कथन किया कि उसको बलपूर्वक बस स्टैण्ड से ले जाया गया था, लेकिन अपनी प्रति-परीक्षा में, उसने यह स्वीकार किया कि वहाँ बस स्टैण्ड के पास बाजार और दुकानें है जहां से शिव चरन के बारे में अभिकथन किया गया है कि वह उसको बलपूर्वक ले गया है। दुकान या बाजार से साक्षियों में से किसी की या तो अभियोजन द्वारा या अन्वेषण अधिकारी द्वारा परीक्षा नहीं की गयी थी। पीड़ित लड़की ने यह कथन किया है कि काथीकुन्ड में मांझी बाबू के घर में लगातार 5 दिनों तक उसके साथ अभियुक्त, शिव चरण तूरी द्वारा बलात्संग किया गया

था। तत्पश्चात्, 5 दिन तक उसके साथ जमुनी गाँव के जंगल में बलात्संग किया गया, तत्पश्चात्, 5 दिनों तक उसके साथ गाँव आमतल्ला के जंगल में बलात्संग किया गया था। परन्तु बलात्संग का कोई निशान डॉक्टर अ॰ सा॰ 1 द्वारा नहीं पाया गया और न ही कोई बाह्य चोटें उसके शरीर पर पायी गयी। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अभिलिखित कथन से यह भी प्रतीत होता है कि वह अभियुक्त को पहले से ही जानती थी। अभियुक्त उसके साथ विवाह करना चाहता था। उसने यह कथन किया है कि उसने उसके साथ विवाह करने से इनकार कर दिया क्योंकि वह विवाहिता थी, लेकिन अब उसके पति को इस तथ्य की जानकारी हो गयी है कि वह अभियुक्त शिव चरण तूरी के साथ रूकी थी, इसलिए अब वह भी उसके साथ विवाह करने को तैयार है। अतएव, साक्ष्यों से मैं इस निष्कर्ष पर भी पहुँचता हूँ कि अभियुक्त द्वारा बलात्संग या व्यपहरण का मामला युक्तियुक्त संदेह से परे साबित नहीं किया गया है। यह प्रतीत होता है कि पीड़ित लड़की जिसको अभियुक्त उसके साथ जाने से पूर्व जानता था और यहां और वहां उसके साथ 15 दिनों तक रूकने के पश्चात् वह अपने मामा के घर आयी। अपनी परीक्षा में, उसने यह कथन किया है कि उसने अपने भाई और भाभी से अपने मामा के घर में तथ्य के बारे में कथन किया है। लेकिन, अ॰ सा॰ 10, रेबनी देवी जो मात्र साक्षी है, मामा के घर से परीक्षण किया गया, ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि जब पीड़ित कुलवती देवी अपने भाई सनीचर राय के साथ उसके घर आयी, तब उसने ऐसा कुछ नहीं कहा जो अभियोजन मामले में संदेह उत्पन्न करता है और इस तथ्य का समर्थन करता है कि वह अपनी स्वयं की इच्छा से अभियुक्त के साथ गयी और यही कारण है कि उसने अपने मामा के घर में कुछ कथन नहीं किया है और मौन होकर अपने घर माता-पिता के साथ आयी जिसके बाद यह मामला दाखिल किया गया था।

21. विधि का सुस्थापित सिद्धान्त यह है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध एक अपील में जब दो मत संभव हो और विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया है, तब उच्च न्यायालय दोषमुक्ति के ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा। प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने **सुमन सूद उर्फ कमल जीत कौर एवं दया सिंह लाहोरियां उर्फ राजीव सूदन उर्फ विनय कुमार बनाम राजस्थान राज्य** के मामले में 2008(1) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ पृष्ठ 244(सुप्रीम कोर्ट) में प्रकाशित एक मामले में स्थापित सिद्धान्त पर भी विश्वास किया है। उक्त निर्णय के पैरा 69 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जे॰ टी॰ 2007(3) एस॰ सी॰ 316** में, प्रकाशित **चन्द्रप्पा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले में माननीय न्यायालय के पूर्व विनिश्चिय पर विश्वास करते हुए एक निष्कर्ष दिया है:-

> ''एक अपीलीय न्यायालय को, यद्यपि, इस बात को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए कि दोषमुक्ति के मामले में, अभियुक्त के पक्ष में दोहरी उपधारणा होती है। प्रथमत:, दांडिक विधिशास्त्र के मूल सिद्धान्त के अधीन उसको उपलब्ध निर्दोषिता की उपधारणा की प्रत्येक व्यक्ति तब निर्दोष होना उपधारित किया जाता है जबतक उसको विधि की एक सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी साबित नहीं कर दिया जाएगा। द्वितीयत:, अभियुक्त उसकी दोषमुक्ति के प्राप्त हो जाने पर, उसकी निर्दोषिता के उपधारणा की विचारण न्यायालय द्वारा और पुष्टि कर दी जाती है, पुन: अभिपुष्टि कर दिया जाता है एवं उसको मजबूती प्रदान की जाती है।''

22. वर्तमान मामले में भी मैं यह पाता हूँ कि विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया विचार मात्र संभव है और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, चूंकि अभियोजन मामला जो पीड़ित लड़की, कुलवती देवी के कथन पर मात्र आधारित है, संदेहपूर्ण है एवं किसी स्वतंत्र साक्षियों ने या तो उसके मामा के घर से या किसी अन्य स्वतंत्र साक्षी ने इस तथ्य का कथन नहीं किया है कि उसका प्रत्यर्थियों द्वारा बलपूर्वक व्यपहरण किया गया, बलात्संग का कोई भी निशान डॉक्टर द्वारा नहीं पाया गया और न ही कोई चोटें पायी गयी एवं दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन उसका कथन इस मत का समर्थन करने के लिए भी प्रेरित करता है कि वह अभियुक्त शिव चरण के साथ विवाह करना चाहती थी एवं शिवचरण भी उससे विवाह करना चाहता था और सहमति से वे गाँव छोड़े थे, तद्नुसार, विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया विचार मात्र संभव मत है। जैसा ऊपर चर्चा की गयी है, मुझे अपील में कोई गुणागुण नहीं मिलता है और यह तद्नुसार, किसी खर्चे के बिना खारिज की जाती है।

ekuuh; Mhñ thñ vkjñ iVuk;d] U;k;efr

तारा देवी केलंका एवं एक अन्य

बनाम

भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5150 वर्ष 2008. 19 फरवरी, 2009 को विनिश्चित।

प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002—धारा 13—व्यादेश–नीलामी विक्रय पर याची की सम्पत्तियों को प्रस्तुत करने से बैंक को अवरूद्ध करने तथा याची द्वारा किये गये चेकों को भुनाने के व्यादेश के आदेश हेतु याची की प्रार्थना को विचारण न्यायालय द्वारा नामंजूर कर दिया गया–तथापि, विचारण न्यायालय ने वाद के लंबित रहने के दौरान, उसके कब्जे एवं अभिरक्षा के अधीन वाद सम्पत्ति का व्ययन करने से प्रतिवादी सं॰ 4 को अवरूद्ध कर दिया है–अभिनिर्धारित, बैंक द्वारा प्राप्त की गयी आस्तियों का कब्जा लेने का मात्र कार्य व्यादेश के आदेश का उल्लंघन करने की कोटि में नहीं आता है–बैंक कब्जा ग्रहण करने के इसके कार्य के बारे में विचारण न्यायालय को सूचित करने तथा इसके परादेय देयों की वसूली करने के लिए प्रतिवादीगण की प्रतिभूत आस्तियों का विक्रय करने के लिए कार्यवाही के पूर्व विचारण न्यायालय से सम्यक् अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए बाध्य होगा। (पैरा 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Amit Kumar Das, For the Petitioners; M/s Rajesh Kumar, Amit Kumar, For the Respondents.

आदेश

याचीगण ने इस रिट आवेदन में अभिधान (एम॰) वाद सं॰ 87 वर्ष 1993 में उप–न्यायाधीश–II, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 9.9.2008 के आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा नीलामी विक्रय पर याची की सम्पत्तियों को प्रस्तुत करने से तथा याचीगण से प्राप्त किये गये चेकों को भुनाने के लिए प्रत्यर्थी सं॰–1 को अवरूद्ध करने वाले व्यादेश के एक आदेश के लिए याचियों की प्रार्थना को नामंजूर कर दिया गया था।

2. मामले के तथ्य संकीर्ण दायरे में है एवं संक्षिप्त तौर पर निम्नलिखित रूप में कथित है:–

प्रत्यर्थी सं॰–1 अर्थात स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया ने प्रतिवादियों से 1,41,384,92/- रुपये की एक रकम की वसूली के लिए एक डिक्री हेतु अवर न्यायालय के समक्ष 22.5.1993 को वर्तमान याचियों/प्रतिवादियों के विरूद्ध एक वाद दाखिल किया था। दावा वादी–बैंक से प्रतिवादियों द्वारा उधारग्रहीत ऋण से सम्बन्धित था और उसको प्रतिवादियों से वादी द्वारा निर्धारित परादेय देयों के रूप में वसूला जाना चाहा गया।

याचीगण/प्रतिवादीगण वाद में उपस्थित हो चुके थे और वादी के दावे का प्रत्याख्यान करने वाले एवं उसको विवादित बनाने वाले अपने लिखित कथन दाखिल कर चुके थे। प्रतिवादी सं॰ 3 एवं 4 ने 4,93,045.19/- रुपये की एक राशि के लिए पूर्वोक्त वाद में वादी–बैंक के विरूद्ध एक प्रतिदावा दाखिल किया।

वाद में कार्यवाहियां अंतिम बहस के प्रक्रम पर लगभग पहुँच गयी थी, लेकिन उसके पूर्व, प्रत्यर्थी–बैंक ने प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (प्रतिभूतिकरण अधिनियम) के प्रावधानों के अधीन सर्वप्रथम परादेय देयों का संदाय करने के लिए प्रतिवादियों को एक मांग नोटिस निर्गत करके और उसके 60 दिनों के पश्चात्, प्रतिवादीगण को दिनांकित 26.6.2008 एक नोटिस जारी करके सूचित किया कि बैंक ने प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 13(4) के प्रावधानों के अधीन, इसके देयों की वसूली करने के लिए देयों के विरूद्ध प्राप्त की गयी सम्पत्तियों का विक्रय करने के एक आशय से उसपर कब्जा ग्रहण कर लिया था।

वाद के लम्बित रहने के दौरान, पक्षकारों द्वारा अभिव्यक्त की गयी आशंकाओं पर विचार करके विद्वान अवर न्यायालय ने वादगत सम्पत्ति के उस भाग को किसी भी रीति में बेचने या अंतरित करने से प्रतिवादी सं॰ 4 को अवरूद्ध करते हुए 25.5.1999 को आदेश पारित किया जो उसके कब्जे एवं अभिरक्षा में था।

प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन दिनांकित 26.6.2008 को नोटिस की प्राप्ति पर, याचिगण/प्रतिवादीगण ने 25.5.1999 को विचारण न्यायालय द्वारा यथा पारित व्यादेश के आदेश में हस्तक्षेप करने से वादी–बैंक को अवरूद्ध करने वाले व्यादेश के एक आदेश हेतु प्रार्थना करने वाली एक याचिका दाखिल की। ऐसी प्रार्थना इस आधार पर की गयी कि वादगत सम्पत्ति का कब्जा प्राप्त करने की कार्यवाही द्वारा एवं इसके तात्पर्यित देयों की वसूली करने के लिए सम्पत्ति को बेचने के आशय से वादी–बैंक वास्तव में वादगत सम्पत्ति की प्रास्थिति को परिवर्तित करने का प्रस्ताव कर रहा था और वादी–बैंक की ओर से ऐसा कार्य वादी द्वारा पारित किये गये व्यादेश के आदेश के उल्लंघन की कोटि में आयेगा।

प्रतिवादियों की प्रार्थना का इस आधार पर वादी–बैंक द्वारा प्रतिवाद किया गया कि वादगत सम्पत्ति पर कब्जा लेने का वादी का कार्य प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन इसके प्राधिकार के विधिपूर्ण प्रयोग में हुआ था और आगे, यह कि वादगत सम्पत्ति का अंतरण न्यायालय की अभिरक्षा में किया गया और सभी व्यवहारिक प्रयोजनों के लिए, प्रतिवादी सं॰ 4 की अभिरक्षा में रहा था और प्रतिवादी द्वारा लिये गये ऋण की शर्तों के निबन्धनों में, वादी–बैंक प्रतिवादियों से इसके परादेय की वसूली करने के लिए वादगत सम्पत्ति पर कब्जा लेने तथा उसका विक्रय करने का प्रत्येक अधिकार रखता था और यदि वादी–बैंक के विरूद्ध व्यादेश के आदेश के लिए प्रतिवादियों की प्रार्थना अनुज्ञात की जाती है, तो यह प्रतिभूतिकरण अधिनियम के अधीन बैंक की शक्तियों में हस्तक्षेप करने की कोटि में आयेगा।

3. विद्वान अवर न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश के माध्यम से इस आधार पर व्यादेश हेतु प्रतिवादियों की प्रार्थना को नामंजूर कर दिया था कि इसके पास अधिनियम की धारा 34 के उपबंधों के अधीन निषेध के अनुसार प्रतिभूतिकरण अधिनियम के अधीन वादी–बैंक द्वारा की गयी कार्यवाही के विरूद्ध दाखिल की गयी याचिका ग्रहण करने की कोई अधिकारिता नहीं है।

4. याचीगण/प्रतिवादीगण ने विद्वान अवर न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश को चुनौती दी है। आक्षेपित आदेश की आलोचना करते हुए, श्री अमित कुमार दास, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता यह तर्क करेंगे कि चूँकि वादी–बैंक ने स्वीकार्यत: ऋण वसूली अधिकरण या अपीलीय अधिकरण के समक्ष कोई कार्यवाही जो कुछ भी, प्रारम्भ नहीं किया था, इसलिए विद्वान अवर न्यायालय व्यादेश के लिए याची की प्रार्थना को नामंजूर करने के लिए प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 34 के उपबंधों पर भरोसा नहीं करना था। विद्वान अधिवक्ता आगे यह तर्क करते हैं कि वाद के लम्बित रहने के दौरान, व्यादेश का एक आदेश प्रत्यर्थी सं॰ 4 के कब्जे की वादगत सम्पति का व्ययन करने से उसको रोकते हुए विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, ऐसा आदेश सम्पत्ति के विधिक अभिरक्षा में होने के कारण वसीयत अभिरक्षा की कोटि में आता है और इसलिए, सम्पत्ति का कब्जा ग्रहण करने तथा उसका व्ययन करने के लिए वादी/प्रत्यर्थी सं॰–1 की ओर से कब्जा लेने के लिए किया गया प्रयास न्यायालय द्वारा पारित किये गये व्यादेश के आदेश के मात्र उल्लंघन की कोटि में नहीं आयेगा, अपितु यह वादी– बैंक के विरूद्ध वाद में उनके द्वारा उठाए गये याचीगण/प्रतिवादीगण के प्रतिदावे को निष्फल करने की भी कोटि में आयेगा। विद्वान अधिवक्ता तत्पश्चात् पक्षकारों के विरोधी अभिवचनों के आधार पर वाद में उठाये गये अनेक विवाद्यकों को निर्दिष्ट करना चाहेंगे और इस बात पर जोर देने का प्रयास करेंगे कि याचीगण/प्रतिवादीगण के विरूद्ध वादी–बैंक के वाद को पूर्णतया गलत समझा गया है और पोषणीय नहीं है एवं वादी–बैंक को वाद में यथा दावाकृत प्रतिवादियों से धन की किसी राशि को वसूलने का कोई प्राधिकार नहीं है।

5. इस रिट आवेदन में याचीगण द्वारा उठाये गये प्रश्न हैं:-

(i) क्या मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, विद्वान अवर न्यायालय ने वादी-बैंक के विरूद्ध व्यादेश के आदेश के लिए याचीगण/प्रतिवादीगण के प्रार्थना को नामंजूर करने के लिए प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 34 के उपबंधो पर भरोसा कर सकता था?

(ii) क्या प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 13(4) के उपबंधों के अधीन, प्रतिवादियों से इसके परादेय देयों की वसूली करने के प्रयोजनार्थ वादगत सम्पत्तियों का कब्जा ग्रहण करने की कार्यवाही में प्रत्यर्थी सं० 1 का कार्य वाद में विचारण न्यायालय द्वारा पारित व्यादेश के आदेश के उल्लंघन की कोटि में आयेगा?

6. स्वीकार्यत:, मामले के तथ्यों से, याचीगण/प्रतिवादीगण ने ऋण के रूप में प्रत्यर्थी-बैंक से धन उधार लिया था। उधार दिये गये ऋण के विरूद्ध, प्रतिवादीगण/याचीगण की कतिपय विनिर्दिष्ट सम्पत्तियां बैंक के पक्ष में सम्पत्तियों पर प्रभार का सृजन कर प्राप्त किया गया था। ऋण के करार के निबंधनों के अधीन, बैंक के पास उधार-ग्रहीता से प्राप्त की गयी आस्तियों पर कब्जा ग्रहण करके तथा उसका विक्रय करके उधार-ग्रहीता से इसके देयों को वसूलने का अधिकार नहीं था।

इस आधार पर कि प्रतिवादियों/उधार-ग्रहीताओं ने बारम्बार डिमांड नोटिस (मांग नोटिस) के दिये जाने के बावजूद अपने दायित्वों का निर्वहन नहीं किया था, बैंक ने सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन प्रतिवादियों से परादेय देयों की वसूली करने के लिए 22.5.1993 को अवर न्यायालय के समक्ष एक वाद दाखिल किया था।

वाद के लंबित रहने के दौरान, उसके कब्जे एवं अभिरक्षा के अधीन वादगत सम्पत्ति का व्ययन करने से प्रतिवादी सं०-4 को अवरूद्ध करने वाला व्यादेश का एक आदेश विचारण न्यायालय द्वारा पारित किया गया था।

वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण और प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम (प्रतिभूतिकरण अधिनियम) वर्ष 2002 में प्रवर्तित हुआ। अधिनियम के अधीन, कानूनी उपबंधों द्वारा शासित किये जाने वाले पक्षकारों के बीच संविदा के अध्यधीन, प्रतिभूत लेनदारों द्वारा ऋणों की वसूली से सम्बन्धित विशेष उपबंध सृजित किये गये थे। अतएव, यह प्रतीत होगा कि चयन का एक तत्व है जो इसके देयों की वसूली करने के विभिन्न ढंगों एवं फोरमों के बीच चुनने के लिए प्रतिभूत लेनदार को समर्थ बनायेगा।

प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 13 न्यायालय या अधिकरण के हस्तक्षेप के बिना प्रतिभूति हित को लागू करने के लिए प्रतिभूत लेनदार को एक अधिकार प्रदान करता है। अधिनियम की धारा 13 की उप-धारा 2 एवं उप-धारा 4 के प्रावधान उस प्रक्रिया को निर्धारित करते हैं जिसके अनुसार, प्रतिभूत लेनदार प्रतिभूत हित को लागू करने के लिए कार्यवाही कर सकेगा। अधिनियम की धारा 13 की उप-धारा 4 प्रतिभूत आस्तियों की वसूली के लिए पट्टा समनुदेशन या विक्रय के माध्यम से अंतरण के अधिकार को सम्मिलित कर उधारग्रहीताओं की प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने में प्रतिभूत लेनदार को समर्थ बनाता है।

अधिनियम की धारा 34 यह अधिकथित करती है कि कोई भी सिविल न्यायालय ऐसे किसी भी मुद्दे की बाबत किसी वाद या कार्यवाही को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं रखेगा जिसको अवधारित करने के लिए अधिनियम द्वारा या उसके अधीन एक ऋण वसूली अधिकरण या एक अपीलीय अधिकरण को सशक्त किया गया है और बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 के अधीन या इस अधिनियम द्वारा या के अधीन प्रदत्त की गयी किसी शक्ति के अनुसरण में की जाने वाली या ग्रहण की जाने वाली किसी भी कार्यवाही की बाबत कोई व्यादेश किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा मंजूर नहीं किया जायेगा।

जो तथ्य निर्विवादित हैं, श्रेणीकृत ढंग से यह घोषणा करते हैं कि वादी-बैंक ने उधारदाताओं की प्रतिभूत अस्तियों पर कब्जा ग्रहण करने के लिए अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन एक नोटिस देने

के उपरांत अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन प्रतिवादियों/उधारग्रहणकर्ताओं को नोटिस निर्गत करने के प्रारम्भिक चरण का आश्रय लेकर के प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 13 के उपबंधों के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करने की कार्यवाही की है। ऐसी परिस्थितियों के अधीन, जैसा कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा उचित रूप से ही अभिनिर्धारण किया गया, अधिनियम की धारा 34 के उपबंध किसी भी ऐसे आदेश को पारित करने से अवर न्यायालय को प्रतिषेधित करेगा जो प्रतिभूतिकरण अधिनियम के अधीन बैंक को प्रदत्त की गयी शक्तियों के अनुसरण में उधारग्रहीत से इसके परादेय देयों की वसूली करने के लिए कोई भी कार्यवाही करने से बैंक को अवरूद्ध करने या व्यादेशित करने की कोटि में आयेगा। यह प्रथम प्रश्न का उत्तर देता है।

7. द्वितीय प्रश्न पर आने पर, याची का यह तर्क कि वाद के लम्बित रहने के दौरान प्रतिवादी सं॰ 4 के कब्जे वाली वादगत सम्पत्ति का व्ययन करने से उसको अवरूद्ध करने वाले व्यादेश का आदेश न्यायालय की अभिरक्षा के अधीन आने वाली सम्पत्ति की कोटि में आता है। व्यादेश के आदेश के कोरे पठन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि विचारण न्यायालय ने उसके कब्जे एवं अभिरक्षा में वादगत सम्पत्ति का अन्य संक्रमण करने से प्रतिवादी सं॰-4 को मात्र अवरूद्ध किया था। आदेश और अधिक यह उपदर्शित नहीं करता है या यह सुझाव नहीं देता है कि न्यायालय ने इसकी अभिरक्षा के अधीन वादगत सम्पत्ति का कब्जा लेने के लिए एतद् द्वारा उपदर्शित किया था। सम्पत्ति का कब्जा एवं अभिरक्षा प्रतिवादी संख्या 4 के साथ ही यद्यपि सम्पत्ति को अन्य संक्रमित करने का अधिकार मात्र वाद को लम्बित रहने तक ही निर्बन्धित किया गया है। ऐसी परिस्थितियों के अधीन, क्योंकि सम्पत्ति प्रतिवादी सं॰-4 के कब्जे एवं अभिरक्षा में रही है, इसलिए वादी-बैंक को प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 13(4) के उपबंधों के अधीन अपने अधिकार के प्रयोग में सम्पत्ति पर कब्जा लेने का प्राधिकार था। अवर न्यायालय के समक्ष वाद के लम्बित रहने के तथ्य पर विचार करते हुए, बैंक को इसकी परादेय देयों की वसूली करने के लिए प्रतिवादियों की प्रतिभूत आस्तियों का विक्रय करने के लिए कार्यवाही के पूर्व विचारण न्यायालय से कब्जा ग्रहण करने तथा सम्यक् अनुज्ञा प्राप्त करने के कार्य के बारे में विचारण न्यायालय को सूचित करने के लिए बाध्य होगा।

वादी-बैंक द्वारा मात्र प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा ग्रहण करने का कार्य तद्द्वारा विचारण न्यायालय के व्यादेश के आदेश के उल्लंघन की कोटि में नहीं आता है। द्वितीय प्रश्न का उत्तर तद्नुसार दिया जाता है।

8. ऊपर की गयी चर्चा के प्रकाश में, मुझे इस रिट आवेदन में कोई गुणागुण नहीं मिलता है। तद्नुसार, यह रिट आवेदन खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

हरिहर यादव एवं अन्य

बनाम

मुख्य सचिव के माध्यम से झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2935 वर्ष 2003. 12 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000—धारा 65—वेतन भुगतान का दायित्व–भालको, अधिनियम की धारा 65 के निबन्धनों में झालको हो गया है–दो पृथक कम्पनियां नहीं हो सकती है–भालको एवं झालको दोनों के कर्मचारीगण उस तारीख से वेतन के अपने बकाया तथा आमेलन के हकदार हैं जब उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्देश के अनुसरण में आवेदन प्रस्तुत किया है। (पैरा 13 से 15)

अधिवक्तागण.–M/s Shekhar Prasad Sinha, Priya Hingorani, For the Petitioners; Dr. S.K. Verma, For the State; Mr. Anil Kumar Sinha, For JHALCO; Mr. S.P. Roy, For BHALCO.

आदेश

वर्ष 1975 में, बिहार राज्य ने छोटानागपुर एवं संथाल परगना के पहाड़ी क्षेत्र के छोटे एवं मझोले कृषकों को तत्कालीन बिहार के जिलों में से कतिपय के लिए सिंचाई की सुविधाएं प्रदान करने की दृष्टि से 10 करोड़ की शेयर पूंजी के साथ कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन ''भालको'' के रूप में सामान्य रूप में ज्ञात एक निगम अर्थात् बिहार हिल एरिया लिफ्ट ईरीगेशन कॉर्पोरेशन को स्थापित किया। ये सभी याचीगण भालको के स्थायी कर्मचारी थे। जब बिहार राज्य का विभाजन 15.11.2000, से प्रभावी बिहार पुनर्गठन अधिनियम द्वारा वर्तमान बिहार राज्य एवं झारखंड राज्य में विभाजन हुआ तब झारखंड राज्य ने बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 85 के अधीन अपनी शक्तियों के प्रयोग करके बिहार हिल एरिया लिफ्ट ईरीगेशन कॉर्पोरेशन के सभी नियमों तथा उप-नियमों को अंगीकार किया और इन अनुबन्धों के साथ 'झालको' के रूप में झारखंड हिल एरिया लिफ्ट ईरीगेशन कॉर्पोरेशन, रांची के रूप में इसको पुनः नामित किया कि कथित निगम 1.4.2002 से प्रभाव के साथ एक उपलब्ध वाणिज्यिक संगठन में विकसित हो जाएगा ताकि निगम अपने स्वयं के साधनों से अपने कर्मचारियों के वेतनों की व्यवस्था कर सके, 15.11.2000 के पूर्व की कालावधि से सम्बन्धित बकाया वेतन का संदाय झालको द्वारा नहीं किया जायेगा और झालको का स्थापन खर्च प्रकाशित किया जायेगा। कोई नयी नियुक्ति नहीं की जायेगी, बल्कि उन कर्मचारियों की सेवाओं को जिन्हें अनियमित रूप से नियुक्त किया गया है, समाप्त कर दिया जायेगा। इस प्रभाव की एक अधिसूचना, जल संसाधन विभाग, झारखंड सरकार द्वारा जारी की गयी थी। उल्लिखित अधिसूचना सं॰ 2580 दिनांकित 29.12.2001 (उपाबन्ध-1)। तदुपरि मंत्रिमंडल ने अपनी बैठक में झालको के रूप में भालको को अंगीकार करने के बारे में जल संसाधन विभाग, झारखंड राज्य द्वारा ग्रहण किये गये विनिश्चिय को कार्योत्तर अनुमोदित कर दिया और 15.11.2000 से 31.3.2002 तक प्रभावी झालको के कर्मचारियों के संदाय के लिए 5.25 करोड़ की राशि को भी मंजूर किया। पश्चातवर्ती तौर पर, वर्ष 2003 में भालको ने झालको में उनकी सेवाओं के आमेलन के लिए भालको के कर्मचारियों से आवेदन पत्रों की मांग करते हुए स्थानीय समाचारपत्र में नोटिस जारी किया; उल्लिखित उपाबन्ध 4 एवं 5, यद्यपि याचियों के अनुसार, इससे वैसा करने की अपेक्षा कभी नहीं की गयी कि भालको के कर्मचारियों की सेवाएं बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 (इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 65 के उपबंध के आधार पर झालको द्वारा स्वतः आमेलित हो जायेगा। याचियों का आगे मामला यह है कि भालको के कर्मचारियों की सेवाओं में आमेलन के बावजूद भी जब उन्हें उनका वेतन नहीं दिया गया तब उन्होंने प्राधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत किया और यह मामला चर्चा हेतु सभा के समक्ष आया जिसके द्वारा सरकार को 15 दिनों के अन्दर बकाया और चालू वेतन का संदाय करने का निर्देश दिया गया। लेकिन जब इस मामले में कुछ नहीं किया गया तब यह रिट आवेदन वर्ष 2003 में दाखिल की गयी जिसमें झालको के कर्मचारियों के रूप में याची को मानने और चालू वेतन तथा 15.11.2000 से प्रभावी वेतन के बकाया का भी संदाय करने के लिए झालको को सम्मिलित कर प्रत्यर्थी को निर्देश देने की प्रार्थना की गयी है।

2. याचीगण की प्रार्थना का विरोध करने के लिए अभिवचन जिन्हें झालको द्वारा तथा झारखंड राज्य द्वारा क्रमिक प्रति-शपथपत्रों, पूरक प्रति-शपथपत्रों तथा अन्य शपथपत्रों में ग्रहण किया गया है, उन्हें इसके नीचे प्रगणित किया जा रहा है:-

3. यह कि जब ज्ञापन जल संसाधन विभाग के कर्मचारियों के द्वारा मंत्रिपरिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया गया तब अधिनियम की धारा 65 के निबन्धनों में भालको को ग्रहण करने का निर्णय लिया गया और कथित प्रारूप करार की एक प्रति इसकी स्वीकृति एवं निष्पादन के लिए बिहार राज्य के समक्ष भेजी गयी लेकिन कोई भी निर्णय बिहार सरकार द्वारा अभी तक नहीं लिया गया है और ऐसे रूप में अधिनियम की धारा 65 के अधीन यथा कल्पित इस प्रकार के करार के अभाव में, यह नहीं कहा जा सकता है कि भालको झारखंड राज्य द्वारा ग्रहण किया गया है।

4. यह कि झालको को कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन इसको 22.3.2002 को ही निगमित किया गया है और ऐसे रूप में झालको, भालको के कर्मचारियों को चालू वेतन तथा वेतन का बकाया भुगतान करने को बाध्यताधीन नहीं है जो 13.9.2004 को केन्द्रीय सरकार द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसार अधिनियम की धारा 65 के निबन्धनों में बिहार सरकार के नियंत्रण के अधीन बना रहा और बिहार सरकार ने समापन की भी एक कार्यवाही प्रारम्भ की है।

5. यह कि 18.3.2002 को लिये गये अपने निर्णय में केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने यद्यपि 15.11.2000 से 31.3.2002 तक भालको के कर्मचारियों को संदाय करने करने के लिए रकम को मंजूरी प्रदान कर दी थी लेकिन जब इसको सम्बन्धित विभाग द्वारा संसूचित किया गया कि झालको मात्र 22.3.2002 को अस्तित्व में आया है, इसलिए 15.11.2000 से प्रभावी संदाय करने का प्रश्न ही नहीं उठता है, मंत्रिमंडल ने 22.8.2003 को निर्णय लिया जिसके द्वारा 15.11.2000 से प्रभावी संदाय करने के लिए पूर्वतर निर्णय को विदा कर दिया गया।

6. यह कि झारखंड के अस्तित्व में आने के पश्चात् इसको एक अनुभवी हाथ की आवश्यकता पड़ी और भालको के अनुभवी कर्मचारियों की सेवाओं को ग्रहण करना अनुध्यात किया गया और इसलिए भालको के उन कर्मचारियों से आवेदन पत्रों की मांग करने के लिए एक विज्ञापन जारी किया गया जो झालको की सेवाएं ग्रहण करने की इच्छा कर रहे थे और उसके अनुसरण में, भालको के 398 कर्मचारियों ने अपने आवेदन पत्रों/दस्तावेजों को प्रस्तुत किया। उनमें से 302 कर्मचारियों के आवेदन पत्रों/दस्तावेजों को छानबीन समिति द्वारा सटीक होना पाया गया था और उन्हें पदग्रहण करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी गयी और उनके पदग्रहण की तारीख से वेतन का संदाय किया जा रहा है।

7. यह कि जब केन्द्रीय सरकार ने अपने निर्णय में भालको को बिहार सरकार के नियंत्रण के अधीन होना माना, तब झारखंड सरकार ने दिनांक 29.12.2001 के अपने पूर्वतर निर्णय को बातिल किया जिसके द्वारा भालको, झारखंड राज्य द्वारा ग्रहण किया गया और इस स्थिति के अधीन, याचीगण, भालको के कर्मचारीगण, झालको की सेवाओं में कभी भी आमेलित नहीं किये जा सकते हैं, विशेषकर उस समय जब झालको ने स्वत: की मंजूर की गयी संख्या से अधिक पहले से ही 152 वर्ग IV कर्मचारियों को प्राप्त किया है और अतएव, भालको के कर्मचारी होने वाले याचियों को संदाय करने का प्रश्न कभी भी उद्‌भूत नहीं होता है।

8. दूसरी ओर, बिहार राज्य का अभिमत यह है कि भालको की सम्पूर्ण आस्तियाँ झारखंड राज्य की अधिकारिता के अन्दर स्थित है और ऐसे रूप में, भालको द्वारा उपगत किये गये सभी दायित्वों को अधिनियम की धाराएँ 47(1) एवं 56(a) के उपबंध के निबन्धनों में झारखंड राज्य द्वारा वहन किया जाना है।

9. इस मामले में अन्तर्ग्रस्त विवाद्यकों पर आने के पूर्व कतिपय पृष्ठभूमि जिसका इस मामले से बड़ा सम्बन्ध है, पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। जब बिहार राज्य में स्थित अनेक निगम के कर्मचारियों की भूखमरी का परिणाम देने वाली लम्बे समय तक वेतनों का न संदाय करने के बारे में कतिपय समाचार-पत्रों में रिपोर्ट आयी तब एक लोक हितवाद कथित निगमों, पब्लिक सेक्टर अन्डर टेकिंग एवं कानूनी निकायों के कर्मचारियों के वेतन के बकायों के भुगतान के लिए बिहार राज्य के दायित्व से सम्बन्धित प्रश्न को माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन लाया गया था। न्यायालय ने बिहार राज्य के अभिमत पर विचार करने के पश्चात 9.5.2003 को एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा उच्च न्यायालय से कम्पनियों की आस्तियों एवं दायित्वों की संवीक्षा करने के लिए सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की अध्यक्षता में तीन सदस्यों की समिति को गठित करने का निवेदन किया गया इसी दौरान राज्य सरकार को निगमों के कर्मचारियों के वेतनों का वितरण करने लिए उच्च न्यायालय के समक्ष 50 करोड़ की एक राशि का निक्षेप करने का निर्देश दिया गया था। उसके अनुसरण में, अनेक घटनाएँ घटी एवं उस प्रक्रिया में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम के उपबन्धों के निबन्धनों में सरकारी कम्पनियों/पब्लिक सेक्टर अन्डर टेकिंग की आस्तियों एवं दायित्वों के विभाजन के बारे में एक निर्णय लेने के लिए, राज्य सरकार को निर्देशित करने वाला 13.8.2004 को एक आदेश पारित किया। तदुपरि एक अन्तर्वर्ती आवेदन सं॰ 7 वर्ष 2004

दाखिल किया गया जिसमें भालको के उत्तराधिकारी के रूप में झालको को व्यवहृत करने के लिए प्रत्यर्थी को निर्देश दिया गया था। कथित अन्तर्वर्ती आवेदन-पत्र को इस तथ्य के कारण उपधारणात्मक तौर पर दाखिल करना आवश्यक बनाया गया कि झालको ने एक विज्ञापन के रूप में कागजातों को प्रस्तुत करने के लिए भालको के कर्मचारियों से मांग की थी ताकि उन्हें झालको में आमेलित किया जा सके यदि वे आमेलन की उनकी क्रमिक तारीख की पूर्व की कालावधि के लिए वेतन के अपने दावे को छोड़ देते है। कथित अन्तर्वर्ती आवेदन-पत्र में की गयी प्रार्थना का झालको द्वारा विरोध किया गया और इस आधार पर झारखंड राज्य द्वारा भी कि भालको के कर्मचारियों की सेवाओं को ग्रहण करने या उनके वेतन का संदाय करने का प्रश्न कभी नहीं पैदा होता है क्योंकि झालको 22.3.2002 को अस्तित्व में आया।

सुनवाई के पश्चात् माननीय न्यायालय ने 13.1.2005 को एक आदेश पारित किया जो निम्नलिखित रूप से पठित है:-

> ''यह सत्य है क्योंकि यह झारखण्ड राज्य की ओर से तर्क किया गया है कि झालको के रूप में नामित एक नवीन निगम अस्तित्वशील हो गया है लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि स्वत: झारखंड राज्य ने भालको के कर्मचारियों को विकल्प प्रदान किया है इसलिए उन कर्मचारियों के आमेलन का आदेश जो नियोजन चुनते हैं, एक पूर्व तारीख पर पारित किया जा सकेगा न कि उस तारीख से छ: सप्ताह बाद। सम्बन्धित कर्मचारियों को इस राज्य में कोई वचनपत्र दाखिल करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस बारे में प्रश्न कि क्या झारखंड राज्य भालको के कर्मचारियों के वेतन तथा अन्य उपलब्धियों के लिए दायी है, एक ऐसा प्रश्न है जो एक समुचित कार्यवाही में निर्णय के लिए आयेगा।

तत्पश्चात् एक सम्बन्धित अन्तर्वर्ती आवेदन सं॰ 11 वर्ष 2007, 13.1.2005 को पारित किये गये आदेश के उपांतरण के लिए झालको की ओर से दाखिल किया गया जिसमें यह कथन किया गया कि 398 कर्मकारों में से जो भालको के साथ कार्य कर रहे थे और अपने आमेलन के लिए आवेदन किया था, मात्र 302 कर्मकार उपस्थित हुए एवं ऐसे रूप में, उन्हें इस तथ्य के बावजूद भी आमेलित कर दिया गया कि 152 कर्मचारीगण अधिक थे। झारखंड राज्य की ओर से किये गये कथन को ध्यान में रखते हुए अन्तर्वर्ती आवेदन इस निबन्धन में निपटाया गया कि वे सभी जो नियत तारीख पर ड्यूटी के लिए नहीं उपस्थित हुए मामले में उन उपचारो को मांग कर सकेगे जो विधित: उनके लिए उपलब्ध है। हमे उनके आमेलन के बारे में कोई निर्देश जारी करने की आवश्यकता नहीं है।

10. यह आगे अभिलिखित किया जाय कि दिनांक 13.1.2005 के आदेश के अनुसरण में, जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, 216 व्यक्ति ने अपने आमेलन के लिए झालको के प्राधिकारी के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया लेकिन जब कुछ भी नहीं किया गया तब एक सम्बन्धित आवेदन सं॰ 21 वर्ष 2007 प्रत्यर्थी-राज्य/झालको को दिनांक 13.1.2005 के आदेश का अनुपालन करने और झालको में आमेलन का आदेश पारित करने का निर्देश देने के लिए दाखिल किया गया था जिसपर झारखंड राज्य को नोटिस जारी की गयी और झालको को भी तथा सुनने के पश्चात् न्यायालय ने 13.12.2007 को आदेश पारित किया जो निम्नलिखित रूप में पठित है:-

> ''पक्षकारों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर हमारी राय यह है कि चूँकि वह स्थिति जिसमें तत्कालीन भालको कर्मचारीगण, झालको की ओर से अधिवक्ता द्वारा हमारे समक्ष एक कथन से उद्भूत होती है, जिसका राज्य अब नकल करने की इप्सा करता है, हमारी राय यह है कि बिहार राज्य एवं झारखंड राज्य के सचिवों एवं भालको एवं झालको के प्रबन्ध निर्देशको को भी सम्बन्धित कर्मचारियों के आमेलन के बारे में बातचीत करनी चाहिए एवं एक रिपोर्ट इस न्यायालय में प्रस्तुत की जानी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो केन्द्रीय सरकार के समुचित विभाग का भी मध्यक्षेप ग्रहण किया जा सकेगा।''

पश्चातवर्ती तौर पर जब मामला सुनवाई के लिए पुन: आया तब झारखंड राज्य तथा झालको ने भी यह अभिमत ग्रहण किया कि भालको तथा झालको दो भिन्न सत्तायें है क्योंकि भारत सरकार ने यह निर्णय लिया है कि भालको को अधिनियम, 2000 की धारा 65 के निबन्धनों में बिहार सरकार के नियंत्रण के रखा जाना है और यह कि झालको में पहले से ही भालको के 302 कर्मचारी है और तद्द्वारा 152 वर्ग IV कर्मचारियों को अधिशेष के रूप में नियोजित किया गया और ऐसे रूप में यदि 216 कर्मचारियों को आमेलित किये जाने के लिए निर्देशित किया जाता है तो झालको एक रुग्ण कंपनी हो जाऐगी।

तदुपरि माननीय न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विवाद्यक को निर्णीत करने के लिए इसके उपयुक्त नहीं माना कि एक श्रम विवाद एक लोकहितवाद में उठाया गया था और यह कि समरूपी मामला न्यायालय के समक्ष लंबित था और इसलिए उस अन्तवर्ती आवेदनपत्र को निम्नलिखित शब्दों में निपटाया गया था:-

> ''झारखंड उच्च न्यायालय से इसके समक्ष लंबित रिट याचिका को पूर्वतर निपटाने का अनुरोध किया जाता है और यदि संभव हो तो उस तारीख के छ: सप्ताह के अन्दर। यदि उच्च न्यायालय को पूर्वोल्लिखित कालावधि के अन्दर मामले को निपटाने में कठिनाई होती है तो यह ऐसा अंतिम आदेश पारित कर सकेगा जो वह उपयुक्त एवं उचित समझे। यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि मामले में यदि उच्च न्यायालय यह पाता है कि आवेदक एक पूर्वतर तारीख से झालको की सेवाओं में आमेलित किये जाने के हकदार थे तो ऐसा एक आदेश पारित करने का विकल्प इसके लिए खुला होगा जो यह उपयुक्त एवं उचित समझे ताकि पक्षकारों के बीच साम्या को समायोजित किया जा सके। यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि अंतिम आमेलन पूर्व वेतनों तथा उसको संदाय करने के दायित्व के प्रश्न को उक्त रिट याचिका में उच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया जा सकेगा।
>
> प्रबन्ध निदेशक, भालको एवं प्रबन्ध निदेशक, झालको एवं साथ ही बिहार सरकार एवं झारखंड सरकार के सचिव भी उस तारीख से एक महीने के अन्दर बैठक करेंगे, निर्णय करेंगे तथा पहले से आमेलित किये गये एवं आमेलित किये जाने वाले कर्मचारियों को संदेय वेतनों के बकायों के फलस्वरूप दायित्व को निर्धारित करेंगे और कर्मचारियों को भुगतान इत्यादि के ढंग के बारे में अंतिम निर्णय लेने के लिए उच्च न्यायालय को निर्णय की तारीख के एक सप्ताह के अन्दर उसकी एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगें यदि कोई हो, ताकि उस विस्तार तक झालको के दायित्व कम हो जायें।

केन्द्रीय सरकार यह देखने के लिए शीघ्र कार्रवाई करेगा कि इसके द्वारा पारित दिनांक 13.9.2004 के आदेश में निर्देशों का बिहार राज्य द्वारा अनुपालन किया गया है।

इस पृष्ठभूमि में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह मामला जो 2003 से लम्बित था, स्वीकृति के प्रक्रम पर ग्रहण किया गया।

पक्षकारों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुनने तथा अभिवचन पर विचार करके, निम्नलिखित विवाद्यक विचार करने के लिए आते हैं:-

> ''क्या बिहार पुनर्गठन अधिनियम की धारा 65 में यथा स्थापित उपबंध को ध्यान में रखते हुए भालको को इसके नाम में एक परिवर्तन के साथ मात्र वही सत्ता होना माना जायेगा क्योंकि झालको या झालको, भालको से एक पृथक सत्ता है।''

इस बात पर पहले से ही उल्लेख किया जा चुका है कि भालको वर्ष 1975 में स्थापित किया गया और मुख्य रूप से छोटानागपुर तथा संथाल परगनाओं के पहाड़ी क्षेत्रों और तत्कालीन बिहार के जिलों में से कुछेक लघु एवं मझोले कृषकों को सिंचाई सुविधाएं प्रदान करने के उद्देश्य के साथ कम्पनी अधिनियम के अधीन निगमित किया गया था एवं इसके क्रिया-कलापों को झारखंड राज्य के अधिकांश जिलों तक मुख्य रूप से परिसीमित कर दिया गया। पश्चात्वर्ती तौर पर, तत्कालीन बिहार राज्य को 15.11.2000 से प्रभावी बिहार पुनर्गठन अधिनियम द्वारा वर्तमान बिहार राज्य तथा झारखंड राज्य में

विभक्त कर दिया गया। पूर्वोक्त अधिनियम के अधीन कार्य करने एवं हित के विभाजन तथा कथित अधिनियम की नौंवी अनुसूची में विनिर्दिष्ट कम्पनियों की बाबत शेयर और ब्याज के विभाजन के बारे में बनाया गया। स्वीकार्यरूपेण भालको नौवीं सूची में नहीं है। अधिनियम की धारा 65 में कथित उपबंध स्थापित किया गया है, जो निम्नलिखित रूप में पठित है:-

> धारा 65—''**कतिपय कम्पनियों के बारे में उपबन्ध.**—इस भाग के पूर्वगामी उपबन्धों में अन्तर्विष्ट किसी भी बात को होते हुए भी इस अधिनियम की नौवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट कम्पनियों में से प्रत्येक नियत तारीख पर या उससे तथा जब तक किसी विधि में या उत्तरवर्ती राज्यों के बीच किसी करार में या केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किये गये किसी निर्देश में अन्यथा उपबन्ध नहीं किया जाता तब तक उन क्षेत्रों में कार्य करना जारी रखेगा जिनमें यह उस दिन के ठीक पहले कार्य कर रहा था और केन्द्रीय सरकार, समय-समय पर ऐसे कार्यकारिणी के सम्बन्ध में ऐसे निर्देश कर सकेगा जो कम्पनी अधिनियम, 1956, या किसी अन्य विधि में अन्तर्विष्ट प्रतिकूल किसी भी बात को होते हुए भी उपयुक्त समझे;
>
> (1) उस उप-धारा में निर्दिष्ट किसी कंपनी के सम्बन्ध में उप-धारा (1) के अधीन निर्गत किसी निर्देश में निम्न निर्देश शामिल हो सकते हैं:
>
> (a) उत्तरवर्ती राज्यों के बीच कम्पनी में विद्यमान बिहार राज्य के हितों एवं शेयरों के विभाजन के बारे में;
>
> (b) कम्पनी के निदेशक बोर्ड के पुनर्गठन की अपेक्षा करना ताकि दोनों उत्तरवर्ती राज्यों के समक्ष पर्याप्त अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जा सके।

कथित उपबंध उन क्षेत्रों में कम्पनी के क्रिया-कलापों की निरंतरता के बारे में उपबन्ध करता है जिनमें यह नियत तारीख के ठीक पूर्व कार्य कर रहा था एवं उसको नियमित करने के लिए तथा विद्यमान बिहार राज्य के हितों एवं शेयरों के विभाजन के लिए भी केन्द्रीय सरकार को कम्पनी अधिनियम या किसी अन्य विधि में उपबंध के प्रतिकूल भी राज्य सरकार या अन्य प्राधिकारी को कतिपय निर्देश देने के लिए शक्ति निहित की गयी है। कथित उपबन्ध को ध्यान में रखते हुए, संभवत: जल संसाधन विभाग, झारखंड सरकार, अधिनियम की धारा-85 के अधीन यथास्थापित शक्ति के आधार पर भालको के संघ ज्ञापन एवं संघ अनुच्छेद को अभिस्वीकार करके झालको के परिवर्तित नाम के साथ झारखंड राज्य में भालको के क्रियाकलापों को जारी रखने के प्रयोजन से एक अधिसूचना दिनांकित 29.12.2001 (उपाबन्ध-1) को निर्गत किया। उपबंध-1 के अधीन लिये गये विनिश्चिय को मंत्रिमंडल द्वारा समर्थन किया गया जो उपाबन्ध-2 से सुव्यक्त है। ऐसा निर्णय लेते समय यह उपाबंध-1 एवं उपाबंध-2 के अधीन अनुबंधित किया गया कि वे व्यक्ति जो पहले से कार्य कर रहे थे, 15.11.2000 के पूर्व की कालावधि के लिए वेतन के हकदार नहीं होंगे और उसी समय यह भी संकल्प लिया गया कि कोई भी नयी नियुक्ति नहीं की जायेगी और यह कि झालको को 1.4.2002 से प्रभावी एक अस्तित्वक्षम वाणिज्यिक संस्थान के रूप में इसको विकसित करना चाहिए जिस तारीख से राज्य सरकार झालको को कोई वित्तीय सहायता नहीं प्रदान कर रही होगी। किन्तु यह प्रतीत होता है कि सरकार ने 15.11.2000 से 31.3.2002 तक की कालावधि के लिए भालको/झालको के कर्मचारियों को संदाय करने के लिए 5.25 करोड़ रुपये की एक राशि मंजूर की। अतएव, उपाबन्ध 1 एवं 2 के अधीन किये गये ये सभी अनुबन्ध स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित करते हैं कि झारखंड सरकार का आशय झालको के तौर पर परिवर्तित नाम से झारखंड राज्य के राज्य क्षेत्र में अपने क्रिया-कलापों को जारी रखने के लिए भालको को अनुज्ञात करना था जो अधिनियम की धारा 65 के उपबन्धों के अनुकूल था लेकिन अब झालको के रूप में झारखंड राज्य ने एक विपरीत मोड़ लिया है और यह अभिवचन किया है कि झालको एक पृथक सत्ता है जो 23.3.2002 को उस समय अस्तित्व में आया जब इसको कंपनी अधिनियम के अधीन निगमित किया गया था और ऐसे रूप में झारखंड भालको के कर्मचारियों को आमेलित करने की बाध्यता के अधीन नहीं है लेकिन यह प्रख्यान न केवल झारखंड राज्य के पूर्वतर अभिमत के प्रतिकूल है जैसा कि ऊपर विचार किया गया है, अपितु यह अधिनियम

की धारा 65 के उपबंध के भी प्रतिकूल है जो विद्यमान कंपनी की समाप्ति या नयी कंपनी के निर्माण के बारे में कभी नहीं अनुध्यात् करता है, बल्कि यह उस राज्य क्षेत्र में विद्यमान कंपनी के क्रिया-कलापों के जारी रहने को अनुध्यात् करता है जिसमें यह पहले से कार्य कर रहा था। यह भी ध्यान में रखा जाय कि अधिनियम की धारा 65 में अन्तर्विष्ट उपबन्ध सर्वोपरि खंड के साथ प्रारम्भ होता है जिसके द्वारा प्राधिकारी को कंपनी अधिनियम या किसी अन्य विधि में उपबंध के प्रतिकूल भी कतिपय कम्पनियों को सतत निर्देश देने के लिए सशक्त किया गया है।

11. मामले के इस दृष्टि से झालको को नवीन सत्ता होना कभी नहीं कहा जा सकता है यदि इसको भारतीय कंपनी अधिनियम के अधीन निगमित भी कर दिया गया है तो भी भालको के बारे में यह समझा जायेगा कि वह झालको के नाम से चल रही है। झारखंड राज्य के रूप में भी झालको द्वारा ग्रहण किया गया अग्रेतर आक्षेप यह है कि क्योंकि सभी शेयर कंपनी में निहित हो गये इसलिए भालको बिहार राज्य के राज्यपाल के नाम से है जिसको अंतरित नहीं किया जा सकता है और इस रूप में यह कभी नहीं कहा जा सकता है कि भालको को झालको द्वारा ग्रहण कर लिया गया है। यह तर्क अधिनियम की धारा 65(2)(a) में यथा अन्तर्विष्ट उपबंध को ध्यान में रखते हुए गुणागुण से वंचित होना प्रतीत होता है जो उत्तर्वर्ती राज्यों के बीच कम्पनियों में विद्यमान बिहार राज्य के ब्याज एवं शेयरों के विभाजन के बारे में कहती है और इस बाबत कोई निर्देश देने के लिए केन्द्रीय सरकार को वैसा करने के लिए प्राधिकृत किया गया है। यह यहां कथन किया जाय कि उन क्षेत्रों में कंपनी के क्रियाकलापों के जारी रहने के बारे में अधिनियम की धारा 65 के अधीन किये गये चिन्तन के प्रतिकूल दो राज्यों के बीच किसी करार के अभाव में जिसमें यह कार्य कर रहा था, अधिनियम की धारा 65 के अधीन यथा अनुध्यात् किये गये विधि की कल्पना द्वारा कार्य करना जारी रहेगा। परिणामत: विनिश्चय को बातिल करने वाला एक पक्षीय निर्णय का जो उपाबन्ध-I के अधीन लिया गया है, कम्पनी की प्रास्थिति से सम्बन्धित कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा।

12. उसके बावजूद, प्रबन्ध निदेशक, झालको, रांची प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने 27.3.2003 तथा 31.7.2003 को समाचारपत्र में एक नोटिस प्रकाशित करवाया जिसके द्वारा भालको के कर्मचारीगण से जो झालको की सेवा ग्रहण करने की इच्छा कर रहे थे, सेवावधि के विवरण के साथ उनके पद ग्रहण करने की रिपोर्ट प्रस्तुत करने की अपेक्षा की गयी। यह आगे अनुबंधित किया गया कि पदग्रहण करने की तारीख से उन्हें उनके वेतन दिये जायेंगे। कथित विज्ञापन के अनुसरण में, 398 आवेदन पत्र प्राप्त किये गये और उनमें से 302 हाजिर हुए जिन्हें पदग्रहण करने की अनुज्ञा दी गई। किन्तु, अब यह अभिकथन किया जा रहा है कि उन 302 कर्मचारियों में से जिन्हें झालको की सेवाओं में ग्रहण किया गया, 152 व्यक्ति अधिशेष में है एवं इसलिए, यदि 216 और व्यक्तियों को झालको की सेवा में ग्रहण किये जाने का निर्देश दिया जाता है, तो झालको वित्तीय तौर पर बर्बाद हो जायेगा।

13. इस बाबत पर यह कथन किया जाता है कि जब दो विज्ञापनों को जारी किया गया तब एक अन्तर्वर्ती आवेदन माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष भालको के कर्मचारियों की ओर से दाखिल किया गया जहां माननीय उच्चतम न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात उन कर्मचारियों के आमेलन का आदेश पारित करने के लिए प्राधिकारियों को निर्देश देते हुए 13.1.2005 को एक आदेश पारित किया जिन्होंने आवेदन प्रस्तुत करने की तारीख से छ: सप्ताह के पहले एक पूर्व तारीख पर नियोजन को चुना है और यह कि सम्बन्धित कर्मचारियों को कोई बचनपत्र दाखिल करने की आवश्यकता नहीं है कि वे वेतन के बकायों का दावा नहीं कर रहे होंगे। उसके अनुसरण में, याचियों को सम्मिलित कर 216 व्यक्तियों द्वारा आवेदनपत्रों को प्रस्तुत किया गया लेकिन जब कोई निर्णय नहीं लिया गया तब सम्बन्धित एक अन्तर्वर्ती आवेदनपत्र भालको के कर्मचारियों की ओर से प्रस्तुत किया गया जिसमें एक ही अभिवचन झालको द्वारा एवं साथ ही झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया कि मंजूर गयी संख्या के अनुसार, 152 वर्ग-IV कर्मचारीगण अधिशेष में है एवं इसलिए, यदि 216 व्यक्तियों का झालको की सेवाओं में ग्रहण किये जाने का निर्देश दिया जाता है तो झालको वित्तीय रूप से विनष्ट

हो जायेगा। किन्तु माननीय उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न अवसरो पर उनके द्वारा ग्रहण किये गये विरोधाभासी और असंगत अभिमत पर मामले को निपटाते समय अपनी परिवेदना अभिव्यक्त किया जो एक सम्बन्धित अन्तर्वर्ती आवेदन सं॰ 21 वर्ष 2007 में 8.7.2008 को पारित किये गये आदेश के सार से प्रतीत होगा जो निम्नलिखित रूप में पठित है:-

हमने जानबूझकर यह प्रदर्शित करने के लिए झारखंड राज्य एवं झालको की ओर से दो शपथपत्रों को मात्र निर्दिष्ट किया है कि झालको एवं राज्य समय-समय पर अपने अभिमत परिवर्तित कर रहे हैं। कई समय पर उनके अभिमत विरोधाभावी एवं स्पष्टीकरण देने योग्य हो गया है। इस पर पहले से ही विचार किया गया है कि झालको बहुत पीछे 29.12.2001 को अस्तित्व में आया क्योंकि भालको के प्रवर्तन के क्षेत्र झारखंड राज्य के अस्तित्व में आ जाने के पश्चात् झारखंड राज्य की सीमाओं के अन्दर आते थे। मंत्रिमंडल नोट दिनांकित 9.1.2002 जो आई॰ ए॰ सं॰ 11 वर्ष 2005 के साथ रिट याची द्वारा दाखिल किया गया था, स्पष्ट रूप से यह सुझाव देता है कि झारखंड राज्य मंत्रिमंडल ने यह मंजूरी दी थी कि भालको को झालको के रूप में चलाना चाहिए। 2003 में, झालको ने भालको के कर्मचारियों के आमेलन के लिए दो विज्ञापन दिये है और बाद में भी, यह स्वीकार किया गया कि झालको, भालको के अनुभवी कर्मचारियों की अपेक्षा करता था। इन विज्ञापनों के अनुसरण में, झालको के सभी कर्मचारीगण नियमित किये जाने के लिए आवेदन कर सकते थे, परंतु उनके आवेदनपत्रों को उचित होना पाया गया। तद्नुसार, कुल 302 कर्मचारी आमेलित किये गये। दूसरे के आवेदन-पत्रों को अस्वीकृत कर दिया गया और कतिपय दूसरों ने बिल्कुल आवेदन नहीं किया गया, संभवत: इस दशा के कारण कि कतिपय कर्मचारियों को असंदत्त वेतनों के अपने पूर्वतर दावे को छोड़ देना पड़ा। उस समय जब विज्ञापन दिये गये तब सभी कर्मचारियों को स्थान देने के लिए किसी न्यायालय के आदेश के रूप में कोई विवशता नहीं थी और यह मात्र एक मानवतावादी विचार बन सका था जिनमें से कथित विज्ञापन जारी किया गया। यह विस्मृत नहीं किया जा सकता है कि झालको के साथ कोई प्रशिक्षित कर्मचारीवृन्द नहीं था और इसलिए झालको भालको के अनुभवी कर्मचारीवृन्द की अपेक्षा करता था। अतएव यह हेतुक भालको की नामवली को मात्र प्रतिस्थापित करने और उसके झालको के रूप में चलते रहने का था। यह प्रतीत होता है कि इन कर्मचारियों को वेतनों का न संदाय करना एक कारक नहीं था और इसलिए झालको दोहरा लाभ प्रात्त करना चाहती थी, उदाहरणार्थ प्रथम, यह सभी अनुभवी कर्मचारियों को ले सकता था और दूसरे, वह भी उनके वेतन के संदायों के दायित्व का सामना किये बिना ही। यह अवश्य स्मरण किया जाना चाहिए कि यह सभी इस न्यायालय के आदेश दिनांकित 9.5.2003 के बाद ही हुआ जिसमें यह न्यायालय बिहार राज्य से निगमों के कर्मचारियों के वेतन के वितरण के लिए 50 करोड़ रुपये की एक राशि जमा करने की अपेक्षा करता था और तदर्थ आधार पर जरूरतमंद कर्मचारियों की निधियों के वितरण का भी निर्देश दिया था। न्यायालय ने कम्पनी की आस्तित्वों एवं दायित्वों की संवीक्षा करने के लिए एक समिति के सृजन का भी निर्देश दिया था। अतएव, जब विज्ञापन 7.8.2003 को कट-ऑफ तारीख को जारी किये गये, तब झालको को एक भिन्न लाभ मिला। किन्तु तत्पश्चात् दिनांक 13.1.2005 को इस न्यायालय का आदेश आया जिसके द्वारा इस न्यायालय ने झालको के अस्तित्व में आने की सूचना प्राप्त की और आगे यह निर्देश दिया कि सम्बन्धित कर्मचारियों को जिन्हें आमेलित किया जाना था, पूर्व असंदत्त वेतनों अपने दावों को छोड़ देने का वचन देने की आवश्यकता नहीं है। तब तक, यह दिनांक 13.1.2005 के आदेश की भाषा से प्रतीत होता है कि कोई औपचारिक आदेश आमेलन के लिए नहीं पारित किया गया। संभवत: इसलिए इस न्यायालय ने ऐसे कर्मचारियों को छ: सप्ताह का समय दिया। पुन: पूर्वतर विज्ञापनों की भांति, मात्र पूर्वगामी कर्मचारी वेतनों पर अपने दावों को छोड़ने के वाले कर्मचारी ही आवेदन कर सकते थे, संभवत: सभी कर्मचारीगण ने आवेदन नहीं किया जिससे यह संख्या मात्र 302 पर ही सीमित हो गई। अब दिनांक 13.1.2005 के आदेश के अनुसरण में 216 और

कर्मचारियों ने भी आवेदन किया था और वह भी वेतनों पर अपने दावों को छोड़े बिना। यह संभवत: इस कारणवश है कि झालको की वित्तीय दशा का पुनर्विलोकन करने हेतु, कर्मचारियों की संख्या को न्यून करने के लिए तथा कर्मचारियों की कुल संख्या को 214 तक सीमित करने के लिए दिनांक 8.8.2005 की एक बैठक में निर्णय लिया गया। वास्तव में यदि अतिरिक्त शपथपत्र के पैरा A(f) को देखा जाता है तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि यद्यपि 152 अधिक वर्ग-IV कर्मचारी थे फिर भी 64 अधिकारियों की आवश्यकता अभी भी थी क्योंकि मात्र 14 अधिकारियों को 76 अधिकारियों की कुल मंजूर की गयी संख्या के विरुद्ध नियुक्त किया गया। कर्मचारियों को न्यून करने तथा 214 तक कर्मचारियों की कुल संख्या को सीमित करने का यह प्रयोग इस न्यायालय के दिनांक 13.1.2005 परिणामस्वरूप जानबुझकर किया गया प्रयोग प्रतीत होता है, और आनुषंगिक तौर पर, उस आदेश का अनुसरण इसके सत्य विचार में नहीं किया गया जिसने याचियों से अंतत: आई॰ ए॰ सं॰ 11 को दाखिल करने की अपेक्षा की। अतिरिक्त शपथपत्र के पैरा A(f) में दिये गये अंक भी गुमराह करने वाले हैं। यदि 214 की कुल मंजूर की गयी संख्या के विरुद्ध उचित रूप से गणना की जाय तो 302 कर्मचारीगण नियोजित किये गये थे। अतएव मात्र 88 अधिक कर्मचारियों को नियोजित किया गया होना नहीं कहा जा सकता था और वह भी दिनांक 8.8.2005 के निर्णय के पूर्व। अतएव, अधिक कर्मचारीगण के रूप में 152 का अंक स्पष्ट रूप से गुमराह करने वाला है। यह कोई स्पष्टीकरण होना नहीं प्रतीत होता है और न ही झालको द्वारा कर्मचारियों को न्यून करने को न्याय संगत बनाने के लिए कोई आंकड़ा होना प्रतित होता है। क्षेत्र या कम से कम क्रियाकलापों का कोई न्यूनीकरण नहीं हुआ, कम से कम किसी ने भी हमारे समक्ष यह अभिवचन नहीं किया जिस मामले में स्वयं झालको के कर्मचारियों की संख्या को कम करने का निर्णय न तो अच्छा, युक्तियुक्त और न ही न्यायोचित ठहराने योग्य प्रतीत होता है और दिनांक 13.1.2005 को इस न्यायालय के आदेश की कठोरता से बाहर जाने वाला प्रतीत होता है। चाहे जैसी भी स्थिति हो, एतद् पश्चात की गयी चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए हम आवेदकों के पक्ष में कोई आदेश पारित करने की स्थिति में नहीं है यदि रिक्तियां होने के बारे में उनके तर्को को स्वीकृत किया जाता है।''

इस बात पर विचार किया जाय कि ठीक उसी समय से प्रारम्भ जब झालको के परिवर्तित नाम से बिहार राज्य के क्षेत्र में भालको के कार्यकलापों को जारी रखने के लिए अनुज्ञा प्रदान करने हेतु निर्णय लिया गया तब कोई ऐसा संकेत कर्मचारीवृन्द के अधिशेष होने के बारे में कभी भी नहीं दी गयी। इसके अतिरिक्त, झालको द्वारा जारी किये गये विज्ञापन ही यह उपदर्शित करते हैं कि आवेदकों से उन सभी इच्छा करने वाले कर्मचारियों से आवेदन-पत्रों की मांग की गयी जो झालको की सेवाएं ग्रहण करना चाहते है। उस समय भी कोई निर्बन्धन आमेलित किए जाने वाले कर्मचारियों की संख्या पर नहीं अधिरोपित किया गया। मामले के इस दृष्टि से, मैं भी उसी विचार से सहमत हूँ जो माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह संप्रेक्षण करते हुए अभिव्यक्त किया है, **अधिक कर्मचारियों के रूप में 152 का अंक, अतएव, स्पष्टरूपेण भ्रमित करने वाला है। झालको के कर्मचारियों को न्यून करने का कोई स्पष्टीकरण प्रतीत नहीं होता है और न ही उसको न्यायोचित ठहराने का कोई आंकड़ा और यह प्रतीत होता है कि ऐसे अभिवचन को दिनांक 13.1.2005 के न्यायालय के आदेश की कठोरता से बाहर जाने के लिए लिया गया है।**''

14. अतएव, इसमें इसके ऊपर चर्चित कारणों से भालको एवं झालको के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वे दो पृथक सत्ताएं है, बल्कि बिहार पुनर्गठन अधिनियम की धारा 65 के निबन्धनों में भालको के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह झालको के रूप में कार्य कर रहा है।

15. अतएव, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि याचीगण उस तारीख से झालको की सेवा में आमेलित किये जाने के हकदार है जब उन्होंने 13.1.2005 को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये निर्देश के अनुसरण में अपने आमेलन हेतु आवेदन प्रस्तुत किये हैं एवं अपने आमेलन की तारीख से अपने वेतनों को प्राप्त करने के हकदार है जिसका संदाय उन अन्य कर्मचारियों के रूप में झालको द्वारा किया जाना है, जिनकी सेवाएं झालको द्वारा स्वीकृत की गयी, उन्हें भी पदग्रहण करने की तारीख से संदाय किया जाना है।

16. परिणामत: रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।